जिन २ ग्रन्थोंका इसमें वर्णन है उनके नाम.

वेद

ऋक् यजुः साम अथर्व

ब्राह्मण

ऐतरेय शतपथ ताण्डय गोपथ

उपनिषद्

ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य तैत्तिरीय बृहदारण्यक छान्दोग्य

धर्मशास्त्र

याज्ञवल्क्य, मनुस्मृति

वेदांग

शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष

दर्शन

न्याय २ योग सांख्य मीमांसा वेदान्त

इतिहास

महाभारत

पुराण

भागवतादिअष्टादश.

रामायण

वाल्मीकि

वैद्यक

चरक सुश्रुत.

भूमिका.

पूर्व कालमें यह भारतवर्ष विद्यावुद्धि सम्पन्न सर्व गुणौंकी खानथा, जिस समय इस देशकी कीर्तिपताका भूमण्लडके चारौं ओर फहरा रहीथी, उस समय कानोंसै सुनी कीर्तियौंको नेत्रोंसै देखनैके निमित्त अनेक देशौंके यात्री यहां आते, और अपने नेत्रोंको सुफलकर यहांकी अतुलनीय कीर्तिको अपनी भाषाके ग्रथौंमें रचते थे, वे ग्रंथ आजतक इस देशकी गुरुता और कीर्तिका स्मरण कराते हैं। जिससमय यह सब विश्व अज्ञानांधकारमें मग्न था, पृथ्वीके अधिकांशमें असभ्यता पूर्ण होरहीथी उस समय यही देश धर्म आस्तिकता और भक्ति तथा सभ्यताके पूर्ण प्रकाशसै जगमगा रहाथा, उस समय इस देशमेंहीं ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, गणित, ज्योतिष, भेषजतत्व, काव्य, पुराण, साहित्य, धर्मादि विषयौंनै पूर्ण उन्नतिकीथी. कश्यप मरीचि विश्वामित्रादि जहांके ऋषि, व्यास वाल्मीकि कालिदास प्रभृति जहांके कवि, पाणिनी पतञ्जलि आदि जहांके वैय्याकरणी, धन्वन्तरि, सुश्रुत, चरक आदि जहांके वैद्य, कपिल, कणाद, और गौतमप्रभृति जहांके शास्त्रकार, नारद मनु बृहस्पति आदि जहांके धर्मोपदेष्टा, वसिष्ठ, आर्यभट्ट, पाराशरादि जहांके ज्योतिविंद, शंकराचार्य, रामानुज स्वामी, वल्लभाचार्य, आदि जहांके धर्मप्रचारक, सायनाचार्य, याज्ञदेव, मल्लिनाथप्रभृति जहांके भाष्यकार, अमरसिंह, महेश्वर प्रभृति जिस देशके कोषकार होगये हैं, ऐसा एक देश यह भारतही है, जिस समय यह सब सामग्री विद्य मानथी, उससमय इस देशमें सनातन वैदिक धर्म पूर्णरूपसै प्रचलित था, नरपति ऋषि मुनियौंके यज्ञसै पुण्य क्षेत्र, पञ्च यज्ञसै ग्रहस्थियोंके घर, और आरण्यक पाठसै काननमें पुण्यका प्रवाह वहरहाथा, सनातन धर्मकी महिमा और भक्ति सबके अन्तःकरणमें खिल रहीथी.

परन्तु समयकीभी क्या अलौकिक महिमा है, कि सूर्यऽमंडलको आकाशमें चढकर मध्यान्ह समय महातीक्ष्ण होकर फिर नीचेको उतरना पडता है, ठीक वही दशा इस देशकी हुई, जो सबका शिर मौरथा वह पराधीनताके भारसै महापीडित होरहा है, भारतके उपरान्त यह देश विदेशी चढाइयौंसै ऐसा गारत होकर आरत हुआ है, कि निस्सार वलहीन होकर आलस्यका भंडार होगया है, इसकी विद्या वुद्धि सब विदेशीय शिक्षामें लय होगई है, धर्म कर्ममें असावधानी होगई है, संस्कृत विद्या जो द्विजमात्रका आधारथी, उसके शब्दभी अब शुद्ध नहीं उच्चारण होते, इसप्रकार धर्म विप्लव हौनेसै अनेक मत भेदभी होगये, जिस पुरुषको कुछभी सहायता मिली झट उसनै अपना नवीन पंथ कल्पनाकर शब्दब्रह्मकी कल्पना करली, और शिष्योंको उपदेश देना आरम्भ किया, इसका फल इस देशमें यह हुआ कि

फूटका वृक्ष उत्पन्न होकर सत् धर्ममें बाधा पडनै लगी, इन नवीन मतौंसै तौ हा-नि होही रहीथी कि, इसीसमय दयानन्द सरस्वतीनैभी एक अपना मत चलाकर लोपलीला करनी प्रारम्भकी, इसमें भक्ति, भाव, मूर्तिपूजा, अवतार, श्राद्ध, पाप दूर हौना, तीर्थ, महात्म्य, आदिका निषेध करकै जपतप जाति आचार विचार मेटकर, कर्मसे ब्राह्मणादि वर्ण, नियोग, प्रचार, स्त्रीके एकादश पति करनैकी विधि शूद्रके हाथका भोजन करनैकी आज्ञा देकर वेदमें रेल, तार कमेटी, आदिका वर्णन कर सब कुछ वेदके नामसैही लिखा गया है, इससै संस्कृतके न जाननैवाले सनातन धर्मसे हीनहो उनकी व्याख्या सुन अपनी महान पुरुषोंकी गति त्याग, इस नाम मात्रकी व्याख्यामें मग्नहो जाते हैं, इनके संघट्टका नाम आर्य समाज है, उक्त सन्यासीजीके बनाये हुए ग्रंथोंमें दूसरी वारका छपाहुआ सत्यार्थप्रकाशही इस मतकी मूल है, स्वामीजीके अनुयायी इसै पत्थरकी लकीर समझते, तथा इसका पाठ करते और कोई कोई इसकी कथाभी कहाते हैं, समाजौंमें इसका पाठ होता है, शास्त्रार्थमें उसीके प्रमाणभी देते हैं, यहभी गुप्त न रहै कि सत्यार्थ प्रकाश दोहैं, एक पुराना एक नया, पुरानै सत्यार्थप्रकाशको स्वामीजीनै कह दियाथा कि इस पुस्तकमें मृतक पुरुषौंका श्राद्ध, और पशुयज्ञ छापेवालौंकी भूलसै छप-गया है, इस लिये अब यह दूसरा सत्यार्थप्रकाश तयार किया जाता है, इसमें जो कुछ कहा है, वह बहुत कुछ समझकर वेदानुसार ही कहा है, और सज्जनौंको माननीय है, यद्यपि पुरानै सत्यार्थप्रकाशमें उक्त दो बातें छोडकर और सब स्वामीजीके कथनानुसार ठीक है, यह स्पष्ट है तथापि दूसरीवारके सत्यार्थप्रकाश पर वे और उनके अनुयायी अधिक श्रद्धा रखते हैं, कि जो कुछ इसमें है, वह हमारे निमित्त औषधी है, बस हमको पहले उस औषधीके गुणदोषकी परीक्षा करनी अवश्य है, कि जो कुछ उसमें लिखा है वह यथार्थ है या नहीं, जहांतक मेरी बुद्धिकी पहुंच है, और विचार कर देखा जाता है, तौ सत्यार्थप्रकाश वेद शास्त्र प्रतिकूल, परस्पर विरुद्ध, बातौंसे भरा हुआ दीखता है, वेदके नामसै लाल बाग दिखाया गया है, और संस्कृतानभिज्ञौंको वशीभूत करनेको शंबरकी माया दिखाई देता है, इसके अनुवर्ती बहुतसे नवशिक्षितौंको होते देखकर हमको इसकी समीक्षाकी आवश्यकता हुई, कारणकि इसकी समीक्षासैभी देशका उपकार हो-कर सनातन धर्मकी वृद्धि होगी, और इसको पढकर मनुष्य इस कपोल-कल्पित मतसै बचैंगे, यदि स्वामीजी जीवित होते तौ इसका खंडन बनानैकी आवश्यकता नहींथी, कदाचित् इसकोभी स्वामीजी बदल और छापेवालोंके शिर इसकाभी कलंक डालकर तीसरा सत्यार्थप्रकाश नवीन तयार करते, परन्तु यह पुस्तक सम्वत् १९३९ में स्वामीजीनै पुनः शोधकर छपवाया, और उन्नीससें चालीसमें शरीर छुटगया, जो कि यह मत स्वामीजीका स्थापित किया हुआ है, इसकारण और अर्थौंकी छोड़कर उन्हीके ग्रंथौंकी समालोचना करनी

उचित है, सो इस पुस्तकमें स्वामीजीके कपोलकल्पित ग्रंथोंका प्राचीन ग्रंथोंसे मिलानकर सज्जनोंके सामने प्रगट करताहूं, उससे बुद्धिमान सत्यासत्यका निर्णय कर सकेंगे, सत्यार्थ प्रकाशमें दोभाग हैं, पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्धके दश समुल्लासोंमें स्वामीजीने अपना मन्तव्य प्रकाशित कर नवीन मतकी नीमडाली है; और उत्तरार्द्धके चार समुल्लासोंमें आर्यावर्तीय मतोंका खंडन किया है, जैन, बौद्ध, चार्वाक, और इसाई तथा यवनोंकाभी खंडन किया है इनके खंडनसे हमारा प्रयोजन नहीं है, हमको प्रथम उन्हीके स्थापित मतकी परीक्षा करनी है जिसको वह वेदानुसार बतलाकर मनुष्योंको भ्रममें डालते हैं, खंडन करनेसे मेरा प्रयोजन द्वेष वा शत्रुता अथा किसीके जी दुखानेसे नहीं है, किन्तु इसके लिखनेसे केवल यही प्रयोजन है कि मनुष्योंको सत्यासत्यका ज्ञान होकर स्वामीजीके ग्रंथोंका वृन्तात विदित होजाय कि उनके अनुसार वर्तनेसे हम यथार्थमें धर्म पथमें स्थित हैं वा नहीं

इसमें जो पृष्ठ पंक्ति लिखी गई हैं यह दूसरी वारके छपे हुए सत्यार्थप्रकाशके अनुसार हैं, सत्यार्थप्रकाश तीसराभी छपा है उसमेंभी किंचित् परिवर्तन हुआ है इससे तीसरे सत्यार्थप्रकाशकी पंक्ति चाहें न मिले परन्तु पृष्ठ तो मिलेहीगें यदि उस पृष्ठमें न होगा तो अगलेमें मिलैगा.

मैंने जो इस ग्रंथमें प्रमाण लिखे हैं वे उन्हीं ग्रंथोंके है जिनको स्वामीजीने माना और अपने सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है और मंत्रोंके अर्थ प्राचीन भाष्यानुसार लिखे हैं, सनातन धर्मावलंबियोंको इससे महालाभकी संभावना है, कारण कि सम्पूर्ण धर्मविषय वेदसे भाष्यसहित प्रतिपादन किये हैं जिस्से किसी प्रकारकी भ्रान्ति नहीं रहती, धर्मकी प्राप्ति और पाखण्डकी निवृत्तिही इस ग्रंथका उद्देश्य है.

आर्य समाजिओंसे विशेष प्रार्थना है कि जब वे इस पुस्तकको देखने बैठें तो पक्षपात छोडकर विचारें और यदि बकरेकी तीन टांगकाही हठ है तो सत्यासत्यका निर्णय नहीं होसकेगा और फिर किसीके समझाये कुछ फल न होगा. क्यों कि

अज्ञःसुखमाराध्यःसुखतरमाराध्यतेविशेषज्ञः।
ज्ञानदुर्विदग्धहृदयं ब्रह्मापितंनरंनरञ्जयति ॥ १ ॥

अर्थात् आज्ञानी सुखसे और विशेष ज्ञानी महा सुखसे समझाया जासक्ता है परन्तु ज्ञानदुर्विदग्धहृदयवाले मनुष्यको ब्रह्माजीभी नहीं समझा सक्ते.

देशोपकारके निमित्त यह पुस्तक निर्माणकर इसका सब प्रकारका सत्व वैश्यवंशदिवाकर सद्गुणाकर वेदशास्त्रप्रवर्तक परोपकारनिरत वेंकटेश्वरयंत्रालयाधिपति सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीको समर्पण करदिया है.

पाठक महाशयोंसे निवेदन है यदि इसमें कहीं भूल रहगई हो तो कृपाकर सूचित करदें उचित होगी तो दूसरीवार बनादी जायगी आपको लाभ होनेसे मेरा परिश्रम सफल होगा.

पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र मोहल्ला दिनदापुरा मुरादाबाद.

श्रीः ।

दयानन्दतिमिरभास्करस्य सूचिपत्रम् ।

चतुर्थ समुल्लासः

पंचम समुल्लासः

षष्ठ समुल्लासः

सप्तमसमुल्लासः

अष्टमसमुल्लासः

नवमसमुल्लासः

दशमसमुल्लासः

उत्तरार्द्ध

एकादश समुल्लासः

भूमिका.

सम्पूर्णम्

पुस्तकमिलनेकाठिकाणा.

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना"

(बम्बई.)

श्रीः।

अथ दयानंदतिमिरभास्करः।

ॐ यस्माज्जातंजगत्सर्वं यस्मिन्नेवविलीयते।
येनेदं धार्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥ १ ॥

हरिःॐ

शंनो मित्रः शंवरुणः शंनोभवत्वर्यमा
शंन इन्द्रोबृहस्पतिः शंनोविष्णुरुरुक्रमः

नमोब्रह्मणे नमस्तेवायो त्वमेव प्रत्यक्षंब्रह्मासि त्वामे
वप्रत्यक्षंब्रह्मवदिष्यामि ऋतंवदिष्यामि सत्यंवदि
ष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतुमाम् अ
वतुवक्तारम् ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

भाषार्थः—प्राणवृत्तिका और दिवसका अभिमानी देवता जो मित्र सो हमको सुख-कारी हो, अपान वृत्तिका और रात्रिका अभिमानी देवता जो वरुण सो हमकू सुख-कारी हो, चक्षुविषे वा सूर्यविषे अभिमानी जो अर्यमा सो हमको सुखकारी हो बलविषे अभिमानी जो इन्द्र और वाणी और बुद्धिविषे अभिमानी जो बृहस्पति सो हमको सुख-कारी होय उरुक्रम वलिराजासे तीन पादकी याचनासे सर्व राज्यके ग्रहण अर्थ विश्व-रूप धारके विस्तीर्ण पादके क्रमवाला और पादनका अभिमानी जो विष्णु सो हमको सुखकारी होय ब्रह्मरूप जो वायु है तिसके अर्थ नमस्कार हे वायो तेरे अर्थमें नमस्कार करूंहूं तूही चक्षु आदिकी अपेक्षा करिके बाह्य समीप और अन्तरायसे रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है इस कारण में तुझेही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहूं और जैसे शास्त्रमे कहा है और जैसे करनेको योग्यहै ऐसा बुद्धिविषे सम्यक् निश्चय किया जो अर्थ सो ऋत कहाताहै सो वो तेरे आधीनहै इस्से तुझे ऋत कहता हूं वाणी और शरीरसे सम्पादन हुआ जो सत्यहै सोभी तेरे आधीनहै. इस कारण तुझे सत्य कहता हूं सो सर्वात्मा वायु नाम ई-श्वर मुझ करके स्तुतिकू प्राप्त हुआ मुझ विद्या (ज्ञान) के अर्थीको विद्यासे युक्त कर

रक्षा करो मुझको रक्षा करो वक्ताकी रक्षा करो दो वार कथन आदरके हेतु है शांति हो शांति हो शांति हो तीन वार शांति करनेसे आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधि दैविक रूप जो विद्याकी प्राप्तिविषे विघ्न हैं तिनकी निवृत्तिके अर्थ है दयानंदजीने सत्यार्थ प्रकाशमें इसका अन्यथा व्याख्यान किया है सो त्याज्य है शांकर भा०

अथसत्यार्थप्रकाशान्तर्गतप्रथमसमुल्लासस्य खंडनंप्रारभ्यते ।

मंगलाचरणप्रकरणम्

(सत्यार्थ०) भूमिका पृ० १ पं० १ से

ॐ सच्चिदानंदेश्वरायनमोनमः जिस समय मैंने यह ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश बनाया था उस समय और उस्से पूर्व संस्कृत भाषण करणे पठन पाठनमें संस्कृतही बोलने और जन्मभूमिकी भाषा गुजराती होनेके कारणसे मुझको इस भाषाका विशेष परिज्ञान न था इस्से भाषा अशुद्ध बनगई थी अब भाषा बोलने और लिखनेका अभ्यास हो गया है इस लिये इस ग्रंथको भाषाव्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है कहीं २ शब्द वाक्यरचनाका भेद हुआहै सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये विना भाषाकी परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थका भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तौ लिखा गया है हां जो प्रथम छपनेमें कहीं २ भूल थी वोह निकाल शोधकर ठीक ठीक करदीगई है

समीक्षा—इस लेखसे पहला सत्यार्थप्रकाश गुजराती भाषा मिश्रित विदित होताहै किन्तु इसमें कोई गुजराती भाषाका शब्द पाया नहीं जाता भला वोह तौ अशुद्ध हो चुका पर अब यह तौ आपके लेखानुसार सम्पूर्णही शुद्धहै क्योंकि इसके बनानेके पूर्व न तौ आपको लिखनाही आताथा न शुद्ध भाषाही बोलनी आतीथी इससे यह भी सिद्ध होताहै कि इस सत्यार्थसे पूर्व रचित वेदभाष्यभूमिका तथा यजुर्वेदादिभाष्योंकी भाषाभी अशुद्ध होगी क्यों शुद्ध भाषाका ज्ञान तौ आपको इस सत्यार्थप्रकाशके लिखनेके समय हुआहै और इसी कारण आप इसको निर्भ्रान्त सत्य मान्ते हैं

स० प्र० पृ० ११ पं० ११

सब्रह्मासविष्णुःसरुद्रःसशिवस्सोक्षरस्सपरमःस्वराट्
सइन्द्रस्सकालाग्निस्सचन्द्रमाः।कैवल्यउपनिषत् ।

अर्थ—सब जगतके बनानेसे ब्रह्मा सर्वत्र होनेसे व्यापक विष्णु दुष्टोंको दंड देकै रुलानेसे रुद्र मंगलमय और कल्याण करता होनेसे शिव जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी सो अक्षर जो स्वयं प्रकाश स्वरूप सो स्वराट् प्रलयमें सबका काल और कालकाभी काल होनेसे उसका नाम कालाग्नि वही चंद्रमा है तात्पर्य यह है सब वही है फिर पृ० १९पं० २

में लिखते हैं कि इस लिये मनुष्योंको योग्य है कि परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना उपासना करै उससे भिन्नकी कभी न करै क्योंकि ब्रह्मा विष्णु महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान् दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्योंनेभी उसीकी प्रार्थनाकी है अन्यकी नहीं.

समीक्षा—धन्य है स्वामीजी आपतौ दशही उपनिषद् मान्तेथे आज मतलब पड़ा तो कैवल्यभी मान बैठे और प्रमाणसे ब्रह्मा विष्णु शिवको ईश्वर बताया और यहां उनको पूर्वज विद्वान् बतलाते हो इसमें कोई प्रमाण दिया होता कि यह मनुष्य थे यदि प्रमाण नहीं मिलाथा तो कोई उलटी सीधी संस्कृतही गढी होती आपके चेले उसे पत्थरकी लकीर समझलेते यह आपहीको योग्यहै कि ब्रह्मादिक ईश्वरके नाम बताकर फिर इन्हे एक विद्वान् बतादिया और यह अर्थभी आपका अशुद्ध है इसके अर्थ यहहैं कि वोह ब्रह्मारूप होकर जगतकी रचना करता विष्णुरूप हो पालन करता रुद्ररूप हो दुष्टोंको कर्मफल भुगाकर रुलाता शिवहो मंगल करताहै वोही अक्षर स्वराट् इन्द्र चन्द्रमाहै और कालाग्निरूप धारण कर प्रलय करताहै यह सब देवता उसीके रूपहैं नहीं तो आप बताइये कि यह तीनो विद्वान् किनके पुत्रथे जो कहो कि स्वयं उत्पन्न होगये थे तो आपका सृष्टि क्रम जाता रहैगा कि माता पिताके विना कोई मनुष्य नहीं उत्पन्न होता यही तो आपकी भंगकी तरंगहै जो जीवनचरित्रमें लिखाहै कि मुझे भंग पीनेकी ऐसी आदत थी कि दूसरे दिन होश होताथा.

स० पृ० १६ पं० ९ बृहत् शब्दपूर्वक पारक्षणे धातुसे डतिप्रत्यय बृहत्के तकारका लोप और सुडागम होनेसे बृहस्पतिशब्द सिद्ध होताहै जो बडोंसेभी बडा और आकाशादि ब्रह्मांडोंका स्वामीहै इस्से परमेश्वरका नाम बृहस्पति है

स० पृ० १७ पं०२८ दिवुक्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्नकान्ति गतिषु जो शुद्ध जगत्को क्रीडाकरावे विजिगीषा धार्मिकोंको जितानेकी इच्छा युक्त व्यवहार सब चेष्टाओंके साधनोपसाधनोका दाता द्युति स्वयंप्रकाशस्वरूप सबका प्रकाशक स्तुति प्रसंशाके योग्य मोद आप आनंदस्वरूप दूसरोंको आनंद दैनेहारा मद मदोन्मत्तोंको ताडनकरनेहारा (यह अर्थ तो व्याकरणसे सिद्ध नहीं होता कि मदोन्मत्तोंको ताडनकरै किन्तु आपके प्रसंगसे यह अर्थ बनताहै कि आप मदोन्मत्त दूसरोंकी मद करनेहारा) कान्ति कामनाके योग्य गति ज्ञान स्वरूपहै इस लिये परमेश्वरका नाम देवहै इसी प्रकार देवीभी परमेश्वरका नामहै पृ० २३ पं० २ में देखो स० पृ० १९ पं० २०

आपोनाराइतिप्रोक्ताआपोवैनरसूनवः।तायदस्या
यनंपूर्वंतेननारायणःस्मृतः मनु०अ०१श्लो०१०

जलजीवोंका नाम नाराहै वे अयन अर्थात् वासस्थानहैं जिसका इस लिये सब-जीवोंमें व्यापक परमात्माका नाम नारायण है (यह अर्थभी अशुद्धहै इसका अर्थ तौ यह है कि जलको नारा इस कारण कहते हैं कि नर जो परमात्मा उस्से उत्पन्न हु-आहै वोह जलहैं प्रथमस्थान जिसका इसकारण परमात्माको नारायण कहते हैं)

स० पृ० २१ पं० ७ गृशब्दे इस धातुसे गुरुशब्द सिद्धहोताहै जो सकल धर्म प्र-तिपादक सकल विद्यायुक्त सबवेदोंका उपदेश करता सब ब्रह्मादिककाभी गुरू जिस-का नाश कभी नहीं होता इस्से उसका नाम गुरूहै (इस्मे ब्रह्मादिककाभी गुरू यह प-द स्वामीजीके घरकाहै)

स० पृ० १९ पं० २३ चदिआल्हादे इसधातुसे चन्द्रशब्द सिद्ध होताहै जो आ-नंदस्वरूप और सबका आनंददेनेहाराहै इसकारण परमेश्वरका नाम चन्द्रहै मगिगत्य-र्थक धातुसे मंगेरलच् इस सूत्रसे मंगलशब्द सिद्धहोताहै जो आप मंगल स्वरूप औ-र सब जीवोंके मंगलका कारनहैं इस कारण उस परमेश्वरका नाम मंगलहै बुध अव-गमने इस्से बुधशब्द सिद्धहोताहै जो स्वयंबोधस्वरूप और सबजीवोंके बोधका कार-णहै इस लिये उस परमेश्वरका नाम बुधहै ईशुच्रिर्पूतीभावे इस धातुसे शुक्रशब्द सिद्ध होताहै जो अत्यन्त पवित्र जिसके संगसे जीवभी पवित्र होजातेहैं इस लिये परमेश्व-रका नाम शुक्रहै चरगतिभक्षणयोः इस धातुसे शनैस् अव्यय उपपदहोनेसे शनैश्चर शब्द सिद्धहुआहै जो सबमें सहजसे प्राप्त धैर्यवानहै इस्से उसपरमेश्वरका नाम शनैश्च-र है, रह त्यागे इस धातुसे राहुशब्द सिद्ध होताहै जो एकान्त स्वरूप जिसके स्वरूपमें दूसरा पदार्थ संयुक्तनहीं जो दुष्टोंको छोड़ने और अन्यको छुड़ानेहाराहै इस्से उस परमे श्वरका नाम राहु है, कित निवासे इस धातुसे केतुशब्द सिद्धहोताहै जो सबरोगोंसे रहित सब जगतका निवासस्थानहै और मुमुक्षुओंको मुक्ति समयमें सबरोगोंसे छुड़ाताहै इस्से उस परमात्माका नाम केतुहै

स० पृ० १४ पं० २९ दोअव खंडने इस धातुसे आदिति और इस्से तद्धित क-रनेसे आदित्य शब्द सिद्ध होताहै जिसका विनाश कभी नहींहो इस्से ईश्वरकी आदि-त्य संज्ञाहै

स० पृ० २२ पं० २९ गणसंख्याने इस धातुसे गणेश शब्द सिद्धहोताहै इसके आगे ईश और पति रखनेसे गणेश और गणपति सिद्धहोतेहैं जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थोंका स्वामी वो पालन करनेहाराहै इस्से परमेश्वरका नाम ग-णेश वो गणपतिहै

स० पृ० २३ पं० ४ शक्लृशक्तौ इस धातुसे शक्तिशब्द बनताहै जो सब जगतके बनानेमें समर्थहै इस लिये उस परमेश्वरका नाम शक्ति है, श्रिञ् सेवायाम् इस धातुसे श्रीशब्द सिद्धहोताहै जिसका सेवन सब जगतके विद्वान् योगीजन करते हैं इस्से उ-

स परमेश्वरका नाम श्री है लक्षदर्शनाङ्कनयोः इस धातुसे लक्ष्मीशब्द सिद्धहोताहै जो स-ब चराचर जगतके देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता जैसे शरीरके नेत्रनासिका वृ-क्षके पत्र पुष्प फल मूल पृथ्वी जलके कृष्ण रक्त श्वेत मृत्तिका पाषाण चंद्र सूर्यादि चिन्ह बनाता तथा सबको देखता सब शोभाओंकी शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियोंका लक्ष अर्थात् देखने योग्यहै इस्से उस परमेश्वरका नाम ल-क्ष्मीहै सृ गतौ इस धातुसे सरस् और उस्से मतुप् और ङीप्प्रत्यय होनेसे सरस्वती शब्द सिद्ध होताहै जिसको विविध ज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ संबंध प्रयोगका ज्ञान य-थावत् होवे इस्से उस परमेश्वरका नाम सरस्वतीहै.

स. पृ. २५ पं. १० यः शिष्यते स शेषः जो उत्पत्ति प्रलयसे बच रहाहै इस्से उसका नाम शेषहै तथा इसी पृष्ठकी २७ पंक्तिमें शिवु कल्याणे इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होताहै जो कल्याणस्वरूप और कल्याण कारकहै इस लिये उस परमेश्वरका नाम शिवहै इस प्रकार परमेश्वरके सौ १०० नामका कथन किया है पुनः आपही फिर प्रश्न संबंधसे लिखते हैं.

स. पृ. २६ पं. ८(प्रश्न)जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्तमें मंगला चरण करते है वैसा आपने न कुछ लिखा न किया (उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्यों कि जो आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करैगा तो उस आदि मध्य अं-तके बीचमें जो लेख होगा वोह अमंगलही रहैगा इस लिये मंगलाचरण शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतिश्चेति यहभी सांख्यशास्त्रका वचन है अभिप्राय यहहै कि जो न्याय प-क्षपात रहित सत्यवेदोक्त ईश्वरकी आज्ञाहै उसीको यथावत् सर्वत्र और सदाआचरण-करना मंगलाचरण कहाताहै ग्रंथके आरंभसे लेके समाप्ति पर्यन्त सत्याचारका करना-ही मंगलाचरण कहाताहै न कि कहीं मंगल कहीं अमंगल लिखना

समीक्षा–धन्यहै स्वामीजी आपके अर्थ और अभिप्रायको आप तौ मंगलाचरण कर-ते जाँय और पूछनेपर नहीं कहै यदि आप मंगलाचरण नहीं करते तौ बताइये कि सत्यार्थप्रकाशभूमिकाके पहले "ओम् सच्चिदानन्देश्वरायनमोनमः और अथसत्यार्थ-प्रकाशः और शन्नोमित्रादि सत्यार्थ प्रकाशके प्रारम्भमें और अन्तमें ५९२ पृष्ठमें फिर-शन्नोमित्र इत्यादि और यह सौ नाम परमेश्वरके किस आशयसे लिखेहैं तथा अपने वेदभाष्यके प्रत्येक अध्यायके प्रारम्भमें विश्वानिदेवेत्यादि क्यों लिखाहै इस्से आपके लेखानुसार यह विदित होताहै कि आपके वेदभाष्य तथा सत्यार्थप्रकाशमें बीचरमें अमंगलाचरणहीहै और सत्यभीहै ऊपरके सांख्यसूत्रके टीकेमें सत्यवेदोक्त ईश्वरकी आज्ञा कहनी मंगलाचरणहै और आपने पोपादि बहुतसे अपशब्द और दुर्वचन आ-गे इस पुस्तकमें लिखेहैं जिनके उच्चारणकी आज्ञा वेदमें कहीं नहीं पाई जाती न उ-

नशब्दोंका उच्चारणकरना न्याय और निष्पक्षता संपादन करताहै इस लिखनेसे जाना-जाताहै कि स्वामीजी प्रगटमें मंगलाचरणसे हिचकतेहै और स्वयं वोही परिपाटी ग्रहणकरतेहैं यदि ऐसा नकरते तौ यह इनका मत भिन्न कैसे प्रतीतहोता और सांख्यवचनका अर्थ यहहै कि मंगलाचरणसे मंगलहोताहै यह शिष्टाचारहै और इसका फलभी दीखता है

सत्या० पृ० २६ पं० २० इस लिये आधुनिक ग्रंथोंमें श्रीगणेशायनमः सीतारामाभ्यांनमः श्रीगुरुचरणारविंदाभ्यांनमः शिवायनमः सरस्वत्यैनमः नारायणायनमः श्रीराधाकृष्णाभ्यांनमः इत्यादि देखनेमें आते हैं इनको बुद्धिमान लोग वेद और शास्त्रोंकेविरुद्धहोनेसे मिथ्याही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोंमें कहीं ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं आता और आर्षग्रंथोंमें तौ ओम् तथा अथ शब्द देखनेमें आताहै जैसे अथ शब्दानुशासनम् महाभाष्यमें अथातो धर्मजिज्ञासा मीमांसामें अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः वैशेषिक दर्शनमें अथ योगानुशासनम् योगमे अथातो ब्रह्मजिज्ञासा वेदान्तमें ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथ उपासीत छान्दोग्यमें यह वचन हैं जो ऋषि मुनियोंने ग्रंथ बनाये हैं.

स. पृ. २७ पं. ११ जो वैदिक लोग वेदके आरम्भमें हरिः ओम् लिखते हैं और पढते हैं यह पौराणिक तांत्रिक लोगोंकी मिथ्या कल्पनासे सीखे हैं वेदादि शास्त्रोंमें कहीं प्रथम हरि शब्द देखनेमें नहीं आता

समीक्षा—विदित होताहै कि स्वामीजीको परमेश्वरके नाम कुछ तौ प्रिय है और कुछ अप्रिय हैं इसमें जो प्राचीन लोगोंकी परिपाटी है इसका तौ मेटना मानो इन्होंने नियमही कर लिया है देखिये प्रथम तौ गणेश गुरू शिव सरस्वती नारायण शिव आदि नाम परमात्माके लिखे और अब यह कहते है कि इनको विद्वान् मिथ्याही समझते हैं विद्वान तौ मिथ्या नहीं समझते हैं आप उनको दोष मत दीजिये योंही कह दीजिये मैं मिथ्या समझताहूं डरिये नहीं आप तौ रीछको डराचुके हैं (जीवन[1]) क्या यह आप परमेश्वरके नाम नहीं मान्ते जो मान्ते हो तौ मिथ्या कैसे जो नहीं मान्ते तो परमेश्वरके १०० नामोंमें यह शब्द क्यों लिखे इन्हेभी वेदमेंसे निकाल डालो करिये क्या यदि आपकी चलती तौ प्राचीन महात्माओंने जो सत्य बोलना परम धर्म लिखा है आप उसकाभी निषेध करते परन्तु इसमे चल नहीं सक्ती और जैसे आपने धातुओंसे परमेश्वरके नाम सिद्ध किये हैं क्या रम् क्रिडायां इस धातुसे राम और हरति दुःखानितिहरिः जो सबमें रम रहाहै वोह राम है भक्तोंके दुःख हरनेसे परमेश्वरका नाम हरि है और "कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" इस प्रकार कृष्णके अर्थभी तौ ईश्वरहीके हैं या परमेश्वरको कोई अ-

1 जीवन चरित्रमें लिखा है मुझसै रीछ डरकर भागगया ।

पना नाम प्यारा है कोई नहीं जो आप निषेध करते हो आप तौ विद्वत्ताका दम भ-
रते हो ईश्वरको पक्षपाती मत बनाओ कहिये परमेश्वरके यह नाम लेनेसे कौनसी दे-
शोन्नतिमें हानि होती है यदि विचारा जाय तौ जैसे प्राचीन ग्रंथोंमें विष्णुसहस्र नाम
शिव सहस्रनाम हैं वोही आशय उभारकर यह आपनेभी शत नाम लिखे है भलाजी
ग्रंथकी आदिमे १०० नाम ईश्वरके लिखना यह कौनसे वेदानुकूल है प्रत्यक्ष लिख
देते कि विष्णु सहस्र नामके स्थानमें हमारे शिष्य शतनामका पाठ किया करैं फिर
यह कैसी बात है कि अपने नामोंको आपही मिथ्या करते हो शोक है आपकी बुद्धि
पर आप लिखते हैं कि वेद और ऋषियोंके ग्रंथोमें ऐसा मंगलाचरण देखनेमें नहीं
आता इस्सेभी विदित होताहै कि ऐसा नहीं तौ और प्रकारका तौ देखनेमें आता हैं
सो अपने लिखाही है कि अथ ओम् देखनेमें आते हैं सो उसी प्रकार आपनेभी अथ
और ओम् लिखाहै तौ आपनेभी मंगलाचरण किया (अब आपके ग्रंथके मध्य और
अंतमें क्या है) मुकरते क्यों हो मंगलाचरण करना कोई चोरी नहीं है और वेदकी
आदिमें तौ अग्निमीळे० इषेत्वो० अग्न आयाहि० पद पडे हुए हैं आप वेदानुकूलही
चलते हैं फिर अथ और ओम् मंत्र संहिताओंमेंसे किसके अनुकूल लिखा है

और हरि शब्दसे तौ कोई आपका बडा भारी द्वेषहै कदाचित् कहीं इसके दूसरे अर्थ
वालेसे भेंट तौ नहीं होगई (जीवनचरित्रमें तौ भालू मिलाथा) भयके मारे आपको
परित्राणपाना कठिन होगया होगा तबसे उस नामसे ऐसा जी खट्टा हुआ कि वोह श-
ब्द जिस २ में आरूढ हो उस उससेही भयभीत हो द्वेष करने लगे जैसा मारीचको
भय हुआथा(रा अस नाम सुनत दशकंधर रहत प्राण नहीं मम उर अंतर) और इसी
कारण आप तांत्रिक पौराणिक लोगोंके ऊपर डालकर उसे मिथ्या बताते हो.

ओँकारप्रकरण ।

स. पृ. १ पं. ८ (ओ ३ म्) यह ओँकार शब्द परमेश्वरका सर्वोत्तम नाम है क्यों
कि इसमें जो अ उ म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओ ३ म्) समुदाय हुआहै इस
एक नामसे परमेश्वरके बहुत नाम आतेहैं जैसे अकारसे विराट् अग्नि और विश्वादि उ-
कारसे हिरण्यगर्भ वायु और तैजसादि मकारसे ईश्वर आदित्य और प्राज्ञादि नामोंका
वाचक और ग्राहक है उसका ऐसाही वेदादिक सत्य शास्त्रोंमें स्पष्ट व्याख्यान कियाहै.

समीक्षा—स्वामीजीकी वेदज्ञता तौ इस ओँकारके अर्थ निरूपणसेही सज्जन पुरुष
जान लैंगे कि प्रथम ग्रासमेंही मक्षिकापात हुआ अब देखना चाहिये कि प्रणवकी
व्याख्या अनन्त प्रकारसे वेदादि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है परन्तु स्वामीजीनें अपने अर्थकी
पुष्टिमें एकभी प्रमाण नहीं लिखा भला वोह कौनसा मंत्र है जिसमें स्वामीजीके लिखे
उक्त अर्थ लिखे हैं ओँकारके ऐसे अर्थका प्रतिपादक मंत्र न ब्राह्मण न शास्त्र न पुराण
एकभी नहीं मिलनेका ऋग्वेदमें इस प्रकार कथन है.

ऋचोअक्षरेपरमेव्योमन्यस्मिन्देवाअधिविश्वेनिषेदुः
यस्तन्नवेदकिमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमेसमासते

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं. ३९

इति विदुष उपदिशति कतमत्तदेतदक्षरमोमित्येषा वागिति शाकपूणिर्ऋचोह्यक्षरे परमे व्यवने धीयन्ते नानादैवतेषु च मंत्रेष्वेतद्धवा एतदक्षरं यत्सर्वां त्रयीं विद्यां प्रति प्रतीति च ब्राह्मणम् निरुक्त अ० १३ पा० १ खं० १० परिशिष्टे प्र० भाष्यम् कतमत् तदक्षरम् इति ॐम् इत्येषा वाक् इति शाकपूणेः अभिप्रायः ॐकारमृतेन ह्यर्चयन्ति तस्या अक्षरे परमे व्योमन् व्योम विविधमस्मिन् शब्दजातमोतमिति व्योम तस्मिन् तिसृषु मात्रासु अकारोकारमकारलक्षणासूपशान्तासु यदवशिष्यते तदक्षरं परमं व्योम शब्दसामान्यमभिव्यक्तमित्यभिप्रायः यस्मिन्देवा अधिनिषण्णाः सर्वे ऋगादिषु ये देवाः ते मंत्रद्वारेणाक्षरे निषण्णाः तस्य शब्दकारणत्वात् अथवा प्रथमायां मात्रायां पृथिवी अग्निः ऋग्वेदः पृथिवीलोकनिवासिन इत्येवं द्वितीयायां मात्रायां अन्तरिक्षम् वायुः यजूंषि तल्लोकनिवासिनो जना इति तृतीयायां मात्रायां द्यौः आदित्यः सामानि तल्लोकनिवासिनो जना इति विज्ञायते हि ॐकार एवेदं सर्वम् इति यस्तन्न वेद अनया विभूत्याक्षरम् किमसौ ऋचा ऋगादिभिर्मंत्रैः करिष्यति यस्तत्राक्षरात्मना पश्यति । यइत्तद्विदुस्त इमे समासते इति विदुष उपदिशति ते हि तत्परिज्ञाना त्ताद्भाव्यमुपगताः प्रणवविग्रहमात्मानमनुप्रविश्य समीकृता निर्वान्ति शान्तार्चिष इवानला इति

पद ।ऋचः—अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवाः अधि-
विश्वे निषेदुः यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति
ये इत तत् विदुः ते इमे समासते ऋ०

भावार्थ–इस मंत्रका व्याख्यान ॐकारपरत्व तथा आदित्यपरत्व तथा आत्मतत्व परता तिसमेंसे प्रथम शाकपूणि नामक निरुक्तकारके मतसे ॐकारपरता निर्णय करते हैं (प्रश्न) जिस परम व्योम संज्ञक अक्षरमे देवादि स्थित हैं सो अक्षर कौनहैं (उत्तर) ॐ यह वाक् नाम शब्द परम उत्कृष्ट (व्योमन्) नाम सर्वकी रक्षा करनेवाला जो ॐकार तिसमेंही सम्पूर्ण ऋग्वेदादि मंत्र अध्ययन किये जाते हैं और नाना जो देवता हैं वे सर्व मंत्रोंमे स्थित है और मंत्रोंमें कारण होनेसे यह अक्षर व्याप्त है क्योंकि सर्व वेदत्रयी विद्याके प्रति यह अक्षर व्याप्त है ऐसे ब्राह्मण भी प्रतिपादन करता है भाव यह है ओंकार बिना ऋगादि मंत्रोका उच्चारण नहीं होता इस्से व्योम संज्ञक जो अक्षर है तिसमें नानाविध शब्द समूह स्थित हैं (प्रश्न) मंत्र तथा ओंकार

शब्दरूप है इससें यह दोनो आकाशमें स्थित हैं यावत शब्द समूह ओंकारमें स्थित कैसे कहतेहो (उत्तर) ओंकार नाम यहां अकारादि मात्राके शान्त होते जो परिशेष रहता है शब्द सामान्य व्योम नामक अक्षर उसका है इससे तिस अक्षर शब्द सामान्य नादरूप ओंकारमें यावत् मंत्र स्थित हैं, और जिसमें सर्व देवता स्थितहैं क्यों कि मंत्रोंमें देवता स्थित हैं और मंत्र पूर्वोक्त नाद नामक अक्षरमें स्थित हैं, इस्से मंत्र द्वारा यावत् देवता भी अक्षरमें स्थित हैं, अथवा प्रथम मात्रामे पृथ्वीलोक अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वीलोक निवासी जन स्थितहैं, और द्वितीयमात्रामें अन्तरिक्षवायु यजुर्मंत्र और अन्तरिक्षलोकनिवासी जन स्थित हैं, और तृतीय मात्रामें द्यौलोक आदित्य साम मंत्र और स्वर्गलोकनिवासी जन स्थित हैं, इसीकारण मांडूक्य उपनिषद्में (ॐकारं एवेदं सर्वम्) यह कहाहे जो इस विभूति सहित अक्षरको नहीं जान्ता सो ऋगादि मंत्रोंसे क्या करेगा, अर्थात् विना ॐकारके जाने और उसके अर्थ जाने उसे वेदके मंत्र फल नहीं देंगे, और जो पुरुष उक्त रूप नाद विभूति सहित अक्षरको जान्ते है वे पुरुष (समासते) प्रणव ज्ञानसे अक्षर भावको प्राप्त हुए अपने आत्माको प्रणवरूप निश्चय करके प्रणवमें प्रविष्ट होकर समताको प्राप्त हो शान्त ज्वाला अग्निवत् (निर्वान्ति नाम निर्वाणपदं मोक्षं प्राप्नुवन्ति) निर्वाण अर्थात् मुक्त होते हैं, आदित्य पक्षमें यह अर्थ है कि जिस व्योमरूप परम अक्षर रूप आदित्यमें सब देवता स्थितहैं मंत्र द्वारा तिस आदित्यको जो नहीं जान्ते वे ऋगादि मंत्रोंको क्या करैंगे ये इत् नाम एव तिस आदित्यको जान्ते हैं वे पुरुषही विद्वज्जन भूमिमें सुख पूर्वक रोगादि रहित भोग सम्पन्न चिरकाल जीवते हैं मांडूक्य उपनिषद्में इस प्रकार लिखाहे

ॐमित्येतदक्षरमिदꣳसर्व्वंतस्योपव्याख्यानंभूतंभवद्भविष्यदिति सर्व्वमोङ्कारएव यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥ मां० मं० ॥ १ ॥

अर्थ—ॐ इस प्रकारका यह अक्षर यह सर्व है ऐसे कहै हैं जो यह विषयरूप अर्थका समूह है तिसको नामसे अभिन्न होनेसे और नामको ॐकारसे अभिन्न होनेसे ॐकारही यह सर्व है, और जो परब्रह्म नामके कथनरूप उपाय पूर्वकही जानने योग्य है सो ॐकारही है, तिस इस इसपर और अपर ब्रह्मरूप ॐ इस प्रकारके अक्षरका ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय होनेसे ब्रह्मके समीप होने करि विस्पष्ट कथनरूप प्रसंग विषे प्राप्त जो उपव्याख्यान है सो जान्नेको योग्यहे, उक्त न्यायसे भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीन कालोंकरि परिच्छेद करनेको योग्य जो वस्तुहे सो भी यह ॐकारही है और जो अन्य तीन कालतें भिन्न कार्य रूप लिंगसे जान्ने योग्य और कालसे परिच्छे-

द करनेको अयोग्य अव्याकृत आदिकहै सोभी ॐकारही है इहां नाम (वाचक) और नामी वाच्यकी एकताके हुएभी नामकी प्रधानतासे यह निर्देश कियाहै

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोधिमात्रम् पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ।

जो वाच्यकी प्रधानतावाला ॐकार चारों पादवाला आत्माहै ऐसा पूर्व व्याख्यान कियाहै यथा (सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात्) सर्व (कारण और कार्य) ही यह ब्रह्महै सर्व जो ॐकार मात्रहै ऐसे श्रुतिने कहाहै सो यह ब्रह्महै यह आत्मा ब्रह्महै सो यह ॐकारका (वाच्य) और पर (अधिष्ठान) और अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होने करि स्थित हुआ आत्मा चार पादवालाहै सो यह आत्मा अध्यक्षरहै वाचककी प्रधानतासे अक्षरको आश्रय करिके वर्णन कियाहै, इस्से अध्यक्षर कहहै फिर सो अक्षर क्याहै तहां कहते हैं सो अक्षर ॐकार है सो यह ॐकार (पाद) चरणोंसे विभागको पाया हुआ अधिमात्रहै, जिस कारण मात्राको आश्रय करके वर्तताहै इस्से अधिमात्र कहते हैं ननु आत्माही पादनसे विभागको प्राप्त होता है, और मात्राको आश्रय करके ॐकार स्थित होताहै, इस कारण पादसे विभागको प्राप्त हुए ॐकारका अधिमात्रपना कैसे है, उसपर कहते हैं आत्माके जो पादहैं वे ॐकारकी मात्राहैं और ॐकारकी जो मात्राहैं वे आत्माके पादहैं, इस्से पाद और मात्राकी एकतासे यह कथन अविरुद्धहै कौनसी वे ॐकारकी मात्राहैं उसपर कहतेहैं अकार उकार मकार यह तीन ॐकारकी मात्राहैं

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्व्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य०

जो जागृत स्थानवाला वैश्वानरहै सो ॐकारकी अकाररूप प्रथम मात्राहै किस तुल्यता करि दोनोकी एकताहै तहां कहैं हैं व्याप्ति तें वा आदिवाले होनेसे जैसे अकारसे सर्व प्राणी व्याप्तहैं तैसे वैश्वानरसें जगत व्याप्तहै "तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानर रूप आत्माका मस्तकही स्वर्ग है" इत्यादि श्रुतियोंके वाक्यसे वाच्य वाचककी एकताको हम कहैं हैं जिसकी आदिहै सो आदिवाला कहाताहै जैसेही आदिवाला अकार नाम अक्षरहै तैसेही आदिवाला वैश्वानरहै इस कारण तुल्यता होनेसे वैश्वानरको अकारपनाहै अब इनकी एकताके ज्ञाताको फल कहैं हैं जो ऐसे उक्त प्रकारकी वैश्वानर और अकारकी एकताको जानताहै, सो निश्चय करके सब भोगोंको पाताहै और यही बड़े पुरुषोंके बीचमें प्रथम होताहै

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारोद्वितीयामात्रोत्कर्षादुभय त्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति ना स्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ।

जो स्वप्न स्थानवाला तैजसहै सो ॐकारकी उकार रूप द्वितीय मात्राहै दोनोकी एकता कैसे है सो कहते हैं उत्कर्षसे वा उभय (द्वितीय) रूप होनेसे जैसे अकारसे उकार पाठक क्रमसे उत्कृष्टहै तैसे स्थूल उपाधिवाले विश्वसें सूक्ष्म उपाधिवाला तैजस उत्कृष्टहै, तिस उत्कर्षसें इनकी एकताहै वा जैसे अकार और मकारके मध्यविषे स्थित उकारहै तैसे विश्व और प्राज्ञके मध्यमें तैजसहै, इस्से तिनकी उभय रूपताकी तुल्यता एकताहै, अब तिनकी एकताके ज्ञाताको जो फल होताहै सो कहते हैं जो ऐसे जानताहै सो ज्ञानकी संततिको वढाताहै और तुल्य होताहै मित्रके पक्षकीनाई शत्रुके पक्षके मध्यभी द्वेष करनेको अयोग्य होता है, और इसके कुलमें अब्रह्मवेत्ता नहीं होते हैं

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीयामात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति हवा इदꣳ सर्व्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद॥ मांडूक्य० ।

जो सुषुप्ति स्थानवाला प्राज्ञ है सो ॐकारकी मकाररूप तृतीय मात्रा है तिस तुल्यता करके दोनोकी एकता है उसमें कहते हैं कि परिमाणसे वा एकतासे यहां दौनोकी तुल्यताहै प्रस्थ (धान्य परिमाणके पात्र) से यव धान्यके परिमाण (माप) कीनाई जैसे लय और उत्पत्तिमें प्रवेश और निकलनेसे प्राज्ञसे विश्व और तैजस परिमाण कियेकीनाई होवै है तैसे अकार और उकार यह दौनो अक्षर ॐकारकी समाप्ति विषै और फिर उच्चारण विषै मकारमें प्रवेश करके निकलते हुएकीनांई होवै हैं, इस्से वे मकारसे परिमाण कियेकीनाई होवै हैं इस्से इन दौनोकी तुल्यतासे एकताहै अथवा जैसे ॐकारके उच्चारण किये मकाररूप अंतके अक्षर विषै अकार और उकार यह दोनौ एकरूप हुएकीनाई होते हैं, इसी प्रकार विश्व और तैजस सुषुप्तिकालमें प्राज्ञ विषै एकरूप हुए कीनाई होते हैं इस्से तुल्य होनेसे प्राज्ञ और मकारकी एकताहै अब तिनकी एकताके ज्ञाताकूं फल कहते हैं, जो ऐसे जानताहै सो निश्चयकरि इस सर्व जगतकूं यथार्थ जान्ताहै और जगतका कारणरूप होताहै यहां वीचके (अवांतर) फलका कथन जो है सो मुख्यसाधनकी स्तुति अर्थ है.

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपंचोपशमःशिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ मांडूक्य० ।

जिसकी मात्रा नहीं है ऐसा जो ॐकार सो अमात्रहै और चतुर्थहै कहिये तुरीयरूप हुआ केवल आत्माही है, और वाच्य वाचकरूप वाणी और मनकू मूलाज्ञानके क्षयसे क्षीणहोनेसे व्यवहार करनेकू अयोग्यहै और प्रपंचके उपशमवालाहै, और शिव (कल्याणरूप) है और अद्वैतहै ऐसे उक्तप्रकारके ज्ञानवाले पुरुषसे उच्चारण किया हुआ ॐकार तीनमात्रावाला और तीनपादवाला आत्माही है, जो ऐसें जान्ताहै जो ऐसे जान्ताहै सो अपनेही आत्मासे अपनेपरमार्थ रूप आत्माके ताईं प्रवेश करताहै, अर्थात् सुषुप्तिनामक तीसरे स्थानरूप बीजभावकू दग्धकरके परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके आत्माके अर्थ प्रवेशपायाहुआ फिर जन्मकू पावता नहीं, काहेसै कि तुरीयकू अबीजरूप होनेसे, जैसे रज्जू और सर्पके विवेकके होनेमें रस्सीके विषे प्रवेशकू पाया जो सर्प सो फिर तिनके विवेकी पुरुषोंकू भ्रान्ति ज्ञानके संस्कारसे पूर्व की नाईं नही होवैहै, तैसे यहां भी जान्ना, साधकभावकूं प्राप्त हुए और सत्मार्गमें वर्तनेवाले मात्रा और पादौं की निश्चित तुल्यताके जाननेवाले जो संन्यासी हैं तिनकू तौ यथार्थ उपासना किया हुआ ॐकार ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ आश्रय होवै है, इसप्रकार स्वामी शंकराचार्यजीने मांडूक्य उपनिषदपर ॐकारकाभाष्य किया है इसीप्रकार औरभीउपनिषदौंमें वर्णनहै यह केवल दिग्दर्शनमात्रहै परन्तु स्वामीदयानंदजीका किया अर्थ किसीभी ग्रंथके अनुसारनहीं है इसकारण सत्यार्थप्रकाशमें यह ओंकारका अर्थ मिथ्याही जानना बुद्धिमानोंको उचितहै

इतिश्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत प्रथमसमुल्लासस्यखंडनं समाप्तम्।
समाप्तश्चेदमीश्वरनामप्रकरणम् ।

श्रीगणेशायनमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत द्वितीय समुल्लासस्य खंडनम्

शिक्षाप्रकरणम् ।

स०प्र०पृ०२८पं०१०धन्यहै वोह माता जो गर्भाधानसे लेकर जबतक पूरी विद्यानहो सुशीलताका उपदेश करै

समीक्षा–यहांतौ स्वामीकी विलक्षणबुद्धि होगई जो लिखाकि"गर्भाधानसे लेकर जबतकपूरी विद्या नहो सुशीलताका उपदेश करै"भला!गर्भाधानमें सुशीलताका उपदेश किसप्रकार होसक्ताहै हां यदि बालकके पुष्टिहोनेकी कोई औषधी लिखते तौ ठीक होताकि गर्भमें बालककी पुष्टिहोना सदैवकाल अच्छाहै

स०प्र०पृ० २८पं०१६ जैसा ऋतुगमनकी विधिका समयहै रजोदर्शनके पांचवे दिवससे लेके सोल्हवेंदिवसतक ऋतुदान देनेका समयहै उनदिनोमें प्रथमके चारदिन त्याज्यहैं रहे बारह दिन उनमें एकादशी और त्रियोदशी छोड़के बाकीमें गर्भाधान करना

समीक्षा–क्यों साहबक्या यह आपका लेख जो मनुस्मृतिसे उद्धृत कियाहै ज्योतिष विद्यासे सम्बन्ध रखताहै यानहीं और ज्योतिष किसको कहते हैं यहरात्रि त्याज्य इसी कारणहैं कि इनमें गर्भाधान करनेसे दुष्ट संतान उत्पन्न होती है और शेष रात्रियोंमें श्रेष्ठसंतान उत्पन्न होतीहै तथा युग्म रात्रियोंमें पुत्र अयुग्ममें कन्या होना मनुजीने लिखाहै त्याज्य रात्रियोंमे गर्भाधान करनेसे दुष्ट संतान और प्रशस्त रात्रियोंमें श्रेष्ठ संतानका होना यह फल नहींतौ और क्याहै आप फल मान्ते भी नहीं और यहां यह गुप्त लिखभी दिया

स०पृ०२९पं० २० स्त्री योनि संकोच शोधन और पुरुष वीर्य्यस्तंभन करै-

समीक्षा–शिक्षा तौ इसीकानामहै परन्तु इसमें योनिसंकोचनकी औषधी आपने क्यों नहीं लिखी आपकी शिक्षामानेहारी स्त्रियें हाथही मलती रह जायंगी क्योंकि स्त्रीयें संकोचन किसप्रकार करें यह अपनेनहीं लिखा यदि आप औषधी लिखदेते तौ विषयी स्त्रीपुरुष आपसे बहुत प्रसन्नहोते क्योंकि यह आपको अच्छी तरह ज्ञातहै कि बिनायोनि संकोचन स्त्रीपुरुषोंको आनन्द कमती होताहै कामशास्त्रमेंभी आपका बड़ाअभ्यासहै पर यहतौ कहियेकि यह शिक्षा स्त्रियोंसे कोन करै आप या उनके मातापिता

स० पृ० ३० पं० ४ उपस्थेन्द्रियके स्पर्श और मर्दनसे वीर्यकी क्षीणता नपुंसकता होती है तथा हस्तमें दुर्गन्धभी होती है इससे उसका स्पर्श कभी न करै

समीक्षा–यह शिक्षा माताको करनी लिखीहै माता जब इस शिक्षाको करैगी तब लज्जा जो स्त्री जातिका भूषणहैं कोनेमें रखदेगी क्योंकि पृ० २९ पं० २२ में आप लिखते हैं माता इस प्रकार शिक्षा करै आपने सोचाहोगा हम कहांतक समझाते फि-

रेंगे स्त्रियोंपरही इस बातका बोझ डालदिया परन्तु आपकी समान और को इतना अभ्यास न होगा क्योंकि आपने इसकी खूब जांच करली मालूम होती है

स०पृ०३०पं०१८गुरोःप्रेतस्यशिष्यस्तुपितृमेधंसमाचरन् । प्रेतहारैः समंतत्रदशरात्रेणशुध्यति॥ मनु०॥

जब गुरुका प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेतहै उसका दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक उठानेवालोंके साथ दशवें दिन शुद्ध होताहै और जब उस शरीरका दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होताहै अर्थात् वोह अमुक नामा पुरुष था जितने उत्पन्न हों वर्त्तमानमें आके न रहैं वे भूतस्थ होनेसे उनका नाम भूतहै एसे ब्रह्मासे लेकर विद्वानोका आजतक सिद्धान्तहै परन्तु जिसको शंकाकुसंगकुसंस्कार होताहै उसको भय और शंकारूप भूत प्रेत शाकिनी डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते है (फिर २७ पंक्तिमें लिखा है कि) अज्ञानी लोग वैदिक शास्त्र वा पदार्थविद्याके पढने सुन्नेसे और विचारसे रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरक और उन्मादादि मानस रोगोंका नाम भूत प्रेतादि धरते हैं

समीक्षा-स्वामीजी आप जब कोई बात बनाते हैं तौ कोई श्लोक लिखकर उसका अर्थ उलटा करदेते है यही लीला इस श्लोकमें फैलाई है कि (पितृमेधं समाचरन्) इस पदके अर्थही न लिखे इसका अर्थ यह है कि जब गुरुका शरीर छुट जाय तौ शिष्य गुरुकी अन्त्येष्टि क्रिया पिंडादि विधान करता हुआ मृतक उठानेवालोंके साथ दशवें दिन शुद्ध होताहै और प्रेतयोनि एक पृथक् है जिसको जीव शरीर त्यागने उपरान्त कर्मानुसार प्राप्त होताहै "और जो वर्तमानमें आकर नरहै वोह भूत कहलाताहै" यह स्वामीजीका लेख समयका बोधकहै इसका यहां कोईभी प्रकरण नहीं है जो आपने यह मनुष्योंपर लगाया तौ आपभी अब मरकर भूत संज्ञक हुए यह शिक्षा आपके शिष्योंको ग्रहण करनी योग्यहै चाहिये कि आपके नामके अन्तमें अब भूत शब्द और लगादें तौ परम हंसकी शोभा बढ जायगी ब्रह्मादिकौंनेतौ कहीं ऐसा नहीं लिखा यह आपहीके मुखसे निर्गतहै आप आपना मुंह क्यों छिपाया करते हैं क्या यहांभी पिताजीका डरहैं जो वोह आकर पकडलेजायंगे अपना नाम लिख दियाकीजिये कि मैं ऐसा मान्ता हूं आप भूत प्रेतादिकौको नहीं मान्ते देखिये मनु वेद चरक सुश्रुत आदिसे आपको दिखाते हैं

यक्षरक्षःपिशाचांश्चगन्धर्वाप्सरसोसुरान् । नागान्सर्पान्सुपर्णांश्च पितृणांचपृथग्गणान् ॥ मनुअ०१ श्लो०३७

यक्ष राक्षस पिशाच गन्धर्व अप्सरा नाग सर्प गरुड और पितृगणोंकोभी ब्रह्माने उत्पन्न किया

ये रूपाणिं प्राति मुञ्चमांना असुंराः सन्तः स्वधयाच रंन्ति ॥ परापुरो निपुरोये भरंन्त्यग्निष्टान् लोकात्प्र णुंदात्यस्मात् ॥ यजु०अ०२मं०३०

पितरोंका अन्न श्राद्धमें भक्षण करनेकी इच्छासे अपने रूपोंको पितरोंकी समान करते हुए जो देवविरोधी असुर पितृ स्थानमें फिरते हैं तथा जो असुर स्थूल और सूक्ष्म देहोंको अपना अपना असुरत्व छिपानेके लिये धारण करते हैं उल्मुक रूप अग्नि उन असुरोंको इस पितृ यज्ञ स्थानसे हटाताहै इससे प्रगट है कि राक्षसादि विघ्नदायक होते हैं और मंत्र पढनेसे भाग जातेहैं सुश्रुतमें भी इस प्रकार लिखाहै

भूतविद्यानांदेवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनाग गृहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहो पशमनार्थं सुश्रुत ॥ सूत्रस्थान ११

अर्थ–भूत विद्या जो आठ प्रकारके आयुर्वेदके विभागमें चतुर्थ है उसको कहते हैं कि देव असुर गंधर्व यक्ष राक्षस पितर पिशाच और नाग आदिग्रहों करके व्याप्त चित्त वाले पुरुषों को ग्रह शान्ति करनेसे आरोग्यताहोतीहै, जो शान्ति बलि देना आदि कर्मको भूतविद्या कहते वैसमझे है यहांभी यह योनि वर्णन करीहैं जिनको बलि देनेसे मनुष्य पर जो आच्छादन होताहै सो जाता रहता है

स० पृ० ३१पं० १९ परन्तु जो कोई बुद्धिमान उनकी भेंट पांच जूता दंडा वा चपेटा लाते मारे उसके हनुमान देवी भागजाते हैं

समीक्षा वाह क्या आपका यही न्याययुक्त सभ्यताका कथन है इसीका नाम मंगलाचरण है निश्चय जानिये वह देवतोंने ही आपका प्राण शरीरसे निर्गत कर दिया नहीं तौ ब्रह्मचर्य वालोंकी तौ आपके कथनानुसार वड़ी उमरहोती आगे भी यह प्रसंग लिखेंगे

स० पृ० ३१पं०३०(प्रश्न) तौ क्या ज्योतिश्शास्त्र झूंठाहै (उत्तर) नहीं जो उसमें अंकबीज रेखा गणित विद्या है वोह सब सच्ची जो फलकी लीलाहै वोह सब झूंठहै यह जन्मपत्र नहीं शोकपत्रहै

समीक्षा–न जाने यह शिक्षा कौनसे वेदकी है जो प्रश्नोत्तर आपही गढ लिये हैं ज्योतिश्शास्त्रका फल झूंठहै अंक सत्य हैं इसमें कुछ प्रमाणभी है या जो मुंहमें आया सो लिख दिया जरा अपनेही टीका किये कारकीयके पृ० २० पं० १९ में देखाहोता

(उत्पातेन ज्ञाप्यमाने) वार्तिक।

आकाशसे विजली चमकने और ओले गिरनेको उत्पात कहते हैं इस उत्पातसे जो वात जानी जावे उसमें चतुर्थी विभक्ति होतीहै यथा

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी । कृष्णा सर्वविनाशाय दुर्भिक्षाय सिता भवेत् ॥ महाभाष्यम् ।

जो पीली विजली चमकै तौ अधिक हवा चले, लोहित वर्णकी चमकै तौ आतप अर्थात् गरमी अधिक हो जो काली चमकै तौ सर्वका नाश प्रलयहो, श्वेतचमके तो दुर्भिक्ष हो कहिये यह फलित नहीं तो और क्या है शुभाशुभ फल भविष्य वार्ता सव कुछ ज्योतिषसेही जाना जाताहै धन्य है आपकी बुद्धिको जो शास्त्रकर्ताओंको झूंठा वतातेहो यदि जन्मपत्री शुभाशुभ फलके ज्ञानमात्रसे शोकपत्र है इस कारणसे उसका बनाना निष्प्रयोजनहै तौ यावत् शास्त्र विद्यादिक जो मनुष्योंको शुभाशुभका ज्ञान करानेवाले हैं सबही निष्फल होजायगे, और यह तौ कहिये यह आपके उत्पन्न होनेका दिन सम्वत् आपकू उत्पन्न होनेसेही यादहै और कोई प्रमाणभीहै कि आपका जन्म इसी सम्वत्में हुआथा वाह लोगोंके जन्म दिनकी तिथिही आप मेटना चाहते हैं जिसमें कि जन्मदिन नक्षत्र मास सम्वत् ग्रह लिखे होते हैं जिस्से मनुष्योंको अपने जन्म दिवसका ज्ञानहोजाताहै और ग्रहोंसे फल और जन्मतिथिकाभी ज्ञानहोजाताहै

पृ० ३१ पं २७ क्या ये (ग्रह) चेतनहैं जो, क्रोधितहोकै दुःख और शान्तहोकै सुखदेसकैं

समीक्षा—यदि यह दुःखसुख नहींदे सक्ते तौ वेदोंमें इनकी शान्ति क्या वृथाकीहै सुनिये

शंनो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्याश्च राहुणा ॥ अथर्ववेद ।

अर्थ—ग्रह चन्द्र आदित्य राहु हमारे लिये शान्ति कारकहों, यह वेदमें शान्ति प्रकरण क्या वृथा है इसीसे ग्रह दुःखसुख देनेहारे सिद्ध होते हैं विशेष वर्णन ज्योतिष प्रकरण ११ समुल्लासमें करैंगे जन्म पत्रमें ग्रह लिखे जाते हैं यह बात वाल्मीकि रामायणमें विदितहै रामचन्द्रजीके जन्म समय उन्होंने ग्रह लिखे हैं

स० प्रकाश पृ० ३३ पं० २ कोई कहता है कि जो मंत्र पढकै डोरा वा यंत्र बना देवें तौ हमारे देवता उस मंत्र यंत्रके प्रतापसे कोई विघ्न नहीं होनेदेते उनको वही उत्तर देना चाहिये तुम क्या परमेश्वरके नियम और कर्म फलसेभी वचा सकोगे

समीक्षा—डोरा बांधनेसे और मंत्र पढके रक्षा नहीं होती तौ आपने पंच महायज्ञ विधिमें पृ०५ पं० ११ में लिखाहै "इसके अनंतर गायत्री मंत्रसे शिखाको बांधकै रक्षा करै" अब कोई स्वामीजीसे पूछै कि आप बताई ये गायत्री पढकर रक्षा क्या करै और किससे करै यदि शिखा बांधनेहीसे रक्षा हो जाय तौ तलवार बंदूक तमंचा कि-

सी कामका नहीं है यदि दो दयानन्दी संध्योपासनके अनन्तर कुस्तीलडैं तौ कोई भी न हारे क्यों कि दोनौ रक्षा कर चुकेहैं और कोई जीतेभी नहीं क्यौं कि दोनौ रक्षा कर चुके हैं (प्रश्न) तौ तुम रक्षा और मंत्रका फल कैसा मान्ते हो (उत्तर) हम लोग मांत्रिक रक्षाका फल अध्यात्मगत मान्ते हैं देखियेगायत्री मंत्रका फल

सहस्त्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः॥महतोप्येन सो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ मनु० अ०२श्लो०२९

समयमें यह जो त्रिक अर्थात् गायत्रीको सहस्र वार ग्रामके बाहर नदी तीर वा अरण्यमें एक मास जपनेंसे द्विज महान् पापसे छूटताहै क्यों साहव यह मंत्रसे पाप दूरकी विधि लिखी है या नहीं फिर क्या यह मंत्र परमेश्वरके नियममें है या नहीं? अघमर्षण मंत्र जो है वोह पाप दूर होनेंके निमित्त जपा जाता है या नहीं? वाल्मीकि रामायणमें लिखाहै जव रामचंद्र वनको चले तौ कौशल्यानें मंत्र पढकर रक्षा की सुश्रुतके सूत्ररथानमें रोगोकी भूत प्रेतादिसे मंत्र पढकर रक्षा करनी लिखी है, जितने विघ्नोंका विधान है उन सवकी शान्ति मंत्रोंद्वारा होजाती है और उन मंत्रोंके देवता विघ्न नहीं होने देते, यह ईश्वरका नियमही है कि देवताओंके मंत्र जपनेसे विघ्न नहीं होता शौनककृत ऋग्विधान देखिये कि उसमें अनेक वैदिक मंत्रोंके जपनेसे रोग शान्ति ग्रहशान्ति अरिष्टशान्ति लिखी है तथा औरभी अनेक मंत्रहैं वेदके जो भूत प्रेत पिशाचोंकी शान्ति करते हैं ग्रहोकी शान्ति करते हैं

८।७।१४ रात्रिसूक्तंजपेद्रात्रौत्रिवारं तुदिनेदिने
भूतप्रेताहिचौरादिव्याघ्रादीनांचनाशनम् १

३।४।२३ कृणुष्वेतिजपेत्सूक्तं श्राद्धकालेप्रशस्तकम्
रक्षोघ्नंपितृतुष्ट्यर्थंपूर्णंभवति सर्वतः २

६।२।९ येषामावधमंत्रंचजपेच्चअयुतंजले
बालग्रहानपीडयन्तेभूतप्रेतादयस्तथा ३

जो रात्रि सूक्तको रात्रिमें प्रति दिन तीन वार जपता रहै तौ भूत प्रेत चोर व्याघ्रादिका नाशहो १

कृण्णुष्वेति जो इस सूक्तको श्राद्धके समयमें जपै तौ राक्षसोंका नाश और पितरोंकी तृप्ति होती है २

येषामवधेति इस मंत्रको जलमें खडेहो तीन सहस्र जपै तौ बालग्रह भूत प्रेत नाश हो जाते हैं ३

स० पृ० ३३ पं० २९ नौ वर्षके आरंभमें द्विज अपने संतानौका उपनयन करके आ-

ये कुलमें अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हैं वहां लड़के और लड़कियोंको भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदें

समीक्षा—इस स्थानमें तौ मति ठिकाने शिरहै कि शूद्रका उपनयन न हो जातिही सिद्ध रक्खी है, और द्विजसे ब्राह्मण क्षत्री वैश्यका ग्रहण कियाहै यह प्रतिज्ञा यहां छूटगई कि महामूर्खकोही शूद्र कहते हैं जिसे पढायेसे कुछ न आवे परन्तु आगे तीसरे समुल्लासमें इस अपने लेखकी बहुतेरी मट्टी ख्वार की है सो इसका खंडन वहीं होगा

स०प्र०पृ०३९पं०१ बडोंका मान्य दे उनके सामने उठकर जाकर उच्चासनपर बैठा प्रथम नमस्ते करै पृ० ९६ पं० १७ और दिनरातमें जबजब प्रथम मिलैं वापृथक् हों तबतब प्रीति पूर्वक नमस्ते एकदूसरेसे करैं

समीक्षा—यह नमस्ते की परिपाटी भी अजब ढंगकी चलाई है पर परस्पर नमस्ते करनेका कोई प्रमाणनहीं लिखा,आपने तौ सबही ढंग बदल दिये कोई पुरानी बात रहने ही नहीं दी यदि वश चलता तौ आप संस्कृत के स्थानमेंभी कोई औरही विद्या गढते परन्तु उससे कोई कार्य की सिद्धिनहीं होती,जिसप्रकार यवन लोगोंमेंभी यह परिपाटी प्रचलित है कि स्त्री अपने पतिको मियां कहती है, और बेटी बेटेभी बापको मियांहीं कहते हैं, उसी प्रकार यह आपका नमस्ते है कि बेटाबाप गुरुचेले लुगाई भंगी चमार सबकोई एक दूसरेसे नमस्ते करते हैं, और छुटाई बडाई कुछभी नहीं है सच बूझिये तौ यही वर्णसंकरकी जडहै नमस्ते का अर्थ तौ यही है कि में तेरेसे नीचा हूं इसमें बडे लोगोंका मानतौ कुछ नहीं, किन्तु जब वेभी नमस्ते करते हैं तौ उनका गौरव नष्ट हो जाताहै, स्तुतियोंमें यह शब्द आताहै पर यह नहीं कि जिस देवताकी स्तुति करो वोहभी नमस्ते करने लगे, और जो बुद्धिको तिलांजलि देकर यह कहते हैं कि (नमः ज्येष्ठाय कनिष्ठायच) यजुः अ० १६ मं० ३२ में छोटे बडेको नमस्कार लिखाहै वोह प्रथम यह तौ विचारै कि यह रुद्राध्यायका मंत्रहै जिसमें ज्येष्ठ कनिष्ठके अर्थ व्यष्टि और समष्टिकेहैं अर्थात् व्यष्टि समष्टिरूप शिवके लिये नमस्कार कियाहै इसमें कुछ बडे छोटे मनुष्यको नमः करनेको नहीं लिखाहै परन्तु जो प्राचीन विधि व्यवहारकी है सो दिखलाते हैं

लौकिकंवैदिकंवापितथाध्यात्मिकमेवच
आददीतयतोज्ञानंतंपूर्वमभिवादयेत् ११७
शय्यासनेऽध्याचरितेश्रेयसानसमाविशेत्
शय्यासनस्थश्चैवैनंप्रत्युत्थायाभिवादयेत ११९

ऊर्ध्वंप्राणाह्युत्क्रामंतियूनः स्थविरआयति
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यांपुनस्तान्प्रतिपद्यते १२०
अभिवादनशीलस्यनित्यंवृद्धोपसेविनः
चत्वारितस्यवर्द्धन्तेआयुर्विद्यायशोबलम् १२१
अभिवादात्परंविप्रोज्यायांसमभिवादयन्
असौनामाहमस्मीतिस्वंनामपरिकीर्तयेत् १२२
नामधेयंचयेकेचिद्भिवादंनजानते
तान्प्राज्ञोहमितिब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैवच १२३
भोःशब्दंकीर्तयेदंते स्वस्यनाम्नोभिवादने
नाम्नांस्वरूपभावोहिभोभावऋषिभिःस्मृतः१२४
आयुष्मान्भवसौम्येतिवाच्योविप्रोभिवादने
अकारश्चास्यनाम्नोन्तेवाच्यःपूर्वाक्षरप्लुतः १२५
योनवेत्त्यभिवादस्यविप्रः प्रत्यभिवादनम्
नाभिवाद्यः सविदुषायथाशूद्रस्तथैवसः १२६
ब्राह्मणंकुशलंपृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्
वैश्यंक्षेमसमागम्यशूद्रमारोग्यमेवच १२७ मनु० अ० २

अर्थ—जिस्से लौकिक विद्या पढै वा वेद विद्या पढै तथा ब्रह्मविद्या पढै उस प्रतिष्ठितौं के बीचमें बैठे हुए को प्रथम अभिवादन करै ११७ शय्यासन विद्याधिक करकै अधिक वा गुरु इनके स्वीकार किये होनेपरभी उसी समयमें आप बराबर न बैठे और गुरु आवे तौ उठकर प्रणाम करै ११९ थोडी उमरवालेके वृद्धके घर आनेमें प्राण ऊपरको होते हैं जब उठकरकै प्रणाम करनेसे स्वस्थानको प्राप्त होते हैं इस कारण अपनेसे बडौंको नित्य अभिवादन करना १२० जो प्रतिदिन वृद्धोंकी सेवा और नमस्कार करनेवाला है उसकी आयु धन बल यश यह चार वस्तु वृद्धिको प्राप्त होतीहैं १२१ विप्र वृद्धको प्रणाम करता हुआ मैं प्रणाम करताहूं इस शब्दके अन्तमें अमुक नामवाला हूं यह कहै १२२ जो कोई नामधेयके उच्चारण पूर्वक अभिवादन करना नहींजान्ते विना संस्कृत पढे हुए, उनके प्रति बुद्धिमान् ऐसा कहे कि प्रणाम करताहूं और स्त्रियेंभी ऐसाही करैं नाम और अभिवादनके अन्तमें भोः शब्दका उच्चारण करैं अभिवाद्यके नामके स्वरूपकी जो सत्ताहै सो (भोः) इस संबोधनसे

होती है अह ऋषियोंने कहाहै १२४ प्रणाम करनेपर "आयुष्मान् भव सौम्येति" अर्थात् जीते रहो ऐसा ब्राह्मण कहै प्रणाम करनेवालेके नामके अन्तके पूर्व अक्षरको प्लुत करै १२५ जो ब्राह्मण अभिवादनपर क्या कहना चाहिये इसको नहीं जान्ता वोह ब्राह्मण शूद्रवत् है अभिवादन करनेके योग्य नहीं है (समाजी पंडित जो समाजकेनाई धोबी शूद्रादि सबसे नमस्तेही करते हैं उन्हे इस श्लोकपर ध्यान रखना चाहिये) १२६ प्रणामादिके अनन्तर ब्राह्मणसे कुशल क्षत्रियसे अनामय वैश्यसे क्षेम शूद्रसे आरोग्य पूछे १२७

इस प्रकार मनुस्मृतिमें वर्णन है स्वामीजी इस स्थलमें मनुस्मृति देखते २ ऊंघगये होंगे दृष्टि उनकी इस स्थानपर न पड़ी होगी परन्तु समाजियोंको क्या सूझी है कि सबसे नमस्तेही कहते हैं चाहें बेटा हो छोटा भाई हो शूद्र हो गुरू हो समाजका उपदेशक हो सबसे नमस्ते करते हैं परन्तु विशेष आश्चर्य तौ उन समाजी पंडितौंपर है जो आनंदसे बैठे वैश्य शूद्रोंके नमस्ते कहते हैं वे (यो नवेत्त्यभिवादस्य०) इस वाक्यानुसार शूद्रवत्‌ही हैं महाशयो क्या तुमारी बुद्धि समाजियोंने कोई औषधी खिलाकर हरली है पैसेका लोभ करी तौ तुम्हारे पितादिकभी तौ उदरपूर्ण करतेही थे और तुमसे चौगुना द्रव्योपार्जन करते थे क्यों काठकी पुतलीकिनाई नाचरहैहो सदैव यहांही रहना नहीं होगा समझो तौ नमस्ते है क्या पदार्थ, जो चिठ्ठीमेंभी लिख देतेहो कि हमारी अमुकसे नमस्ते कहदेना, यह कैसे बनसका है जो सामने विद्यमानहो उससे कह सक्ते हैं इस्से चिठ्ठीमेंभी यह बात नहीं बनसक्ती, इस कारण नमस्ते कभी नहीं करना चाहिये प्रणाम दंडवत् आदि करना योग्यहै

स० प्र० पृ० ३६ पं० ३ यही माता पिताका कर्तव्यकर्म परम धर्म और कीर्तिका काम है जो सन्तानोको उत्तम शिक्षा करना (पुनः) यह बाल शिक्षामें थोडासा लिखाहै इतने हीसे बुद्धिमान लोग बहुत समझ लैंगे

समीक्षा—वाह बड़ी सुंदर शिक्षा लिखी बालकौंके मातापिताको शिक्षा करी माता पिता अपने बालकों और बालकियोंकी करैंगे यह शिक्षा आपकी कौनसे वेदानुसार है कोई वेदका प्रमाण नहीं लिखा इस शिक्षाको स्वतः प्रमाण माने या परतः प्रमाण जिसमें योनिसंकोचन करना उपस्थेन्द्रियपर हाथ न रखना नमस्ते परस्पर करना यही सिखाया है पर यह तौ आपकी कल्पनाही है यह थोडीसी बालशिक्षा नहीं सत्यानाश करने तथा नास्तिक वर्णसंकर बनानेको यही बहुत है बुद्धिमान् इसको बहुतही अच्छी तरह समझते हैं और आपकी वेद विरुद्ध शिक्षाओंसे पृथक्‌ही रहते हैं

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतद्वितीयसमुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ॥ २ ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनम्

अध्ययनअध्यापनप्रकरणम्

स०पृ०३८पं०१२कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम् मनु०

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवे अथवा आठवें वर्षसे आगे अपने लड़के और लड़कियोंको घरमें नरखसकें पाठशालामें अवश्य भेजदेवें जो न भेजें वोह दंडनीय हैं प्रथम लड़केका यज्ञोपवीत घरमें हो और दूसरा पाठशालामें आचार्य कुलमें हो पितामाता वा अध्यापक लड़के लड़कियोंको अर्थसहित गायत्रीमंत्रका उपदेश करें

समीक्षा—यह इतना लम्बा चौंडा अभिप्राय कौनसे अक्षरोंसे सिद्ध होताहै आठ वर्षसे आगे पुत्र पुत्रीको घरमें रखनेसे मनुष्य दंडनीय हैं ऐसेही अभिप्रायोंने तौ नव शिक्षितोंकी बुद्धिपर परदा डालदियाहै इस श्लोक कायों तात्पर्यहै और राजधर्म प्रसंगमेंका है

मध्यन्दिनेर्द्धरात्रेवाविश्रान्तोविगतक्लमः
चिंतयेद्धर्मकामार्थान्सार्धंतैरेकएववा १५१
परस्परविरुद्धानांतेषांचसमुपार्जनम्
कन्यानांसंप्रदानंचकुमाराणांचरक्षणम् १५२ अ० ७

राजाको योग्यहै कि दुपहर आधी रातके समयमें जब विश्राम युक्त हो और शरीर खेद रहित हो उस समय राजा मंत्रियो सहित वा आपही धर्म काम अर्थ इनका विचार करै और यह धर्म अर्थ काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके अर्जनका उपाय अपने कुलकी कन्यायोंका दान अर्थात् किस स्थानमें विवाह करना चाहिये और कुमारोंका रक्षण विनयादिक शिक्षा करनेका विचार करै इस श्लोकसे स्वामीजीका अर्थ किंचित् मात्रभी सम्बन्ध नहीं रखता यह एक बड़ी अद्भुत बातहै कि एक यज्ञोपवीत घरमें करै एक पाठशालामें इसमें कोई अपनीही संस्कृत बना गढके श्लोकके नामसे लिखी होती और जब स्त्रियोंके यज्ञोपवीत होताही नहीं तौ भला उन्हे गायत्री पढनेका कब अधिकार है धन्यहै आपकी बुद्धि यहां गायत्री पढना लिख दियातौ यज्ञोपवीतभी लिख देते क्या डरथा समाजी तौ मान्तेही उन्हे तौ आपके वचन पत्थरकी लकीरहैं

स० पृ० ३८ पं० १९ सावित्रीप्रकरणम् ।

ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्

इस मंत्रमें जो प्रथम ओ ३ म् है उसका अर्थ प्रथम समुल्लासमें करदियाहै वहीं से जानलैना अब तीन महाव्याहृतियोंके अर्थ संक्षेपसे लिखतेहैं भूरिति वै प्राणः यः प्राणयति चराचरं जगत् स भूः स्वयंभूरीश्वरः जो सब जगतके जीवनका आधार प्राणसेभी प्रिय और स्वयंभू है उस प्राणका वाचक होके भूः परमेश्वरका नामहै भुवरित्यपानः यः सर्वं दुखमपानयति सोऽपानः जो सब दुःखौंसें रहित जिसके संगसे जीव सब दुःखौंसे छूट जाते हैं इस लिये उस परमेश्वरका नाम भुवः है स्वरिति व्यानः यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः जो नानाविधि जगतमें व्यापक होकै सबका धारण करता है इस लिये उस परमेश्वरका नाम स्वः है यह तीनौ वचन तैत्तरीय आरण्यकके हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगतका उत्पादक और सब ऐश्वर्यका दाताहै (देवस्य) यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः जो सर्व सुखौंका दैनेहारा और जिसकी प्राप्तिकी कामना सब करते हैं उस परमात्माका जो (वरेण्यम्) "वर्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्ध स्वरूप और चेतन करनेवाला ब्रह्म स्वरूपहै (तत्) उसी परमात्माके स्वरूपको हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करैं किस प्रयोजनके लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकं" हमारी (धियः)"बुद्धीः" बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरण करै अर्थात् बुरे कामोंसे हटाकर अच्छे कामोंमें प्रवृत्त करै

समीक्षा—दयानंदजीने महाव्याहृतियोंके अर्थमेंभी गोलमालकरा है तैत्तरीय आरण्यकके नामसे स्वयं कल्पनाकी है अब ये वाक्य लिखे जाते हैं

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रोव्याहृतयः । तासामुह स्मैतां चतुर्थीमाहाचमस्यः प्रवेदयते । महइति तद्ब्रह्म सआत्मा अंगान्यन्यादेवताः । भूरितिवाअयंलोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । सुवइत्यसौ लोकः १ मह इत्यादित्यः आदित्येन वा सर्वे लोका महीयन्ते ॥ तैत्तरी०

इस उपनिषदमें ब्रह्मका उपदेश आगे पंचकोश रूप गुहामें करैंगे इस कारण प्रथम श्रद्धा पूर्वक अधीत व्याहृतियोंका त्याग असंभव है इसमें व्याहृति शरीर जो हिरण्यगर्भ तिसकी उपासना स्वाराज्य फल प्राप्ति हेतुका विधान करते हैं वोह व्याहृति

शरीर रूप हिरण्यगर्भ हृदयमें ध्यान करने योग्य है भूः भुवः स्वः यह तीन व्याहृति है कहीं तौ स्वः ऐसा व्याहृतिका आकार होताहै और कहीं सुवः ऐसा आकार होता है अर्थका भेद नहीं क्यों कि प्रातिशाख्य जो वेदका व्याकरण है तिसमें स्वः के स्थानमें सुवः और स्वर्गके स्थानमें सुवर्ग ऐसा शब्द प्रयोग होताहै इन तीन व्याहृतियोंके मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोकहै इसको महाचमसका पुत्र जो माहाचमस्य ऋषिहैं सो जान्ता हुआ वा देखता हुआ यहां उपदेशसे जो यह माहाचामस्य ऋषिने देखी हुई महर् ऐसी व्याहृति है सो ब्रह्महै अब इनकी तुल्यताको कथन करैं हैं जैसे कि ब्रह्म महत् है और व्याहृति महर् है इस्से इनकी एकतावने हैं और वोह महर आत्मा (ब्रह्मका रूप) है क्यों कि वोह महर् व्याप्ति रूप कर्मवाला है इस्से सो आत्माहै और अन्य जो व्याहृतिरूप लोक देव वेद और प्राणहैं वे जिस्से कि "महर् ब्रह्महै" इस आगे कहनेके वाक्यसे कथन किये व्याहृति रूप ब्रह्मके देव लोक आदिक सर्व अवयवरूपहैं और जिस्से वे सूर्य चन्द्र ब्रह्म और अन्न रूपसे व्याप्त होवै हैं इस्से और देवता जो हैं सो वे अंग (ब्रह्मके पाद आदिक अवयव) हैं और महाव्याहृति अंगीहै भाव यह है कि महा व्याहृति रूप जो अंगीहै हिरण्यगर्भ, तिसके भूः व्याहृतिको पाद और भुवः व्याहृतिको बाहू और सुवः व्याहृतिको शिररूपसे ध्यान करै ऐसी उपासना विधि है सो कथन करते हैं अर्थात् भूरादि प्रजापति अंगोको जिस २ रूपसे चिन्तन करनाहै सो निरूपण करते हैं

पृथ्वीलोक प्रजापतिके पादरूप भूः व्याहृति है और अन्तरिक्ष लोक प्रजापतिके बाहुरूप भुवः व्याहृति है और स्वर्ग लोक प्रजापतिका शिरोरूप सुवः व्याहृति है और जो प्रकाशमान आदित्यहै सो प्रजापतिका मध्यभाग रूप महा व्याहृति है भाव यह है कि पृथ्वीलोकमें प्रजापत्तिके पाद दृष्टि करना और अन्तरिक्षमें प्रजापतिके बाहू दृष्टि करना, स्वर्गमें प्रजापतिका शिर दृष्टि करना और आदित्यमें प्रजापतिके शरीर मध्य दृष्टि करना और मध्यभागसे अंगोकी वृद्धि होती है इसी कारण कहते हैं कि आदित्यसे सब लोकोंकी वृद्धि होती है इसी प्रकारसे आगे अग्नि आदिमें प्रजापतिके अंग दृष्टि जानना

भूरितिवाअग्निः । भुवइति वायुः । सुवरित्यादित्यः । महइति चन्द्रमाः । चन्द्रमसावावसर्वाणिज्योती ऽषि महीयन्ते । भूरि तिवा ऋचः भुवइति सामानि सुवरिति यजूऽषि ॥ २ ॥

भूः यह प्रसिद्ध अग्नि है भुवर् यह वायुहै स्वर् यह सूर्य है महर् यह चन्द्रमाहै चन्द्रमासे प्रसिद्ध सब ज्योति (तारा) वृद्धिको पाते हैं भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है भुवर् यह सामवेद है स्वर् यह यजुर्वेद है. २

मह इतिब्रह्म । ब्रह्मणावाव सर्वे वेदामहीयन्ते । भूरितिवैप्राणः भुव इत्यपानः। सुवरितिव्यानः महइत्यन्नम् । अन्नेनवावसर्वेप्रा णामहीयन्ते। तावाएताश्चतस्रश्चतुर्द्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ता यो वेद स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवाबलिमावहन्ति असौ लो को यजूंषि वेद द्वेच । तैत्तरीय उपनिषदि अनु० ५

अर्थ—महर् यह ब्रह्म ॐकारहै क्यों कि ॐकारसेही सब वेद वृद्धिको प्राप्त होते हैं भूः यह प्राण है भुवर् यह अपान है स्वः यह व्यान है महर् यह अन्न है अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको पाते हैं जो यह उपचार व्याहृति चार प्रकारकी हैं इनका फल वर्णन करते हैं कि एक एक व्याहृति चार चार प्रकारकी होगई तब प्रकरणानुसार षोडशकला युक्त पुरुषका ध्यान कहा व्याहृतिसे पृथ्वीकला अग्निकला ऋग्वेदकला प्राणकला ऐसे चतुष्कला तौ प्रजापतिके पादहैं और अंतरिक्षकला वायुकला सामवेदकला अपानकला ऐसी चतुष्कला बाहू हैं स्वर्गलोककला आदित्यकला यजुर्वेदकला व्यानकला ऐसी चतुष्कला प्रजापतिका शिर है आदित्यकला चन्द्रकला ॐकारकला अन्नकला ऐसा प्रजापतिका आत्मशब्दप्रतिपाद्य मध्यभाग है ऐसे षोडशकला युक्त पुरुषको हृदयमें ध्यान करनेसे जो फल प्राप्त होताहै सो कथन करते हैं इन व्याहृतियोंकू पूर्व प्रकारसे जो जान्ताहै सो ब्रह्मको जान्ताहै तिसके अर्थ प्रजापतिके अंग भूत सब देवता बलिको प्राप्त करते हैं सो यह लोक और यजुर् दोनौको जान्ता है और दयानन्दजीनें इस षोडशकलायुक्त प्रजापतिकी उपासनाके प्रकरणमें भूरिति वै प्राणः भुवरित्यपानः सुवरिति व्यानः इतने भागको लेकर प्राण अपान और व्यान पदकी परमेश्वरपरता वर्णन कराहै परन्तु बुद्धिमान् विचारैं कि यह कितनी धृष्टताहै कि सगुणोपासनाके फलके लोप करनेको यह लीला रचीहै कि यह कौन प्रकरणके वाक्यहैं सोभी नहीं लिखा इस प्रकरणमें यह व्यानादि ईश्वरवाचक नहीं क्योंकि उसके साथ यह लिखाहै कि (अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते) अन्नसेही सब प्राण वृद्धिको प्राप्त होते हैं यदि यहां प्राणादि शब्दसे ईश्वरका ग्रहण किया जाय तौ अन्नसे वृद्धि कहना असंगत हो जाय अब ये देखना चाहिये कि स्वामीजीने जब ॐकार और व्याहृतियोंकेही अर्थोंमें अनर्थ कियातौ और मंत्रोकी क्या कथाहै अब गायत्री के अर्थ लिखते हैं कि प्राचीन ग्रंथोंमें इसका कैसा व्याख्यान कियाहै

तत्सवितुर्वरेण्यमित्यसौवाआदित्यः सविता सवा प्रवरणीय आत्मकामेनेत्याहुर्ब्रह्मवादिनोऽथभर्गोदेवस्यधीमहीति सवि

तावैदेवस्ततोयोऽस्यभर्गाख्यस्तंचिन्तयामीत्याहुर्ब्रह्मवादिनः

प्रथम पादकीप्रतीकधरकर अर्थकरतेहैं सवितृपदकाअर्थ असौवाइत्यादि यहजो प्रत्यक्षआदित्यहै सोसविताहै आत्मकामकरकै प्रवरणीयहै अर्थ यहजो आत्मातिरिक्त पदार्थकी कामनारहितहै तिसको यह सविताही एकताबुद्धिकरकै प्रार्थनीय है, भाव यह है कि पिण्डसार प्राणओर ब्रह्माण्डसार आदित्यकी एकताभावना करकै दोनो उपाधिसेउपलक्षिततत्वको आत्मरूपसे भावना करै, यहवेदविद् पुरुष कहतेहैं अब द्वितीयपादकीव्याख्याकरतेहैं देवशब्दबोध्यसविताही है तिसकारणसे सविताकाजो भर्गाख्यरूपहै तिसकोचिन्तनकरते हैं ऐसे वेदविद कहते हैं

अथ धियोयोनः प्रचोदयादितिबुद्ध्योवैधियस्तायोऽस्माकंप्रचोदयादित्याहुर्ब्रह्मवादिनः

अर्थ–अन्तःकरणकी वृत्तियोंको जो परमात्मा प्रेरणा करताहै यह ब्रह्मवादीकहते हैं तवमंत्रका अर्थ ऐसाजानना " सवितुर्देवस्ययत् भर्गाख्यं वरेण्यं तत् धीमहि तत् किम् योऽस्माकं धियोऽन्तकरणवृत्तीः प्रचोदयात् प्रेरयति" सवितादेवकाजो भर्गतथावरेण्यरूपहै तिसे हम ध्यान करतेहैं जो हमारी बुद्धिवृत्तिओंको प्रेरणा करताहै

अथभर्गइति योहवा अमुष्मिन्नादित्ये निहितस्तारकोऽक्षिणि वैषभर्गाख्योभाभिर्गतिरस्यहीति भर्गोभर्जयतीतिवैषभर्ग इति रुद्रोब्रह्मवादिनोऽथ भइतिभासयतीमान् लोकान् रइतिरंजयतीमानिभूतानि ग इति गच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्भर्गत्वाद् भर्गः शश्वत् सूयमानात् सूर्यः सवनात् सविताऽऽदानादादित्यः पवनात् पावनोऽथापोप्यायनादित्येवंह्याह

इसमंत्रमें भर्ग औरसवितृपदका व्याख्यानहै और प्रसंगमें आदित्यसूर्य पावन आपशब्दोंके अर्थकोभी निर्णय करतेहै "योऽमुष्मिन्नादित्ये निहितो वा यश्चाक्षिणि तारको निहित एषभर्गाख्यः" यह अन्वयहै जो यह आदित्यमंडलमें स्थितहै अन्तर्यामी तथा जो नेत्रमें कृष्णतारा उपलक्षित अन्तर्यामी स्थितहै यह भर्गाख्यवाला देवहै (भाभिर्गतिर्गमनमस्येति भर्गः) किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूप प्रकाशकरकै गमन होताहै तिस अन्तर्यामीका वोहभर्ग है आशययह कि केवल चेतनमें गमन व्यापकहौनेसे बनतानहीं परन्तु किरणरूप प्रकाश वा वृत्तिरूपप्रकाश उपाधिके गमनसे गमन प्रतीतहोताहै ऐसे एकप्रकारसे भर्गशब्दकी निरुक्तिकहकर प्रकारान्तरसे निरुक्ति

करते हैं (भर्जयतीतिवाएष भर्गः) जो सर्व जगतका संहार करताहै सो यह भर्ग है ऐसा रुद्ररूपहै परमात्माका, ऐसे वेदवित् कहतेहैं अवएक २ अक्षरके अर्थ करते हैं (भासयतीमान्लोकानितिभः) अपनेमंडलअन्तर्गत प्रकाश करकै सर्वजगतको प्रकाशकरता है इसकारण भ और (रंजयतीमानिभूतानि इति रः) अपने आनन्दरूपसे सर्व प्राणिवर्गको आनन्दित करताहै इस्से रहै, (गच्छन्त्यस्मिन् वा आगच्छन्त्यस्मात् सर्वा इमाः प्रजा इति गः) और सुषुप्ति प्रबोधमें वा महाप्रलय उत्पत्ति कालमें सर्व प्रजापरमात्मामें लीन होकर फिर उत्पन्न होतीहैं इस्से गहै ऐसे भर्गपनाहौनेसे भर्ग है और (शश्वत् सूयमानात् सूर्य्यः) निरन्तर उदय औरअस्तहोकर प्रातःकालादिकरनेसे सूर्यहै, और सर्व प्राणिवर्गकी वृष्टि अन्नवीर्यादिद्वारा उत्पत्तिकरता हौनेसे सविताहै और (आदानात् आदित्यः) पृथ्वीका रस तथा प्राणिवर्गकी आयुको ग्रहण करनेसे आदित्यहै और (पवनात् पावनोप्येषएव) सर्वको पवित्र करनेसे पावन नाम वायुभी यह परमेश्वरहै और अपनाम जलभी यह परमेश्वरही है क्योंकिसर्व जगतको (प्यायनात्) वृद्धिकरनेसे ऐसेवेदार्थवित् कहतेहैं, इसप्रकारसे गायत्री मंत्रके दोपादसे अधि दैवतत्वकानिश्चय करा, अर्थात् सूर्य वायुजल उपलक्षित यावत् देवतारूप परमात्माको बोधनकिया, औरयावत् जगत् उत्पत्तिपालनसंहारकर्तृत्व बोधनकरा, तथा जगत्लयाधार और जगत्उपादान कारणभी भर्ग पदव्याख्यानसे कहा, इसकहनेसे जड प्रकृति जगत् उपादान कारण पक्ष दयानन्दजीका गायत्री ब्रह्मविद्या विरुद्धहै, इस्से सज्जनोको वोहअर्थ त्याज्य है, अवगायत्रीके तृतीयपादसे अध्यात्म तत्वका निर्णय करतेहैं जिसके निर्णयसे स्वामीजी स्वीकृत चेतनका वास्तव भेद पक्ष भी खंडितहो क्योंकि औपाधिक भेदतो स्वीकृतहै

खल्वात्मनोत्मानेतामृताख्यश्चेतामन्तागन्तोत्स्रष्टानन्दयिता कर्ता वक्तारसयिता घ्राता द्रष्टा श्रोता स्पृशति च

अर्थ (अमृताख्यः खलु आत्मनः आत्मानेता) यहजो अमृताख्यप्राण है सोनिश्चयकरकै आत्माजोशरीर इन्द्रियसंघात तिसकाआत्माहै औरनेता अर्थात् सर्व संघातका प्रेरकहै यहां अमृत कहनेसे प्राणकेभीप्रेरक आत्मतत्वकाग्रहण है, प्राण उपाधिक होकर वोह आत्मनेता, औरचित्त औपाधिकचेता, और मन औपाधिक मन्ता, पद औपाधिकगन्ता, पायु उपाधिसे उत्स्रष्टा उपस्थ उपाधिसे आनन्दयिता, हस्त उपाधिसे कर्ता, वागिन्द्रिय उपाधिसे वक्ता, रसना उपाधिसे रसयिता (रसग्राही) औरघ्राणउपाधिसे घ्राता (सूंघनेहारा) चक्षुउपाधिसे द्रष्टा देखनेहारा श्रोत्र उपाधिसे सुन्नेहारा त्वगिन्द्रिय उपाधिसे (स्पृशति) छूनेवालाहोता है, चकारसे बुद्धि उपाधिसे अध्यवसिता अहंकार उपाधिसे अभिमन्ता होताहै यहजान्ना

विभुर्विग्रहेसन्निविष्टाइत्येवंह्याह अथ यत्र द्वैतीभूतंविज्ञानं तत्रहि शृणोति पश्यति जिघ्रति रसयति चैवस्पर्शयति सर्वमात्माजानीतेति यत्राद्वैतीभूतं विज्ञानं कार्य्यकारणकर्म्म निर्मुक्तं निर्वचनमनौपम्यं निरुपाख्यं किंतदवाच्यम्

अर्थ—(प्रश्न) जो पूर्व नेतृत्वादिविशिष्ट वस्तु प्राणादि उपाधि विशिष्ट कहा सो क्याहै (उत्तर) (विभुर्विग्रहे सन्निविष्ट इति एवं हि आह) विभु नाम व्यापक परमात्माही विग्रह(देह)में प्रविष्ट होकर अर्थात् लिंगशरीराभिमानी होकर प्राणादि उपाधि भेद करके नेतृत्वादि रूपसे कहा जाता है भाव यहहै सो एकही परमात्मा सर्व बुद्धिप्रेरक रूपसे उपास्यहै ऐसे वेदज्ञाता कहते हैं

आत्मेत्येवोपासीतात्रह्येतेसर्वएकंभवन्ति बृ० उ०अ० ३ब्रा०४

द्रष्टा श्रोता आदिको (आत्मा इति एव उपासीत अत्रहि एते सर्वे एकं भवन्ति) आत्मा रूप करके परमात्मासे अभिन्न जानकर उपासना कर क्योंकि इस आत्मामेंही सर्व एक होते हैं अब औपाधिक भेद और वास्तव अद्वैत पक्षको अन्वय व्यतिरेकसे दृढ करते हैं जहां द्वैतीभूत विज्ञान होताहै जाग्रदादि अवस्थामें वहां सुन्ताहै, देखताहै सूँघताहै, रस लेताहै, स्पर्श करताहै, और उपाधिविशिष्ट होकर एकही आत्मा सर्वको जान्ताहै, ऐसे उपाधिके सद्भाव कालमें भेद व्यवहार होताहै, और जब सुषुप्ति समाधिकालमें अद्वैतीभूत विज्ञान होताहै, तब कार्य अर्थात् विषय, कारण अर्थात् करणग्राम, कर्म अर्थात् क्रिया, इस्से रहित निर्विशेष उपमारहित अप्रमेय होताहै, सो वस्तु निषेध बोधक शब्दोंसेही क्यों कहते हो किसी तत् वा इदं आदि शब्दोंसे क्यों नहीं कहते यह (प्रश्न) करते हैं किंतद् इस पदसे अर्थ यह तत् सो वस्तु किं अर्थात् कैसी है (उत्तर) अवाच्यं नाम सर्वइन्द्रियव्यापारके उपराम होते जो सर्व व्यवहारका साक्षी होकर व्यवहारोपरति वा साक्षीहै सो अद्वैत विज्ञान स्वाभाविक आत्मरूप है किसी शब्दका वाच्य नहीं, इस प्रकार इस स्थानमें उपाधिके व्यतिरेकमें अद्वैत कहा, यह ब्राह्मणादि ग्रंथोंसे गायत्रीका अर्थ वर्णन किया अब इस स्थानमें यह विचारणीयहै कि दयानंदजीने जो सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६०१ में लिखाहै ११२७ वेदोंकी शाखा जो कि वेदोंके व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियोंके बनाये ग्रंथ हैं तौ गायत्री जो चतुर्वेद प्रधानहै तिसका अर्थ किसी एक व्याख्यानकी रीतिसे तौ लिखना दयानंदजीको अवश्य था, और जो ग्यारह सो सत्ताईस शाखा लिखी हैं इसमेंभी चार कमती लिखी हैं क्योंकि महाभाष्यकी रीतिसे ग्यारह सो इकतीस शाखा होतीहै तौ इन मंत्रोके व्याख्यान होनेपरभी दयानंदजीको एक व्याख्यानभी गायत्रीमंत्रके अर्थ नि-

र्णय वास्ते न मिला तौ फिर इनके कल्पित अर्थको कौन मानैगा फिर स्वामीजीने सवितृपदका व्याख्यान यह लिखाहै जो (सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् ससविता) दयानंदजी तौ अपनेको निघण्टु निरुक्तका पण्डित मान्ते हैं फिर यह विरुद्ध अर्थ क्यों लिखा क्यों कि नि० अ० ९ खं० ४ में सवितृपदका व्याख्यान यह है कि(सविता षुप्रसवैश्वर्ययोः भू० । प० । तृचि सविता सर्वकर्म्मणां वृष्टिप्रदानादिना अभ्यनुज्ञाता) षु धातु प्रसव तथा ऐश्वर्यमें है प्रसव नाम अभ्यनुज्ञानका है अर्थात् फल देने वास्ते कर्मका स्वीकार करना सो सवितादेव वृष्टिरूप फल देने वास्ते यावत् प्राणिवर्गके कर्मको स्वीकार करताहै और ऐश्वर्य नाम प्रेरणाकाहै सो सवितादेव सर्व जन्तु मात्रको कर्ममें प्रवृत्त करताहै उदय होकर वा ईश्वररूपसे सबका प्रेरकहै तब निरुक्तकारके मतमें ऐसी व्युत्पत्ति होनी चाहिये जो सुवतीति सविता और दयानंदजीने सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् ससविता यह व्युत्पत्ति करी है इस्से निरुक्त विरुद्धहै तथा षुञ् अभिषवे स्वादिगणीय धातुका प्रयोग सुनोति रखकर उत्पादयति यह अर्थ करा है सोभी पाणिनि ऋषि लिखित धात्वर्थसे विरुद्ध है क्यों कि अभिषव नाम कण्डनका है यथा सोमवल्लीका रस निकालनेमें सोमवल्लीका अभिषव अर्थात् कण्डन होताहै उत्पादन अर्थ षुञ् धातु स्वादिगणीका नहीं इस्से पाणिनीके मतसेभी दयानंदजीका यह अर्थ विरुद्धहै और देवपदकी व्युत्पत्ति करीहै यो दीव्यति दीव्यते वा-सदेवः इस व्युत्पत्तिसे तौ व्याकरणकोभी समेट धरा क्यों कि 'दिवुक्रीडा-विजगीषा व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु' दिवादिगणीय परस्मैपदि इस धातुका प्रयोग लिखा है तौ दीव्यति दिव्यते वा सदेवः उस स्थानमें धातु तौ केवल परस्मैपदि और प्रयोग आत्मने पदकाभी लिख दिया सो प्रलापहै (प्रश्न) दीव्यते यह प्रयोग कर्ममें प्रत्यय करकै लिखाहै (उत्तर) जो दयानन्दजी कर्ममें प्रत्यय करते तौ इस कर्तृपदमें तृतीया विभक्ति येन ऐसा होना योग्य था, और देवशब्दका वाच्य अर्थ प्रकाश क्रियाका कर्म जगत् जड वस्तु हो जाता, और जो कर्मकर्तृअर्थमें प्रयोग कहैं तौ भी असंगत है क्यों कि प्रथम परमात्मा प्रकाशक्रियाका कर्महो पश्चात् उसी कर्मको कर्तृत्वरूपसे विवक्षा हो तब कर्मकर्तरिप्रयोग होवै, सो परमात्मा प्रकाशक्रियाका कर्म होगा तौ पर प्रकाश्यत्वरूप जड़ताकी प्राप्ति होगी, और जो स्तुति अर्थमें दिवधातु को मानकर कर्ममें प्रत्यय करैं तौ देवशब्दका कर्तरि अर्थके प्रकरणमें पचादि गणमें पाठ होनेसे असंगतहै, इस्से दीव्यते यह प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है और अर्थ भाषामें (सब सुखोंका देनेहारा लिखा है) विचारना चाहिये कि क्रीडा-किसी बाह्य साधनमें विलास विजिगीषा जीतनेकी इच्छा व्यवहार-क्रयविक्रय करना द्युति-प्रकाश स्तुति-स्तवन क्रिया मोद-आनंद होना मद-अहंकार करना स्वप्न-शयन- क्रिया कान्ति-इच्छा गति-

ज्ञान गमन वा प्राप्ति इतने अर्थ तो पाणिनीजीने इसके स्पष्ट लिख दिये हैं, परन्तु द-यानन्दजीने टोटा समझ सुखदानभी इस धातुका अर्थ और कल्पना कर लिया, क्या पाणिनिऋषिके अर्थोंसे आपका निर्वाह नहीं होताहै, परन्तु मनमाना अर्थ तौ नहीं निकलता इस्से दयानंदजीने नये अर्थकी कल्पना करी है गायत्रीप्रकरण पूर्ण हुआ.

अथ आचमनप्रकरणम्

स० पृ० ४९ पं० ७ आचमनसे कंठस्थ कफ और पित्तकी निवृत्ति थोडीसी हो-तीहै मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुलीके अग्रभागसे नेत्रादि अंगोंपर जल छिडकै इस्से आलस्य दूर होताहै और जलप्राप्ति नहो तौ न करै ॥

समीक्षा—यदि आचमन करना कफ पित्तकी शान्तिके लिये है तौ क्या सवही लो-ग संध्याकालमें कफपित्तग्रसित रहते हैं, और सबको आलस्य और निद्राही दवाये रहती है वोह समय निद्राका कदापि नहीं और जलसे कफकी शान्ति नहीं किन्तु वृद्धि होती है, आचमन करना यदि कफ पित्तकी शांतिके लिये है तौ हाथमें जल लेकर गायत्री और ब्रह्मतीर्थहीसे आचमन करनेकी क्या आवश्यकताहै, क्या कोई आलस्य और कफने प्रतिज्ञापत्र लिख दियाहै कि संध्यासमय हम सब संस्कार कर्त्ता तथा सध्या करनेवालोंके कंठमें फेरा करैंगे यदि मार्जनका प्रयोजन आलस्यही दूर करनेका होय तौ एक चुटकी हुलासन सूंघलिया करैं, अथवा चाह या काफी पीलैं जो पहरोंको काफी हो, नहीं सर्वोत्तम उपाय यह है कि ऐमोनिया कीसीसी सूंघलैं जिससे मूर्च्छातक भंग होजाय, आलस्यकी तौ वातही क्याहै और स्नान करकेही प्रा-तःकाळ संध्या करते हैं फिर स्नान करतेही आलस्य आगया तौ मार्जनसे कैसे जा सक्ताहै इस्से स्वामीजीका यह कथन सर्वथा मिथ्याही है, मनुजी आचमनकी विधि इस प्रकार लिखते हैं कि आचमन करनेसे आभ्यन्तर शुद्धि होतीहै तथाहि अध्याय २

ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् ॥
कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ५८
अंगुष्ठमूलस्य तलेब्राह्मंतीर्थं प्रचक्षते ॥
कायमंगुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ५९
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम् ॥
खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिरएवच ६०
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् ॥
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदेकान्तेप्रागुदङ्मुखः ६१

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभि स्तुभूमिपः ॥
वैश्योद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ६२

अर्थ–ब्राह्मण ब्राह्मतीर्थसे सदा आचमनकरै अथवादेवतीर्थसे आचमनकरै परन्तु पितृतीर्थसे आचमन नकरै क्योंकि उसकी विधि नही है अंगुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ कहते हैं और कनिष्ठिका अंगुलीके मूलमें कायतीर्थ और उसीके अग्रभागमें दैवतीर्थ तथा अंगुष्ठ प्रदेशिनीके मध्यमें पितृतीर्थ कहतेहैं ५९ प्रथम जलसै तीन आचमनकरै अनन्तर दोवार मुखको जलसे स्पर्शकर ज्ञानेन्द्रियको शिरको हृदयको जलसे स्पर्शकरै ६० फेनरहित शीतलजलसे पवित्रहोनेकी इच्छाकरनेवाला एकान्त और पवित्र भूमिमें पूर्व या उत्तरमुख होकर आचमनकरै ६१ वोह आचमनका जल हृदयमें पहुंचनेसे ब्राह्मण पवित्र होताहै, कंठमें प्राप्तहोनेसे क्षत्री, मुखमें पहुंचनेसे वैश्य, तथा स्पर्श मात्र से शूद्र पवित्र होते हैं ६२ क्यास्वामीजी इन श्लोकौंको मनुमें देखते २ ऊंघगयेथे भलाजो संध्याकरनेको बैठेगा वोह दौनो समय नहींतौ एकसमय निश्चयही स्नान करैगा परआपके चेले तौ कोट पतलूनही पहरकर करैंगे फिर आपने मनसा परिक्रमा करनीलिखी सोकाहेकीपरिक्रमाकरै? आपकी या सत्यार्थप्रकाशकी परमेश्वरकोतौ आप निराकारमान्तेहो उसकी परिक्रमाकैसी जब मनने उसकी परिक्रमाकरली तौ उसका महत्वजातारहा और परमेश्वर निराकारकीहीसीमा होगई, फिरजलतौ कफनिवृत्तिके अर्थ है आप (अपांसमीपे) इसश्लोकसे जलके धोरे बैठकर गायत्रीका जपलिखतेहैं परन्तु जिसे कफने घेराहो वोहतो आपके मतानुसार कोठी बंगले या ऊसरमें बैठकर जप करै

पृ० ४१ पं० २० अग्निहोत्र औरसंध्या दोही कालमें करै दोही रात दिनकी संधिवेलाहैं अन्यनहीं

समीक्षा–यह तौ स्वामीजीने खूबहीकही दोकालसे अधिक ईश्वरकानामलैनाक्या कोई पापहै तपस्वीतौ वर्षोंनिरन्तर परमात्माका ध्यानकरते रहेहैं इस्से दोही कालमें उसका अर्चनवन्दनकरै यह कहनाठीकनहीं परमेश्वरका नामलैनासर्वथा श्रेयस्कारक है इस्से त्रिकाल संध्याकरना किसी प्रकारहानिकारकनहीं किन्तु लाभहीदायकहै

पृ०४२पं०१५स्वाहाशब्दकाअर्थ यहहै कि जैसा ज्ञान आत्मामेंहो वैसाहीजीभसेबोले ।

समीक्षा–यह स्वाहाशब्दकाअर्थकौनसे निघण्टु निरुक्तसे निकाला भला ऊपरजो आपने लिखाहै कि प्राणाय स्वाहा तौ इसका यह अर्थहुआकि प्राण अर्थात् परमेश्वर के अर्थ जैसा ज्ञान आत्मामें होवै वैसा बोले भला यहक्या वातहुई इस्से हवनकी कौनसी कला सिद्धहोतीहै, सुनिये स्वाहा अव्यय है, जिसके अर्थ हवित्यागनकरनेके हैं जो देव

ताके उद्देशसे अग्निमें हवि दियाजाताहै उसमें स्वाहाशब्दका प्रयोग होताहै जैसे "प्राणाय स्वाहा" प्राणोंके अर्थ हविदिया वा प्राणोंके अर्थश्रेष्ठ होमहो

पृ० ४२ पं० १९ सबलोग जान्ते हैं कि दुर्गंधियुक्तवायु औरजलसे रोग और रोगसे प्राणियोंको दुःख और सुगंधित वायु तथा जलसे आरोग्य और रोगके नष्ट होनेसे सुखप्राप्त होताहै और पृ० ४३ पं० ९ में लिखाहै कि मंत्रमें यह व्याख्यानहैं कि जिस्से होमकरनेके लाभ विदित्त होजांय और मंत्रौंकी आवृत्ति हौनेसे कंठस्थरहै पृ० ४२ पं०१४ गायत्रीमंत्रसे आहुतिदेवै तथा (विश्वानि०) इसमंत्रसे होमकरै ।

समीक्षा प्रथमतौ अग्निहोत्रकी विधिही वेदविरुद्ध, लिखीगई है दूसरे यज्ञपात्रौंकी आकृतियां सब मनःकल्पित लिखदी हैं, वेदमें कहीं इनकी ऐसी रचनानहीं हैं तीसरे अग्निहोत्रका प्रयोजनजो जलवायुकी शुद्धि हौना सिद्धान्त कियाहै सो यहभी शास्त्रऔर युक्ति दौनोंके विरुद्धहै, यदिस्वर्ग फलनहोकर अग्निहोत्र घी जलाकर जलवायुकी शुद्धिकेनिमित्तहै, तौ इन पांच आहुतियोंसे क्याहोगा, किसीघीके आढतियेंकीदुकानमें आगलगा दैनीचाहिये, जोसैंकडोंमन घीजलकर खूबजलवायुकी शुद्धिहोकर अनेकलोकोपकारहो जांय, पदार्थविद्याको जान्नेवाले पंडित लोगइसबातको जान्ते हैं, किजलवायुकी शुद्धितौ परमेश्वरके प्राकृतिक नियमसेही होतीरहतीहै, सूर्यकी आकर्षणशक्ति जलकी तरलता और वनमें अनेक सुगन्धि पुष्प औषधियोंका उत्पन्न हौना वायुकी प्रसरण शक्ति सुगंधितपुष्पादिकौकेपरमाणुओंका वायुमें मिलना ऋतुका परिवर्तन इनसब कारणोंसे जलवायुकी शुद्धिहोती हैं, औरयदि जलवायुकी शुद्धिपरही तात्पर्य्यहोतौ ऐसा उपाय नकरैं कि कमखर्च और बालानशीन गंधककी धूनी दियाकरैं जिस्से डाक्तरलोग (हैंजे) तककी वायु शुद्ध करलेते हैं, और जलकी शुद्धिको दमडीकी फटकरी वानिर्मलीके बीजठीकहैं, और देखो गायत्रीमें स्वाहा लगाकर होमकरनाभी लिखाहै, भलाइसमें कौनसे अग्निहोत्रके लाभका अर्थहै (अर्थ इसका पूर्व प्रकाश करचुकेहैं) अग्निहोत्रका अर्थतौ हैनहीं पर घी फूंके जाइये प्रथम इस्से स्वामीजीने चुटिया बंधवाई फिर रक्षा की फिर जपकिया, अबघी फूंका, एकगायत्रीहीसे कितनेकाम लियेहैं, आगेजब और विद्याकी उन्नति होगी तबइसमें इंजन लगाकररेलचलावैंगे, और पंख लगाकर बेलून उडावैंगे, जब हवनसे वायुकी शुद्धि मात्र होतीहै, तौ प्रातःसंध्याकानियम वृथाहै फिरतौचाहैं जब आगमेंघीडालदैं और उसके लियेस्नानादिककी कुछ आवश्यकतानहींचाहैं जबचूल्हेवा भट्टीमें घृत झोकदैं, फिरक्यों इकतालिस ४१ व्यालीस ४२ पृष्ठमें चमचा थाली प्रोक्षणीपात्रादिकाविधानलिखा केवल पली भर २ कै डाल दैना लिखदेते, और मंत्र पढनेसे होमकेलाभ विदित्त होते हैं यहभी आपका कथन मिथ्याहीहै भलाआपने जो गायत्री मंत्र और (विश्वानिदेव), इनदोमंत्रोंसे हवनकरना लिखाहै इनमंत्रौंसे कौनसाहवनका लाभ प्रतीतहोताहै फिरआप लिखतेहैं कि इसप्रकार करने-

से मंत्र कंठरहेंगे ठीकहै जवमंत्र कंठ करनाही इष्टहै तौ यादकरनेवाले विनाही हवनके किये परिश्रम कर कंठकरसक्ते हैं और जव मंत्रकंठकरनेहीका लाभ है तौ स्वाहा लगानेकी फिरक्या आवश्यकताहै चाहे जहांके मंत्र पढदिये फिर नियतमंत्रसे आहुतिदेनी यह क्यों लिखाहै इस्से यह कहना स्वामीजीका ठीकनहीं कि केवल जलवायु की शुद्धि होती है, हवनसे स्वर्गलोककीभी प्राप्तिहोतीहै यथा यजुर्वेदे

अयन्नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयम्मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् अयं वाजाञ्जयतु वाजसाता वयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥

अ० ५ मं० ३७ यजु०

अर्थ—यह अग्नि हमारे धनको संपादन करो यह अग्नि संग्रामोंको विदीर्ण करताआगे आओ यह अन्न विभाग निमित्त अन्नोंको हमें देनेके लिये शत्रुओंको जीतो उसके लिये श्रेष्ठ होमहो अग्निही यहहवि देवताओंकेपास पहुंचाताहै और यजमानका कल्याण करताहै यथा।

सीद होतः स्वउ लोकेचिकित्वान्त्सादयायज्ञꣳसुकृतस्ययोनौ देवावीर्देवान्हविषायजास्यग्ने बृहद्यजमानेवयोधाः॥यजु.अ०११मं.३५

भावार्थ—हे देवताओंका आह्वान करनेवाले अग्निसव कुछ जान्नेवाले तुम अपने लोकमें ठहरो और और श्रेष्ठकर्म यज्ञके स्थान कृष्णाजिनपरही यज्ञको स्थापन करो हे अग्नि जिसकारण देवताओंके तृप्ति करनेवाले तुम हव्यसे देवताओंको पूजतेहो इसीकारण यजमानमें बड़ी आयु और अन्नको धारण करो ।

सꣳसीदस्वमहाꣳ असि शोचस्व देववीतमः विधूममग्ने अरुषम्मियेद्ध्यसृजप्रशस्तदर्शतम् ॥ अ० ११ मं० ३७

हे यज्ञके योग्य उत्कृष्ट अग्नि देवताओंके अत्यन्त तृप्त करनेवाले तुम महान् हो पुष्करपर्णपर भले प्रकार बैठो प्रदीप्तहो दर्शनयोग्य शान्तरूप धूम्रको छोड़ो ३७

इसी प्रकार सामवेदमेंभी अग्निको देवताओंका दूत लिखाहै इत्यादि वेदोंमे अनेक प्रकारसे अग्निकी स्तुति परलोक प्राप्त्यर्थ लिखीहै अवजो मनुजी हवनके लाभ कहतेहैं सो श्रवण कीजिये ।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु०

सब विद्या पढनपढाने व्रतोंके करने हवनकरने तीनवेदोंके पढने यज्ञादिके करनेसे

यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य होताहै मुक्तिके साधनमें मनुजीने हवनभी लिखाहै अब लौकिक लाभ सुनिये

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः अ० ३ श्लो० ७६
जपो हुतोहुतो होमः प्रहुतो भौतिको वलिः
ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् ७४
स्वाध्याये नित्ययुक्तःस्याद्दैवे चैवे ह कर्मणि ॥
दैवकर्मणि युक्तो हि बिभर्तीदं चराचरम् ७५

यजमान करकै अग्निमें डाली आहुति सूर्यको पहुंचतीहै सूर्यसे अच्छी वृष्टि समयपर होती है वृष्टिसे अन्न और अन्नसे प्रजा होतीहै ७६ अहुत अर्थात् जप हुत हवन प्रहुत अर्थात् भूतवलि ब्राह्म्य हुत श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा प्राशित श्राद्ध पितृतर्पण ७४ वेदाध्ययनमें सर्वदा युक्त होकर और अग्निहोत्रमेंभी सर्वदा युक्त होय तौ यह संपूर्ण जगतको धारण करताहै ७५

पूर्वांसंध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति
पश्चिमांतु समासीनोमलं हन्तिदिवाकृतम् ॥ मनु० ।

प्रातःकालकी संध्या करनेसे रात्रिका संध्याकालकी संध्याकरनेसे दिनका किया पाप दूर होताहै इसी प्रकार हवनसे भी पाप दूर होताहै क्योंकि वेदमंत्र पापक्षयकारक होते हैं और जिनकी विधिहै वोही हवनमें उच्चारण किये जाते हैं इस्से यह सिद्ध हुआ कि हवनकरनेसे पाप निवृत्त होता और पुण्य होताहै.

वेदे शूद्राऽनधिकारप्रकरणम्

प्रथमतौ वोह वार्ता लिखतेहैं जो शूद्रके विषयमें स्वामीजी मान चुके हैं ॥

स०पृ०४३पं० १२ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नंमंत्रवर्जम नुपनीयमध्यापयेदित्येके सुश्रुत.

अर्थ–और जो कुलीन शुभलक्षण युक्त शूद्र होतौ उसको मंत्रसंहिता छोड़कै सब शास्त्रपढावे यह मत किन्ही आचार्योंकाहै (सुश्रुतका मत यह नहीं हैं) और

स० पृ० ३४ शूद्रादिवर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यासके लिये गुरुकुलमें भेजदैं ।

स० पृ० ७५ पं०२ और जहां कहीं निषेधहै उसका यह अभिप्रायहै कि जिसको पढने पढानेसे कुछभी न अवै वोह निर्बुद्धि और मूर्ख होनेसे शूद्र कहाता है उसका पढना पढाना व्यर्थहै

समीक्षा इतने स्थानोमेंतौ स्वामीजीने यह माना कि शूद्रको यज्ञोपवीत न देना चाहिये और यहभी कहाकि मंत्रसंहिता छोड़कर और सबकुछ पढाना और फिर कहाके

जो मूर्खहो जिसे पढायेसे कुछ न आवै वोह शूद्रहै उसका पढना पढाना व्यर्थहै जब शूद्र मूर्खकोही कहते हैं जिसे पढायेसे कुछ न आवै तो फिर भला स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें शूद्रको वेद पढनेका अधिकार दे दिया यथा

स० प्र० पृ० ७४ पं०२ क्या स्त्री शूद्रभी वेद पढें जो यह पढैंगे तो फिर हम क्या करैंगे और फिर इनके पढनेका प्रमाणभी नहींहै जैसा यह निषेधहै कि स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामितिश्रुतेः

स्त्री और शूद्र न पढैं यह श्रुति है (उत्तर) सबस्त्री और मनुष्यमात्रको पढनेका अधिकारहै तुम कुआमें पड़ो और यह तुह्मारी श्रुति कपोलकल्पनासे हुईहै किसी प्रामाणीक ग्रंथकी नहीं और सबमनुष्योंको वेदादि शास्त्र पढने सुन्नेका अधिकारहै यजुर्वेद के २६में अध्यायका दूसरा मंत्रहै

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानीजनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्या॑ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।

परमेश्वर कहताहैंकि (यथा) जैसेमैं (जनेभ्यः)सबमनुष्योंके लिये (इमाम्)इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुखको देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारोंवेदोंकी वाणीको (आवदानि) उपदेश करताहूं वैसे तुमभी किया करो ॥ परमेश्वर कहताहै कि हमने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्रियादि और अतिशूद्रादिकौंकोंभी वेदोंका प्रकाश कियाहै, कहिये अब तुह्मारी बात माने या परमेश्वरकी, क्या ईश्वर पक्षपाती है यदि वोह पढाना न चाहतातौ इनके वाक् और श्रोत्र इन्द्रियोंको क्यों बनाता, वेदमें कन्याओंका पढाना लिखाहै पृ०९५पं०७

ब्रह्मचर्येणकन्यायुवानंविन्दते पतिम् ॥ अथर्व०

कुमारी ब्रह्मचर्य सेवनसे वेदादि शास्त्रोंको पढ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षाको प्राप्तयुवती होके पूर्ण युवावस्थामें अपने सदृश प्रिय विद्वान् पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुषको प्राप्तहोवै (प्रश्न) क्या स्त्रीलोगभी वेदोंको पढें (उत्तर) अवश्य देखो श्रौत सूत्रादिमें इमं मंत्रं पत्नी पठेत् स्त्रीयज्ञमें इसमंत्रको पढै जो वेदादि शास्त्रोंको पढी न होंतौ उच्चारण कैसे करसकैं

समीक्षा—प्रथमतौ स्वामीजी लिख चुके कि शूद्र मंत्रभाग न पढै, और अब लिखतेहैं कि पढै और तुम कुआमें पडो यह दुर्वचन नहींतौ और क्या हैं तुह्मारीही पुस्तक और तुमही प्रश्न कर्त्ता इस्से तुमही कुएमें गिरे संसाररूपी कूपमें गिरानेको आपके वाक्य निश्चय प्रबल हैं, जब शूद्र महामूर्खकोही कहतेहैं कि जिसै पढानेसे कुछ न आवै फिर जब पढानेसे कुछ न आवै तौ उसे वेद पढाना कैसा और जब आप जाति कर्मानुसार मान्तेहैं तौभी वेद पढा हुआ शूद्र नहीं हो सक्ता वोह तौ उच्चवर्ण होजायगा, फिरभी

मूर्ख वेपढाही शूद्रसंज्ञक रहा इस्से आपके वचनसेभी शूद्र वेद पढा नहीं हो सक्ता अ-व व्याससूत्र सुनिये

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ अ० १ पा० ३ सू० ३६

विद्या पढनेके लिये उपनयनादि संस्कार सुन्नेसे शूद्र वेदविद्या पढनेका अधिकारी नहींहै।

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ शा० अ० १ पा० ३ सूत्र० ३८ शूद्रको वेद-का अधिकार नहींहै क्योंकि श्रवण अध्ययनवास्ते निषेध होनेसे स्मृतिमें ऐसा लिखाहै।

वेदप्रदानाच्चाचार्यंपितरंपरिचक्षते
नह्यस्मिन् युज्यते कर्म किंचिदामौञ्जिबंधनात् । १७१
नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानियमनादृते
शूद्रेणहिसमस्तावद्यावद्वेदेनजायते १७२ अ० २

मौञ्जीबंधनसे पूर्ववेदका उच्चारण न करै और श्राद्धादिकोंमें जो वेदोक्त मंत्रहैं उन-काभी उच्चारण न करै जवतक वेद पढनेका अधिकार नहीं हुआ तवतक शूद्रके तु-ल्यहै वेदके प्रदानसे आचार्यको पिता कहतेहैं १७१-१७२ अव आगे शूद्रका उपन-यन नही होता यह दिखातेहैं

नशूद्रेपातकं किंचिन्नचसंस्कारमर्हति
नास्याधिकारोधर्मेस्तिनधर्मात्प्रतिषेधनम् १२६
यथायथाहिसद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः
तथातथेमंचामुंचलोकं प्राप्नोत्यनिंदितः १२८
धर्मेप्सवस्तुधर्मज्ञाः सतांवृत्तमनुष्ठिताः
मंत्रवर्जं नदुष्यन्तिप्रशंसांप्राप्नुवंतिच १२७ अ० १०

शूद्रको कोई पातक नहींहै और न कोई संस्कार योग्यहै और न कोई वैदिक धर्ममें इसको अधिकारहै और कहे हुए धर्म करनेका निषेध नहीं है १२६

निंदाको न करनेवाला शूद्र जैसा२अच्छे पुरुषोंके आचरणोंको करताहै वैसा २ इ-सलोक तथा परलोकमें उत्कृष्टताको प्राप्त होताहै १२८ धर्मकी इच्छावाले तथा धर्मको जान्नेवाले शूद्र मंत्रसे रहितहोकरभी सत्पुरुषोंके आचरण करतें हुए दोषोंको नहीं प्राप्त होते किन्तु प्रशंसाको प्राप्त होतेहैं १२९ अब वेद मंत्रका अर्थ सुनिये (यथेमां) इस-में प्रसंग देखना योग्यहै सोइस्से पहला यह मंत्रहै इस मंत्रमें इमाम् इदम् शब्दसे प्रयोगहै

अ॒ग्निश्चं पृ॒थिवी॒च सन्न॑ते॒ते॒भसन्न॑मता म॒दो॒वा॒यु॒श्चा॒न्त॒रि॑क्षं

चसन्नंतेतेमेसन्नंमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नंतेतेमे सन्नंम
तामद आपश्च वरुणश्च सन्नंतेतेमे सन्नंमतामदः सप्तसꣳ
सदोअष्टमीभूतसाधनीसकामाँ २ ॥ अध्वंनस्कुरुसंज्ञानं
मस्तुमेऽमुना १

भावार्थः—अग्नि और पृथ्वी वायु और अन्तरिक्ष आदित्य और द्यौ आप और वरुण यह अग्नि पृथ्वीआदि आठ दोदो संनत अर्थात् परस्पर संवद्धहैं वे सब मेरे अमुक कामको संनमता नाम वश करो तथा हे सर्वाधिष्ठान परमात्मन् तुह्मारे पंचज्ञानेन्द्रिय और मनोबुद्धि यह सप्त संसद नाम आश्रयहैं, तथा अष्टमी भूतसाधनी अर्थात् सब भूतोंको वश करनेवाली वाणी आपका आश्रय है, मेरे मार्गोंकी कामनासहित करो और इष्ट देवसे मेरा संयोग हो अब इसके अनन्तर यह मंत्रहै

यथेमांवाचंकल्याणीमावदानिजनेभ्यः ब्रह्मराजन्या
भ्याꣳशूद्रायचार्य्यायचस्वायचारणाय प्रियोदेवानां
दक्षिणायैदातुरिहभूयासमयंमेकामः समृध्यतामुप
मादोनमतु ॥ य० अ०२६मं०२

पूर्व मंत्रमें स्थित भूतसाधनी वाणीका अध्याहार होताहे तब इसका यह अर्थ होताहै कि यज्ञके अन्तमें यजमान अपने भृत्योंसे कहताहै (दक्षिणायै यथेमां भूतसाधनीं कल्याणीं वाचं जनेभ्यः आवदानि तथा त्वं कुरु इति शेषः ।भाव यहहै कि (दक्षिणायै) दानके देनेको जनोंको अर्थ (इमां भूतसाधनीं कल्याणीं वाचं) भूतोंको वश करनेवाली कल्याणी (शोभन) वाणीको दीयतां भुज्यतां इत्यादि रूपसे जैसे मैं कहताहूं तैसे तुम करो किन जनोके लिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र (अरण) पराये (स्वाय) अपनोंके अर्थ भाव यह है सबको प्रियवचनपूर्वक दान देना ऐसे करनेसे देवताओंका तथा (दातुः) परमेश्वरका मैं प्रिय हूंगा इस संसारमें यह मेरा कार्य धनादि लाभरूप समृद्धिको प्राप्तहो और(अदः)परलोकसुख (उपनमतु) प्राप्तहो

यदि दयानंदजीकाही अर्थ माना जाय तौ परमेश्वरकी वाणीभी मान्नी होगी जव वाणी हुई तौ शरीरभी होगा और वेदाविर्भाव प्रसंगभी स्वामीजीका स्वामीजीकेही लेखसे भ्रष्ट होजायगा क्यों कि जव इस मंत्र उपदेशवत् अग्निआदिको उपदेश कर सक्ते थे तौ उनके अन्तर्वेदका प्रादुर्भाव हौना असंगतहै इस्से शूद्रको वेदपठन पाठनका उपदेश

करना अशुचिमें शुचि बुद्धिरूप अविद्या है और प्रथम तो यहां स्वामीजीसे यह पू-छना है कि यह ब्राह्मणादिशब्द मंत्रमें जातिके बोधक है अथवा जोकि तुमने प-च्चीसवें वर्षमें परीक्षासे नियत करी है यह ब्राह्मणादि जाति उसके बोधकहे, जैसा आ-पने ८८ पृष्टमें मानाहै यदि प्रथम पक्ष कहोगे तौ ब्राह्मणत्वादि जाति सिद्ध होगई तौ तौ आपकी स्वकपोलकल्पित वर्णव्यवस्थाहै सो दत्तजलांजलि होगई, और यहभी विचारना चाहिये कि यह उपदेश आदिमें हौना चाहिये वा अन्तमें हौना चाहिये म-ध्यमें कैसे होसक्ता है क्यों कि (इमाम्) यह शब्द प्रयोग समीपवस्तुका बोधकहै सो अभीतक चतुर्वेद विद्या समीपहै नहीं वक्ष्यमाणाहै और यदि गुणकृत वर्णव्यव-स्थाको मानकर मंत्रमें ब्राह्मणादिशब्द कहैंगे तब ब्राह्मणत्वादि शून्यमें ब्राह्मणादि शब्द प्रयोग करनेसे ईश्वर भ्रान्त होगा,क्योंकि तुह्मारे सिद्धान्तमें पूर्ण तौ विद्वान् ब्राह्मणहै सो अभीतक हुआ नहीं और जो पूर्ण विद्वान् है तिसको वेदविद्या उपदेशरूप ईश्व-रकी आज्ञा निष्फलहै ओर शूद्रशब्द तमोगुण विशिष्टकावाचकहै तिसकोभी वेदवि-द्या उपदेशकी आज्ञा निष्फल है, और अरण शब्दार्थ जो अतिशूद्रहै तिसमें तौ सर्व-था उपदेश निष्फलहै, जैसे ऊषरमें बीज बौना तैसे शूद्र और अतिशूद्रमें उपदेश नि-ष्फलहै, और जब जातिही ब्राह्मणादिकोंकी लिख दीतौ फिर (स्वाय अपने भृत्योंको) यह शब्द प्रयोग निष्फलही हो जायगा क्या वे भृत्य चार वर्णोंसे पृथक् हैं इस का-रण शूद्रको वेदका अधिकार कदापि नहीं औरभी सुनिये

विद्याहवैब्राह्मणमाजगाम गोपायमा शेवधिष्टेऽहमस्मि असूय कायानृजवेऽयतायनमाब्रूयावीर्यवतीतथास्याम्॥नि०अ०२पा०२

अर्थ–विद्या अधिदेवता कामरूपिणी होकर नियमित वेद वेदाङ्गके जान्नेवाले ब्रा-ह्मणके पास आकर बोली (गोपाय माम्) मेरी रक्षा कर (अहम्) में रक्षित हुई हुई (शेवधिः) सुखनिधान हूंगी किनसे रक्षा करनी चाहिये (असूयकायानृजवेऽयताय) (असूयकः) पराया अपवाद निन्दा करनेवाले (अनृजुः) जिसकी मन वाणी देह-की असमान वृत्तिहों (अयतः) विप्रकीर्णेन्द्रियः जिसकी इन्द्रीकाया शुद्ध नहो ऐसे पुरुषसे मुझे मत्त कहो ऐसा करनेसे मै वीर्यवती हूंगी स्वामीजी लिखते हैं कि चाण्डाल-तकको वेदविद्या पढा दो यह ऋग्वेदका मंत्र निरुक्त भाष्ययुक्त कौनसे चूरणके साथ गड़ापगये इससे नीचको कुटिल शूद्रोंकोकदापि विद्या नहीं दैनी इसी प्रकार स्त्रियोंको वेदादि पढनेमें अधिकार दियाहै और (ब्रह्मचर्येणकन्या) इस मंत्रका अर्थ उल्टा लिखाहै और इसमें स्त्रियोंको वेद पढना नहीं लिखा और जो चाहै सो पढै केवल स्त्रीशूद्रको मंत्रभागका पढना मने कियाहै और वेदवाक्यका अर्थ यहहै कि (ब्र-ह्मचर्येणयुवानंपतिंकन्याविन्दते) यह अन्वय हुआ अर्थात् ब्रह्मचर्यसे जवान हुए प-तिको कन्या प्राप्त होवे और (इमं मंत्रं पत्नी पठेत्) इसकी व्यवस्था इस प्रकारहै कि

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारोवैदिकःस्मृतः
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोग्निपरिक्रिया ॥ मनुः।

विवाहमें वेदमंत्रसे संस्कार होताहै यही स्त्रियोंको यज्ञोपवीत है, पतिसेवा करनी यही गुरुकुलका वासहै, गृहका कामकाज करना अग्निकी सेवाहै, पतिके सन्निधिमें विवाहमें संस्कारके अर्थ मंत्र बोलनेकी विधिहै, कुछ पढनेकी विधि नहींहै, गार्गीआदि स्त्रियें मंत्रभागको छोड़ और सब कुछ पढींथी, इस्से स्त्रीशूद्रको वेद न पढाना औरभी सुनिये

योनधीत्यद्विजोवेदमन्यत्रकुरुतेश्रमम्
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छतिसान्वयः ॥ मनुः

जो ब्राह्मण वेदको छोड और विद्याओंमें परिश्रम करताहै वो जीते हुएही शूद्रइपनेकू वंशसहित प्राप्त होजाताहै अब विचारनेकी बात है जबकि वेद नहीं पढनेसे शूद्रपना प्राप्त होताहै तौ शूद्र कैसे वेदपढसकते है, क्यों कि जो ब्राह्मणभी वेद न पढे तौ शूद्रसरीका होजाय जब शूद्र वेद पढै तौ वोह शूद्र कैसा तीन वर्ण तौ वेद विनापढे शूद्रसरीके होजाते हैं, आपउन्ही अवैदिक शूद्रोंको वेदका अधिकार देते हो, धन्य है आपकी बुद्धि मालूम होताहै कि किसी शूद्रने कुछ झुकादिया है नहीं तौ शूद्रोंकी ऐसी तरफदारी न करते, कि पूर्व तौ अधिकारनहीं यहां लिखदिया और शूद्रको वेदमें अनधिकारहोनेसे ईश्वरमें पक्षपातका दोषनहीं आसक्ता क्योंकि उसके कर्मही जब अनधिकार और शूद्रपनेके थे तबतौ उसका कल्याण उसशरीरकेही धर्मसेहै इस्से कर्मानुसार सुख दुःख ब्राह्मणशूद्रादि होनेसे अपने २ कार्य धर्मके सबपृथक् पृथक् अधिकारी हैं यदि दोष देते होतौ ईश्वर धन संतानभी सबको बराबर देता इसका विशेष वर्णन फिर जातिप्रकरणमें लिखेंगे

स०पृ०९०पं०१० अनेनक्रमयोगेनसंस्कृतात्माद्विजः शनैः
गुरौवसन्संचिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकंतपः

इसी प्रकार कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे धीरे वेदार्थके ज्ञानरूप उत्तम तपको बढाते जांय

समीक्षा–इसश्लोकमें स्वामीजीने कुमारी ब्रह्मचारिणी यहअर्थ कौनसे पदसे उद्धृत कियाहैसो नहीं विदित होता, और उपनयनका सम्बन्धभी शायद कन्याके साथ लगाया होगा क्यों कि विनाउपनयनके वेद नहीं पढायाजाता, दयानंदजीके मतमें कन्याकाभी उपनयन लिखाहै धन्यहै (संस्कृतात्मा द्विजः शनैः) इसमें द्विजशब्दसे केवल ब्रह्मचारीहीका ग्रहण होता है कन्याका नहीं और वेद कन्याको न पढाना यह पूर्वही लिखचुकेहैं इति

सृष्टिक्रमप्रकरणम्

स० पृ०९४पं०९४ जोजो सृष्टिक्रमसे विरुद्ध है वोह सब असत्यहै जैसा विनामाता पिताके योगसे पुत्रका होना तथा १२ पंक्तिमें जो ईश्वरके गुणकर्म स्वभाव और वेदके अनुकूलही वोह सव सत्य और उसके विरुद्ध असत्यहै

समीक्षा–नजाने स्वामीजी स्वप्नावस्थामें कभी महम्मद साहबकी तरह ईश्वरके पास होआयेथे जो उसने इन्हे सारी सृष्टिका क्रम उपदेश करादिया जिस्से इन्हे यह वात निर्भ्रान्त मालूम होगईहै कि ईश्वरकी सृष्टिका विषय इतनाही है वेदमें तौ ऐसा लिखाहै कि

एतावानस्यमहिमा यतोज्यायांश्चपूरुषः पादोस्यविश्वाभूतानित्रिपादस्यामृतंदिवि ॥ यजु० अ० ३१ मं०३

ईश्वरकी विभूति इतनीही है यह नहीं किन्तु इस्सेभी अधिकहै यह जो कुछ विश्व जीवों सहितहै यह उसकी महिमाका एक भागहै और शेष तीन भागमें प्रकाशमान मोक्ष स्वरूप आपहै, और ब्राह्मणवाक्यभी कहते हैं (नाहं विदाथ नतं विदाथ) हे मैत्रेयी में कौनहूं तूनहीं जान्ती सो कौनहै यहभी तू नहीं जान्ती औरगीतामेंभी लिखा है कि (बुद्धेः परस्तु सः) कि वोह परमेश्वर बुद्धिसे परेहै जववोह बुद्धिसे परे हैतौ उसके कार्य पूर्णतासे कोन जानसकताहै पर स्वामीजीतौ शरीररहतेभी सृष्टिका क्रम सब उस्से पूछिआये क्योंजी

तस्माद्श्वाअजायन्तयेकेचोभयादतः ॥ गावोहजज्ञिरेतस्मात्तस्माज्जाताअजावयः यजु० अ० ३१ मंत्र ८

उस परमेश्वरसे अश्व औरजो कोई दूसरे पशु ऊपरनीचेके दांतवाले हैं उत्पन्नहुए उस्से गौबैल उत्पन्न हुए उस्से भेड वकरी उत्पन्न हुई

अव स्वामीजी बतावैं किआपतौ उत्पत्ति स्त्रीपुरुषके योगसे मान्ते हैं यह घोडे बैल भेडबकरी कैसे उत्पन्नहुए औरभी सुनिये

(यतोजातः प्रजापतिः) यजु०

जिस परमेश्वरसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जब आप स्त्रीपुरुषकेयोगसे उत्पत्ति मान्ते हैं तौ आपने ईश्वरकीभी लुगाई वनाई होंगी जिस्से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और घोडे आदिके उत्पन्न करनेकोभी स्त्रियें होनी चाहियें, फिर वे ईश्वरकी स्त्रियें कहांसे आई यह प्रश्न होगा इस्से यह आपका कपोलकल्पित सृष्टिक्रम सब भ्रष्ट हुआ जाताहै धन्य है उसकी महिमाकी जान्नेकी कहां सामर्थ्यहै वोह सबकुछ करताहै उसे कोई जाननहीं सक्ता क्योंकि (परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते) उसकी पराशक्ति अनेक प्रकारकी सु-

नी जातीहै अवभी कभी २ ऐसे आश्चर्य प्रतीत होतेहैं जो कभी पूर्व नहीं हुए सृष्टिक्रमसे दूररहै स्वामीजीको अपनीभी खबर नहीं है यदि खबर होतीतो आप कहीं कुछ कहीं कुछ यह विरुद्धतासे भराहुआ सत्यार्थप्रकाश न लिखते, तथा पहला सत्यार्थप्रकाशभी भ्रष्टहो जानेसे आपको वोह अप्रमाण कर नयागढना न पडता, जोकि यहां आपने सृष्टिक्रमका बहानाकर टट्टीकी ओलटमें शिकार खेलाहै, जो बात समझमें नहीं आई लिख दियाकि सृष्टिक्रमके विरुद्धहै कहींतौ लिखदिया होताकि सृष्टिक्रम इतनाहै जो- मालूमतौ होजाता फिर आपको वैसेही प्रमाण देते वेदानुकूलताका वर्णन आगे लिखेंगे

स० पृ० ५७ पं० १ सम्भवति यस्मिन्ससम्भवः कोई कहै किसीने पहाड उठाये मृतक जिलाये समुद्रमें पत्थर तराये परमेश्वरका अवतार हुआ यह सब बातें सृष्टिक्रमके विरुद्ध होनेसे असंभव हैं

समीक्षा--स्वामीजीका मत तौ उनकी बुद्धिहै जो बात इनकी बुद्धिके अनुकूल हो वही सत्य जो बुद्धिके प्रतिकूल हो वोह सृष्टिक्रमकेभी प्रतिकूल होगी आप वेदानुकूल और सृष्टिक्रमानुकूल क्यों नाम धरते हो यों कहो कि हमारी बुद्धिके अनुकूल होना चाहिये, यदि किसी योगीसे आपकी भेट होती वोह मुर्दाभी जिलाकर दिखा देता और आपकी इस बुद्धिकोभी सुधार देता, तथापि जिन ग्रंथोंका आपने सत्यार्थप्रकाशमें प्रमाण लिखाहै उसीसे हम यह सब बातें दिखातें है महाभारतके अश्वमेध पर्वके ६९ अध्यायमें देखो श्रीकृष्णने परीक्षितको जो मृतक उत्पन्न हुआथा पुनर्जीवित किया, वाल्मीकिमें लिखा है कि रामचंद्रके राज्यमें एक शंबुक नाम शूद्र तप करताथा इस कारण उस अनधिकारीके पापसे एक ब्राह्मणका पुत्र मरगया रामचंद्रने उस शूद्रको मार ब्राह्मणकुमारको जीवित किया, और श्रीकृष्णने गोवर्द्धन उठाया, महावीरजो लक्ष्मणजीके अर्थ संजीवन बूंटीवाला पहाड़ उठालायेथे, समुद्रपर पुल बांधा हुआ आजतक् मौजूदहै, आंखैंहोंय तौ देख आओ, यह लंकाकाण्डमें स्पष्टहै, और (आप्तोपदेशः शब्दः) शब्द प्रमाण आप मानही चुकेहैं सो वाल्मीकिजी पूर्ण आप्त थे उन्हौनेही नलनीलको लिखाहै कि इन्हौने पुल बांधा, यह पत्थर समुद्रमें नहीं तौ क्या आपके सत्यार्थप्रकाशपर तरेथे और सम्भव किसे कहते हैं जो कुछभी होजाय उसे संभव कहतेहैं समर्थ पुरुषोंसे जो सम्भवहै वही असमर्थोंको असंभवहै अवतारविषय सप्तमसमुल्लासमें लिखेंगे इस्से यहभी विदित होगया कि शूद्रको तपकरनेका अधिकार नहीं है पर जोकहीं आज दिन रेलतार नहोता तौ स्वामीजीको यहभी असंभव विदित होता

पठनपाठनपाठनविधिप्रकरणम्

स० पृ० ६८ पं० १७ आर्षग्रंथौंका पढना ऐसाहै जैसाकि समुद्रमें गोता लगाना और बहुमूल्यमोतियोंका पाना अष्टाध्यायी महाभाष्य पढाना पं० १९ यास्कमुनिकृत निघंण्टु पं० २१ तदनन्तर पिंगलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ पढै पं० २३ फिर मनुस्मृ-

ति वाल्मीकिरामायण औ महाभारतके अन्तर्गत विदुरनीति आदि काव्य रीतिसे पद-च्छेद आदिपढे पृ० ७० पं० ९ आयुर्वेदचरकसुश्रुत चारवर्षमें पढें पृ० १० प० १७ नारद संहिता आदि आर्षग्रंथ पढें पृ० ७० पं० २२ ज्योतिश्शास्त्र सूर्य सि-द्धान्तादि जिसमें बीज गणित अंकविद्या भूगर्भ यथावत्सीखें फिर पृ० ७१ पं० ४ से पूर्वमीमांसाव्यास कृतभाष्य वैशेषिक गौतमकृत भाष्य सहित, न्यायसूत्र वात्स्यायन भाष्य सहित पतञ्जील कृतयोगपर व्यासकृत भाष्य, कपिल मुनिकृत सांख्यपर भागुरि मुनिकृ-त भाष्य, वेदान्तपर वात्स्यायन और बौधायनमुनि कृतभाष्य वृत्ति सहित पढावै, इन सूत्रौंको कल्पके अंगौंमें भी गिन्नाचाहिये, ऋक्यजुःसाम अथर्व चारों वेद ईश्वरकृतहैं वैसै ऐतरेय शतपथ साम और गोपथ चारौं ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प व्याकरण निरुक्त निघण्ट छन्द और ज्योतिष छः वेदोंके अंग मीमांसादि वेदोंके उपांग आयु-र्वेद धनुर्वेद गन्धर्व बेद और अर्थवेद यह चारवेदोंके उपवेद, इत्यादि सब ऋषि मुनियोंके किये हुए ग्रंथ हैं, इनमें जोजोवेदविरुद्ध प्रतीतहोंवै उसउसको छोडदे-ना, क्योंकिवेद ईश्वरकृत हौनेसे स्वतः प्रमाण, अर्थात् वेदका प्रमाणवेदही से होताहै, ब्राह्मणादि सब ग्रंथ परतः प्रमाण वेदाधीन है, और पृ०६९में, ईश केन कठ प्रश्न मु-ण्डक मांडूक्य ऐतरेय तैत्तरीय छान्दोग्य बृहदारण्यक इनदश उपनिषदोंको पढना.

समीक्षा—यहांतो स्वामीजीने बडीभारी चालखेली है जरा आप अपने ऊपर लिखे हुएको तौ विचार कीजिये जो आप सत्यार्थप्रकाश पृ० ७१ पं० १ में लिखते होंकि (ऋषिप्रणीत ग्रथोंको इस लिये पढना चाहियेकि वे बड़े विद्वान सबशास्त्रवित् और धर्मात्माथे) जबकि ऋषि प्रणीत ग्रंथोंमें भी आप लिखते हैं कि वेदानु कूलजो बात-होगी वोह मानी जायगी तौ उन ऋषियोंकौ पूर्णविद्वत्ता कहां रही और वेधर्मात्माकिस प्रकार होसकेहैं जो वेद विरुद्ध कोई बात कहें यह आपने पूर्ण विद्वान् ऋषियोंकी निन्दा करीहै तौ आपको मुनिजीके वाक्यानुसार हम यह श्लोक भेंट करते हैं ।

योवमन्येततेमूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः
ससाधुभिर्वहिष्कार्यो नास्तिकोवेदनिन्दकः॥मनु०

जोवेद और आप्त पुरुषोंके किये शास्त्रोंका अपमान करताहै उसवेदनिन्दक ना-स्तिकको जाति पंक्ति और देशसे बाहर निकाल दैनाचाहिये

अबकहिये आप इन्हीं महात्मा ओंके ग्रंथोंमें वेद विरुद्धता ठहराते हो तौ कहिये अ-ब आपकीक्या दशाकी जाय जब आपको वेदानुकूलही प्रमाणहै तौ वृथा और ग्रंथोंमें भटकतेहो क्योंकि आपकोतौ वहीबातप्रमाण होगीजो वेदमेंहोगी, फिर औरोंके मान्नेकी आवश्यकता क्याहै, पर ऐसा करनेसे आपका काम कैसे चल सकताहै आपतौ अपने अनुकूल हौनेसे सबकुछ मान्तेहै भला यह तौ कहिये यहसत्यार्थ प्रकाशकी रचनाको-

नसे वेदके अनुकूल है,आपतौ प्राचीन ऋषियों सेभी अपनेकों अधिक मान्ते हो जो म-
हात्माओंकालेखतौ वेदविरुद्ध होगया जोकि पूर्ण विद्वान थे,औरआपकालेख जो स्वार्थपरता
और वेदविरुद्ध अर्थोंसे पूर्णहै सत्यहै धन्यहै यह वडाईहीतौ आपका गुणप्रगट करती है भला
यह तौ वताऔकि (अहरहः सन्ध्यामुपासीत, स्वर्गकामो यजेत) अर्थात् रोजरोज संध्या-
करो स्वर्गकी इच्छा होतौ यज्ञकरै यह विधिवाक्य यज्ञोपवीत मंत्रोंके ऋषिदेवता औ-
र उनके प्रयोग, पंचयज्ञ आदि यह कौनसे मंत्रभागके अनुकूलहै, और कौनसेमंत्र
इनके विधायकहैं वताओतौ सही जवमंत्र भागमें यह वार्तानहीं तौ आपके मतानुसार
यह विधिकर्मकाण्डसव वेद विरुद्ध हुआ, और यह पठन पाठन शिक्षा कौनसे मंत्रभा-
गके अनुकूलहैं, और संन्यासी होकर चोगा बूट जूता पहरना, हुक्का पीना कुरसी मेजकोही
इस्तमालमें लाना विरागी होकर रुपया जमाकरना यह कौनसे मंत्र भागके अनुकूलहै
महात्माजी जव आपवेदके अर्थ लिखने बैठते हो तौ आप उसके अर्थकू ब्राह्मणनिघ-
ण्टु महाभाष्य उपनिषद से सिद्धकरतेहो कि इसशब्दका निघण्टुमें यह अर्थ है शतपथमें
इसका आशय इसप्रकार कथन कियाहै, इस कारण इसका यह अर्थहुआ, जवयह द-
शाहैकि विनाब्राह्मण निघण्टुके आपवेदका अर्थ सिद्धनहीं करसक्ते तौ वे ब्राह्मण निघण्टु
वेदके अर्थको सिद्ध करनेसे स्वतः सिद्ध और स्वतः प्रमाण क्यों नहीं क्योंकि मंत्रवर्ण-
में तौ यह लिखाही नहीं कि इसका अर्थ इसप्रकारकर करना यह विधितौ ब्राह्मण नि-
घण्टु आदिमेंही कथनकरी है कि इसमंत्रका यह अर्थ है और यह इसके प्रयोगकी
विधिहै इस्से इनका वेदवत् प्रमाणहै इनग्रंथोंमे अंशभी वेद विरुद्ध नही है और इसी-
कारणसे (मंत्रब्राह्मणयोःवेदनामधेयम्) मंत्र और ब्राह्मण का नाम दौनौ मिलकर
वेदकहा जाताहै अवकहिये इनग्रंथोंसे अर्थ करनेमें वेदानुकूलता आपकीकहांगई और
जिसग्रंथमेंथोडाभी असत्यहै आप उसे त्यागन करने कहतेहैं जैसाकि स०प्र०पृ० ७१
पं०३० में लिखाहै(विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्याः) जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे संयुक्त हौ-
नेसे छोडने योग्य होताहै वैसेही असत्यता मिश्रित ग्रंथत्याज्यहै और पृ० ७२ पं०
१२(असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यमिति) असत्यसे युक्त सत्यभी दूरसे छोडना चाहि-
ये ऐसेही असत्य मिश्रित ग्रंथभी त्यागने,क्योंकि जो सत्यहै सो वेदादि सत्यशास्त्रोंका
मिथ्या उनके घरकाहै वेदके स्वीकारमें सव सत्यका ग्रहणहो जाताहै और जो इन मि-
थ्याग्रंथोंसे सत्यका ग्रहणकरनाचाहै, तौ असत्यभी उसकेगलेमें मढजाताहै यह पृ०२२
पं९ से १३ पंक्तितक कथनहै

जो यहदशाहै तौ ब्राह्मणादि ग्रंथोंमेंभी आपके कथनानुसार असत्यहै तौ विषवत्
हौनेसे इनकाभी त्यागन करनाचाहिये,फिर इनको क्यों मान्ते हो यह आपका वडाभारी
अन्यायहै कि जिसथालीमेंखांय उसीमे छेदकरैं, यह आपकी वडी भारी भ्रान्तिहै कि
ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें असत्य और वेद विरुद्धता मान्तेहो,यदि आपइनमें भी असत्य और

वेदविरुद्ध बताते हो तौ फिर इन्हींका प्रमाण देते आप क्यों नहीं लजातें, आपअपने पूर्व लेखको बड़ी जल्दीभूलगये कि विष मिला अमृतभी विषहीहो जाताहै बस इसीने मारदिया आपका सत्यार्थ प्रकाश और वेदभाष्य भूमिका असत्य होनेसे त्याज्यहैं

स० पृ० ७१ पं० १७ नीचे लिखे जालग्रंथसमझने चाहियें

व्याकरणमें कातंत्र सारस्वतचान्द्रिका शेखर मुग्धबोधकौमुदी मनोरमादि, कोशमें अमरकोशादि छन्दोग्रंथमें वृत्तरत्नाकरादि शिक्षामे अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयम तंयथा इत्यादि, ज्योतिषमें शीघ्रबोध मुहूर्तचिन्तामणि आदि, काव्यमें नायकाभेद कुवलयानंद रघुवंश माघ किरातार्जुनीय आदि, मीमांसामें धर्मसिंधु व्रतार्कादि, वैशेषिकमें तर्कसंग्रहादि, न्यायमें जागदीशी आदि, योगमें हठप्रदीपिकादि, सांख्यमें सांख्यतत्त्व कौमुद्यादि, वेदान्तमें योगवाशिष्ट पंचदश्यादि, वैद्यकमें शार्ङ्गधरादि, स्मृतियोंमें एक मनुस्मृति इसमेंभी प्रक्षिप्त श्लोक अन्य सबस्मृति सब तंत्र ग्रंथ सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण रुक्मिणीमंगल आदि और सब भाषा ग्रंथ यह सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रंथ हैं पृ० ७० पं० २९ परन्तु जितने ग्रह जन्म पत्रराशि मुहूर्त आदि फलके विधायक ग्रंथ हैं उनको झूंट समझके कभी न पढै

समीक्षा–यहां तौ कौमुदीकी यह निन्दा और जब आप मरे तौ निजवस्ते मे वैयाकरणसर्वस्व और सिद्धान्त कौमुदी यह दो ग्रंथ निकले, इन व्याकरणोंके ग्रंथोंमें क्या मिथ्यापना है क्या इन ग्रंथोंने अष्टाध्यायीका खंडन कियाहै, कौमुदी आदिकोमे तौ पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके सूत्रोंकी वृत्तिकी है यदि वृत्ति करनेहीसे वे जाल ग्रंथ आपने बताये तौ तुह्मारा रचित वेदाङ्गप्रकाश जो अष्टाध्यायीका भाषाटीकाहै वोहभी मिथ्याही होना चाहिये कोशमें यदि निघण्टु जिसमें वैदिक शब्दहै पढै और अमरकोशादि न पढै तौ लौकिक शब्दोंके अर्थ आपके सत्यार्थप्रकाश या वेदभाष्य भूमिकासे करै काव्योंसे आपकी शत्रुता क्यों है, क्या यहभी आजीविकाकोही रचना कियेहैं यदि यह काव्य जिनसे व्युत्पत्ति होती है न पढैं तौ क्या आपका बनाया संस्कृत वाक्यप्रबोध जिसमें सैंकड़ों अशुद्धता भरी पडीहैं उसे पढैं, जो औरभी बुद्धिभ्रष्टहो जाय, तर्कसंग्रहमें कौनसी बात वैशेषिकके विरुद्धहै, और अपनेभी तौ ५४ पृष्टसे ६६ पृष्टतक तर्कसंग्रहही लिखीहै, यह आपकी बड़ी भारी चालाकी है कि कोई हमारा चेला सत्यार्थप्रकाशमेंसे निकालकर अलग छपालेगा, तौ तर्कसंग्रहके स्थानमें यही काम आवेगा, और हमारा नाम होगा, यह लिखा तौ होता कि तर्कसंग्रहने कोनसी आपकी रोज़ी छिनली और उसमें विरुद्ध कौनसी बातहै पर हठको क्या करिये और जब मनुमेंभी प्रक्षिप्त श्लोकहैं तौ यहभी विषमिश्रित अन्नकीनाई आपनेत्यागन क्यों नहीं किया, यदि इसेभी छोड़ते तौ काम कैसे चलता पुराणोंकी सिद्धि आगे चलकर

करैगे, तुलसीदासजीनें क्या बात बिरुद्धताकी लिखीहै और जब सब भाषाके ग्रंथ कपोलकल्पित हैं तौ आपका सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तथा भूमिका आर्य्योद्देश्यरत्नमाला आदि जो कुछ आपकी भाषाकी गढतहै यहभी कपोलकल्पित और त्याज्यहैं, भाषाकी अतिव्याप्ति होनेसे, जो आपआपनी बनाई भाषा माने तौ औरोंके बनाये क्यों प्रमाण नहीं बीमारी होनेसे आपतौ अंग्रेज़ी दवाई उड़ाना और शार्ङ्गधरको जाल ग्रंथ बताना, धन्यहै यदि जन्मपत्र मुहूर्त मिथ्याहैं तौ संस्कार विधिमें यज्ञोपवीत विवाहमें पुण्यनक्षत्र शुक्लपक्ष उत्तरायण आदि यह मुहूर्त्तविधि क्यों लिखी है, अब सुश्रुतकाभी प्रमाण सुनिये जिसके प्रमाण आप सत्यार्थप्रकाशमें बहुधा लिखते हैं

उपनीयस्तुब्राह्मणः प्रशस्तेषुतिथिकरणमुहूर्तेषुनक्षत्रेषुप्रशस्तायांदिशिशुचौसमेदेशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थंडिलमुपलिप्य गोमयेनदर्भैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तैरत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान् भिषजश्चेत्यादि सुश्रुत सूत्रस्थान अ० २

अर्थ–दीक्षा योग्य तौ ब्राह्मणहै अच्छी तिथिकरण मुहूर्त्त अच्छे (पुष्पहस्त श्रवण अश्विनी) नक्षत्रमें उत्तर वा पूर्व श्रेष्ठ दिशामें पवित्र समान देशमें चौकोन चार विलायंद अथवा चार हाथकी वेदी रचे, उसको गोवरसे लीप उसपर कुशा विछावै पुष्पखीलैं रत्नादिसे देवताओंका पूजन कर ब्राह्मण वैद्योंका पूजन करै (जब शिष्यहो) पुनः शकुन

ततोदूतनिमित्तशकुनंमंगलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च० । सु० सूत्र० अ० १०

अर्थ–जब दूतके साथ वैद्य जायतौ निमित्त–सुन्दरगन्धादि शकुन–पक्षियोंकी चेष्टादि मंगल स्वस्तिक पूर्ण घटादि इनको विचारै फिर रोगीके पास जाय देखै छुवै और पूछै

इन वाक्योंसे स्पष्टहै कि सुश्रुत आदि महर्षिभी ज्योतिष शकुन गृह नक्षत्रादि अनुसार शुभाशुभ फल मान्ते थे, जब आपने इन ग्रंथोंको प्रमाण मानाहै तौ मुहूर्त्तादि स्वयं सिद्धही हैं तिस्से गृहादि फलका न मान्ना आपकी बड़ी भूल है

पृ० ७२ पं० ४ पुराणइतिहासप्रकरणम्

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति

यह गृह्यसूत्रादिका वचनहै जो ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण लिख आये हैं इन्होंके इतिहास पुराण कल्पगाथा और नाराशंसी यह पांच नाम हैं श्रीमद्भागवतादिका पुराण नाम नहीं

समीक्षा—नमस्कृत्यगुरुंशान्तंपुरस्कृत्यश्रुतेर्मतम्
तिरस्कृत्यचमन्दोक्तिं पुराणोंकिंचिदुच्यते १

समीक्षा—स्वामीजीने पुराणोंके उड़ानेकी चेष्टाकी परन्तु आपसे क्या पुराण अन्यथा किये जाते हैं सुनिये पुराण शब्द ऐतरेय शतपथादिका वाचक नहीं है

मध्याहुतयोवात एतादेवानांयदनुशासनानिविद्यावाकोवाक्य मितिहासः पुराणङ्गाथानाराशꣳस्यः सएवं विद्वाननुशासना निविद्यावाकोवाक्यमितिहासपुराणी गाथा नाराशंसीरित्यह रहःस्वाध्यायमधीतेइत्यादि शत॰अ॰११प्र॰३॥पुनस्तत्रैव- क्षीरोदनमाꣳसौदनाभ्याꣳ हवाएषदेवांस्तर्पयति एवंविद्वान् वाकोवाक्यमितिहासःपुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते त एनन्तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैः भोगैः। शत॰

आशय यहहै कि विद्या वाक् वाक्य इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी इनका पढना अवश्यहै जो इनको अध्ययन करते हैं देवता प्रसन्न होके उनके सब कार्य पूर्ण करते हैं

सयथार्द्रैन्धाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येवंवाअरेऽस्य महतोभूतस्यनिश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्वाङ्गिरसइतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि श॰ ४ प्र॰ ब्रा॰ ४

भावार्थः—जिसप्रकारसे गीले ईंधनके संयोगसे अग्निमे नानाविधि धूम प्रगट होते हैं इसीप्रकार उसपरमात्माके ऋक् यजु साम अथर्व इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यान यह सब उसी परमेश्वरके स्वास भूतहैं

इसमें इतिहास पुराणादि पांच नाम पृथक् २ ग्रहणकियेहैं तथा औरभी कहतेहैं।

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोध्येमि यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानांवेदं पित्र्यंराशिं दैवं निधं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवयजनविद्यामेतद्भगवोध्येमि छां॰ प्र॰ ७

नारद बोले ऋग्वेदको स्मरण करताहूं तथा साम यजु अथर्व वेदको स्मरण करताहूं (इतिहास पुराणं पंचमंवेदानांवेदं) और इतिहास पुराण पांचवांवेद पढाहै (पित्र्यं) श्राद्धकल्प (राशिं) गणितं दैवमुत्पातज्ञानं—जिस्से देवताओंके किये हुए उत्पातका ज्ञान होनाहै (निधिं) महाकालादि निधि शास्त्र (वाकोवाक्य) तर्कशास्त्र (एकायनं) नीतिशास्त्र (देवविद्यां) निरुक्तम् (ब्रह्मविद्यां) ब्रह्मसम्बधी उपनिषद विद्याकू (भूतविद्यां) भूततंत्रकू (क्षत्रविद्यां) धनुर्वेदकू (नक्षत्रविद्यां) ज्योतिषकू (सर्पदेवयजनविद्यां) सर्पविद्यागारुडिगन्धयुक्त नृत्यगीतादिवाद्य शिल्पज्ञानकू भी मैं स्मरण करताहूं

देखिये इस छान्दोग्यके वाक्यसे कितनी विद्या सिद्ध होगई और यहांभी पुराण इनसे पृथक्ही ग्रहण कराहै और सुनिये

अरेस्यमहतोभूतस्यनिश्वसितमेवैतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वांगिरसइतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टंहुतमासितयापितम् अयश्चलोकः परश्चलोकः सर्वाणिभूतान्यस्यैवैतानिनिश्वसितानि बृह० अ० ६

उसपरमेश्वरके निश्वसित ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्व वेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् श्लोक सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यानहैं जिसमें कोई कथाप्रसंग होताहै सो इतिहास१जिसमे सर्गादि जगतकी पूर्व अवस्थाका निरूपण होताहै सो पुराण २ उपासना और आत्मविद्याका प्रतिपादक वाक्यहै सो विद्या ३ उपास्य देवके रहस्यका नाम उपनिषदहै ४ जो श्लोक नामसे मंत्र कहे जाते हैं वे श्लोकहैं ५ जो संक्षिप्त अर्थका प्रतिदक वाक्य है सो सूत्र है ६ जिस वाक्यमें तिसका विस्तार होताहै सो व्याख्यानहै और जिसवाक्यमें व्याख्यानको भी स्पष्ट किया जाय सो अनुव्याख्यानहै

पुनः आश्वलायनसूत्र अ०३ पंचयज्ञ प्रकरणम् ।

अथस्वाध्यायमधीयीतऋचोयजूंषिसामान्यथर्वांगिरसोब्राह्मणानिकल्पान् गाथानाराशंसीरितिहासःपुराणानीत्यमृताहुतिभिर्यदृचोऽधीतेपयसाः कुल्याअस्य पितॄन् स्वधा उपक्षरन्ति यद्यजूंषिघृतस्यकुल्या यत्सामानिमध्वः कुल्या यदथर्वांगिरसः सोमस्य कुल्याब्राह्मणानिकल्पान् गाथा नारा

शंसीरितिहासः पुराणानीत्यमृतस्यकुल्यायथावन्मन्येतता वदधीत्येतयापरिदधातिनमोब्रह्मणे नमोस्त्वग्नयेनमः पृथिव्यैनमऔषधीभ्योनमोवाचेनमोवाचस्पतयेनमोविष्णवे मह ते करोमीति

आशययहहै कि जो ऋगादि चारों वेदोंको और ब्राह्मणादि ग्रंथोंको कल्प गाथादि सहित पढते हैं उनके पितरोका स्वधासे अभिषेक होताहै, ऋग्वेदके पढनेवालेके पितरोंकू दूधकी कुल्या, यजुर्वेदके पढनेवालोंके पितरोंकू घृतकी कुल्या, सामके पढनेवालेके पितरोंकू मधुकी कुल्या, अथर्वाङ्गिरसके पढनेहारेके पितरोंकू सोमकी कुल्या और ब्राह्मणकल्प ना राशंसी इतिहास पुराणके पाठकरनेवालेके पितरोंकू अमृतकी कुल्या प्राप्त होती है, इसकारण इनका पाठकरना, ईश्वर अग्नि पृथ्वी वाक्पति विष्णु देवको नमस्कारहै। और महाभाष्यमें भी १आन्हिकमें शब्दप्रयोग विषयमें पुराणकू पृथक् गिनाहै ।

सप्तद्वीपावसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्याः बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधाबह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाको वाक्य मितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगमिति

सातद्वीप सहित पृथ्वी तीनौ लोक शिक्षाकल्पादि अंगसहित चारों वेद (स रहस्याः) उपनिषद सौ शाखा यजुर्वेदकी, सहस्र शाखा सामवेदकी, इक्कीस शाखा ऋग्ववेदकी, नौ शाखा अथर्ववेदकी (वाको वाक्यम्) तर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक इनमें शब्दप्रयोग होताहै, यदि नाराशंसीका नामही पुराण होता तौ साङ्ग लिखकर फिर पुराण लिखनेकी क्या आवश्यकता थी, पूर्वोक्त ग्रंथोंके वाक्यसे यह बात सिद्धहै कि ब्राह्मण भाग उपनिषद सूत्रादिसे पृथकही कोई पुराण और इतिहास संज्ञावाले ग्रंथ हैं, यदि इतिहासका पुराण विशेषण मानो तौ इतिहास पुल्लिंग और पुराण नपुंसकलिंग है, सो पुल्लिंग और नपुंसकलिंगका विशेषण हो नहीं सक्ता, इस्से यह विदित होताहै कि पुराणसे इतिहासभी कोई पृथक् ग्रंथ है, सो न्यायके भाष्यकार महर्षि वात्स्यायनजी चतुर्थ अध्याय प्रथम आन्हिकके ६२ सूत्रपर जो कथन करते हैं सो आपके सामने दिखाया जाताहै, जिस्से विदित होजायगा कि ब्राह्मणादि भागसे अतिरिक्त कोई पुराणेतिहास संज्ञक ग्रंथहै

समारोपणादात्मन्यप्रतिषेधः । न्या० अ० ४ आ० सू० ६२

(भाष्यम्) तत्र प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सार्ववेदसं हुत्वाऽऽत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेदितिश्रूयते तेन विजानीमः प्रजावित्तलोकैषणायाश्चव्युत्थाय भि-

क्षाचर्य्यंचरन्तीति, एषणाभ्यश्च व्युत्थितस्यपात्रचयान्तानि कर्म्माणि नोपपद्यन्ते इति नाविशेषेणकर्तुः प्रयोजकफलं भवती, तिचातुराश्रम्यविधानाच्चेतिहास–पुराणधर्मशास्त्रे-ष्वेकाश्रम्यानुपपत्तिः तदप्रमाणमितिचेन्न प्रमाणेनखलुब्राह्मणेनेतिहास पुराणस्यप्रामाण्य-मभ्यनुज्ञायते तेवा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतादितिहास पुराणस्य प्रामाण्य मभ्यवदन् 'इतिहासपुराणं पंचमंवेदानांवेदइति, तस्मादयुक्तमेतदप्रामाण्यमिति, अप्रमाणेचध-र्मशास्त्रस्य प्राणभृतां व्यवहारलोपाल्लोकोच्छेदप्रसंगः दृष्टप्रवक्तृसामान्याच्चाप्रामाण्या-नुपपत्तिः यएव मंत्रब्राह्मणस्यद्रष्टारः प्रवक्तारश्च तेखल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्र-स्यचेति विषयव्यवस्थापनाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्, अन्योमंत्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्य-श्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति, यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लो-कव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः तत्रैकेननसर्वंव्यवस्थाप्यत इति यथावि-षयमेतानिप्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति

(भाषा) प्राजापत्य इष्टिका निरूपण करकै उसमें सार्ववेदसनाम याग करनेके अनन्तर अग्निको आत्मामें समारोपण करके ब्राह्मणसंन्यासाश्रमको धारण करै ऐसी विधि श्रुतियोंमें लिखी है, इस्से जाना जाता है कि प्रजावित्तस्वर्लोकादिकी इच्छासे निवृत्त हुए को यतिधर्मका आचरण करना उचितहै, और इसीकारण संन्यासीको पात्र चयान्तादि क्रिया ये नहीं होतीं, इसहेतु यावत् कर्म मात्रके सभी अधिकारी नही हो सक्ते, किन्तु भिन्न भिन्न कर्मोके भिन्न२ अधिकारी होतेहैं, और यदि यह कहो कि हम ए कही कोई आश्रम मानेंगे, अनेक आश्रम नमानैंगे तब सभीका कर्माधिकार ए कही हो-गा तौ ऐसा नहीं हो सक्ता क्योंकि इतिहास पुराण और धर्मशास्त्रके ग्रंथोंमें अनेक आश्रम की विधि लिखी लिखाई है,तब एकही आश्रम कैसे हे सक्ताहै, नचेत् एह कहोकि इ-तिहासादि ग्रंथोंका प्रमाणही नहीं मान्तेहैं, तौ यह भी नही हो सक्ता है क्योंकि प्रमाण भूत ब्राह्मण इतिहासादि ग्रंथोंके प्रमाणकी आज्ञा करताहै, तथा यह अथर्वाङ्गिरसभी इ-सका प्रमाण कहतेहैं, कि इतिहासपुराण वेदोंमें पांचवां वेदहै, इससे इनका प्रमाण न-हीं है ऐसा कहना महा अनुचितहै, और धर्मशास्त्रका प्रमाण करोगे तौ प्राणियोंका व्य-वहार लोप होनेसे सृष्टिही उच्छिन्न हो जायगी, और दोनौके देखने और कथन करने हारे भीं तौ एकहीहैं, जो मंत्र ब्राह्मणके द्रष्टा वक्ता हैं, वेही धर्मशास्त्रपुराण इतिहासके क-हने हारे हैं, फिर इनका अप्रमाण कैसे होसक्ताहै, तथा भिन्न भिन्न विषयोंके व्यवस्थाप-न करनेसे भी तौ यथा विषय इनका प्रमाणहै, मंत्र ब्राह्मणका विषय औरहै और धर्म-शास्त्र पुराण इतिहासादिका विषय औरहै, यज्ञ मंत्र और ब्राह्मणका, और लोक वृत्ता-न्त इतिहासपुराणका, तथा लोकवृत्तान्त व्यवस्थापन धर्मशास्त्रका विषयहै, उनमेंसे ए-कसे सबही विषय नही व्यवस्थापित होते, इस्से यथा विषयमें सबही प्रमाणहै इन्द्रि-

योंकी नाईं अर्थात् जैसे रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द इत्यादि सबही विषय किसी एक-ही इन्द्रीसे नहीं जाने जाते इसकारण इन पांचोंके क्रमसे नेत्र जिह्वा नासिका त्वक् कर्ण सभी पृथक् २ प्रमाण माने जाते हैं इत्यादि इससे स्पष्ट रूपसे जानपड़ताहै कि यज्ञरूप प्रतिनियत असाधारण विषयोंके प्रतिपादक मंत्र ब्राह्मण ग्रंथोंसे अतिरिक्तही कोई पुराणेतिहास संज्ञक लोकवृत्तरूप असाधारण विषयोंका प्रतिपादक वाक्यकलापहै यदि ब्राह्मण भागोंकी इतिहास पुराण पदार्थता ऋषियोंको अभिमत होती तौ वोह पुराणादिके प्रामाण्य व्यवस्थापन करनेकी इच्छासे उनके अप्रामाण्यकी शंका करके (प्रमाणभूत ब्राह्मण इतिहास पुराणोंकी अभ्यनुज्ञा करतेहै) इत्यादि पूर्वोक्त बहुतसा कैसे कहते और प्रयास करते ब्राह्मणको इतिहास पुराण संज्ञक होनेमें वैसा कहना असंगत होता जिसकी बुद्धि कुछभी ठिकाने होगी और कैसाभी मूर्ख क्यों न हो पर अपने प्रमाण-का साधक अपनेको कभी न कहैगा और सुनिये वेदमेंभी इतिहास पुराणका वर्णन है ।

सबृहतीं दिशमनुव्यचलत् तमितिहासश्च पुराणञ्च नाराशंसीश्चानु व्यचलत् इतिहासस्यचवैसपुराणस्यच गाथानांच नाराशंसीनांच प्रियंधाम भवति य एवंवेद॥अथर्व० का० १५ प्र०२०अ०१मं० ४

यह बात वेदसेभी स्पष्ट होगई अब इसके गोपथ ब्राह्मणका लेख देखिये

एवमिमेसर्वेवेदानिर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाःसोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः स-संस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवा-क्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानांछि द्यतेनामधेयं यज्ञमित्येव-माचक्षते (गोपथपूर्वभाग ॥ द्वितीयप्रपाठकः)

यदि ब्राह्मणग्रंथोंहीमें इतिहास पुराणका अन्तर्भाव होता तौ गोपथमें इस प्रकार कल्प ब्राह्मण उपनिषद इतिहास पुराणादि पृथक् पृथक् कैसे लिखते इस्से भी ब्राह्मणसे अतिरिक्तही पुराण इतिहास जाना जाताहै इस कारण जो पुराणको इतिहासका विशेषण कहते हैं सो प्रमादही है क्यों कि सेतिहासाः सपुराणाः ऐसा पृथक् कहनाही इनमें भेद प्रतीति कराताहै, जब इतिहाससहित और पुराणसहित ऐसे दो शब्द कहे तौ निः संदेह यह दोनो पृथक्ही है, और सूत्रकारनेभी तौ अश्व-मेध प्रकरणमें आठवें दिन इतिहास और नवमें दिन पुराण पाठ लिखाहै अब यह तौ निश्चय होगया कि पुराण इतिहास आदि ब्राह्मणोंसे अतिरिक्तही कोई ग्रंथहै, परन्तु

---

* वह बडी दिशाको गया और उसके पीछे इतिहास पुराण गाथा और नारासशी चली जो ऐसा जान्ताहै वह इतिहास गाथा और नारासशीयोंका प्यारा घर बनता है १

अब पुराण किसे कहते हैं और वोह कैसे बना उसके सुन्ने वा पढनेसे क्या लाभहै सो मनुस्मृति और महाभारतादि ग्रंथोंसे दिखलाते हैं, कि महाभारतमेंभी पुराण सुन्नेकी विधि लिखी है इस्से भारतसे पृथक् पुराण हैं यह सिद्ध होताहै

स्वाध्यायंश्रावयेत्पित्र्येधर्मशास्त्राणिचैवहि । आ
ख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानिच ॥ मनु०

श्राद्धमें वेद धर्मशास्त्र आख्यान इतिहास पुराण सूत्रादि इन सबको सुनावै इस्से विदित होताहैं कि मनुस्मृति पुराण नहीं है किन्तु पुराण किसी और ग्रंथका नाम हैऔर देखिये।

पुराणमितिहासश्च तथाख्यानानि यानिच । महात्मनां च च-
रितंश्रोतव्यं नित्यमेव तत्॥महाभारते दानधर्मे—ये च भाष्य-
विदःकेचिद्येच व्याकरणेरताः ॥ अधीयन्ते पुराणानि धर्म-
शास्त्राण्यथापिच ॥ ९० अ०

पुराण इतिहास आख्यान महात्माओंके चरित्र नित्य सुन्ने योग्यहैं १ कोई महाभाष्य जाननेवाले जो व्याकरणमें प्रीति रखते हैं तथा जो धर्मशास्त्र और पुराणभी पढते हैं फिर वाल्मीकिरामायण बालकाण्डमें राजा दशरथ और सुमन्तका सम्वाद इस प्रकारहै कि जिस्से पुराण प्राचीनही प्रतीत होतेहैं

एतच्छ्रुत्वारहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ॥ श्रूय-
तां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ॥ वाल्मी०

यह सुनकर सूतने एकान्तमें राजासे कहा सुनो महाराज यह प्राचीन कथाहै जो पुराणोंमें मेने सुनीहै इसके अनन्तर सम्पूर्ण रामजन्मका चरित्र जो भविष्य था सब राजाको सुनाया कि रामचंद्र तुह्मारे यहां उत्पन्न होंगे शृंगी ऋषिको बुलाइये और वैसाही हुआ.

एवं वेदे तथा सूत्रे इतिहासेन भारत
पुराणेन पुराणानि प्रोच्यन्ते नात्र संशयः ॥

इस प्रकार वेदोंमें सूत्रोंमें इतिहाससे भारतका ग्रहण और पुराणोंसे अष्टादश पुराणोंका ग्रहण होताहै और महाभारतमें लिखाहै कि

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
पश्चाद्भारतमाख्यानं चक्रेतदुपबृंहितम्॥ महा०

अठारह पुराणोंको व्यासजी संकलित करके फिर महाभारतकी रचना करते हुए अब पुराणोंका लक्षण कथन करते हैं

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तरानिच ।

वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम् ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति प्रलय वंश मन्वन्तर वंशानुचरित्र यह पुराणके पांच लक्षण हैं जिसमें यह पांच लक्षण हों वांह पुराण कहाताहै लिंग पुराणके प्रथम अध्यायसे विदित होताहै कि पुराणोंका बड़ा विस्तार था जो ब्रह्माजीने बनाये थे व्यासजीने उन विस्तृत ग्रंथोको संक्षिप्त करके अठारह विभाग करदिये हैं, क्या यह कथायें व्यासजीसे पूर्व नथीं जो यह माना जाय कि पुराण नवीन हैं और स्वामीजीने ३२६ पृष्ठमें (कर्ता) यह शब्द लिखाहै जिसके माने बनानेवालेके हैं सो यह उनकी भूलहै वहां (कृत्वा) शब्द है(जिसके अर्थ संक्षेपसे करके) केहैं इतिहासोंको महाभारतमें मिला दिया इस कारण इतिहास नाम महाभारतका होगयाहै इससे यह न समझना चाहिये कि पुराण आधुनिक हैं किन्तु जगतकी पूर्व अवस्था कहनेसेही इनका पुराण नामहै व्यासजीने इन कथाओंका संग्रह किया है और उसमें जिस अवतार और जिस बातकी प्रधानता रक्खी है उसी नामपर उस पुराणका नाम रखदियाहै विना पुराणोंके और ऐसा कौनसा ग्रंथ है जिसमें सब पूर्व राजोंके चरित्र वर्णन हैं इसी कारण लिखाहै कि

पुराणम्मानवोधर्मः सांगोवेदश्चिकित्सतम् ।
आज्ञासिद्धानिचत्वारि नहन्तव्यानि हेतुभिः ॥ १ ॥ भा०

पुराण मनुस्मृति साङ्गवेद चिकित्सा इन चारोंकी आज्ञा स्वतः सिद्धहै जब ब्राह्मणादि ग्रंथ पुराणोंकी महिमा कहते हैं तौ पुराणोंको क्यों न माने जहां सज्जन पुरुष बैठे हों उनमें कोई किसीकी बड़ाई करे तौ मोह बड़ाई किया हुआ बड़ाई करनेवालेसे अलग होताहै इसी प्रकार जब पुराणोंकी महिमा ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें है तौ ब्राह्मणादिकोंसे अतिरिक्तही कोई पुराण ग्रंथहै यह स्पष्ट विदित होताहै और बुद्धिमानोको मानना उचित है

(तिलकप्रकरणम्)

स० पृ० ७३ पं०१० ऊर्द्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र तिलक कंठी माला धारण एकादशी आदि व्रत तीर्थ नारायण शिव भगवती गणेशादिके स्मरण करनेसे पापनाशक विश्वास यह विद्या पढने पढानेके विघ्नहैं

समीक्षा—क्योंजी मस्तकपर तिलक लगानेमें कौनसी हानिहै इसके लगानेमें कौनसा पापहै तिलक बहुधा चन्दनका लगाते हैं जिससे चित्त प्रसन्न हो शीतलता आरोग्यता होतीहै परन्तु तिलक लगानेमें भेद इस कारण होगये कि जैसे आपने नमस्तेकी परिपाटी अपनी समाजमें चलाई है कि जहां नमस्ते किया कि दयानंदी मालूम होगये परमात्माजयति कहतेही इन्द्रमणिके पंथी विदित होने लगे इसी प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र आदि तिलकोंसे यह बात स्पष्ट होजातीहै कि यह अमुक पुरुषके शिष्यहैं जैसे शेरके चिन्हसे गवर्नमेंटकी वस्तु सेना आदि विदित होतीहै वैसेंही यह चिन्हहैं और

देवताके पूजन उपरान्त स्वयंभी तिलक धारण करै जिस देवताके अर्चन पूजन तिलकका जो विधान है वैसाही आप तिलक धारण करै जिस्से विना पूछे उसका उपासना वृत्तान्त विदित होजाय चन्दनके गुण राज निघंटुमें इस प्रकारहैं

श्रीखंडं कटुतिक्तशीतलगुणं स्वादुकषायं कियत्
पित्तंभ्रांतिवमिज्वरक्रिमितृषासंतापशांतिप्रदम् ।
वृष्यं वक्ररुजापहं प्रतनुते कांतिं तनोर्देहिनाम्
लिप्तं सुप्तमनोजसिंधुरमदारंभातिसंरंभदम् १
वेट्टचंदनमतीव शीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहम्
छर्दिमोहतृषिकुष्ठतैमिरोत्कासरक्तशमनं च तिक्तकम् २

चंदनके गुण यहहैं कटु तिक्त शीतल स्वादिष्टकसैलाहै और पित्त भ्रांति वमन ज्वर गरमी कृमि तृषा संताप इनकी शान्ति करनेवाला वृष्य मुखरोगहारक देहमें लगानेसे कान्तिका देनेवाला और सुगंधि करनेहारा है तथा रुचिकारक है १ मलयागिरिके निकटके पर्वतोपर जो चंदन होताहै उसे बेट्ट कहते हैं वोह चंदन अत्यन्त शीतल है दाह पित्त ज्वरका शान्तिकारक व मनमोह तृषा कुष्ठ तिमिरका सरक्तदोषका शमन करनेहारा और तिक्तभी है

यदि स्वामीजी चंदन लगाते होते तौ बुद्धिको भ्रांति न होती न मगज़को इतनी गरमी चढती पर आपके चेले वार्षिकोत्सवमें खूबचंदन लगातेहैं यह बडी विपरीत करते हैं परन्तु एक दिन लगानेसे बुद्धि शुद्ध नहीं होती होय कहांसे उस एक दिनमें भी उसमें बहु तेरी केशर डाल देते हैं जिस्से बुद्धि ज्यों की त्यों रहती है और जब गणेश शिव देवी आदि नाम आप ईश्वरके लिख चुके हैं तौ क्या इन नामोंसे पाप दूर न होंगे ईश्वरका नामही पाप दूर न करैगा तौ क्या आपके कल्पित ग्रंथ दूर करैगे इसकी विशेष महिमा नाम तीर्थ और व्रत तथा देव प्रकरणमें लिखैंगे जिस प्रकारसे नामादि जपनेसे मनुष्योंके पाप दूर होते हैं

स० पृ० ७२ पं० १४ तुह्मारा मत क्या हैं (उत्तर) हमारा मत वेदहै जो जो वेदमें करने और छोडनेकी शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मान्ते हैं

समीक्षा—क्या जो कुछ आपने सत्यार्थप्रकाशमें लिखाहै उसमें आपने सब वेदहीके मंत्र लिखे हैं जब आपका मत वेदही है तौ क्यों चरक सुश्रुत स्मृति उपनिषदादिमें घुसते हो वेदहीके मंत्र सब लिखे होते कोई यज्ञ किया होता तौ जान्ते कि तुह्मारा मत वेद है वेदमें आपके यही लिखा होगा कि संन्यासी रुपये जोडे नफेसे पुस्तके बेचे दुशाला ओढे इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गततृतीयसमुल्लासस्य खंडनं सम्पूर्णम्.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतचतुर्थसमुल्लासस्य खंडनम्

——<>∘⨳∘<>——

समावर्तनविवाहप्रकरणम् ।

स० पृ० ७८ पं० १२

असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ मनु०

जो कन्या माताके उसकी छः पीढियोंमें न हो और पिताके गोत्रकी न हो उस्से विवाह करना योग्यहै इसका प्रयोजन यहहै कि

(परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः)

यह निश्चित बात है कि जैसे परोक्ष पदार्थमें प्रीति होतीहै वैसी प्रत्यक्षमें नहीं जैसे किसीने मिश्रीके गुण सुनेहों और वोह खाई नहो उसका मन उसीमें लगा रहताहै जैसे किसी परोक्ष वस्तुकी प्रशंसा सुनकर मिलनेकी उत्कट इच्छा होतीहै वैसेही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माताके कुलमें निकट सम्बन्धकी न हो उसी कन्यासे वरका विवाह होना चाहिये निकट और दूर विवाहकरनेमें यह गुणहैं १जो बालकबाल्यावस्थासे निकट रहतेहैं परस्पर क्रीड़ा लड़ाई और प्रेम करते एकदूसरेके गुणदोष स्वभाव वा बाल्यावस्थाके विपरीत आचरण जान्ते और जो नंगेभी एकदूसरेको देखतेहैं उनका परस्पर विवाह होनेसे प्रेम कभी नहीं होसक्ता २दूसरा जैसे पानीमें पानी मिलनेसे विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एकगोत्र पितृ वा मातृकुलमें विवाह होनेमें धातुओंके अदलबदल नहीं होनेसे उन्नति नहीं होती, तीसरे जैसे दूधमें शुंठ्यादि औषधियोंके योग होनेसे उत्तमता होतीहै वैसेही भिन्नगोत्र मातृपितृ कुलसें पृथक् वर्तमान स्त्रीपुरुषोंका विवाह उत्तमहै४जैसे एकदेशमें रोगी हो वहदूसरे देशमें वायु और खानपानके बदलनेसे रोगरहित होताहै वैसेही दूरदेशस्थ विवाह होना उत्तमहै ५ निकट संबंध करनेसे एकदूसरेके निकट होनेमें सुखदुःखका भान और विरोध होनाभी संभवहै और दूरदेशके विवाहमें दूर२प्रेमकी डोरी लम्बी बढजातीहै६ छठे दूरदूर देशमें वर्तमान और पदार्थोंकी प्राप्तिभी दूर संबंध होनेमें सहजतासे हो सक्तीहै थोरे होनेमे नहीं इसलिये (दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति निरुक्त०) कन्याका नाम दुहिता इसकारणसे है कि इसका विवाह दूर देशमें होनेसे हितकारी होताहै ७कन्याके पितृकुलमें दारिद्र होनेकाभी संभवहै क्योंकि जब जब कन्या पितृ कुलमें आवैगी तबतक इसको कुछ न कुछ देनाही होगा ८आठवां कोई निकटसे एकदूसरेको अपने पितृकुलके सहायका घमंड और

जब कुछभी दौनोंमें वैमनस्य होगा तब स्त्री झटही पिताके कुलमें चली जायगी एक-दूसरेकी निन्दाभी अधिक होगी और विरोध क्योंकि प्रायः स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण और मृदुहोताहै, इत्यादि कारणोंसे पिताके एकगोत्र माताकी छः पीढी और समीप देशमें विवाह करना अच्छा नहीं ।

समीक्षा—वाह अच्छा तात्पर्य निकाला गोत्रके अर्थ आपने धोरेके किये दूर देशमें विवाह करै दूर वस्तुमें प्रीतिहोतीहै प्रत्यक्षमें नहीं, तौ यदि वोह दूरहो और पितृकुल वामात्रकुलकी लड़की होतौ उस्से विवाह करले धोरे नहोनी चाहिये, तौ दूरमें हौनेसे आप सम्बन्धीभाई बहनके विवाहमें भी अनुमति दे दैंगे, जैसा कि यवनोंमें होताहै और दूरवस्तुमें प्रीति होगी धोरेमें नहोगी तौ जब वोह दूरकीस्त्री धोरे आई तौ फिर वोह दूर कहां रही, और स्त्रीपुरुषका संग होते ही प्रीति दूर होजानी चाहिये सो ऐसा देखनेमें नहीं आता, किन्तु निकट रहनेसेतौ प्रीति अधिक बढती है, इसश्लोकमें आपभूल रहेहैं आचार्योंने सात पीढीका त्याग कियाहै आप छः पीढीका त्याग लिखतेहैं, और जब कि दूर देशकाही अभिप्रायहै तौ छः पीढीका आपने त्याग क्यों किया, आप यहां धर्मशास्त्रकी मर्यादा मेटतेहै सुनिये माताका कुल तौ ननसाल होतीहै और पितृकुलके लड़के लडकियोंका परस्पर भगनीभाईका सम्बन्ध होताहैं इसकारण वहां विवाह वर्जितहै इसीप्रकार अपनेगोत्रमेंभी विवाह नहीं होता, क्योंकि जिसका गोत्र एकहै वोह सब एकऋषिके सन्तान वा शिष्य हौनेसे भाई भगिनीवत्हैं, जोअपने संबन्धी हैं चाहै सहस्रकोश क्यों नहीं धोरे और अपने कहलातेहैं जिनसे संबंध नहीं वोह धोरेभी दूरहीहैं स्वामीजीने तौ यहां यवनौकोभी छेक दिया जो आप गोत्र और माताकुलका अर्थ धोरेका करतेहैं आपको तौ विवाहकीभी आवश्यकता नहीं और जातीकर्मसे मान्ते हो।फिर क्यों ऐसा अंड बंड कथनकर दिया फिर जो आपने लिखाकि (निकट और दूरके विवाहके यह गुणहै) यह भ्रांतिसेही कहाहै क्योंकि गुणतौ आपने दूरकेही लिखे धोरेके तौ दोष बताये दौनौमें आपका गुणशब्द नहीं घटसक्ता दूसरे जो बाल्यावस्थासे एकसाथ रहतेहैं उनमें तौ प्रीति अधिक देखीजातीहै, और बाल्यावस्थाके साथी एकदूसरेका मर्मभी जान्ते और परस्पर नमते रहतेहैं, और लड़के लड़की ऐसे कम देखनेमें आतेहैं जो साथ बालकपनमें खेलेहों, और फिर उनका विवाह हुआहो क्योंकि लड़कोंके साथ लड़कियोंके खेलनेकी रीति नहींहै और फिरभी कन्या शीघ्र युवावस्थाको प्राप्त होतीहैं और बालक अधिक कालमें युवा होतेहैं इसकारण बराबरकी अवस्थाकाभी व्याह कम होताहै जहां होताहै उसकाकारण लोभहै ।

तीसरे मातृकुलमें विवाह होनेसे धातुओंका अदलबदल न होनेसे उन्नति नहीं होती यहभी आपका कथन भ्रम मात्रहै, क्यों कि धातुओंके तौ अदलबदलसे रोग उत्पन्न

होताहै उन्नति कैसी, उस्से तौ हानि होती है यदि उन्नति होती तौ सब कुलोंमें बड़ी भारी उन्नति होती, सोभी सबमें देखनेमें नहीं आती, और यदि दूसरे कुलकी धातुनि कम्मी हुई तौ तौ हानिही हुई, उन्नति कहां इस कारण मातृकुलधातुकी उन्नतिके अर्थ त्याग न कियाहै यह आपका महाभ्रमहै ४ (चौथे रोगी दूर देशमें जानेसे जैसे नीरोग होजाता है वैसेही विवाह उत्तम है) धन्यहै अच्छा कथन किया सुनिये तौ यदि रोगी उस देशमें जाय जहां की वायु जल शुद्धहो तौ आराम होजायगा परन्तु जहां की वायु और जल शुद्ध न हो वहां तौ मरही जायगा क्यों कि अच्छा हृष्ट पुष्टभी मनुष्य कहीं दूर जायतौ पानी खराव होनेसे वोह बीमार होजाताहै तौ विवाहमें तौ कन्याही अपने घरसे जाती हैं क्या वह बीमार होती है जो दूर देशमें जानेसे आराम होजाताहै या दुलह और बराती जो बीमार होते हैं वो बरातमें जाते हैं, दूर देशसे शायद आपका मतलव इंग्लिस्तानका होगा या और किसी वलायतका, क्यों कि समुद्रकी यात्रासेही दीर्घ कालका रोगी आरोग्य होताहै धन्यहै अच्छी फजूल खर्ची बताई, और यदि पश्चिमोत्तर देशकी कन्या गंगापार जाय तौ पानी खारी मिलनेसे बहुत दिनोंतक दुःख उठाना पडताहै बहुधा बीमार होजाती है और बहुत दिनोंमें उनका स्वभाव समतापर आताहै और बीस पच्चीस कोशतक तौ वायुभी नहीं बदलती आपको यह लिख देना उचित था, कि इतनी दूर और अमुक देशमें विवाह करना चाहिये यदि वहां न हो तौ रहो ब्रह्मचारी क्यों कि आपके मतमें विवाह वायुके अदलबदलके अर्थ है तौ जो रोगी हो वोह विवाह करै जो विषय करनेसे औरभी दुर्बल होकर शीघ्रही जीवनसे हाथ धो बैठे यह आपने क्यों झगडा उठाया वायुकी शुद्धि तो हवनसेही होजाती. ५ पांचवें निकट व्याह होनेसे दुःख सुखका भान विरोध होनाभी संभवहै यहभी कहना मिथ्याही है क्या यहां आप तारविद्या भूलगये पांच मिनटमें तारद्वारा चाहे जहां सुखदुःखकी खबर भेजदी जाती है सुखदुःखका भान तौ परदेशमेंभी हो सक्ताहै किन्तु जो निकट विवाह होगा तौ सुखदुःखमें सहायता शीघ्र हो सक्ती है, दूरमें खर्चभी पड़ताहै और समयपर सहायताभी नहीं प्राप्त होती और विरोध क्या दूर देशके विवाहमें नहीं होताहै जो कुपात्र होगा वोह धोरे दूर दोनोंमें विरोध करैगा. किन्तु जो दूर विवाह होता है उसमें बहुधा विरोध रहताहै और कारण यहहै वोह तौ कहते हैं कि हम अभी लेजायगे लड़कीके माता पिता कहते हैं तीजो बीचे भेजैंगे, कन्याभी दूर घर होनेसे दो चार वर्षको माता पिताके दर्शनसे वंचित रहती है, इस कारण मातापिताकाही ध्यान लगाये रहती हैं यदि धोरे घर हुआ तौ तकरारही नहीं चाहैं जब बुलालो चाहैं जब लेजाओ दूर देशमें कन्याको चाहैं जितना दुःखहो कोई पूछनेवालाही नहीं, निकट होनेसे अपने नगरवासियों तथा लड़कीके पिता आदिके संकोचसे अधिक दुःख नहीं देसक्ते तथा वायु जल अपने अनुसार होनेसे श-

रीरमें विषमताभी नहीं आती. ६ छटे दूर देशमें विवाह होनेसेपदार्थोंकी प्राप्ति सहजमें होसक्ती है, यहभी दयानंदजीका कथन मिथ्याही है क्या बिना पैसे कोई वस्तु प्राप्त हो सक्तीहै, जिसका व्याह हुआहै उसकोभी बिना दाम कुछ वस्तु प्राप्त नहीं होसक्ती, यदि एक दो बार मुफ्तमें आगई तौ बारबार कौन भेज सक्ताहै, कन्याका पिता मुफ्तमें कुछ मंगाही नहीं सक्ता, और संबंधियोंका सौदा देरमेंभी आताहै और यदि एक पैसेका पोस्ट कार्ड भेज दीजिये छठे दिन कलकत्ते बंबई आदिसे चाहैं जो कुछ मंगा लीजिये, अथवा वेल्यूपेबिल मंगाकर रुपयाभी यहीं जमाकर वस्तुग्रहण कर लीजिये और दूर व्याहनेसेही कन्याको दुहिता नहीं कहते हैं किन्तु यह अर्थ है कि कन्या दूर रहकरभी हितही करती हैं पराये घरकाही धन होती है इसी कारण इसे दुहिता कहते हैं अथवा अपने पाससै जो दूर अर्थात् पृथक् कर दी जाय चाहैं धोरे हो या दूर, दूरहीहै ७ सप्तम पितृ कुलमें कन्या आवैंगी तौ दरिद्र करैंगी क्योंकि कुछ न कुछ दैनाही होगा यहभी भ्रममात्र है और इसका आशयभी कुछ अस्तव्यस्तसा विदित होताहै कन्याको तौ जहां जायगी वहीं कुछ न कुछ दैनाही पड़ैगा कोई कन्याको घर तौ देही नहीं देगा आपका आशय ऐसा विदित होताहै कि कन्याको बहुत कुछ देना परन्तु फिर पितृकुलवालोंपर दया आगई और कुलोंको कोई लूटले तौ भी जी न दुखे कन्याको तौ पिता माता दूर धोरे क्या शक्ति अनुसार सबही अवस्थामें देते रहते हैं ८ आठवें घमंड होजायगा लड़ाई होगी कन्या माके घर चली जायगी स्त्रियोंका स्वभाव तीक्ष्ण मृदु होताहै इत्यादि यहभी विरुद्धही लेखहै भला यह तौ कहिये कि सहायता पाकर घमंड किसे नहीं होता और जिस्से सहाय मिले उस्से तौ कोई लड़ता नहीं फिर वे परस्पर सहाय करिश्ते दार क्यों लडैंगे सहायता बड़ी चीज़ है यदि आपको सहायत्ता न मिलती तौ सत्यार्थप्रकाशही तौ बनाते और जो मनमें आता वोही अंडवंड लिख डालते और लड़ाई वालोंको धोरे दूर सब जगह क्लेशही अच्छा लगताहै और जब छोटी उमरकी स्त्री घरसे निकलती हैं तौ जिनके मातापिताके घर १०० या २०० मीलपरहैं वे रेलमें बैठकर चलदेती है, और मार्गमें भ्रष्टहोती हुई घर पहुंचती हैं औरउनके दुष्कर्मोंकी ओर कोई नहीं ध्यान करता, यह बात देखी हुईहै और एक नगरमें विवाह होनेसे व्यग्र चित्तहो यदि पिताके घरजांय तौ थोडीही देरमें पहुंचनेके कारण दुष्कर्मसे बचसक्ती हैं, तथा अधिक संकोचसे अनिष्ट से बचीरहती हैं और स्वभावतौ जिसका जैसाहै वोह बदलताही नहीं चाहैं धोरेव्याहो या दूर मेरा इसकहनेसे यह प्रयोजननहीं कि परदेशमें विवाह ही मतकरो चाहैं जहां करो किन्तु मातृ पितृ कुलसपिंड होनेके कारण धर्म शास्त्रमें वर्जितकिये हैं, क्योंकि जो सपिंड हैं उनमें विवाह नहीं होसक्ता (जिनका एक पिंड हो अर्थात् एक कुल हो उसे सपिंड कहते हैं) आगेपितृ कर्ममेंभी इसका वर्णन होगा, इसमे हम स्वामीजीकोभी दोष नहीं

देते क्योंकि वे विचारे संन्यासीथे इन वातोंको क्यासमझैं पर तौभी चेलोंको वह कानेको यही बहुत है स्वामी जीके तौ कोई बेटाबेटीभी नहीं फिर इस विषयमें क्योंहस्तक्षेप किया

और (परोक्षप्रिया इवहि देवाः प्रत्यक्षद्विषः) इसके अर्थमें तौ आपने वो हीमसलकी है कि कहींकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुनवा जोड़ा कहांका प्रसंग कहां लिख बैठे यह देवता प्रकरणकी वातहै कि देवता परोक्ष प्रियहैं प्रत्यक्षसे द्वेष करतेहैं इसी कारण

"तंवा एतं वरणंसन्तं वरुण इत्याचक्षते" 'तंवाएतं मुच्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते' 'तंवाएतमंगंरसंसन्तमंगिराइत्याचक्षते' शतपथे 'अग्निर्हवैत मग्निरित्याचक्षते' तत् इन्द्रो मखवान् भवन्मखवान्ह वैतं मघवानित्याचक्षते परोक्षं परोक्षकामाहि देवाः श० १४। १। १। १३

गोपथ ब्राह्मणके प्र० प्रपा० मे लिखाहैकि देवता परोक्षप्रियंहे प्रत्यक्षसे द्वेष करतेहैं इस कारण वरण शब्दको वरुण मुच्युको मृत्यु और अंगरसको अंगिराकहते हैं शतपथमेंलिखा है देवता परोक्ष कामाहै इस कारण परोक्षमें अग्रिको अग्नि अश्रुको अश्व और मख वान्को मघवान कहतेहैं इत्यादि, दयानंदजीने विवाहमें प्रसंगलगा दिया.

स० पृ० ८१ पं० ६ सोलहवें वर्षसे लेकर चौवीस वर्षतक कन्या और पच्चीस वर्षसे लेकर ४८ वर्षतक पुरुपका विवाह उत्तमहै सोलहवें और पचीसमें विवाहकरै तौ निकृष्ट अठारहवीसकी स्त्री तीसपेंतीस चालीस वर्षके पुरुषका विवाह मध्यमहै इसमें विद्याभ्यास अधिक हो जाता है (प्रश्न)

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षाच रोहिणी
दशवर्षा भवेत्कन्यातत ऊर्ध्वंरजस्वला
माताचैव पितातस्या ज्येष्टो भ्राता तथैवच
सर्वेतेनरकं यान्ति दृष्ट्वाकन्यां रजस्वलाम्

यह श्लोक पाराशरी और शीघ्र वोधमें लिखेहैं अर्थ यह हैं कि कन्याकी आठवें वर्ष गौरी नवमें वर्ष रोहिणी दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होजाती है १ दशवें वर्षतक विवाह नकरके रजस्वला कन्याकोमाता पिता और उसका वडा भाई देखें तौ यह तीनौ नरकमें गिरतेहैं पृ० ८२ पं० १४ आठवें नौमें वर्षमें विवाह करना निष्फलहै जैसे आठवें वर्षकी कन्यामें पुत्रहोना असंभव है वैसेही गौरी रोहिणी आदिनामदेनाभी असंभवहै गौरी आदिनाम पार्वती रोहिणी वसुदेवकी स्त्रीका है उसे तुम माताकी तरहु मान्तेहो फिर विवाह कैसे संभवहै इसलिये इसका प्रमाण छोड़ वेदोंका प्रमाण कियाकरो फिर पृ० ८३ पं० ८ मेंलिखते हैं

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेतकुमार्यृतुमती सती ऊर्ध्वंतुका
लादेत स्माद्विंदेत सदृशंपतिम् अ०९ श्लो० ९०

अर्थ कन्यारजोदर्शन हुए पीछे तीन वर्ष पर्यंत पतिकी खोजकरके अपने पति-को प्राप्तहोवे जब प्रतिमास रजो दर्शन होता है तौ तीनवर्षमें छत्तीस वारर जस्वला-हुई पश्चात विवाह करना योग्यहै गुणहीनके साथ नकरैचाहैं कुमारीरहै

स० पृ० ८२ पं० २१ सुश्रुतमेंभी लिखहै

ऊनषोडश वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थःस विपद्यते
जातोवान चिरंजीवेज्जीवेद्वादुर्बलेन्द्रियः
तस्मादत्यन्तवालायांगर्भाधानंन कारयेत्

सोलह वर्षसे न्यूनवाली स्त्रीमें २५ वर्षसे न्यून पुरुष जो गर्भको स्थापनकरै तौ वोह कुक्षिमें प्राप्तहुआ गर्भ विपत्तिको प्राप्त होता है जो उत्पन्न होतौ चिरकालतक न जीवै और जीवैतौ दुर्बलेन्द्रियहो इसकारण अतिबाल्यावस्थामें गर्भस्थापन नकरै पुनः पृ० ८३ पं० १९ लड़कालड़कीके आधीन विवाहहौना उत्तमहै यदि माता पिता करैं तौ लड़का लड़कीसे सम्मति करलैं उनकी प्रसन्नताके विना नहोनाचाहिये

पृ० ८५ पं० २२ जबतक ऋषि मुनि राजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्य्यसे विद्यापढके स्वयंवर विवाह करतेथे तबतक इसदेशकी उन्नतिथी जबसे बाल्यावस्थामें पराधीन विवाह अर्थात् माता पिताके आधीन हौने लगा तबसे देशकी हानि हुई पृ० ९२ पं० २६ कन्या और वरका विवाहके पूर्व एकान्तमें मेलनहोना चाहिये क्यों कि युवावस्थामें स्त्री पुरुषका वासएकान्त दूषण कारकहै परन्तु जब एक वर्षवाछः महीने विद्या पूर्ण वा ब्रह्मचर्याश्रमकेरह जांयतौ उन कन्या और कुमारोंका फोटोग्राफ उतारके दौनोके अध्यापक अध्यापकाओंके पास भेजदेवैं जिस २ का रूप मिलजाय उसउस-के इतिहास अर्थात् जन्मसे लेकै उस दिनपर्यन्त जन्म चरित्रका पुस्तकहो उसको मंगाकर अपध्याक लोग देखैं जबदौनौके गुणकर्म स्वभाव सदृश होतबजिस २ के साथ जिस जिसका विवाह हौना योग्यसमझैं उस उस पुरुष और कन्याका प्रतिबि-म्ब और इतिहास कन्या औरवरके हाथमें दें और उनकीभी सम्मतिलैं दौनो अध्या-पकोंके सामने विवाह करना चाहैं तौ वहीं नहीं तौ कन्याके माता पिताके घरमें हो जववे सम्मत हैंतब उनका अध्यापकौं वा माता पितादि भद्र पुरुषोंके सामने उन दौ-नौकी आपसमें वातचीत कराना शास्त्रार्थ कराना और जो कुछवे गुप्तव्यवहार पूछैं. सो-भीसभामें लिखकै एक दूसरेके हाथमे देकर प्रश्नोत्तर करलेवैं तथा खानपानका उ-

ताम प्रबन्धहोना चाहिये जिस्से उनका शरीर जो विद्याध्ययनादिसे दुर्बलहो रहाहै पुष्ट होजाय पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तववेदी मंडपरचै अनेक सुगन्धि द्रव्य घृतादिका होम विद्वान् पुरुष और स्त्रीका यथायोग्य सत्कार करैं, फिर जिस दिन ऋतुदानदेना योग्य समझें, उसीदिन संस्कारविधि पुस्तकस्थ विधिके अनुसार सबकर्म करके मध्यरात्रि वा दशवजे अति प्रसन्नतासे सबके सामने पाणि ग्रहण पूर्वक विवाहकी विधिको पूराकर एकान्त सेवनकरैं, पुरुष वीर्य स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसीके अनुसार दोनौकरैं पुनः पृ० ९३ पं० २९ जब वीर्यका गर्भाशयमें गिरनेका समयहो उस समय स्त्री और पुरुष दोनौस्थिर और नासिकाके सामने नासिका नेत्रके सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्तर हैं डिगैंनहीं पुरुष अपने शरीरको ढीला छोडैं और स्त्री वीर्य प्राप्तिके समय अपान वायुको ऊपरखींचैं, योनिको ऊपर संकोचकर वीर्यका ऊपर आकर्षण करके गर्भाशयमें स्थितकरै, पश्चात् दोनो शुद्धजलसे स्नानकरैं यह वात रहस्यकीहै इतनेहीमें समग्रवातें समझलैनी चाहिये, विशेषलिखना उचित नहीं जबगर्भ स्थित होजायतब पृ० ९४ पं० १७ गर्भमेंदो संस्कार एक चौथे महीनेमें पुंसवन आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन करै पृ० ९४ पं० २९ ॥ संतानके कानमें पिता (वेदोसीति) अर्थात् तेरा नाम वेदहै सुनाकर घृतऔर शहतको लेकर सोनेकी शलाकासे जीभपर ओम् अक्षर लिखकर मधु और घृतको उसी शलाकासे चटवावै पुनः पृ० ९५ पं० २ पुष्टिके अर्थ स्त्री अनेक प्रकारके उत्तम भोजन करै और योनिसंकोचादिभीकरै संतानके दूध पीनेके लिये कोइ धाय रक्खै जोबालकको दूध पिलायाकरै, स्त्रीदूध बंदकरनेके अर्थ स्तनके अग्रभागपर ऐसालेपकरै जिससे दूधस्रवितनहो और नामकरणादि संस्कार विधिकी रीतिसे यथा काल करता जाय ।

समीक्षा–ऊपर लिखी हुई सत्यार्थप्रकाशकी वार्ताओंका सिद्धान्त यह है कि २९ वर्षमें कन्या औरअढतालीस वर्षमें पति विवाह करैसो विवाह क्या वस्तु है इस वार्ताको लिखकर पश्चात् इसके, स्वामीजीके सबवाक्योंका खंडनकरैंगे प्रथम विवाहकी परिभाषा कहते हैं

(भार्यात्वसंपादक ग्रहणम्) जिसके भरण पोषणका भार सदैवको शिरपर लिया जाय उसका जो भाव उसको भार्यात्व कहते हैं, और संपादक अर्थात् उक्त भावका उत्पन्न करनेवाला ऐसे जो ग्रहण अर्थात् ज्ञान वा भार्याका भाव जिस ज्ञानसे उत्पन्न होवै उसका नाम विवाहहै (तस्य स्वीकाररूपं ज्ञानं विशेषस्य समवायविषयः तयोर्भेदात् वरकन्ययोः विवाहकर्तृत्वकर्मत्वेति) अर्थात् भार्याका स्वीकार रूप जो विशेष ज्ञानहै तिसमें समवाय और विषय दो प्रकारके भेद होनेसे विवाहमें वरका कर्तृत्व और कन्याका कर्मत्व स्पष्ट प्रतीत होता है इस्से विवाह शब्दके कहनेसे यह बात आती है कि

वर और कन्याके विशेष संयोगका भाव मनमें उदय होताहै, विशेष संयोग कहनेका भाव यहहै कि पुरुष स्त्रीका आत्मा मन शरीरके भरण पोषण रक्षा आदिका भार अपने ऊपर लैना स्वीकार करताहै, इस प्रकारके संयोगको छोड़ और किसी प्रकारके संयोगको विवाह नहीं कह सक्ते हैं, इस प्रकारके संयोगसे अविच्छेद संबंध होताहै अब वोह विवाह कितनी अवस्थामें होना चाहिये सो निर्णय किया जाताहै, अंगिरा ऋषिनेंभी (अष्टवर्षाभवेद्गौरीति) यही श्लोक लिखाहै जो पाराशरजीने लिखाहै, यह केवल संज्ञा मात्र बांधी है कि आठ वर्षकी जो कन्याहो उसे गौरी जो नव वर्षकी बालिका हो उसकी संज्ञा रोहिणी, जो दश वर्षकी हो उसका नाम कन्या होताहै इस्से आगे रजस्वलाका समयहै जो बहुधा द्वादश वर्षकी अवस्थातक हो जाताहै और जो स्वामीजीने यह लिखा है कि गौरीपार्वतीका नामहै सो क्या पार्वती सदा आठही वर्षकी रहती है और रोहिणी नौही वर्षकी रहती है और जो नामके अनुसारही अर्थ करते हो तौ चंपा भागवती आदि नामानुसारही कर्मभी होने चाहियें, तुह्मारा नाम दयानंद था, तुह्मे सदा आनंद रहना चाहिये था, फिर जब मुरादाबादमें आयेथे तौ मेरे सामने कहाथा, कि आजकल शरीर दुखी है दस्त होते हैं फिर नामानुसार अर्थ माने तौ व्याकरणमें जिन शब्दोंकी नदी संज्ञा मानी है, तौ क्या वे शब्द पानी होकर बहते हैं इस्से यह उच्चारण मात्र संज्ञा बांधी है वे बालिका पार्वती वा रोहिणी नहीं हो जाती जब हम कहें कि यह बालिका रोहिणी है तौ जानलैना कि इसकी अवस्था नौ वर्षकी है कन्या कहनेसे दश वर्षकी अवस्था प्रतीत होती है और इसी समयमें विवाहभी कर देना योग्य है जबतक रजस्वला नहो क्यों रजस्वला होने उपरान्त वोह नारी सन्तानोत्पत्तिके योग्य होजाती है इसीसे आठ वर्षसे लेकर १२ वर्ष पर्यंत कन्याका विवाह कालहै जैसा मनुजी लिखते हैं

त्रिंशद्वर्षोवहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् त्र्यष्टवर्षोष्ट वर्षाम्वाधर्मेसीदति सत्वरः मनु० अ० ९ श्लो० ९४

तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी कन्यासे विवाह करै जो मनोहर हो और चौबीस वर्षवाला आठ वर्षकी अवस्थावाली बालिकाके संग विवाह करले इस्से शीघ्र करनेमें धर्ममें पीड़ा होती है यही मनुजीकी विवाह करनेमें आज्ञाहै इसीका आशयले पाराशरजीने श्लोक बनाये हैं जब कि शास्त्रोंमे ऋतुमती स्त्रीके पास न जानेसे महादोष कथन किया है उसका कारण यह है कि वोह समय सन्तानोत्पत्तिका होताहै और ऋतुदान विना विवाहके कहां यदि विवाह हो जाय तौ ऋतुसमयमें संयोग होनेसे कदाचित् संतानकी उत्पत्ति होजाती है इसी कारण ऋतु धर्म जिसे होने लगा हो तो उसका विवाह नहीं करनेसे माता पिता पापभागी होते है इसी कारण पाराशरजीने

माता चैवेति यह श्लोक लिखा है कि ऋतुमती होनेसे पहले विवाह कर देना नहीं तौ पापभागी होना पडेगा और सुश्रुतमेंभी लिखा है अध्याय १०

अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षांपत्नीमावहेत्

विद्यासंपन्न पुरुषको जिसकी अवस्था २५ वर्षकी हो उसको बारह वर्षवालीसे व्याह करना योग्य है इस्से यह सिद्ध होता है कि पुरुषकी अवस्था २५ वर्षसे कमन हो जब विवाह करै औ कन्याकी १० अथवा बारह वर्षसे कमन हो उस समय विवाह कर दे तौ उसमें बहुत गुण प्राप्त होते हैं, क्यों कि विवाहका अभिप्राय वर वधूके अच्छेद्य संयोगसे कामोपभोग पूर्वक सृष्टिप्रवाह चलानेकाहै संयोगमें, वियोग न होनेके कारण सहवास लज्जा भय अनुराग और स्नेह यह सब बाल्यावस्थाभ्यस्त होने चाहिये, यह बात सब कोई जान्ते हैं कि जिसका जितना अधिक सहवास होता है उसके दुःख और सुखका उसे उतनाही अधिक दुःख सुख भागी होना पडताहै, और स्त्रियोंको तौ अधिकही होता है, जैसे कि माता पिताकी अपेक्षा पुत्रकी अधिक सहभागिनी होती है, इस प्रकार बाल्यावस्थाभ्यस्त सहवास स्त्रियोंके अच्छेद्य संयोगका मुख्य कारण है इसी प्रकार लज्जा और भयका जितना अभ्यास बालकपनसे हो उतनाही अच्छाहै, विवाहिता लडकी विवाहके दिनसेही घूंघट काढने लगती है, और कई प्रकारकी सुसरालकी रीति पालन करने लगती है, और साससुसुरका भय उसी दिनसे चित्तपर आजाताहै, कई प्रकारके पति सम्बन्धी व्रत नियम पालन करने लगती हैं, ससुरालके देशके मनुष्योंसे अधिक लज्जा करती, हैं उनसे भाषणतक नहीं करती, और गृहस्थके कामकाज रसोई, सीना, गोटा, किनारी, आदिजो कुछ गृहस्थ सम्बन्धी कर्म हैं जो स्त्रीको अति आवश्यक हैं मन लगाकर सीखती हैं, जिस्से कि द्विरागमन पर्यन्त गृहकार्योंमे चतुर हो जाती हैं, यदि सोलह वर्ष वा पच्चीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करै तौ इसमें स्त्रियोंमें दुश्चरित्र होनेकी बडी शंकाहै क्योंकि

पानंदुर्जनसंसर्गः पत्याच विरहोटनम्
स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् मनु०

मद्यपान खोटे पुरुषोंका संग पतिका वियोग घूमना पराये घरका वास और अधिक सोना यह स्त्रियोंके छःदूषण हैं सो सुसरालमें रहने अथवा कन्या अवस्थामें विवाह होनेसे यह सब दोष बचते हे विवाहित बालिका बहुत नहीं फिरती सवेरी उठना पडताहै तथा सुसरालियोंके भयसे लज्जादिक सब बनी रहती हैं, पतिसेभी बहुत वियोग नहीं रहता, अब बडी अवस्थाका विवाह सुनिये वे मातापिताकी प्यारी होनेसे भय नहीं करती, परदाकिसीसे नहीं करतीं, यदि कुछ माता आदि शिक्षा करैं तौ ध्यान नहीं देती, और विना व्याही बहुधा तमासे देखती गुडिये खेलती इधरउधर भ्रमण

करती रहती हैं, और दुर्जनोकी गोष्ठीमेंभी बैठनेका संभवहै मद्य नहीं तौ भंग तौ चा-
खतीही हैं, यदि बहुत सौना देखकर माता कहती है बेटी उठ बहुत मत सोवै तौ
यही कहती हैं कि मा तूतो हमे सौनेभी नहीं देती है, यदि मा घरमें बैठनेको कहैं तौ
वोह कहती हैं कल हमारे घर वसन्ती और हिरियाभी तौ आईथीं, उनकी माने उन्हे
नहीं वर्जा, तु हमारेही पीछे पड़ी रहे है, वस यह कह चल दीं, और मनुजीके उक्त
दोषोंको सार्थ करने लगी, फिर उनका पतिके साथ अच्छेद्य संयोग किस प्रकारसे
हो इसी प्रकार स्नेह और अनुराग जितने बालपनसे अधिक अभ्यस्त होगे उतनेही
अधिक बलवान रहैंगे फिर त्रियोदश वर्ष प्रारंभमें कामका संचार होजाताहै किसीपर
दृष्टि जा पड़ी वा किसी धूर्त पुरुषने वशमें करलिया तौ बस सब कुछ गया पतिव्रत
तौ गया अवचाट लगगई

गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ती नवंनवम्

जैसे गाये वनमें नवीन तृण चाहती हैं इसी प्रकार स्त्री नवीन नवीन पुरुषोंकी चा-
हना करती हैं यह दशा उनकी होती है जिनका पतिसे अभ्यस्त अनुराग नहीं है
इस कारण थोडी अवस्था १० वा बारहवर्षमें कन्यका विवाह करना, यदि यह कहो
कि युवा अवस्थामें स्त्री रुचि अनुसार वरढूंढ लैगीं तौ व्यभिचाररिणी न होंगी तौ
इसका उत्तर यह है कि प्रायशः स्त्री जाति पुरुषोंमें पतिको अन्यान्यगुणोंकी अपेक्षा
सुन्दरता युक्त हौना अधिक चाहती है, जैसे कि पुरुष सुंदर स्त्री ढूंढते है और यह
भी एकबात है कि पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष तब तक अच्छा लगता है कि
जबतक भोगा नहो भोग उपरान्त सुन्दरभी रूप रहित लगतेहैं, और पतिका प्रेम बा-
लकपनसे अभ्यस्तनहोनेसे वे दूसरे उस्से अधिक सुन्दर पुरुषसे प्रीति करसक्ती हैं
और अभ्यस्त प्रेममें यह बात नही होती, वोह तौ सर्वांगमें वस जाताहै और बाल
विवाह मत करो, यह कहना ठीक नहीं किन्तु बाल लडकेका विवाह करना किसी
प्रकार उचितनहीं यदि दस वर्षकी लड़कीसे विवाह कियातौ २० वर्षका पति
हौना योग्यहै वा १९ वर्षका इस्से कमती किसी प्रकार नहीं यहांतक माहा-
त्माओंने मर्यादा करदीहै, कि इस्से कमती अवस्थाका विवाह नहोना चाहिये, तौ
इस समयकी प्रथाके अनुसार पांच वा तीन वर्षमे द्विरागमन होताहै फिर एक या दो
वर्षमें आयाजाई खुलतीहै जिसको (रौना) कहतेहैं इस समयतक स्त्रीकी अवस्था
पन्द्रह वा सौलह वर्षकी होजाती है और वरभी २५ वर्षवा २६ वर्षकी अवस्था का
होजाताहै और १५ वर्षमें विबाह हुआतौ २१ वर्षका होजाता है इसी पांच वर्षमें स्त्री
घरके सब कार्योंमें चतुरहोजातीहै और कार्य मात्र विद्याभी पढसक्तीहै जिस्से अपना
और बालक जो हो उसका पालन यथावत् कर सकै और यही सुश्रुतकारभी कहते

हैं कि १६ वर्षकी स्त्री २५ वर्षका पुरुष यह संयोगके और गर्भधारण स्थापनके योग्य होते हैं कुछ यह इस श्लोकका अर्थ नहीं है कि इतनी अवस्थामें विवाह करै यह तौ संयोगका समय लिखाहै विवाहका नहीं है वाग्भटने १६ और २० वर्षकी आयुमें स्त्री पुरुषोंका संयोग मानाहै पर विवाह नहीं और इसी प्रकार होताही है लड़कालड़कीके आधीन विवाह होनेमें यह दोषहै कि स्त्री रूपकी प्यासी होती हैं जाने कौनसे जातिके पुरुषको पसन्द करै क्यों कि "भिन्नरुचिर्हिलोकः" मनकी रुचि सबकी भिन्न होती है तौ ऊंच नीच संयोग होनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है, और यहभी देखा जाताहै कि बड़ी अवस्थावाली अनव्याही बहुतायतसे रूप देखकरही मोहित होती है और हुईभी है यह इतिहासोंमें श्रवण कियाहै, यह स्वयंवर क्षत्रियोंमें बहुधा होता था, जिसमे क्षत्रिय जातिके राजा एकत्र होते थे, स्वामीजीने जाति वर्ण सब मेंट सबहीके वास्ते लिख दिया मानो वर्णसंकरकी उन्नतिका द्वार खोल दिया.

और जब कि कन्यादान शब्द विवाहमें कहा जाताहै तौ कन्या विना पिताकी अनुमति स्वयं कैसे पतिवरण करसक्ती है जब कि दान दिया जाताहै तौ देनेवालेको अधिकारहै चाहें जिसे दे दें परन्तु दाताको पात्रापात्रका विचार अवश्य कर्तव्य है आपने तौ कन्यादानकी प्रथाही मेटनी विचारी है मनुजी स्त्रीकी स्वाधीनता नहीं अंगीकार करते हैं सुनिये

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्ययौवने पुत्राणांभर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम् १४८ अ० ५ मनु०
यस्मै दद्यात्पितात्वेनां भ्राताचानुमते पितुः
तं शुश्रूषेतजीवंतं संस्थितंचन लंघयेत् १५१

बाल्यावस्थामें पिताके वशमें यौवनमें पतिके वशमें भर्त्ताके मरनेपर पुत्रोंके वशमें स्त्री रहे परन्तु स्वतंत्र कभी न रहे १४८ जिसे इसको पिता दे देवा पिताकी अनुमतिसे भ्राता देदे उसकी यावज्जीवन सेवा करती रहै और मरनेपरभी श्राद्धादि करै कुलके वशीभूत रहे मर्यादाको न लंघन करै इत्यादि प्रमाणोंसे स्त्री स्वयं पतिवरण नहीं करसक्ती स्वयंवर राजोंमें होता है

और आर्य लोगभी थोड़ी अवस्थामें विवाह करते थे रामचन्द्र महाराजका १५ वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआथा यह वाल्मीकिसे सिद्धहै, और अभिमन्युकाभी थोड़ीही अर्थात् १४ वर्षकी अवस्थामें हुआथा, और विवाहसे थोडेही दिन पीछे भारतके युद्धमें मृतक हुए उस समय उनकी स्त्री उत्तरागर्भवतीथी, और उससे राजा परीक्षित् उत्पन्न हुए कहिये जो २५, ३०, ४८ वर्षतक बैठे रहते तौ पाण्डवोंका वंश समाप्तही हो चुकाथा तथा औरभी पंचदश वर्षकी अवस्थामें विवाहके प्रमाणहैं और इस

समय तौ पन्द्रह बीस वर्षकी अवस्थातक विवाह करही देना चाहिये क्यों कि इस समय सब लोग जो चारों वर्णके हैं बहुधा बालकौंको फारसी पढाते हैं और इस फारसीने ऐसी दुर्दशा करदी है कि थोड़ी अवस्थामेंहीं बालक फारसीके शेर गजल दीवान आदि पढकर कामचेष्टामें अधिक मन लगाते हैं, और अनुचित प्रीति करके तेल फुलेल सुरमा डाले चिकनिया बने फिरते है जिनके स्त्री हुई वोह तौ कथंचित् ठीक रहते है जिनके न हुई वे बाजारमें जाकर अथवा शून्य मंदिरमें बैठकर वीर्यको स्वाहा करने लगे उपदंश मूत्रकच्छ्र होगया बस तीस वर्षतक खातमा प्रगटके ब्रह्मचारी बड़े भारी भीतर मसाला कुछभी नहीं यदि स्त्री हो तौ २०, पच्चीस वर्षमें एक या दो सन्तान होजाती है जो पिताकी तीस चालीस वर्षकी अवस्थातक पुत्र समर्थ होकर पिताकी सहायताके योग्य होजाताहै क्यों कि इस समय ५० अथवा ६० वर्षकी अवस्थामेंही बहुधा मृत्यु होजाती है जब ४८ वर्षमें (जो क्षीण अवस्था होती है) जैसा लिखाहै कि "चतस्रोवस्थाःशरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता किंचित्परिहाणिश्चेति आषोडशावृद्धिः आपंचविंशतेर्यौवनं, आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता, ततः किंचित्परिहाणिश्चेति" अर्थ इस शरीरकी चार अवस्थाहै, वृद्धि यौवन संम्पूर्णता और किंचित्परिहाणि जन्मसे लेकर १६ वर्षतक वृद्धि अवस्था कहाती है अर्थात् बढती है और २५ से लेकर ४० वर्ष पर्यंत सम्पूर्णता अवस्था कहाती है पुनः ४० वर्षसे उपरांत कुछ कुछ घटने लगती है ब्याह किया तौ दो तीन वर्ष उपरान्तही पूर्ण जराग्रस्त पुरुष और पूर्ण युवावस्था युक्त स्त्री होती है तौ बस "वृद्धस्य तरुणी विषम्" बुड्ढेको तरुणी विषहै उनको तौ बहुत प्रसंग भाताही नहीं, बस वे किसी और नव युवाकी खोज करके धर्मच्युत होती हैं, और जो यह कहो कि ब्रह्मचर्यसे आयु बढती है सो यहभी नहीं देखा जाता क्यों कि स्वामीजीने तौ पूर्णतासे ब्रह्मचर्य धारण कियाथा, परन्तु अट्ठावन ५८ वर्षकी अवस्थाहीमें शरीर छूटगया यदि स्वामीजीका ४८ वर्षमें किसी बीस वर्षकी अवस्था युक्त स्त्रीसे विवाह होता तौ वोह विचारी अब शिर पटकती या नहीं हां प्राणायामसदाचार तपादि करनेसे निश्चय आयु वृद्धिको प्राप्त होती हैकेवल वेद वेद वाणीसे कहने तथा श्रुतियें पढनेहीसे धर्मात्मा नहीं होता क्यों कि

अग्नि होत्रंच वेदाश्च राक्षसानां गृहे गृहे
क्षमासत्यंदयाशौचतपतेषांनविद्यते वाल्मी०

राक्षसोंके घरमे भी अग्निहोत्र और वेदथे परन्तु उनमें क्षमा सत्य दया पवित्रता और ज्ञान युक्त तप नहींथा इस्से वें राक्षसत्वसे मुक्तनहींथे और यदि ब्रह्मचर्यही आयुका वृद्धि करनेवाला होता तौ स्वामीजीकी आयु ४००व र्षकी होती क्योंकि वे आपनेको योगीभी तौ मान्ते थे अथवा पूरे सौही वर्षकी होती जो ब्रह्मचर्यसेही आयु बढती है तौ आपका ब्रह्मचर्य ठीक नहीं और जो ब्रह्मचर्य ठीक-

नहीं और जो ब्रह्मचर्य ठीक तौ आयु क्यों नहीं बडी ब्रह्मचर्यसे तो वीर्यकी अधिकता होती है जिस्से शरीरमें पूर्णबल होताहै जैसा योग शास्त्रमें लेख है (ब्रह्मचर्याद्वीर्य लाभः) अर्थात् ब्रह्मचर्यसे वीर्यका लाभ होता है हां योगाभ्यास प्राणायाम समाधीसे आयुकी वृद्धि होती है अन्यथा आयु पूर्वकर्मानुसार निर्णीत होतीहै जैसे नीतिमें लिखाहै कि

आयुःकर्मचवित्तंचविद्यानिधनमेवच।
पंचैतानीह सृज्यन्तेगर्भस्थस्यैवदेहिनः॥

आयुः कर्म धन विद्या मरण यह पांच वस्तु देहीके गर्भमें ही नियत हो जाती है सबहीबात कर्मानुसार होती है इसी प्रकार जिसके कर्म में वैधव्य है क्या उसे कोई मेटनेको समर्थहै यदि कर्म मिथ्या हो जाय तौ जगतकी व्यवस्थाही मिटजाय यह मरण जीवन सबही कर्मानुसारहै यदि बडेहुए विवाह होतौ क्या बडी उमरमें कोई विधवा नहीं होतीं क्या बडी उमरमें विवाह करके कोई कर्मको मेटसक्ताहै इस समय के विवाह और संयोगकी रीति वाग्भटके अनुसार होनी चाहिये क्योंकि कलियुगके वास्ते यही अधिकांशमें प्रमाणहै

अत्रिः कृतयुगेचैवत्रेतायांचरकोमतः
द्वापरे सुश्रुतः प्रोक्तः कलौ वाग्भटसंहिता

सत युगमें अत्रि संहिता त्रेतामें चरक संहिता द्वापरमें सुश्रुत और कलियुगके लिये वाग्भट संहिताहै अब देखना चाहिये कि वाग्भट किससमयमें स्त्री पुरुषका संयोगकथनकरती है

पूर्णषोडशवर्षास्त्रीपूर्णविंशेनसंगता
शुद्धेगर्भाशयेमार्गे रक्तेशुक्रेऽनिलेहृदि १
वीर्यवंतंसुतंसूतेततोन्यूनाब्दतःपुनः
रोग्यल्पायुरधन्योवागर्भोभवतिनैववा २

पूर्ण सोलह वर्षकी स्त्री वीस वर्षकी अवस्थावाले पुरुषके साथ संगकरनेसे शुद्धगर्भाशय और गर्भाशयका मार्ग तथारुधिर वीर्य और पवन हृदयमें होनेसे स्त्री सामर्थ्यवान पुत्रको प्रगटकरै इसस न्यून अवस्थावाले पुरुष और स्त्रीके संयोग होनेसे रोगी और अल्पायु और दुष्टबालक होताहै. और—

द्वादशाद्वत्सराद्दूर्ध्वमापंचाशत्समाः स्त्रियः
मासिमासिभगद्वाराप्रकृत्यैवार्त्तवंस्रवेत्

बारह वर्षसे लेकर ५० वर्षकी अवस्था पर्यन्त महीने २ स्त्री रजोवती होतीहैं अब इस सब कथनका तात्पर्य यहहै कि दशवर्षसे ऊपर तौ कन्याका विवाह करै और सोलह वीसवर्षकी अवस्थामें पुरुषका विवाह करना इस्से कमती कभी नकरै कभी नकरै यह सिद्धान्त है इसमेंभी १६ वर्ष मध्यम और वीसवर्षका विवाह उत्तम है इसमें विद्याभी पूर्ण होजायगी और कठिन रोग जो बालावस्थाके हैं उनसेभी बचजायगा आगे प्रारब्ध तौ बलवानहैही पुनः तीन अथवा पांचवर्षमें द्विरागमनके होनेतक दौनो की अवस्था वैद्यकके अनुसार पूर्ण हो जायगी और जो १६ । २० में विवाहहो तौ द्विरागमनकी आवश्यकता नहीं. अब वर कन्याके फोटोग्राफ (अर्थात् तसबीर वा प्रति विंव) की लीला सुनिये भला इसमें कौनसी श्रुति प्रमाण है कि वरकी तसबीर कन्या और कन्याकी वरके अध्यापकौंके पास जाय जब वरकी तसबीर कन्याके पास गई तौ वोह सूरतके सिवाय और क्या देख सक्तीहैं और जीवनचरित्र कहांसे आवे जबकी दौनौ हीं अध्यापकोंके पास पढते हैं और उससमय जीवनचरित्रकी आवश्यकता क्याहै क्योंकि केवल विद्या अध्ययनके सिवाय और उनका जीवन चरित्र क्या होगा यही कि अमुक२ग्रंथ पढे हैं वा और कुछ यदि और कुछ हो तौ वोह क्या हो और उसमें कौनसे चरित्र लिखेजांय यही प्रयोजन होगाकि जिस दिनसे जन्मलिया आठवर्षतक खेला फिर पढनेलगा इसके सिवाय और क्या होगा और उस जीवनचरित्रका लेखक और साक्षी कौन होगा आप या आपके चेले और यदि अध्यापक लिखैं तौ एक २ अध्यापकके पास ५० शिष्यहों और वोह एक २ का २५ वर्षका जीवन चरित्र बनावे तौ विद्यार्थियोंको कौन पढावे और फिर विनालाभ २५ वर्षका इतिहास लिखने कौन बैठेगा और एक पुस्तक हो तौ लिखभीदें जहां पचास वा साठ हैं वहां की क्या ठीक क्योंकी जब अध्यापकोंके पास विद्यार्थी रहे तौ उनकी व्यवस्था वेही ठीक जान्तेहैं जब वे धन लेकर पुस्तकैं बनावैंगे तौ यहभी होसक्ताहै कि अधिक धन दैने वालेके औगुणोंको छिपाकर गुणही लिखैंगे क्योंकि वे तौ यह जान्तेही हैं कि यदि औगुण लिखैंगे तौ विवाह नहीं हौनेका और इसी प्रकार लडकीभी करसक्तीहैं कि जो कुछ घरसे खर्च आवै कुछ जीवन चरित्र लिखनेवालेकीभी भेंट करैंगी क्यों कि जब ४०० रुपये तकके नौकरभी बहुधा घूंस खाते हैं तौ जीवनचरित्र लिखनेवालेकी क्या कथाहै "जेहि मारुत गिरिमेरु उडाहीं।कहो तूलकेहि लेखेमाहीं।"यदि कहो कि सब ऐसे नहीं होते हैं तौ और सुनिये यदि उन्हैंने लडके लडकीके औगुणका जीवन चरित्र लिखातौ अब उनसे कौन विवाहकरै वे किसकी जानको रोवैं विधनाका तौ आपने नियोगभी लिखा और ग्यारह भर्ता करने लिखे परन्तुवे क्वारी क्या करें वे पति करैं या नहीं वा कुछ ग्यारहसे अधिक करैं यह कुछ स्वामीजीने लिखानहीं क्योंकि जो औगुणयु-

क्तीहैं उनसे विवाह कौनकरै और तसवीर देखकर पसन्दकरने उपरान्त उससे अधिक रूपगुण मिलनेसे वे स्त्री दूसरेके संगकरनेकी इच्छा कर सक्तीहैं इस्से तसवीर मिलाना ठीकनहीं शोककी वातहै कि जन्मपत्र जिससे रूपरंग स्वभाव विद्या आयु आदि सवकुछ विदित होजाय वोह तौ निकम्मा और यह तसवीर मिलाना ठीक धन्य है इस बुद्धिपर इसकारण यही उत्तमहै कि माता पिताको पुत्रका अधिकसनेह हौनेसे वे चित्तलगाकर कुलगुण सम्पन्न पुरुषको आपही देखैं, तथा उसके व्यवहार की परीक्षा स्वयं अपने संबंधियोंके द्वारा करावैं जैसा कि अवभी होताहै हां नाई आदिके भरोसे सम्बन्ध करदेना महामूर्खताहै, स्वयं देखना चाहिये और बालकपनसे आठवें वा दशमें वर्षतकका इतिहास क्या कार्य देगा, क्या धूरिमें लोटना पडे २ मूत्रादि करना भोजनकूं हप्पा पानीकू मम्मा कहना यहभी उसमें लिखाजायगा, जब कि यज्ञोपवीत होकर गुरुके विद्यापढने गये तौ सिवाय पढनेके और क्या जीवनचरित्र होगा यह जीवन वृत्तान्त आपने जन्म पत्रके स्थानमें चलाने का विचार कियाहै (जिस जन्मपत्रसे कुलगोत्र जन्मदिन आदि सवकुछ विदित हो जाताहै) अब स्वामीजीको यह पूछते हैं कि तुह्मारे माता पिता और तुह्मारा जीवनचरित्र ४० वर्षतक का कहां हैं यदि कोई चेलाकहै कि दयानंददिग्विजयार्क दयानंदजीका जीवनचरित्र है सो यह तौ किसी वालपरिश्रमीने उनकी मृत्युके उपरान्त रचाहै और जो कहो स्वामी जीवनाकर रखगये हैं तौ विनासाक्षी स्वयंलिखित प्रमाण नहीं क्योंकि अपना चरित्र आपही कोई लिखै तौ वोह अवगुण नहीं लिखता वडाईकी इच्छासे इसकारण वोह जीवन चरित्र प्रमाण नहीं और पढानेवालोंके सामने विवाह करनेको कहतेहै पर थोडीसी ओलटसे कहतेहो प्रत्यक्ष ही क्यों नहीं कहदेते कि ईसाई होजाओ क्यों कि ईसाइयोंमें यह प्रथा प्रचलितहै कि पादरी साहव स्कूलोंमें विवाहकरा देते हैं जिसे गिरजा घर कहते हैं प्राचीनसमयसे तौ आजतक पितामाता भाई सम्बन्धियोंके सन्मुख कन्याके ही घर विवाह होता चलाआयाहै फिर आपने यहभी खूबही लिखाहै (कि कन्या और वरकी सम्मति लेकर पश्चात् पितासे अध्यापकलोग कहैं) वाह मुलाकात कराकर पितासे खवर करना यही रीतिसंशोधनकी उच्चश्रेणीका नियमहै जब कन्याके सामने वीस पुरुषोंका फोटो आया तौ सबमें कोईन कोई लटक अन्दाज निराली होगी पसन्द किसे करैं लोकानुसार—एकको स्वीकार करना पडेगा परन्तु चित्तमें वोह और पुरुषोंका भी कटाक्ष समायारहैगा और यही व्यभिचारका लक्षणहै क्यों कि सब अपनेसे उत्तमहीको चाहतेहैं स्वामीजीने गुणकर्म मिलाने लिखे कन्याकी इच्छा विशेषमें हुईवे अध्यापक गुण मिलाने लगेऔर कहने लगे कि इसमेंसे कोई पसन्दकरलो तौ अब चाहैं लाचारीसे वे अंगीकार करलें परमनमें तौ औरही पुरुष रहा और यही दशा पुरुषोंकी हैं तौ अब कहिये वोह

पतिका अचल प्रेम और परस्परकी सम्मति कहां रही यह तौ बडी पराधीनी होगई और गुण कर्म क्या मिलावैं कर्म तौ सबका पढनाही ठहरा फिर मिलावे क्या यही कि जो पुस्तक लडका पढता हो वही लडकी और आपने अध्ययनके सिवाय सीना रसोई आदि सिखाना तौ लिखाही नहीं बस व्याह होनेपर दोनौ पुस्तकें आदि पढै गृहस्थी-का कार्य आपके शिष्य वर्गकर आया करैंगे और कदाचित् कोई कन्या रूमाल काढना जान्ती हो तौ उसका पतिभी रूमाल काढनेवाला होना चाहिये नहीं तौ कर्म कैसे मि-लैगा और गुण कौनसे मिलाये जांय यदि किसीमें तमोगुण हो तौ दूसराभी तमोगुणी होना चाहिये जो रातदिन लडाई हो और यह कैसी बात कही गुण कर्म न मिलैं तौ कारी रहो विधवाकी तौ कामाग्नि बुझानेको यह दया करी कि ११ पतितक करनेमें दोष नहीं और कुमारीपर यह कोप कि व्याहही न करो भला उसकी सन्तान उत्प-त्तिकी इच्छा और कामबाधाको कौन पूर्णकरैगा खूबही भंग पीकर लिखाहै औ निर्धनसे तौ आपकी रीतिका विवाह बनही नहीं सकता क्योंकि जब पूर्ण विदुषी स्त्रीं आई तब रसोई कौनकरै लाचार किसीको नौकर रखना पडैगा उनके पास इतना द्र-व्य है नहीं अबलगाक्लेश होने सब पढे अब रसोई कौनकरै शायद शूद्र मिलजाय तौ आश्चर्य नहीं मेरे कहने का यह आशय नहीं कि कन्याको मत पढाओ पढाना बे शक चाहिये परन्तु गृहस्थके कार्यभी प्रबलतासे सिखाने चाहियें जिनका प्रतिक्षण प्रयोजन पडता है जिसके जाने विनाभी क्लेश होता और स्त्री फूहर कहाती हैं

और--स्वामीजीने वोह गुप्त बात न लिखी क्या पूछै यही कि उपदंशनपुंसकतादि-रोगतौ नहीं हैं वा आकर्षण स्थापन आता है या नही सो यह बात विनापरीक्षा किये कैसे विदित हो सक्तीहै जो गुप्तबात है उसे अध्यापक कैसे देखें क्यावे भी किसी प्रकार उनसे निर्लज्जता युक्त भाषणकरैं शोक! गुप्त बातको खोलहीकर लिखदेते कि वि-वाहसे प्रथम एकवार संयोगभीहो जाय तौ सब भेद खुलजाय यदि पुष्टता आदि कहो तौ वरण करैं नहीं तौ दूसरेकी फिक्र करै अन्यथा निज दोष देखने कहनेवाले बहुत थोडे हैं पर कन्याकी परीक्षा कि यह वन्ध्या तौ नहीं है किसी अच्छे डाक्टरसे करानी चाहिये क्यों कि बांझ हुई तौ सँतान कहां अथवा दो चार मास विवाहसे प्रथम संयोग होता रहे जो गर्भ स्थितहो जाय तौ विवाह करलैं नहीं तौ त्याग न करदें इस प्रकार करनेसे कोई विवाहित पुरुष निर्वंश न होगा और स्वामीजीकी इष्ट सिद्धिभी होगी और जिनके पास धन आदिका प्रबन्ध न होवे क्या वे बैठे हुए आपको आशिर्वाद दें. बहुत ऐसे हैं जो रोज लाते और गुजरान करते हैं वे भला खानपानका प्रबन्ध (इक़रार-नामा) कैसे लिख सक्ते हैं बस धनी थोडे निर्धन बहुत विवाहित थोडे कारेकारी अ-धिक होनेसे कामाग्निसे पीडित हो कुमार्गमेंही पदार्पण करैंगे और अडतालीस वर्षका

कृश शरीर दसबीस दिन उत्तम भोजन करनेसे कैसे यथेच्छ पुष्ट होजायगा वाह स्वामीजीकी वैद्यक तौ पूर्ण है और इस जरामुख अवस्थाका फोटोभी मनोहर होगा विवाहका समयभी कैसा अद्भुत रक्खा है जब रजस्वलासे शुद्ध हो उस दिन विवाह करै और आपकी बनाई संस्कारविधिके अनुसार व्याह करावे, यह तौ बडीही अलौकिक बात कही जब आपकी संस्कार विधि नहीं थी, तौ काहेके अनुसार विवाह होताथा, भला अब तौ आप कहते हो ब्राह्मणोंने ग्रंथ कल्पना कर लिये पूर्व ऋषि मुनि विवाह क्रिया कौनसे ग्रंथके अनुसार करते थे क्यों कि यह आपकी पुस्तक तौ जबतक बनी ही नहींथी, तौ उनके विवाहादिकभी अशुद्धही हुए. और स्वामीजीने उसमें बनायाही क्या है वेद मंत्र तौ पूर्वकालसेही थे, आपने उसमें भाषा लिखदी है और पठनपाठन विधिमें सब भाषा ग्रंथ त्याज्य माननेसे यहभी भाषा मिश्रित होनेसे त्याज्यही है कार्य मंत्रोद्वारा होताहै भाषासे कुछ प्रयोजनही नहीं फिर दयानंदजीने उसमें क्या बनाया और जहां अबभी यह संस्कार विधि नहीं है वहांके लडका लडकी क्या कारेही रहैं और संस्कारविधिकी शिक्षा कैसी उत्तम है "पुरुष स्त्रीकी छातीपर हाथ धरकै स्त्री पुरुपके हृदयपर हाथ धरकै कहै तुम मेरे मनमें सदा वस्ते रहो" जहां कुटुम्बी वृद्ध बैठे हों वहां नारियोंकी यह ढीठता, यह आपका कन्याका अधिक अवस्थाका विवाह और नियोग यह दो लज्जा नाशक व्यभिचारके खंभेहैं, फिर विवाह करतेही दोनौ स्त्रीपुरुष एकान्त सेवन करने चले जांय यह कौन धर्म कि शतशः स्त्रीपुरुष विवाहमें उपस्थित हों और वे दोनो स्त्रीपुरुष लाजशील छोड दस ग्यारहही बजे एकान्त सेवन करने चले जांय और वीर्य स्थापन और वीर्य आकर्षण दोनौ स्त्रीपुरुष करैं भला कहीं आपने इसकी क्रियाभी तौ नहीं लिखी शायद गुप्त किसीको बताई हो जब स्त्रीने वीर्याकर्षणका पहलेसे अभ्यास किया होगा जबही तौ आकर्षण करसक्ती है नहीं तौ नहीं और पुरुषने स्थापनका अभ्यास किया होगा तभी तौ आता होगा नहीं तौ क्यों कर आसक्ताहै, और आकर्पण विना आसन योग क्रियाके आ नहीं सक्ता यह क्रियामें कन्या और पुरुषोंको कौन सिखावे तौ यहभी अध्यापक वा अध्यापिकाओंके शिर मढोगे क्या, हमें लिखते लाजआती है कि स्त्रीका जबतक पुरुपसे संयोग न हो तबतक उन्हे स्वयं आकर्पणका अभ्यास कैसे हो सक्ताहै इसी प्रकार पुरुषकोभी अभ्यासमें स्त्रीकी आवश्यकताहै तौ उनके अभ्यासके अर्थ स्त्रीपुरुषभी नौकर रखने चाहियें यह विधि स्वामीजीने जाने कहां सीखी जब यह विधि आती होगी तभी तौ लिखा और सास ससुरभी प्रसन्न होते होंगेकि हमारी पुत्री वीर्याकर्षण कररही है और जामाता स्थापन कररहेहैं "और पति स्त्रीसे कहे कि मैं अब वीर्य स्थापन करताहूं वोह कहती जाय छोडो में आकर्षण करतीहूं" यह रीति तौ वेश्याओंकोभी लज्जित करती है यह बात

आपने किस देसकी रीतिके अनुसार लिखी है शायद यह आपके त्रिविष्टप अर्थात् कल्पित तिब्बत नामक स्वर्गकी होगी और विना कहे स्त्री जान नहीं सक्ती कि कब वीर्यपात होगा तौ जब पति कहैगा मे छोडताहूं तौ वोह बाला निर्लज्ज हों क्यों कर कह सक्ती छोडो मैं ग्रहण करनेको उपस्थितहूं उधर लड़कीकी माताभी प्रसन्न होते हैं कि पुत्री गर्भधारण कररही है खाक पडे ऐसी रीतिपर जो जंगीलियोंमेंभी नहीं होती होगी यद्यपि स्वामीजीका कामशास्त्रमें अधिक अभ्यास प्रतीत होताहै परन्तु मैने वृद्ध लोगोंसे यह बात सुनी है और वैद्यकके ग्रंथोंमें देखाभी है कि जबतक स्त्री का रज और पुरुषका वीर्य नहीं मिलता तबतक गर्भकी स्थिती नहीं होती सो जबतक रजवीर्य न मिलैं तौ चाहैं अपानवायुसे स्त्री खींचे चाहैं संकोचन करै वा सब आंग सीधे कर आकर्षण करै तौ गर्भकी स्थिति कठिनहै और जो स्वामीजीकाही कथन सत्य होता तौ सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधिके पूर्व सृष्टिही न होती बहुत क्या य दि यह झगडे होते तौ दयानंदजी कीभीजन्म असंभव था यदि गर्भ का तत्काल धारण करना स्त्रियोंके आधीन होता तौ क्यों कोई स्त्री वंध्या होती और पुत्रादिकोंके हेत जपतपका क्यों विधानहोता यह आपकी बात रहस्यकी तौ नहीं किन्तु निर्लज्ज तासे भरी और वर्ण व्यवस्थाका सत्यानाश करने हारीहै यह स्वामीजीकेही लेखका उत्तरहै जितने दोष उस असभ्य लेखमें भरेहैं उन्हें खोलकर दिखा दियाहै जिस्से कि मनुष्य इस सभ्यतानाशक अन्धकूपसे बचैं अपनी ओरसे एक अक्षरभी नहीं लिखा खबरदार दयानंदजीके पंथमें आनेसे यह अनर्थ करने पडेगे इस्से विचार कर इधर पैर रखना. चौथे आठवें महीनेके संस्कारसे क्या फ़ायदा बिचाराहै "प्राचीन लोगोंमें तौ संस्कारोंसे निर्मल बुद्धि आरोग्यता शुभ कर्म युक्त सन्तान संस्कार करनेसे होताहै ऐसा मान्ते हैं" और स्वामीजीने हवनमें तौ वेद मंत्र कंठ रहनेका लाभ बतायाहै यहां संस्कारसे क्या सिद्धिहै और क्या जाने की वोह शूद्रही होजाय तौ यह गर्भाधानके दो संस्कार मिथ्याही जायंगे और संस्कारकी स्वामीजीने आवश्यकता काहेको लिखी वे तौ लिख चुके हैं कि अनुपनीतं शूद्रमध्यापयेत् बिना यज्ञोपवीत शूद्रको वेद पढा वै तौ संस्कारकी क्या आवश्यकताहै जब ४८ बर्ष उपरान्त ब्रह्मचर्य हो चुकैगा तब वर्णोंमें योग्यतासे करदिया जायगा बालकको सुवर्णकी शलाकेसे घी शहद चटानाओम् जीभपर लिखना बालकके कानमें तेरा नाम वेद है ऐसा कहना इस्से क्या प्रयोजन है तथा संस्कार विधिके अनुसार बालकसे ऐसी बातें करना जैसे कोई बडोंसे कहै "हे बालक में तुझे मधु घृतका भोजन देताहूं तुझै में वेदका दान देताहूं हे बालक भूलोक अन्तरिक्षलोक स्वर्गलोकका ऐश्वर्य तुझमें में धारण करताहूं" विचारनेकी बात है क्या यह स्वामीजीका तंत्र नहीं है आप ऐसे कहांके परमेश्वरके दारोगाहै कि तीनो

लोकका ऐश्वर्य चाहैं जिसे हाथ उठाया दे दिया, अब और बालक क्या भूंखे मरैंगे और जिसे त्रिलोकीका ऐश्वर्य मिलगया तौ वोह दरिद्र न होना चाहिये और जब सबके संस्कारकी यही विधि है तौ कोईभी दरिद्री न होना चाहिये और तेरा नाम वेद है यह कानमें कहे भला वोह दस दिनका बालक क्या समझैगा कि वेद किसे कहते हैं आठ दस वर्षकी लडकी तौ वेद मंत्रोंको नहीं समझती यह दस दिनका बालक वेदतक समझताहै क्या खूब और जो कहो कि यह कथन मात्रहै तौ जन्मतेही बालकको क्यों झूंठमें फंसाना इत्यादि दयानंदजीने ऐसे मिथ्या संस्कार लिखे हैं जो प्राचीन प्रथाके विरुद्ध हैं

अब (त्रीणिवर्षाणि) इस श्लोकका आशय सुनिये (यदि स्वामीजीका अर्थ माने कि रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पतिको खोजकर अपने तुल्य पतिको प्राप्त होवै) यह साक्षात् स्त्रीके व्यभिचारिणी बनानेकी विधि महात्माजीने लिखी है माता पिता चैन करें और स्त्री पति खोजती फिरे और आपही विवाहभी करले गुणकर्ममें पुष्टि आदिभी देखले खूब इस श्लोकका अर्थ बिगाड़ा है इसका अर्थ यह है कि (जिस कन्याके पितामातादि नहीं वोह ऋतुमती होनेपर तीन वर्षतक (उदीक्षेत) अपने कुटुम्बियोंकी प्रतीक्षा करै कि यह विवाह कर दें जब यह समयभी बीच जाय तौ अपनी जातिके पुरुषको जो अपने कुलगोत्रके सदृशहो उसे वरण करै यह आपद्धर्म है अन्यथा स्त्रीको स्वयंवरण करनेका नृप कुल छोड़कर अधिकार नहीं है और फिर पीछेसे आपने लिखा कि योनिसंकोचन करै स्वामीजीको इसका बड़ा ध्यान रहताहै छिः छिः ऐसी घिनोनी बातोंसे सत्यार्थप्रकाश पूर्ण है आपने औषधी संकोचनकी नहीं लिखी याद होती तौ लिखते और बालकको धायका दूध पिलाना लिखाहै यह सर्व साधारणसे नहीं निभ सक्ता जिनके पास इतना द्रव्य नहीं है वे क्यों कर दूध पिलानेवाली स्त्री नौकर रख सक्ते हैं इस कारण एकसा सबको कथन करना वृथाहै फिर वोह धाय कौन वर्णकी हो यह आपने नहीं लिखा उसका दूधपान करते २ बालकके स्वभावमें कुछ न्यूनाधिकता तौ नहीं होजायगी धायके लक्षणभी तौ लिखे होते

अब इस सबका सिद्धान्त यही है कि वेद शास्त्रानुसार कन्यासे वर दूना होना उत्तम है ड्योढा मध्यम है और जो आठ सात वर्षके कन्यावरका विवाह करते हैं वे वेदशास्त्र विरुद्ध करते हैं और इसी कारण वे पछताते और दुःखभागी होते है इस अवस्थामें विवाह कभी न करै कभी न करै

एक बात और लिखनी है कि जो ब्रह्मचर्य धारण कराना चाहै और बलबुद्धि युक्त संतान होनेकी इच्छा करै वोह अपने संतानको संस्कृत विद्याहीका उपदेश करावै पढावै उसीसे ब्रह्मचर्य निभ सक्ता है और प्रथमही फारसी भूलकरभी न पढावै

कि फारसी पढतेही स्वभावमें कामचेष्टा आ जाती है थोड़ी अवस्थामें इधर उधर वि-षय करनेसे गरमी आदिरोगोंसें पीडित हो जाते हैं जिनका फिर जन्मभर ठीक नहीं लगता और यह रोग प्राणोंके संगही बहिर्गत होतेहैं इस कारण प्रथम संस्कृत पढा-ना जिसमें धर्मनिरूपण है विषयकी निवृत्ति है और जिन्होंने ब्रह्मचर्य नहीं धारण किया वे हकीमजीको हाथ दिखलाते और पुष्टिकी दवा पूछते फिरते हैं स्त्रियें संतानो के हेत बावाजीकी अलगही सेवाकरती हैं यह आचरण बड़ाही निषिद्ध है इसीसे देश अधोगतिको प्राप्त होरहा है इसके आगे वर्ण व्यवस्थामें लिखा जायगा.

वर्णव्यवस्थाप्रकरणम्

स०. पृ० ८९ पं० २१ (प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मणहो वोही ब्रा-ह्मणी ब्राह्मण होताहै और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हों उनका संतान कभी ब्राह्मण होसक्ताहै (उत्तर) हां बहुत होगये हैं होतेहैं और होंगे जैसे छान्दोग्य उपनिषदमें जाबाल ऋषि अज्ञात कुल महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मा-तंग ऋषि चांडाल कुलसे ब्राह्मण होगये थे पृ० ८६ पं०३ अबभी जो उत्तम वि-द्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मणके योग्य होताहै और मूर्ख शूद्रके योग्य होताहै र-जोवीर्यके योगसे ब्राह्मण शरीर नहीं होता

समीक्षा--अब यहांसे स्वामीजी जन्मसे वर्ण छोड गुणसे जाति मान्नेलगे और यहीं से वर्णसंकर करने की रीतिकी नीमडाली कि बहुत शूद्र ब्राह्मण होगये प-हले कथा छान्दोग्यकी सुनिये जिसमें जाबालिजीका वर्णनहै जिसमें उनको विद्या-ध्ययन कराईहै यह प्रसंग नहींहै कि वोह ब्राह्मण होगये वोह तो थेही ब्राह्मण जब वोह गौतमजीके पास पढने गये तो गौतमजीने पूछा

किंगोत्रोनुसौम्यासीति सहोवाचनाहमेतद्वेदभोयद्गोत्रोहमस्म्य पृच्छंमातरꣳसामांप्रत्यब्रवीदहं चरंती-परिचारिणीयौवनेत्वा मलभेसाहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जाबालातुनामाहमस्मिस त्यकामोनामत्वमसीतिसोहꣳसत्यकामोजाबालोस्मि भोइति तꣳहोवाच नैतदब्राह्मणो वक्तुमर्हतिसमिधꣳसौम्याहरेति छान्दोग्ये०

कि हे सौम्य तेरा क्या गोत्रहै जाबालि बोले यहमें नहीं जान्ता मेने मातासे यह पूछाथा उसने कहा में घरके कामकाजमें फंसीरहैथी युवावस्थामें तेरा जन्म हुआ पिता परलोक सिधारे मुझै गोत्रकी खबर नहीं तुह्मारा नाम सत्यकाम मेरा नाम जाबालाहै यह बात सुन गौतमजीने जाना कि ब्राह्मण विना सत्ययुक्त छल र-हित ऐसे वाक्य और कोई नहीं कहसक्ता क्योंकि "ऋजवो हि ब्राह्मणाः" ब्राह्मण स्व-

भावसे सरलहोते हैं, इस्से उसे निश्चय ब्राह्मण जानकर कहा कि समिधालेआ और विधिपूर्वक उपनयन कराकर विद्या पढाई, केवल जाबालिका गोत्र नहीं विदितथा उसकी माको उसकी याद नहीं थी यदि वोह क्षत्रियादि वर्ण होता तौ उसकी माता उसे अवश्य वतादेती उसे तौ विद्या अध्ययन करनेमें ऋषिने ब्राह्मण निश्चय विचार अध्ययन कराया स्वामीजीने यह विवाह प्रकरणमें झगडा उठाया है जाबालिके इतिहाससे ब्राह्मण होना सिद्धहै.

अव विश्वामित्रका चरित्र सुनिये जिनको आजतक कौशिक अर्थात् कुशिकके वंशमें उत्पन्न और गाधि पुत्र सव कोई जानते और कहते हैं, इनकी कथा प्रसिद्ध वहुत है वाल्मिकीसे सार लेकर लिखते हैं कि वशिष्टजीसे कामधेनुके मांगनेपर न मिलनेसे क्रोधित हो युद्ध कर हार गये तौ ब्रह्म तेजको छत्रवलसे अधिक समझ तप करनेको चलेगये और कई सहस्र वर्ष तप करकेभी ब्रह्म वलकी प्राप्ति न हुई पश्चात पुनः अत्युग्र तपस्या कर ब्रह्माजीके वर देने और वशिष्टके अंगिकार करनेसे ब्रह्म तेज युक्त हुए यह वात नहीं कि वोह ब्राह्मण अपनेको कथन करैं, आजतक उन्हें कौशिक कहते हैं और उनकी संतानको क्षत्री कहते हैं ब्रह्म तेजकी उनको प्राप्ति हुई सो इस कारणसे नहीं यत्न किया कि उच्च गोत्र ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करै केवल यही इच्छाथी कि जैसे वशिष्टके ब्रह्म दंडने सव मेरे अस्त्र निष्फल करदिये ऐसाही मेरे अस्त्रका प्रभाव होजाय सोभी वहुत तपसे और ब्रह्माजीके वरसे तथा वशिष्ट ऐसे त्रिकाल दर्शीके ब्रह्मर्षि कहनेसे विश्वामित्रने अपनेको कृतार्थ माना और यह जो स्वामीजीने लिखा कि (उत्तम विद्यावाला ब्राह्मणके योग होसक्ताहै मूर्ख शूद्र होताहै) तौ क्या विश्वामित्रमें उत्तम विद्या नथी क्या वेद नहीं पढे थे वे तौ वडे विद्वानथे क्यों कि वहुतसे मंत्रोंके संग उनका नाम उच्चारण किया जाताहै, यदि पढने हीसे ब्राह्मण होता तौ विश्वामित्रजीको इतना परिश्रम क्यों करना पडता, और सभी विद्यावान ब्राह्मण कहलाते, हजारों वर्ष तप करकै ब्रह्माके वरसे एक राजा ऋषि ब्रह्मर्षि कहलाया, देखिये कलियुगकी महिमा अब सत्यार्थ प्रकाशके चार अक्षर पढके नाई गडरियेभी ब्राह्मण वन्तेहै इनको दयानंदका वरदान है और स्वामीजीने दोही वर्ण प्रधान रक्खे हैं दो वर्ण गड़ाप गये क्षत्रिय वैश्य इनको कुछ न लिखा इनमेंभी विद्यावान और मूर्ख होतेहैं जव विद्यावान ब्राह्मण और मूर्ख शूद्र कहाते हैं तौ दोही वर्णोंकी आवश्यकता है यह चार वर्ण मानने वृथाही हुए परन्तु विश्वामित्रका क्षत्रियपन वोह आजतक भी नहीं गया क्यों कि आपही सत्यार्थ प्रकाशमें लिखतेहो क्षत्रि थे ब्राह्मण हुए क्षत्रियपन तौ अवतक उनके साथ लगाहै यह तुह्मारेही कहने से प्रतीत है परन्तु विश्वामित्रने परिश्रम तप का क्योंकिया वो-

ह तौ विद्यावान थे—इस्से प्रत्यक्ष यह बात सिद्ध होती है कि केवल विद्या पढनेसे ब्राह्मण नहीं होता (विश्वामित्रने जव त्रिशंकुको यज्ञ कराया था तौ ऋषियोंने कहा था कि जहां क्षत्रिय याजक, चांडाल यजमान, वहां हम नहीं जायंगे) इस्से जन्मसेही जाति सिद्धहै यदि कहोकि यह अधिक आयु और सहस्रों वर्ष तपकरनेकी बात मिथ्याहै किसीने मिलादीहै, तौ इसमें प्रमाण क्याहै दौनौ बातें एकही पुस्तकमें है, यदि वोह किसीने मिला दिया है तौ यह उत्तर होसक्ताहै कि यह ब्रह्मर्षि होनेकी बात किसीने मिला दी हो तौ क्या आश्चर्य इस्से तुह्मारा यह कहनाकि मिलादिया है असत्यहै, इसी प्रकार मातंग ऋषि चांडाल कुलसे ब्राह्मण हुए यह भी असिद्धहै और यदि कोई कठिन अलौकिक तप करके ब्रह्मत्वको प्राप्त होगया इस्से जाति कर्मसे नहीं होसक्ती अनादि प्रवाह संसारमें कोई सामर्थ्यसे उच्चस्थानको प्राप्तहोय तौ वोह सब करसक्ते है या वोह विधान समझा जायगा, मनुजीभी जन्मसे जाति मान्ते हैं यदि पढे हुएकाही नाम ब्राह्मण होता तौ मूर्ख ब्राह्मण होतेही नहीं परन्तु मनुजी वे पढे भी ब्राह्मणमें ब्राह्मण शब्द प्रयोग करतेहैं ।

यथाकाष्ठमयो हस्तीयथाचर्ममयोमृगः यश्चविप्रोनधीयानस्त्रयस्तेनाम बिभ्रति ॥ अ० २ श्लो० १५७
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥ तस्मैहव्यंनदातव्यं नहिभस्मनि हूयते ॥ अ० ३ श्लो० १६८

जैसे काठका हाथी चमडेका मृग नाम मात्र होतेहैं इसी प्रकार वे पढा ब्राह्मण केवल नामका ब्राह्मण है १५७ वेपढा ब्राह्मण तुनकौंकी अग्निकी तरहसे शान्त होजाताहै उसे हव्य कव्य न दैनी चाहिये उसै दैना राखमें हौम करनाहै १६० अब विचारि ये यदि वे पढे शूद्रही होते तौ ब्राह्मणको विद्या रहित हौनेसे मनुजीने कैसे ब्राह्मण माना यदि ब्राह्मणकी कोई पदवी होती तौ वेपढेका नामही ब्राह्मण न होता. जैसे कि वकील तौ वही कहा वैगा जो पासकर चुका होगा और यदि वेपढे का नाम वकील कहदें तौ भ्रान्ति नहीं तौ और क्याहै इसी प्रकार यदि ब्राह्मण कोई पदवी होती या विद्वान हीका नाम होता तौ मनुजी यह न लिखते कि वोह नामका ब्राह्मण है ब्राह्मणतौ है चाहैं पढानहीं हैं अपने कर्म नहीं करता इस्से मूर्ख है इस्से सिद्धहै कि वर्ण जन्मसेहै कर्मसे अधिकार होताहै, वर्ण नहीं और स्वामीजी, जन्मसे जाति नहीं मानेगे तौ यह साम वेदका मंत्रार्थभी क्या कहताहै इसेभी न मानैगे क्या

अङ्गादङ्गात्सम्भवसिहृदयादधिजायते आत्मासिपुत्रमा-

मृथाः सजीव ॥ शरदः शतम् १ ॥ सामवेदे
और आत्मावैजायतेपुत्रः । ब्राह्मणम् २

यह दयानंदजीनेही सत्यार्थ प्रकाश पृ० १२० पं० ४ में लिखाहै अर्थ हे पुत्र तू अंग २ से उत्पन्न हुए वीर्यसे और हृदयसे उत्पन्न होताहैं तू मेरा आत्माहै मुझसे पूर्व मतमरै किन्तु सौ वर्षतक जी १ आपही पुत्ररूपसे उत्पन्न होताहै यह ब्राह्मण वाक्य हुआ, अब विचारनेकी बात है कि जब संतान अंगअंगसे उत्पन्न हुए वीर्यसे उत्पन्न होताहै और पिताका आत्माहै तौ यह असंभवहै कि पिताके गुण उसमें न आवें और जिसमें पिताके गुण वा माताके गुण न आवे वोह संदिग्ध पुत्रहै जो कि पिताका आत्माहै और जो पिताके प्रत्येक अंग और वीर्यसे उत्पन्न होताहै उसे दयानंदजी झट दूसरेका बनाये देतेहैं भला कभी वीर्यका प्रभाव छूटताहै कभी नहीं आमकी गुठलीसे आमही उत्पन्न होताहै चाहैं आमखट्टे हों बबूरसे बबूरही उत्पन्नहोताहै इसी प्रकार ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ ब्राह्मणही होताहै चाहें वोह विद्याहीन मूर्खहो, हां इतना तो ठीकहै कि मूर्ख ब्राह्मणकी प्रतिष्ठा नहीं होती अब इस मंत्रसे ही बुद्धि मान् जान लेंगे कि जिस वर्णका पिताहै उसी वर्णका पुत्र होगा क्योंकि वोह पिताके प्रत्येक अंगसे उत्पन्न होताहैं अब सृष्टि उत्पत्ति विषयमें भी जाति जन्मसे ही सिद्ध होतीहै यह लिखा जाताहै

पृ० ८७ पं० २१ ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्वाहूराजन्यःकृतः ऊरूतदस्ययद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रो अजायत । यजु० अ० ३१ मं० ११

इसके अर्थ स्वामीजी स० पृ० ८८ पं० ३ में लिखते हैं (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्माकी सृष्टिमें मुखके सदृश सबमे मुख्य उत्तम हो वोह ब्राह्मण. बलवीर्यका नाम बाहूहे वोह जिसमें अधिकहो वोह क्षत्रिय. ऊरूकटिके अधो और जानुके ऊपर भागका नामहै, जो सब पदार्थों और सब देशोंमें ऊरूके बलसे आवे जावे वोह वैश्य और जो पद्भ्यां पगके अर्थात् नीच अंगके सदृश मूर्खत्वादि गुणवालाहो वोह शूद्रहै

पृ० ८८ पं० १० । यस्मादेतेमुख्यास्तस्मान्मुखतोह्यसृज्यन्त इत्यादि

जैसा मुख सब अंगोमें श्रेष्ठहै वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त हौनेसे मनुष्य जातिमें उत्तम ब्राह्मण कहाता है जब परमेश्वरके निराकार हौनेसे मुखादि अंग नहीं हैं तो मुखसे उत्पन्न होना असंभवहै और जो मुखादि अंगोंसे ब्रा-

ह्मणादि उत्पन्न होते तौ उपादान कारणके सदृश ब्राह्मणादिकी आकृति अवश्य होती, जैसा मुखका शरीर गोलमालहै वैसेही उनके शरीरकाभी गोल माल मुखाकृतिके समान होना चाहिये, क्षत्री वैश्य शूद्रोंका शरीर बाहू उरू चरणके समान आकारका होना चाहिये,और जो कोई तुमसे प्रश्न करैगा जो जो मुखादिसे उत्पन्न हुएथे उनकी ब्राह्मणा दि संज्ञाहो तुह्मारी नहीं क्योंकि जैसे सब लोग गर्भाशयसे उत्पन्न होतेहैं वैसेही तुमभी हो तुम मुखादिसे उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करतेही इसलिये मुखादिसे उत्पन्न होनेका अर्थ अशुद्ध और हमारा अर्थ सच्चाहै

समीक्षा—स्वामीजी कहीं तौ बुद्धिके पीछे लाठी लेकर दौडते हैं, पुरुष सूक्त के मंत्रहैं सृष्टि उत्पन्न हौनेका वर्णन है आप गुणकर्मके गीतगाने लगे सुनिये इस्से पूर्व यह मंत्रहै

यत्पुरु॑षं॒व्यद॑धुः कति॒धाव्य॑कल्पयन् मुख॒ङ्किम॑स्या-
सी॒त्किम्बा॒हू कि॒मू॒रूपादा॑उच्येते यजु० अ० ३१ मं० १०

(प्रश्न) जिस परमेश्वरका यजन किया उसकी कितने प्रकारोंसे कल्पना हुई उसका मुख भुजा उरू कौन हुए, और कौन पाद कहे जातेहैं, इसके उत्तरमें (ब्राह्मणो स्येति) यह मंत्रहै जिसका भाष्य दयानंदजी अशुद्ध करते हैं इसका अर्थ यह है कि (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (अस्य) इस परमेश्वरका (मुखम्) मुख (आसीत्) हुआ (राजन्यः) क्षत्री (बाहुःकृतः) बाहुरूपसे निष्पादित हुआ (अस्य यत् उरू तत् वैश्यः) इसकी जो उरूहैं तद्रूप वैश्य हुआ (पद्भ्यां) चरणोंसे (शूद्रः) शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ. इस प्रकारसे इस मंत्रका अर्थहै इस मंत्रमें कोई ब्राह्मण क्षत्रीके लक्षण नहीं पूछताहै किन्तु यह ईश्वरके विषय प्रश्न है यदि यह अर्थकरै कि जो उरूके बलसे आवै जावै वोह वैश्यहै तौ यह जितने ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र आदि परदेशमें आते जाते तथा यात्रा करतेहैं तथा राजाकी सेना यह उरूकेही बलसे परदेशमें जातेहैं तौ यह सबही वैश्य होने चाहियें, और जो रेलकेबलसे परदेश जाय उनका क्या नामहै यह आपने नहीं लिखा वेदमें तौ आपने रेल तारका वर्णन निकालाहै, धन्यहै यवन म्लेच्छ सबही परदेश आने जाने वालों कोआपने वैश्य बनादिया, परन्तु वे अपने नगरमें काहेके बलसे चलतेहैं जो और कुछ बल होय तो जाने दीजिये और यदि घरमें भी जांघोंही के बलसे आनाजाना है तौ सब जगतही वैश्य होगया, खूब निवटे ऊपर आपने ब्राह्मण और शूद्र दोही वर्ण रक्खे इस तीसरेमे सबको मेट एकही रक्खा (और पद्भ्यां पगके सदृश मूर्खत्वादि गुण हौनेसे शूद्रहैं) यह स्वामीजीने एकही विचित्र बात कही है क्याचरण भी मूर्खहोतेहैं चरणोंके भी ज्ञाने न्द्रियहोती हैं पैरमें कौनसी मूर्खताहै, किसीका भला

मारा या किसीको दुर्वाक्य कहा पैरको मूर्ख कहना ऐसा है जैसे ईंट पत्थरसे बात करनी और (पद्भ्यां) चरणोंसे यह पंचमी विभक्ति कहां खोगई, और जनि प्रादुर्भावेसे अजायत बन्ताहै,जिसके अर्थ उत्पन्न होने के हैं तब यह अर्थ होताहै कि चरणोंसे शूद्रउत्पन्न हुए, और यही शतपथ ब्राह्मणमें लिखाहै कि जिस कारणसे पूर्व सृष्टिकालसे ब्राह्मण और वर्णोंमें मुख्य और उत्तम हैं इसी कारण यह मुखसे हीउत्पन्न किये गये, आगे श्रुतिमें भी उत्पन्न होने का वर्णनहै कि (चन्द्रमा मनसो जातचक्षोः सूर्यो अजायत) अर्थात् मनसे चंद्रमा और नेत्रोंसे सूर्य उत्पन्न हुआहै कहिये क्या इसका भी अर्थ आप कुछ बद लैंगे यही कहदोकि चन्द्रमाका नाम मनहै, चक्षुका सूर्य है,कोई कहै कि अमुक पुरुषसे दयानंदकी उत्पत्ति हुई तौ क्या स्वामीजी उसका यही अर्थ करैंगे कि वेदमें रेलतार निकालने नियोग ठहराने ग्यारह पति कराने, मूर्ति खंडन करने विधवाकी कामाग्नि बुझाने,वर्ण संकरकी रीति चलाने वाले को दयानंद कहते हैं तौ बस फिर क्याहै १०८ श्री लिखकर परमहंस सभी बन जांयगे, और यह जो लिखाकि (परमेश्वरके निराकार हौनेसे मुखादि अंग नही है उसके मुखसे उत्पन्न होना असंभवहै) जब परमेश्वरका आकारही नहीं है तौ यह साकार सृष्टि क्या स्वामीजीके घरमें से आगई निराकारसे तौ निराकार ही हौना चाहिये था, परन्तु उस्से संसार मूर्तिमान् उत्पन्नहुआ है यथा—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानिजज्ञिरे छन्दांसिजज्ञिरेतस्माद्यजुस्तस्मादजायत १ यजु० अ०३१ मं० ७

तस्मादश्वा अजायन्त यजु० २

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् यजु० अ०३ मं० ८

यदि वोह निराकार है कोई अंग उसके नहीं है तौ उस्से (ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्व वेद उत्पन्न हुए १ उस्से घोडे उत्पन्न हुए २ उस्से गायें उत्पन्न हुई हैं) यह निराकार सै साकार कैसे उत्पन्नहोगये, यदि कहो कि वेदका अंगिरादिके हृदयमें प्रकाश हुआतौ वे अंगिरा आदि कहांसे आगये,और जो कहो कि आपहोगये तौ तौ स्वयंभू होनेसे वे ही ईश्वरहैं और जो कहो कि ईश्वरने बनाये हैं तौ क्या ईश्वरमनुष्याकृतिका हैं और गाय घोडे बकरी कहांसे उत्पन्न होगये क्या, इनका— भी किसीके हृदयमें प्रकाश करदिया था, और जिनके हृदयमें कियाथा वे कहांसे आये,इसी पर स्वामीजी अपने को तत्वज्ञानी मानतेहै ईश्वरकी शक्ति की कुछभी खबर नहीं वोह जोचाहै सो कर सक्ताहै, धन्यहै स्वामीजी परमेश्वरके अंगादि हौना अ-

संभव है तौ सृष्टि हौनाभी असंभवहै यह भी यादहै जो सत्यार्थ प्रकाश १८८ पृष्ठमें लिखाहै (अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः) विना हाथ सबकुछ ग्रहण करता विनुपगचलता विना नेत्र देखता विनकानसुन्ताहै तौ इस आपके ही अर्थानुसार वोह मुखादि न हौनेसे भी मुखके कार्य करता हुआ मुख से ब्राह्मण को उत्पन्न करसक्ता है क्योंकि सर्व शक्तिमानहै और "स्वभाविकी ज्ञानबलक्रियाच" उसमे सर्वोत्तमशक्ति जिसमें अनन्त बल ज्ञान और अनन्त क्रियाहै यह उसमें स्वाभाविकी अर्थात् सहजमें सुनी जातीहै इसी प्रकार इसी श्रुतिका अर्थ मनुजीने लिखाहै

लोकानांतुविवृद्ध्यर्थंमुखबाहूरुपादतः
ब्राह्मणंक्षत्रियंवैश्यंशूद्रंचनिरवर्त्तयत् मनु० अ० १ श्लो० ३१

लोकोंकी वृद्धिके अर्थ ईश्वरने मुख बाहू उरु चरणसे ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्रको बनाया, इस्से स्वामीजीका अर्थ मिथ्या हीहै (और यह जो लिखाकि उपादान कारणके सदृश उत्पत्ति हौनी चाहिये, तौ मुखसे मुखकेसे उत्पन्न होते) धन्यहै इस बुद्धिको, जब उपादान कारणसे उत्पन्न होतेहैं तौ जो योनिसे उत्पन्न होतेहैं वे सब योनिके आकार वाले हौने चाहियें, निराकारसे निराकार हौना चाहिये, धन्य है यह गपो ड़ातौ गहरी भंगमें लिखा हौगा, यही बुद्धि वेदभाष्य रचना करतीहै अब आगे सुनिये

वैदिकैःकर्मभिःपुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्यचेहच २६
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौलमौञ्जीनिबन्धनैः
बैजिकं गार्भिकं चैनोद्विजानामपमृज्यते २७
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्ययासुतैः
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयंक्रियतेतनुः २८
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसोजातकर्मविधीयते
मंत्रवत्प्राशनंचास्यहिरण्यमधुसर्पिषाम् २९
नामधेयंदशम्यांतुद्वादश्यांवास्यकारयेत्
पुण्येतिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ३०
मंगल्यंब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्यबलान्वितम्
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्यतुजुगुप्सितम् ३१

शर्मवद्ब्राह्मणस्यस्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्
वैश्यस्यपुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्यप्रेष्यसंयुतम् ३२ मनु० अ०२
शर्मब्राह्मणस्य वर्मक्षत्रियस्य गुप्तेतिवैश्यस्य. आश्व०

वैदिक जो पुण्य कर्म है उनसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गर्भाधानादि संस्कार करना सर्वथा विधिहै, क्यों कि वैदिक संस्कार पवित्र और पाप नाशकहै, और लोक परलोकमें सुखका हेतुहै २६ गर्भाधान संस्कार जात कर्म चूडाकरण मौञ्जीबंधन इनसे वीर्यादि दोषके पाप और गर्भ संबंधी पाप दूर होते है २७ अध्ययन व्रत हवन त्रैविद्या ऋगादि वेद यज्ञ पुत्रोत्पादन पंचमहायज्ञ इनके सम्यक् अनुष्ठान करनेसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्ति (मुक्ति) के योग्य होताहैं (दयानंदजी ब्राह्मी शब्दका अर्थ यह करते हैं कि "ब्राह्मणका शरीर बनताहैं" यह अशुद्ध है क्यों कि ब्राह्मणका शरीर तौ माता पितासे बनताहै) २८ नाभि छेदनके पूर्व पुरुष जातकर्म संस्कार करै और गृह्योक्त मंत्रोसे सुवर्णकी शलाकासे मधु घृत चटवावै २९ दशवें या बारहवें दिन पुण्य तिथि मुहूर्त्तमें अच्छे नक्षत्रमें नाम धरै ३० ब्राह्मणका शुभ वाचक क्षत्रियका बलयुक्त वैश्यका धन पुष्टि युक्त शूद्रका जुगुप्सित नाम धरै ३१ ब्राह्मणके नामान्तमें शर्मा क्षत्रियके वर्मा वैश्यके गुप्त शूद्रके नामके अन्तमें दासपद रक्खे ३२

अब विचारनेकी बातहै जब शर्मावर्मा आदि चिन्ह लगाकर तीन वर्णोंके नाम करण किये तथा पुंसवनादि किये तौ जब स्वामीजी गुण कर्मके अनुसार जाति मान्ते हैं तौ अभी जन्मसे तो सन्तानोकी दशा विदितही नहीं कि बडे हुए वे चारों वर्णोंमे कौन वर्णके होजांय, फिर यह ब्राह्मणादिका नाम शर्मादि शब्द लगाकर रखना वृथा ही हुआ, यदि वोह शूद्र होगया तौ कई संस्कार वृथा होगये, और शूद्र यदि ब्राह्मण होजाय तौ उसमें कई संस्कारोंकी न्यूनता रह गई, यदि गुण कर्मसे जाति होती तौ जन्मसे संस्कार नहीं होते, परीक्षाके समय हुआ करते क्यों कि उत्पन्न होतेही पुत्रका नाम 'बी ए' रखना वृथा है, जब पढजाय तभी 'बी ए' होताहै अन्यथा नहीं इसी प्रकार यदि ब्राह्मण कोई पदवी होती तौ परीक्षाके उपरान्त ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्रादिकी पदवी दीजाती, जन्मसे संस्कार नहीं होते इस्से स्वामीजीका गुण कर्मसे जाति मान्ना कथन सर्वथा मिथ्याहै औरभी प्रमाण सुनिये

अष्टमेवर्षेब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमेवा,एकादशेक्षत्रियम् द्वादशेवैश्यम् आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतःकालः आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य,आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य,अतऊर्ध्वंपतितसावित्रीकाभवन्ति आश्व० ॥

गर्भाष्टमेब्देकुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् गर्भादेकादशे राज्ञोगर्भात्तुद्वादशेविशः । मनु० ॥
ब्रह्मवर्चसकामस्यकार्यं विप्रस्यपंचमे

ब्राह्मणका यज्ञोपवीत आठवें वर्षमें वा पांचमे वर्षमें १६ वर्ष पर्यंत करदे क्षत्रियका ग्यारह वर्षमें (वाछःमें) २२ वर्षतक होजाना चाहिये, वैश्यका बारहवें वर्षमें (वा आठवें) वर्ष २४ तक होजाना चाहिये, इसके उपरान्त तीनो वर्ण गायत्री पतित होते हैं,छोटी उमरमें यज्ञोपवीत विधि विशेष विद्या आनेके कारण मनुजीने लिखी है.

यहांतकभी सब कृत्य जन्मानुसारही होते चले आये हैं क्यों कि अभीतक वेद विद्या रहित तीनो वर्ण हैं, क्यों कि उपनयन विना वेदारम्भ नहीं होता और फिर तीनोके यज्ञोपवीतका कालभी तौ पृथक् पृथक् है य थाहि

वसन्तेब्राह्मणमुपनयेत् ग्रीष्मेराजन्यम् शरदिवैश्यम् शतपथे०

वसन्त ऋतुमें ब्राह्मणका गरमीमें क्षत्रीका शरद ऋतुमें वैश्यका यज्ञोपवीत करना. और यज्ञोपवीतके समय भोजनभी व्रतमें तीनो वर्णका पृथक् २ है यथा

पयोव्रतोब्राह्मणो यवागूव्रतोराजन्य आमिक्षाव्रतोवैश्यः

व्रती ब्राह्मणका पुत्र दुग्ध क्षत्रिय यवागू अर्थात् यवका मोटा आंटा दलके गुड़के साथ पतला घोलकर पीना वैश्य आमिक्षा अर्थात् दही चौगुना दूध एकगुना खांड केशर डालकर पिये और व्रत रहै यहांभी जन्मसेही जाति चली आती है और सुनो

मौंजीत्रिवृत्समाश्लक्ष्णाकार्या विप्रस्यमेखला
क्षत्रियस्यतुमौर्वीज्यावैश्यस्य शणतान्तवी ४२
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतंत्रिवृत्
शणसूत्रमयं राज्ञोवैश्यस्याविकसौत्रिकम् ४४
ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियोवाटखादिरौ
पैलवोदुम्बरौ वैश्योदंडानर्हति धर्मतः ४५
केशान्तिकोब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः
ललाटसंमितोराज्ञः स्यात्तुनासांतकोविशः ४६
भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपनीतोद्विजोत्तमः
भवन्मध्यंतुराजन्यो वैश्यस्तुभवदुत्तरम् ४७ मनु० अ० २

ब्राह्मणकी मेखला त्रिगुण सुख स्पर्शवाली मुंजकी करै क्षत्रियकी मूर्वासे धनुषके गुणकी समान करै वैश्यकी मेखला सनके डोरेकी करै ४२ ब्राह्मणका कपासका यज्ञोपवीत ऊर्ध्व व्रत और त्रिगुण होवै, सनके डोरेका क्षत्रियका, और वैश्यका मेषलोमानिर्मित बनावै ४४ ब्राह्मणोंका दंड बेल पलाशका, क्षत्रियका बट खदिरका, वैश्यका पीलू वा ढुंबरका करै ४५ ब्राह्मणका दंड शिरके बालतक लम्बायमान, क्षत्रियका ललाटतक, और वैश्यका नासिकातक लम्बायमान दंड होवै ४६ ब्राह्मण ब्रह्मचारी भिक्षा मांगते समयमें भवत् शब्दको प्रथम उच्चारण करै, जैसे भवति भिक्षां देहि, क्षत्रिय मध्यमें भिक्षां भवति देहि, वैश्य अन्तमें भिक्षां देहि भवति ४७

यहांतकभी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी मौंजी, यज्ञोपवीत, दंड, भिक्षा, मांगनेकी विधि पृथक् २ वर्णन करी है, जिस्से कि देखतेही चीन्ह लिये जांय कि यह ब्रह्मचारी कौन वर्णका है, अब गुरूके यहां पढनेसे वोह कौनसी बात उनमें प्रवेश करगई कि वर्ण बदल गये वे मौंजी आदि तौ पूर्ण विद्या धारण करनेतक धारण करैंगे और इनमें शूद्र पढने गया नहीं है वोह कैसे उच्च वर्ण होगा अच्छा अब और सुनो

अध्यापनमध्ययनं यजनंयाजनं तथा
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ मनु०

वेद पढना पढाना यज्ञ करना कराना दान लैना दैना यह छः कर्म ब्राह्मणोंके वास्ते नियत किये गये और

शमोदमस्तपः शौचक्षान्तिरार्जवमेवच
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् १ भ० गीता

मनसे किसीका अनिष्ट चिन्तन न करना इन्द्रियोंका रोकना पवित्रता क्षान्ति सहना आर्जव सीधापन कोमलता ज्ञान विज्ञान आस्तिकता ईश्वरका मानना यह ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्म हैं १

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच
विषयेष्वप्रसक्तिश्चक्षत्रियस्यसमासतः मनु० १
शौर्य्यतेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम्
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रकर्म स्वभावजम् भ० गी० २

प्रजाका रक्षण दान दैना यज्ञ करना विषयोंमें नहीं फसना वेद पढना यह कर्म क्षत्रियके हेतु बनाये १ और शूरता तेज धृति धैर्य चतुरता युद्धसे नहीं भागना दान दैना ईश्वरमें भाव करना यह क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म है २ इसके अर्थ स्वामीजीने पृ० ८१ पं० १ (इज्या) अग्नि होत्रादि करना कराना (अध्ययन) वेद पढना

पढाना यह क्षत्रियोंके कर्म लिखे हैं सो हठ धर्मी है क्षत्रिय पढावैं यह आज्ञा मनुजी नहीं देते यथाहि

अधीयीरंस्त्रयोवर्णाः स्वकर्मस्थाद्विजातयः
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषा नेतरावितिनिश्चयः १ अ० १० श्लो० १

तीनो वर्ण अपने कर्ममें स्थित होके वेदोंको पढैं इनको ब्राह्मण पढावै क्षत्रिय वैश्य न पढावैं यह निश्चय है क्यों कि

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रेष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात्
संस्कारस्यविशेषाच्चवर्णानांब्राह्मणः प्रभुः ३

जातिकी उत्कर्षता उत्तम अंगसे उत्पन्न होने वेदके धारण करने तथा संस्कारकी अधिकतासे वर्णोंका ब्राह्मणही गुरु वा प्रभुहै. इस कारण वोही पढानेका अधिकारी होताहै जो और वेद पढावै तौ प्रायश्चित लगै

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेवच
वणिक्पथंकुसीदंचवैश्यस्यकृषिमेवच मनु०
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् भ० गी०

पशुओंकी रक्षा करनी दान करना वेद पढना व्यापार करना व्याज लैना खेती करने यह कर्म वैश्योंके अर्थ बनाये १ खेती गौपाल व व्यापार यह वैश्योंके स्वभावमें रहताहै २

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुःकर्म समादिशत्
एतेषामेववर्णानां शुश्रूषामनसूयया १ मनु०
परिचर्यात्मकंकर्म शूद्रस्यापिस्वभावजम् भ० गी०

शूद्रका एकही कर्म है निन्दाको छोड़कर तीनो वर्णोंकी सेवा करना यह मनुजीने ठहरा दियाहै गीतामें लिखाहै शूद्रका सेवा करना यह स्वाभाविक कर्म है इस्से यह बात सिद्ध होती है कि ब्राह्मणको ऐसे क्षत्रियको ऐसे कर्म करने चाहिये यह अर्थ नहीं है कि इस कर्मके करनेसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होताहै किन्तु चारों वर्ण प्रथम उत्पन्न हुए पश्चात् उनको कर्म सोंपे गये जैसे कोई कहै कि यज्ञदत्त तुम यह यह काम किया करो तौ क्या इसके यह अर्थ हौंगे कि जो अमुक २ कार्य करै वोही यज्ञदत्त होताहै, इस्से विदित हुआ यज्ञदत्त किसी पुरुषका नाम पूर्व कालसे है अब उसको कार्य सौंपे गये है, यदि कर्म करनेसे ब्राह्मणादि होते तौ ऐसे लिखते कि जो अध्ययनादि करैं वोह ब्राह्मण होताहै सो यहां यह बात नहीं किन्तु उनको कार्य सोंपे हैं जैसे कि पहले तौ चारों वर्णोंके नाम पीछेसे उनके काम और फिर

अतीत्यहिगुणान्सर्वान्स्वभावोमूर्ध्निवर्तते

स्वभाव सबसे अधिक बलवानहै, जिसके स्वभावमें जो बातहै वोह कभी नहीं जा-
ती, गुणोंसे गुण अलग नहीं होता, और यहभी तौ सोचनेकी बातहै कि बड़ा हौना
कौन नहीं चाहते, यदि उपरोक्त षट् कर्मोंहीसे ब्राह्मण होता तौ वेद तौ तीनो वर्ण
पढे होतेथे क्या जो पढे है सो पढा नहीं सक्ते, जिसने यज्ञ किया है वोह करा नहीं
सक्ता, फिर तौ ब्राह्मणके षटकर्मोंको सबही कोई करसक्ते थे, और सबही ब्राह्मण हो-
जाते, सो मनुजीने निषेध कर दियाकि और वर्ण वेद विद्या नहीं पढा सक्ते, इस्से स्प-
ष्टहै कि ब्राह्मण जाति जन्मसे हीहोतीहै नहीं तौ विश्वामित्र तप न करते यदि पढें-
का नाम ब्राह्मण होता तौ मूर्ख ब्राह्मण ऐसा प्रयोग मानव धर्म शास्त्रमें नहीं हो-
ता, और कर्म करनेसे जाति नहीं बदलती परशुरामने इक्कीसवार पृथ्वी भरके
क्षत्री मारडाले, वेभी ब्राह्मण थे उन्है आजतक कोई क्षत्री नहीं कहता, द्रोणाचार्य अ-
स्त्र विद्या सिखातेथे, उन्है आजतक कोई क्षत्री नहीं कहता, यह महाभारतमें युद्ध-
भी करतेथे, यहभी क्षत्री नहीं कहलाये, ब्राह्मणही कहलाये, फिर कर्ण जब परशुरामके
पास विद्या पढने गया तौ झूंठबोला कि में ब्राह्मणहूं पीछे परशुरामने क्षत्री जान
शापदिया यदि पढनेहीसे ब्राह्मण होता तौ उसे क्यों छिपाने पडता, और गुण क-
र्मसेही उच्च वर्ण होता तौ कर्णमे कौनसे गुण क्षत्रीके नहींथे सबही थे, थाभी अस-
ल क्षत्री पर अपनी जाति की खबर न हौनेसे सूत पुत्र नामसे ख्यातथे, जिस सम-
य द्रौपदी के स्वयंवरमें धनुष कर्णने उठा लिया उस समय द्रौपदीने कहा हम सू-
त पुत्रको वरण नहीं करैगी, क्योंकि यह क्षत्रिय जाति नहीं, यह सुन कर्णने ल-
ज्जित हो धनुप रखदिया कहिये यदि गुण कर्मसे जाति होती तौ कर्ण धनुष क्यों
धरता और द्रौपदी क्या आग्रह करती कर्णमें कौन बातकी कमताई थी परन्तु सू-
तके पालन करने सूतजाति प्रसिद्ध होगई फिर आदि पर्वकी कथासुनिये जबगरुड-
जी अमृत लैनेको चले क्षुधार्तही मातासे पूछने लगेकि हमक्या खांय, माता बोलींकी
समुद्रतटमें निषादगण जो धर्म भ्रष्टहें उनका भक्षण करो परन्तु उनमेजो ब्राह्मण हो-
य उसका भक्षण नहीं करनाक्योंकि ब्राह्मण जगद्गुरुहैं गरुड बोले जब सबही ध-
र्म भ्रष्ट हैं तौ में कैसेजानूंगा कि यह ब्राह्मण है माताने कहा जिसके कंठमें जाने
से अग्नि बलने लगे उसे जान्ना कि यह ब्राह्मण है जब गरुडजी वहां जाकर
भक्षण करने लगे एक ब्राह्मण स्त्री सहित मुखमें आगया और कंठमें दाहहौने लगा
गरुडजीने उसे ब्राह्मण जान स्त्री सहित तत्काल उगल दिया इस्से प्रत्यक्ष होगया
कि ब्राह्मण जाति जन्मसे है कर्मसे नहीं क्यों कि भील देशके ब्राह्मणका कर्म न क-
रनेसेभी ब्राह्मणत्व लोप नहीं हुआ होजाता तौ गरुडके कंठमें क्यों आग प्रज्वलित

होती, और स्वामीजी तौ तीनो वर्णका अड़तालीस वर्षकी अवस्थामें विवाह करना कहते हैं शूद्रका तौ यज्ञोपवीतही नहीं लिखा, वोह वेद कैसे पढ सक्ताहै और बाकी तीनो वर्ण अपनी जाति अनुसार विद्या पढतेही रहैंगे उधर कन्याभी अपने कुलानुरूप विद्या पढती रहैंगी तौ जब वे पढ चुकैंगी तौ इस समयतक तौ कुछ न्यूनाधिक हुआही नहीं वैश्य वैश्य ब्राह्मण ब्राह्मण क्षत्रिय क्षत्रिय ब्राह्मण ब्राह्मण बने है जब व्याहकी इच्छा होगी तौ अपनेही जातिमें होगा जब विवाहही होगया तौ सारा झगड़ाही मिटगया तौ विवाहमेंभी समान जन्म व्यवस्था हुई ऊंच नीच जाती रही यहां तौ विवाह जन्म जातिसेही सिद्ध होता है और जातिका नहीं इस्से स्वामीजीकी कर्मसे जाति यहां भी सिद्ध नहीं होती यदि शूद्र महामूर्खको कहते हैं जिसपर पढनेसे कुछ न आवै जब ऐसा था तौ शूद्रको पढनेका उपदेश दैना वा उसको उच्च जाति बनाना स्वयं मूर्खता है इस्से शूद्र मूर्खको कहते हैं यह कहना मिथ्याही है

स० पृ० ८८ पं० २९

शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥ मनु०

शूद्र कुलमें उत्पन्न होकै ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके समान गुणकर्म स्वभाव वाला होतौ वोह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य होजाय और जो ब्राह्मण क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य कुलमें उत्पन्न हुआहो और उसके गुणकर्म स्वभाव शूद्रके सदृश हों तौ वोह शूद्र होजाय चारों वर्णमें जिस जिस वर्णके सदृशजो २ पुरुष वा स्त्री हो वोह वोह उस वर्णमें गिना जावै

स० पृ० ८९ पं० ४

धर्मचर्ययाजघन्योवर्णः पूर्वंपूर्ववर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ १
अधर्मचर्ययापूर्वोवर्णोजघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ२

यह आपस्तंबके सूत्रहैं धर्माचरणसे निकृष्ट वर्ण अपनेसे उत्तम २ वर्णको प्राप्त होताहै और वोह उसी वर्णमें गिनाजावै जिस जिसके योग्य होवै १ वैसे अधर्माचरणसे पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला पुरुष अपनेसे नीचे नीचे वर्णको प्राप्त होते हैं और वोह उसीमें गिना जावै

पृ० ८९ पं० १९ इस्सेवर्णसंकरता प्राप्तन होगी पुनः पं० १६ (प्रश्न) जो किसीका एकही पुत्रवा पुत्री हो वोह दूसरे वर्णमें प्रविष्ट होजाय तौ उसके मा बापकी सेवा कौन करैगा औ वंशोच्छेदनभी हो जायगा इसकी क्या व्यवस्थाहोनी चाहिये (उत्तर)न किसीकी सेवाका भंग न वंश छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लडके लड़[illegible] विद्यासभा और राजकी व्यवस्थासे

मिलेंगे पुनः पृ० ९१ पं० २८ क्योंकि उत्तम वर्णोंको भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोष युक्त हैंगे तो शूद्र हो जायगे और नीच वर्णोंका उत्तम वर्ण होनेके लिये उत्साह बढेगा पृ० ९२ पं० ७ शूद्रकोसे वाका अधिकार इस कारण है कि वोह विद्यासे रहित मूर्ख होनेसे विज्ञान संबंधी काम कुछभी नहीं करसक्ता.

स० पृ० ८६ पं० २७

येनास्यपितरोयातायेनयाताःपितामहाः
तेनयायात्सतांमार्गंतेनगच्छन्नरिष्यते मनु०

जिसमार्गसे इसके पिता पितामह चले हों उसमार्गमें संतानभी चलै परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हींके मार्गमें चलें और जो पितापितामह दुष्ट हों तौ उनके मार्गमें कभी न चले तथा पृ० ८७ पं० ८ जिसका पितानिर्धनहो क्या उसका पुत्रधनी होतौ धनफेंकदे और जिसका पिता अन्धाहोतौ क्या उसका पुत्रभी अपनी आंखेफोडलेवे जिसका पिता कुकर्मी होतौ उसका पुत्रभी कुकर्मही करै पं० १४ अथवा कोई कृश्चीन या मुसल्मान होगयाहो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मान्ते समीक्षा. बस इतनीही स्वामीजीकी दलीलहै कि शूद्रब्राह्मण होजाताहै (शूद्रो ब्राह्मणतामेति) इसका प्रसंग स्वामीजीने चालाकी से विगाडकर लिखा है इसी प्रकरण का पहला श्लोक यह है

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचेत्प्रजायते
अश्रेयान्श्रेयसींजातिंगच्छत्यासप्तमाद्युगात् अ० १० श्लो० ६४

. शूद्रामें ब्राह्मणसे पारशवाख्य वर्ण उत्पन्न होता है जो स्त्री उत्पन्न हो और वोह ब्राह्मणसे विवाही जाय और उस्से कन्याहो वोह ब्राह्मणको विवाही जाय तौ वोह पारशवाख्य वर्ण सातवें जन्ममें ब्राह्मणताको प्राप्त होताहै इसी प्रकार ब्राह्मणीमें शूद्रसे बालक उत्पन्न हो और वोह ब्राह्मणीसे विवाहा जाय उस्से पुत्र हो वोहभी ब्राह्मणीसे विवाहा जाय तौ सातवें जन्ममें वोह ब्राह्मणताको प्राप्त होताहै ६४ इसीके आगेका यह श्लोकहै कि (शूद्रो ब्राह्मणतामेति) इसी प्रकारसे सातवें जन्ममें ब्राह्मण कुलमें शूद्रका विवाह होता रहै तौ उसको ब्राह्मणता और ब्राह्मणका शूद्रासे विवाह होता रहै तौ वोह सातवें जन्ममें शूद्रताको प्राप्त होजाताहै ६५ परन्तु यहभी विचारना योग्य है कि यहां (ता) प्रत्यय सदृश अर्थमें है जैसे जो गुड बहुत खरा होता है तो उसको कहदेते हैं कि पेडेकी जात मिठाई है अथवा खरबूजा मिश्रीसाहै यह पुरुष यज्ञदत्तसाहै कहिये इस्से क्या सिद्ध हुआ यही सिद्धहै गुड पेडा नहीं किन्तु खरा अधिकहै अपनी जातिमें वोह खरा अधिकहै किन्तु है गुडही इसी प्रकार औरभी दृष्टान्त समझ लीजिये इसी शूद्रताका यह अर्थ है कि (शूद्रसा) प-

रन्तु रहता अपनी जातिहीमें है इसी प्रकार वोह शूद्रभी ब्राह्मण सा सातवें जन्ममें होजाता है किन्तु रहता अपनी जातिहीमें हैं स्वामीजी थोडेसे पढनेहीसे शूद्रको ब्राह्मण बनाये देते हैं, भाष्य भूमिकामें आपने लिखा है कि कुचर्या अधर्माचरण निर्बुद्धि मूर्खता पराधीनता परसेवादि दोष दूषित विद्या ग्रहण धारणमें असमर्थ हो वोही शूद्रहै यथाहि (यत्र शूद्रोनाध्यापनीयोनश्रावणीयश्चेत्युक्तंतत्रायमभिप्रायः शूद्रस्यप्रज्ञाविरहित्वादविद्यापठनं धारणविचारासमर्थत्वात्तस्याध्यापनं श्रावणंव्यर्थमेवास्तिनिष्फलत्वाच्च) यह स्वामीजीकी संस्कृत है कि शूद्रमे प्रज्ञा (बुद्धि) न होनेसे विद्या पठन धारण विचारमें असमर्थ होनेसे पढाना सुनना निष्फलही है

इस लेखसे स्पष्ट है कि शूद्र उसको कहते हैं जिसपर पढायेसे कुछ न आवै और उसका पढानाभी मिथ्याही है फिर आपही वेद पढनेकी आज्ञा देते हो जैसा लिखाहै कि (शूद्रायावदानि—शूद्रकोभी यह वेद पढावै) तौ भला जो अध्ययनके योग्यही नहीं वोह कैसे वेद पढै अब यह मंत्र (अथेमांवाचं) इसमें शूद्र पद कर्मानुसार है याजन्मसे जाति मानी है यदि कर्मसे जाति मान्तेहो तौ शूद्र कैसे वेद पढ सक्ताहै, जन्मसे जाति मान्तेही नहीं अब आपके लेखमें कौन बात सत्य मानी जावै जो शूद्रको पढाना माने तौ जाति जन्मसे हुई जाती है जो कर्मसे माने तौ शूद्रका वेद पढना बनता नहीं (प्रज्ञाविरहितत्वात्) क्यों कि जो पढनेके योग्य नहो उसको पढनेकी आज्ञा देनेवाला मूर्खही गिना जायगा और शूद्र महामूर्खको मान्ते हो तौ (शूद्रोब्रा०) और (अधर्मचर्यादि) मनु और आपस्तंबके वचनोके आपहीके किये अर्थ मिथ्या हुए जाते है क्यों कि जब शूद्रमें धारणाही नहीं तौ पढैगा कैसे और उत्तम वर्णको विना पढै कैसे प्राप्त होगा. इस्से शूद्र पद सदा जन्मसेही लियाहै और आपस्तंब सूत्रकेभी यही अर्थ हैं कि यह पुरुष उत्तम कर्म करै तौ पुनर्जन्ममें क्रमानुसार श्रेष्ठ वर्णको प्राप्त होजाताहै और जो उत्तम वर्ण अधम कर्म करै तौ पुनर्जन्ममें नीच वर्ण होजाताहै और एक आदरकाभी शब्द है जैसे कोई धर्मात्माको कह देते हैं कि यह तौ धर्मका अवतार हैं इसी प्रकार जातिमें उत्तम कर्म करनेवालोंको आदरपूर्वक उच्च नामसे उच्चारण करने लगते हैं परन्तु वोह जातिमें अपनीही रहते हैं और अपनी जातिमें बडे गिने जाते हैं और सुनिये

धर्मोपदेशदर्पेणविप्राणामस्यकुर्वतः
तप्तमासेचयत्तैलंवक्रे श्रोत्रेचपार्थिवः मनु० अ० ८ श्लो० १७२

जो शूद्र अहंकारसे ब्राह्मणको धर्मोपदेश करै तौ राजा उसके कानमें और मुंहमें तप्त तेल डलवादे (शूद्रको वेद विद्या छोडकर और ग्रंथोंमें अधिकार है) जब कि शूद्र ब्राह्मणको घमंड करके उपदेश देनेमें दंडनीय है तौ इस्से शूद्र वेद पढनेका अधिकारी नहीं इस्से चारों वर्ण जन्मसेही होते हैं कर्मसे नहीं

आचारास्तूत्कर्षापकर्षौविधायकाएवंचित्रस्थानीयाभित्ताविति सिद्धान्तः अतएवशतपथे सर्वेनसर्वेणसंवदेत देवान्वाएष उपावर्त्तते योदीक्षतेसदेवानामेकोभवति नवैदेवाः सर्वेणैव संवदन्ते ब्राह्मणेनवैव राजन्येनवा वैश्येनवाते हियज्ञियास्त स्माद्यद्येनऽशूद्रेणसंवादो विन्दे देतेषामेवैकंब्रूयादिमम्

इसका यह आशय है वोह यज्ञ सब नहीं कर सक्ते जो दीक्षित होता है वोह एक देवोंमें होताहै ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यही यज्ञके अधिकारी हैं शूद्र संस्कार रहित होनेसे अधिकारी नहीं है यदि कहो कि गर्भाधानसे लेकर शूद्रके माता पिता इसका संस्कार करलैं तौ यह उत्तर है कि जब अपनाही संस्कार नहीं है तौ वोह दूसरेका संस्कार कैसे कर सक्ते हैं जब सृष्टिके समयसेही शूद्र संस्कार रहित है तौ इस मन्वन्तरके २८ वें कलियुगमें उनका संस्कार संभव नहीं है और यह आचार तौ निज जातिमें उत्कर्षता (उच्चपन) अपकर्षता (नीचपनके विधायक हैं) यह नहीं कि जाति बदलदें जैसे दिवाल तस्वीरों सहित दिवालही रहती है परन्तु वोह अच्छी कही जाती है

त्रयाणांस्यादग्न्याधेयेह्यसम्बन्धः क्रतुषुब्राह्मणश्रुतिरित्यात्रेयः

यज्ञ कर्ममें तीनही वर्णोंका अधिकार श्रुतिमें देखनेमें आताहै यह आत्रेयका मतहै ब्राह्मणादि तीनही वर्णोंका यज्ञादि प्रकरणमें वर्णन किया है यथा

वार्हद्गिरंब्राह्मणस्यब्रह्मसामकुर्यात् पार्थुरश्म्यंराजन्यस्य रायो वाजीयं वैश्यस्य. "शूद्रस्यतुसामनआमनन्ति"

यह सामवेदके स्थलहैं जो द्विजोंके अर्थ हैं शूद्रोंके लिये सामका कोई अधिकार नहीं है इस प्रकार शूद्रका अधिकार नहीं है (संस्कारेच्चतत्प्रधानत्वात्) मीमांसायाम्, व्रताख्य संस्कार शूद्रका सुन्नेमें नहीं आता इस कारण शूद्र किसी अवस्थामें वेद पढनेका अधिकारी नहीं होता संस्कार पुरुषोंमें प्रधानहै (वेदेनिर्देशात्) वेदमें तीनही वर्णोंका निर्देश है (वसन्तेब्राह्मणादि) सो पूर्व कह आये है और

पद्यु ह वा एतत् श्मशानंयच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रंनाध्येतव्यम्

शूद्र एक जंगम श्मशान सदृश है इस कारण शूद्रके निकट वेदका उच्चारण नहीं करना जब कि शूद्रके सामने उच्चारणभी मना है तौ पढाना कैसा पाणिनिजीके मतमेंभी जन्मसेही जाति मानी है और शूद्रको अनधिकारता प्रगट है यथा.

शूद्राणामनिरवसितानाम् १
प्रत्यभिवादेऽशूद्रे २

शूद्राणामहत्पूर्वाजातिः ("वार्तिकम्) ३

इसपर पतञ्जलि महाराज भाष्यमें वर्णन करते हैं कि (भाष्यम्)

यैर्भुक्ते पात्रं संस्कारेण शुध्यतितेऽनिरवसिताः । यैर्भुक्तेपात्रं संस्कारेणापि न शुध्यतिते निरवसिताः (बहिष्कृताः) इति व्याचख्यौ.

जिनके भोजन किये पश्चात् पात्र अग्नि आदिमें डालनेसे शुद्ध होजाताहै उन शूद्रोंको अनिरवसित कहते हैं और जिनका भोजन किया पात्र संस्कारसे शुद्ध नहीं होता वोह निरवसित शूद्र कहाते है त्याज्य शूद्र उनसे अपना पात्रभी न छुवावै कंजरादि १ शूद्रको छोड़के प्रत्यभिवाद (प्रणामका उत्तर) जो है उसकी टीको प्लुत होजाय और वोह उदात्तहो २ इससे मूर्खका नाम शूद्र नहीं है किन्तु जातिसे शूद्रपनाहै क्यों कि वार्तिककार लिखते हैं कि (अमहत्पूर्वाजातिः) इसमें जाति ग्रहणसे जाना जाता है कि मूर्ख नाम शूद्रका नहीं है किन्तु जन्मसे पूर्व जोंसे जाति है पुनः पाणिनिके इस सूत्रपर भाष्यकार लिखते हैं

तेनतुल्यंक्रियाचेद्वतिः

सर्वे एते शब्दा गुण समुदायेषु वर्तन्ते ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यः शूद्र इति अतश्चगुणसमुदाये एवंह्याह

तपःश्रुतंचयोनिश्चएतद्ब्राह्मणकारकम् तपःश्रुताभ्यांयोहीनोजातिब्राह्मणएवसः १ तथागौरः शुच्याचारः पिङ्गलःकपिलकेशइति

सब यह शब्द गुण समुदायोंमें वर्तते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इति तप करना वेद पढना श्रेष्ठ कुल यह ब्राह्मणका (कारकम्) लक्षण है जो ब्राह्मण इन करकेहीन है केवल (योनिः) ब्राह्मण कुलमें जन्म मात्र है वोह जातिसे ब्राह्मण है लक्षण उसमें नहीं है क्यों कि गौर वर्ण पवित्राचरण पिङ्गलकापिलकेश यहभी ब्राह्मणके लक्षण हैं यदि यह नहीं और वोह ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न है तौ वोह जातिसे ब्राह्मण है यह भाष्यकार मान्ते हैं "जातिहीने सन्देहाद्दुरुपदेशाच्च ब्राह्मणशब्दोवर्तते" और जातिहीन गुणहीनमेंभी संदेहसे ब्राह्मण शब्द वर्तता है गुणहीने यथा "अब्राह्मणोयं यस्तिष्ठन्मूत्रयति" यह अब्राह्मण है जो खडा होकर मूत रहाहै सन्देहमें ऐसे कि गौर वर्ण पवित्राचार पिंगलकपिलकेश पुरुष देखकर बोध होताहै कि यह क्या ब्राह्मण है पीछे जाननेसे यदि वोह जाति ब्राह्मण हो तौ अब्राह्मणोयमिति ऐसा कहाजाता है यदि भाष्यकारको जाति शूद्रका मान्ना इष्ट न होता तौ शुचि आचारादि युक्त पुरुषको यह ब्राह्मण है या नहीं ऐसा क्यों लिखते और सन्देह करते और फिर क्षत्रिय वैश्यादिकभी कोई न होते सब विद्या युक्त तौ ब्रा-

ह्मण होते और मूर्ख शूद्र कहलाते अपनी उन्नति सबही चाहते हैं बस सबही ब्रा-ह्मण बन बैठते यदि स्वामीजीकी बात मानी जाय तौ संपूर्ण वर्ण संकरता फैलजाय

निषेकादिश्मशानान्तोमन्त्रैर्यस्योदितोविधिः
तस्यैवात्राधिकारोस्मिञ्ज्ञेयोनान्यस्यकस्यचित् अ० १

निषेकादि जन्म संस्कारसे मरणपर्यन्त जिसका मंत्रोसे संस्कार किया गयाहै उ-सी कुलके पुरुष संस्कृतका इस यज्ञमें अधिकारहै अन्यका नहीं शूद्रका किस प्र-कार संस्कार होसक्ताहै जब उसको अधिकारही नहीं है.

पुनः गोपथब्राह्मणे पूर्वभागे २३ ब्राह्मणम्

सान्त्रपनाइदंहविरित्येष हवै सान्तपनो ऽग्निर्यद्ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनिकृतानिभवन्तिससान्तपनोऽथ योयमनग्निकःसकुम्भेलोष्टः (तद्यथा) कुम्भे लोष्टः प्रक्षिप्तो नैवशौचार्थायकल्पते नैवशस्यंनिर्वर्तयति एवमेवायंब्राह्मणोऽनग्निकस्तस्य ब्राह्मणस्यानग्निकस्य नैवदैवं दद्यान्न पित्र्यं नचास्य स्वाध्यायाऽशिषो नयज्ञआशिषः स्वर्गङ्गमाभवन्ति०

अर्थ—जिस ब्राह्मणके जन्मसे गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन जातकर्म नामकरण निष्क्रमण (बाहर निकलना तीसरे दिन) अन्न प्राशन गोदान चूड़ाकरण उपवीत अग्निहोत्र ब्रह्मचर्यादि संस्कार हुए हैं वो ब्राह्मण जाति और गुण कर्मसे यथार्थ है उ-सीको सान्तपन कहते हैं जिस ब्राह्मणके यह संस्कार नहीं हुए वोह ऐसाहै जैसे घ-ड़ेमे मट्टीका ड़ेला, क्यो कि वोह फैंका हुआ डेला पवित्रता नहीं करता न कुछ शस्य (खेती) का कार्य बनाताहै इसी प्रकारसे अग्नि रहित और संस्काररहित ब्राह्मणहै ऐसे ब्राह्मणको देवता और पितृसंबंधमें कुछभी न देना न वेद आशिष न यज्ञ आ-शिष इसकी स्वर्ग ले जानेवाली होती हैं

यदि मूर्खही नाम शूद्रका होता तौ यहां संस्काररहित ब्राह्मणको कुछ न देना यह क्यों कहा क्यों कि वोह तौ शूद्र होजाता इस्से यह प्रत्यक्ष है कि संस्कार रहि-तभी ब्राह्मण जातिमात्र रहता है शूद्र नहीं होजाता और यहभी इस्से विदित है कि शूद्र किसी प्रकारसे ब्राह्मण नहीं होसक्ता क्यों कि जब इसके जन्मसे संस्कारही नहीं तौ यह ब्राह्मण कैसे होसक्ताहै और यदि शूद्र अच्छे कर्मसे ब्राह्मण होजाता और

कर्मानुसार वर्णव्यवस्था होती तौ रामचंद्र महाराज तपस्या करते शूद्रको क्यों मा-रते तथा शूद्रके तप करनेके कारण उस ब्राह्मणका पुत्र क्यों मरता जिसको श्रीमहा-राज रामचंद्रने उस शूद्रको मारकर जिवाया शूद्रको तप करनेका अधिकारही नहीं है यह वाल्मीकिके उत्तर काण्डमें लेख है इस्से शूद्र ब्राह्मण नहीं होसक्ता

और यह तौ एक बडी बुद्धिमानीकी बात लिखी कि (जिनके बालक उच्च वा नीच वर्णमें चले जांय उनको विद्या सभा और राज नियमसे उनके वर्णानुसार और लड़-के लड़की मिलैंगे) धन्य है खूब सबका वर्ण संकर किया और (अङ्गादङ्गात्संभ-वसि) इस मंत्रको भूल गये जब कि पुत्र पिताके अंग अंगसे उत्पन्न होताहै और इसी कारण पिताके जल देनेका अधिकारी होताहै उसको तौ आप दूसरेका पुत्र ब-नादो और जो कुम्हारका लड़का पढाहो तौ ब्राह्मण के यहां उसे राजनियमसे दि-लवाते हो (इस विद्या सभा और राजनियमकी कोई श्रुतिभी लिखदी होती) यह कौनसे शास्त्रकी व्यवस्थाहै दायभागमें इसको किस प्रकार हिस्सा होना चाहिये ऋ-षि बन्ने चले और अपने लिखेकीभी खबर न हुई कोई गरीब चाण्डालका पुत्र विद्या पढाहो और सेठ धनीका पुत्र विद्यावान न हो तौ धनवान तो चाण्डालके यहां भेजे गये और चाण्डाल धनीके आपड़े, जिसके अनुसार न मिला वोह तड़पतेही रहे वोह अंग अंगसे उत्पत्ति वोह स्वभाविक कर्म सब सत्यार्थप्रकाशमें प्रवेश करगये (इस समय पूर्व पश्चिम देशीय अधिक विद्यावान है आपके अनुयायी अपने कम पढे मूर्ख पुत्रोंको निकालकर अपना मालमत्ता उन्हें सोंपदें बडी कीर्ति यश बढैगा) धनीके पुत्र भेडें चरावें चरवाहे ब्राह्मणादि कहलावें कैसा अनर्थ है कोई नया धर्मशास्त्र दया-नंदजी बनाते तौ कभी जंगलियोंमें यह रीति चलजाती तौ चलजाती यदि कहो कि हम जलदान मान्तेही नहीं तौ आगे नियोगविषयमें औरस पुत्रोंकी पुत्र संज्ञा नहींहै इस प्रकरणको वहीं लिखैंगे और निरुक्तिसे सिद्ध करैंगे पर यह दायभागकी व्यव-स्था आप कैसे बदल सक्ते हैं इसका तौ वृत्तान्त सुनिये.

ज्येष्ठएवतुगृह्णीयात्पित्र्यंधनमशेषतः
शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैवपितरंतथा १०५ अ० ९
ज्येष्ठेनजातमात्रेणपुत्रीभवतिनान्यथा
पितृणामनृणश्चैवसतस्मात्सर्वमर्हति १०६

पिताके सम्पूर्ण धनको ज्येष्ठही ग्रहण करै और शेष छोटे भाई जैसे पिताके सा-मने खाते पहरते खर्च करते थे उसी प्रकार रहैं १०५ ज्येष्ठके उत्पन्न मात्रसे पिता पुत्रवाला कहलाता है और पितृऋणसे छूट जाताहै इस कारण ज्येष्ठ पुत्र सब धन

लेनैके योग्य होताहै और भाइयोंका भाग इससे न्यूनहै जब इस प्रकारकी शास्त्रकी मर्यादा है दयानंदजी उसका नाशही किये डालते हैं, बड़े बड़े घर जो धनवान है उन्हे कंगाल बनाना चाहते हैं कमाई करैं वैश्य, भोगें चमार, इत्यादिक कहांतक हैं यह सत्यार्थप्रकाश असंभव बातोंसे पूर्ण है आगे लिखा है (उत्तम वर्णोंको नीचे गिरनेका भय होगा) यहभी लिखना निर्मूल है नीचे गिरना क्या वैसेही बहुतेरा भयहै जब कि विद्वानही ब्राह्मणोंका आदर भेंट दान पूजा यज्ञादिमें वरण दक्षिणादिका विधान किया है, और मूर्ख ब्राह्मणको दानादि देनेका निषेध किया है तौ उनके लिये स्वयंही भय है, तिरस्कार तौ मरणसेभी अधिक है, अब तिरस्कारभी कौन करै दूसरेको तौ वोह बुरा कहसक्ता है जब आप अच्छा हो, जब यजमान विद्यमान होगा तौ पुरोहित उपाध्यायभी भय मान शीघ्रतासे विद्या सीखैंगे, और जब दौनोही एकसे है तौ तिरस्कार कैसा, हां सब वर्णोंको उचित है कि उनके यहांके जितने पुरोहित हैं सबसे कहदिया जाय कि यदि तुम नहीं पढोगे तौ तुह्मै हम विभाग नहीं देंगे, और जो कुछ उनके निमित्तका वोह उनके नामसे किसी मान्य पुरुषके यहां स्थापन करदिया जाय अथवा पुरोहितौंके बालकोंको विद्याध्ययन करानेमें वोह व्यय कियाजाय तौ देखिये लाखों क्या करोडोंही विद्यायुक्त दीखने लगैं सब कार्य इसीमें बन जायंगे उन्है यही भय बहुत है कि हम मूर्ख रहैंगे तौ हमे कोई छदाम न देगा, और सर्वत्र निरादर होगा यह नहीं कि वोह शूद्र होजाय और स्वाध्यायेन० इस श्लोकका जो अर्थ स्वामीजीने किया है कि वेद पढने जप करने व्रत करने होम करने पुत्रोत्पादन पंच महा यज्ञ करनेसे यह ब्राह्मणका शरीर बनता है यहभी मिथ्याही है यद्यपि हम इसका अर्थ पूर्व कर चुके हैं और इस अर्थका खंडनभी कर चुके हैं परन्तु इतना यहां और भी कहना ह कि जिन कर्मोंसे आप ब्राह्मणोंका शरीर बनना मान्ते हैं उतने कर्मोंके करनेकी मनुजीने तीनो वर्णोंको आज्ञा दीये है फिर तौ इन कर्मोंके करनेहारे सभी ब्राह्मण हो जाने चाहिये शेष शूद्र, बस दोही वर्ण रहैं ब्राह्मण और शूद्र, इस कारण इसका यही अर्थ ठीक है कि इन कर्मोंके करनेसे यह शरीर मुक्ति प्राप्तिके योग्य वा ब्रह्मविद्या प्राप्तिके योग्य होताहै फिर स्वामीजीने लिखा है (जिसका पिता निर्धन हो क्या उसका पुत्र धन फैंकदे) यह बात आपकी इस स्थानमें प्रसंगसे विरुद्ध है भला वर्णव्यवस्थासे और इस बातसे क्या संबंध इसी प्रकार नेत्रहीन होनाभी कर्मानुसार है जो आप लिखते हैं कि (पिता अंधाहो तौ क्या आपभी आंख फोड डाले) यह बातें आपने इस श्लोककी भूमिकामें लिखी हैं कि

येनास्यपितरोयाताःयेनयाताःपितामहाः ।
तेनयायात्सतांमार्गंतेनगच्छन्नरिष्यते॥मनु०

अर्थात् तात्पर्य स्वामीजीका यहहै कियदि वृद्ध अपने कुलवालोंका दुष्टाचरण होतौ उनके आचरण ग्रहण न करै किन्तु जो सत्पुरुषोंका मार्गहै उसमें चले जो काम वे करै सो आप करैं तौ औरोंका तौ आपने दुष्टआचरण बताया, अपने बडोंको निर्धन और नेत्र विकारी ठरानेसे पूर्व धर्म और धर्मवालोंपर आक्षेप कियाहै, अर्थात् इस समय आपके आचरणोंपर आपके अनुयायियोंको चलना चाहिये कि सब घर छोड़ चलदें संन्यासी हो जांय संस्कृतही पढे सो कोईभी नहीं हुए इसप्रकारसे इसका अर्थ हौंना नहीं बन्ता इ-स श्लोकका यह आशयहै कि जिस मार्गमें अर्थात् जिस मतमें पिता औरदादा सदांसे च-ले आते हैं वोही श्रेष्ठ मत अर्थात सत्पुरुषोंका अनुष्ठान किया हुआहै क्योंकि वेदके जान्नेवाले थे इसी कारण सध्या अग्निहोत्र श्राद्ध मूर्तिपूजनादि सिद्धान्तोको निर्भ्रान्त क-रतेथे, यह नहींकि पिता तौ सनातन धर्म प्रतिपालन करैं बेटे मूर्तिपूजनश्राद्धखंडन करते फिरैं, पिता पतिव्रताधर्म प्रचार करैं बेटे स्त्रीको एकादश पति करावें, पिता विधवा-को व्रतकरावैं, बेटे नियोग करके चारपुत्र ग्यारह पुत्र करावैं, इत्यादि इन आधुनिकमतों-काही निषेध करते हुए मनुजी कहते हैं कि बापदादा जिसमार्गमें चलेहों उसीमार्गमें आप चले कर्म और वस्तु है, मत और वस्तु है, इस्से यहां मतका ग्रहणहैं फिर आप लिखते हैं कि (यदि कोई मुसलमान या ईसाई हो जाय तौ उसेभी ब्राह्मण क्यों नहीं मान्ते) महात्माजी अब क्या ईसाईयोंसे आजकलकी नवीन सभ्यमंडली उनके आचरणोंसें कमहै, क्या वेदमें कोट पतलून बूंट होटल चुरट जेबमें घडी हाथमें छडी सोडावाटर रम् मीटिंगकाभी वर्णनहै, यह सबही कुछ देखनेमेंआताहै, फिर चुटियातक नदारद, संस्कृतका एक अक्षर नहीं जान्ते, वेदका आशय कंठगतहै, अब अपने प्रश्नका उत्तर सुनिये कि जो को-ई ईसाई या मुसल्मान हो गये, और उनके संग भोजनकरलिया तौ वोह भ्रष्टहोने और ईसीकू मान्नेसे ईसाई, महम्मदकू मान्नेसे मुसल्मान कहलाने लगे, परन्तु यह बात सदैव जीमें बनी रहैगी कि मैं जातिका ब्राह्मण क्षत्री वा वैश्यहूं, जैसे कि संन्यासी हौनेपरभी शिष्यगण आपको ब्राह्मण कहकर पुकारते हैं, परन्तु बुद्धिमानोको तौ आप ब्राह्मण प्र-तीत नहीं होते, क्योंकि जहां देखो वहां ब्राह्मणसे शूद्र और शूद्रसे ब्राह्मण यही दो बा-तें देखनेमें आती है, और शूद्रकी अधिकारिआयत जहां तहांकी है, इससे सन्देह हो-ता है, ईसाई मुसल्मान होनेकी व्यवस्था सुनियेकि जो कोई ईसाई या मुसल्मान हो जा-ता है वोह उन पुरुषोंके संग भोजन पानादि करनेसे सज्जन गोष्ठीसे बहिष्कृत हो जा-ता है, उसको हम ब्राह्मणादि वर्ण इसकारण नहीं कहतेकि यह शब्द कोई जातिवाचक नहीं है किन्तु जैसे कबीरके मान्नेहारे कबीरपंथी दादूके दादूपंथी नानकपंथी तुह्मारे मतके दयानंदी कहलाते हैं तौ उनको कोई ब्राह्मणादि नहीं उच्चारण करते चाहें कि-सी वर्णके हों परन्तु जब अपनी बिरादरीमें आते हैं उनके साथ भोजन खानपानादि क-

रते है और आनन्द करते हैं और जब मुसलमानादि कृश्चीनोके साथ भोजन करलेते हैं तब बिरादरीवाले उनके साथमें भोजनपान व्यवहार विवाहादि छोड़ देते हैं परन्तु उसकी ब्राह्मण जाति तौभी नहीं जाती जब कोई उसकी सूरत देखते हैं तुरत कहते हैं कि यह वोही ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य है अब ईसाई हो गयाहै, यह मतसे नामसंज्ञा सब जातिमें आरूढ हो जातीहै, परन्तु वोह जाति तौ जबतक पंचत्वको प्राप्त नहो तबतक उसके साथसे नहीं छुटती, उसकोभी यह सदा ध्यान रहताहै कि मैं अमुक जातिकाहूं अब ईसाई या मुसल्मान हो रहाहूं परन्तु बेटोंतकेभी यह पीछे रहती है कि यह उनके बेटे हैं जो क्षत्रियसे या वैश्यसे ईसाई होगयाथा इनका पिता अमुक वर्णथा एक जगन्नाथ नामक वैश्य जो ईसाई होगयाहै उस्से मेरी बात चीत्त हुई है इसके चित्तमें अभीतक यह बात समाई है कि मैं जातिसे वैश्यहूं और जो लोग उसे देखतेहैं कि यह वोही वैश्यहै वैश्यता जीवनपर्यन्त बनी रहैगी जातिका पक्षपात बनारहैगा इस कारण यही सिद्ध होत है कि शूद्र ब्राह्मण नहीं ब्राह्मण शूद्र नहीं हो सक्ता इस सारी वर्ण व्यवस्थाका प्रयोजन यह है कि (ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्) जब ब्राह्मण क्षत्रियादि उसके मुख भुजा जंघा चरण हैं तौ जिस प्रकारसे मुखचरण कभी नहीं हो सक्ते चरणमुख नहीं होसक्ता इसी प्रकार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र नहीं हो सक्ता वैश्य इस शरीरसे क्षत्री नहीं हो सक्ता नहीं हो सक्ता यही इस श्रुतिका अभिप्राय है इस वर्णव्यवस्थासे मुन्शी इन्द्रमणि जो जाति कर्मसेही मान्ते हैं उनकाभी खंडन इसीमें हो गया ।

निन्दास्तुतिप्रकरणम् ।

स०पृ० ८७ पं० २३ कभी किसीकी निन्दा न करै गुणेषु दोषारोपणमसूया अर्थात् दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया, गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः जो गुणोंमें दोष दोषोंमें गुणलगाना वोह निन्दा और गुणोमे गुण दोषोंमें दोषोंका कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्या भाषणका नाम निन्दा और सत्यभाषणका नाम स्तुतिहै

समीक्षा–यह कैसी विचित्र लीला है कि पह लै तौ लिखते हैं कि गुणोंमें दोष लगाना निन्दा कहाती है और फिर अर्थात् लिखकर उसका मतलब लिखते हैं कि दोषोंमें गुणका लगानाभी निन्दा है गुणोंमे गुण दोषोंमें दोष लगानेका नाम स्तुति है यह निन्दा स्तुतिका लक्षण अर्थात् लगाकर जो किया है सो निरर्थक है यदि सत्य वा मिथ्याका विषय होता तौ किंचित् संघटितभी होता आप सत्यदोषोंका कथन स्तुति कहते हौं सो स्तुति सत्यदोष युक्त कथन करनी कहीं नहीं लिखी जबकि मनुजी यों लिखते हैं कि ।

सत्यंयाद्ब्रूत्प्रियंब्रूयात्नब्रूयात्सत्यमप्रियम्
प्रियंचनानृतंब्रूयादेषधर्मःसनातनः मनु०

मनुष्यको चाहियेकी सदा सत्य बोले और वोह ऐसा सत्य होकि दूसरेको प्रिय ल- गै और ऐसा सत्य न बोले जो दूसरेको बुरा लगे और वोह प्रिय बात झूंठभी नहो यही सनातन धर्म है जबकि अप्रिय सत्य बोलनाभी बुरा है और दोष सबको ही अ- पना बुरा लगता है आप उसीको स्तुति कहते हैं सो अशुद्ध है "अर्थवादो हि स्तुतिः" केवल सत्ययशका वर्णन करनाही स्तुति कहाती है यह नहीं कि सत्य दोषभी स्तुति कहावै यह नहीं कि मूर्ख हो और उस्से कहा जाय कि तू बड़ा मूर्ख है निरक्षरभट्टाचा- र्य है कानेसे कानाकहना क्या इस्से वोह प्रसन्न होगा कभी नहीं वोह तौ बडा बुरा मानैगा इस्से स्तुति नाम उसीका है जिसमें केवल गुणोंका वर्णन हो और वोह सुने- वाला प्रसन्न हो जाय जैसा कि स्तोत्रोंमें देखा जाताहै और किसीके दोषोंका कहना बु- राई या निन्दा है क्योंकि उससे बुरा फल मिलताहै मनुजी कहते हैं ।

गुरोर्यत्रपरीवादोनिन्दावापिप्रवर्तते ।
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोन्यतः॥ मनु० २अ. श्लो० २००

जहां गुरुका परीवाद (विद्यमानदोषस्याभिधानं परीवादः) जो दोषहो उसका कथन करना परीवाद कहाता है (अविद्यमानदोषाभिधानं निन्दा)जो दोष नहीं हैं उ- नका कथन करना निन्दा कहाती है यदि इन दौनो वार्ताओंको कोई करता हो तौ शिष्य कानौपर हाथधरकै चलाजाय इसमें सत्यदोष कथन करनेका नाम परीवाद लिखाहै आप उसे स्तुति बताते हैं इस परीवादरूपी स्तुतिका दयानंदजी फल तौ सुनै ।

परिवादात्खरोभवति श्वावैभवतिनिन्दकः
परिभोक्ताकृमिर्भवतिकीटोभवतिमत्सरी २०१

झूंटा दोष कहनेसे (सुन्नेसे) गदहा होता है निन्दासे कुत्ताहोता है दूसरे जन्ममें गुरुके अनुचित द्रव्यका भोक्ता शिष्य कृमि होता है गुरुसे मत्सर करनेहारा कीट होता है जिसको आपसत्य दोष कथन करनेसे स्तुति नामसे पुकारते हैं उस स्तुति ल- क्षण स्तुति करनेवाले मनुजीके वचनानुसार दूसरे जन्ममें गर्दभराज हौंगे इसी कारण- से मनुष्यको उचित है कि अप्रिय सत्यकभी न बोलै यह दयानंदजीने अपने अनुया- यियोंकी गति खराब करनेको ऐसा लिख दिया है न जाने इस्से क्या लाभ है तुह्मा- री जो दशा हुई होगी सो हुई होगी परन्तु अब चेलोंके हेतु वहांसे कोई चिठ्ठी भेज दैनी चाहिये थी कि यह निन्दा स्तुति लक्षण छापनेवालोंकी भूलसे लिखा गया है तुम इसे सत्य न मानना और खबरदार कभी किसीका सत्य दोषभी न कहना गु- णोंका कथन स्तुति अवगुणोंका कथन निन्दा जानना

अब इसके आगे देवता और श्राद्ध प्रकरण लिखा जायगा.

अथदेवतापितृश्राद्धप्रकरणम्

स० पृ० ९८ पं० ९

ऋषियज्ञंदेवयज्ञंभूतयज्ञंचसर्वदा
नृयज्ञंपितृयज्ञंचयथाशक्तिनहापयेत् १
अध्यापनंब्रह्मयज्ञःपितृयज्ञस्तुतर्पणम्
होमोदैवोबलिर्भौतोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम् २
स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन्होमैर्देवान्यथाविधि
पितॄन् श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानिबलिकर्मणा ३ मनु०

पंक्ति १९ में इस प्रकार लिखते है अर्थ दो यज्ञ ब्रह्मचर्यमें लिख आये हैं अर्थात् एक वेदादि शास्त्रका पढना पढाना संध्योपासन योगाभ्यास दूसरा देवयज्ञ विद्वानो-का संगसे वा पवित्रता दिव्य गुणोंका धारण दातृत्व विद्याकी उन्नति यह दौनो यज्ञ सायं प्रातः करना होते है

पृ० ९९ पं० १६ तीसरा पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देवयज्ञ जो विद्वान् ऋषि जो पढने पढानेहारे पितर माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियोंकी सेवा करनी

समीक्षा—अब यहांसे स्वामीजी लोपलीला चलाते हैं यहां पितर देवता ऋषि सब एकही प्रकार और एकही अर्थमें घटाते हैं इन श्लोकोंमे यह सब पृथक् पृथक् हैं इस लिये देवऋषि पितरोंको एकही कहना युक्त नहीं है क्यों कि ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूत-यज्ञ नृयज्ञ पितृयज्ञ इनको यथाशक्ति न जाने दे पढना पढाना ब्रह्मयज्ञ, तर्पण श्राद्ध पितृयज्ञ, होमादिक देवयज्ञ, और भूतबलि भूतयज्ञ, और मनुष्ययज्ञ, अतिथीभोज-नादिक यह पांच हैं, वेदाध्यनसे ऋषियोंका पूजन करैं, होमसे देवताओंका श्राद्धसे पितरोंका, अन्नसे मनुष्योंका, और भूतोंको बलि कर्म कर पूजन करै

कुर्यादहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनवा
पयोमूलफलैर्वापिपितृभ्यःप्रीतिमावहन् अ० ३ श्लो० ८२ मनु०
एकमप्याशयेद्विप्रंपित्रर्थेपांचयज्ञिके

पितरोंसे प्रीति चाहनेवाला तिल यव इन करकै और पय मूल फल जल इनसे श्राद्ध करै पितरके अर्थ एक ब्राह्मण भोजन करावै जब कि वेदाध्ययनसे ऋषि, हो-मसे देवता, श्राद्धसे पितर, अन्नसे मनुष्योंका पूजन करै, यदि यह सब एकही होते तौ पृथक् पृथक् वस्तुओंसे पृथक् प्रसन्न होनेवाले कैसे होते यदि देवता विद्वानोहीको कहते हैं तौ क्या वोह हवनसे प्रसन्न होते हैं तौ उनकी प्रसन्नताके वास्ते हवन कर

दैना चाहिये यदि विद्वान भूंखे आवैं तौ थोडासा होम कर दैना वे झट प्रसन्न होजा यगे इससे विद्वान तृप्त होते देखे नहीं जाते इस कारण विद्वानोकाही देवता नाम और कोई पृथक् जाति नहीं है यह कहना स्वामीजीका झूंट है वेदोंमें देव जाति पृथक् लिखी है. यथाहि.

अग्निर्देवता वातोदेवतासूर्योदेवता चन्द्रमादेवता
वसवोदेवता रुद्रादेवताऽऽदित्यादेवतामरुतोदेवता
विश्वेदेवादेवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रोदेवतावरुणोदेवता १
य०अ-१४ मं-२०

यह अर्थ प्रत्यक्षही है और देवताओंके पृथक् पृथक् नाम लिखे हैं इस्से देवता मनुष्योंसे पृथक्ही हैं औरभी

त्रयो देवा एकादशत्रयस्त्रिंशाः सुराधसः बृहस्पति
पुरोहिता देवस्यसवितुः सवे देवा देवैरवन्तुमा ११ मं-अ-२०

श्रेष्ठ धनवाले ब्रह्मकोही आगे किये तीनो देवता ग्यारह रुद्र तैंतीस देवता नारायणकी आज्ञामें वर्तमान होते सत्य आदिके साथ मेरी रक्षा करो

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशतावज्रबाहुर्जघानवृत्रंविदुरोव
वार य० अ० २० मंत्र ३६

सम्यक् प्रकारसे दीप्त प्रातःकालपर आगे चलनेवाले प्रकाश सूर्यरूप द्वारा पूर्व दिशाको प्रकाश करनेवाले (त्रिंशता) तैंतीस देवताओंके साथ वृद्धिपानेवाले वज्रधारी इन्द्रने मेघरूपी दैत्यको ताड़न किया मेघके स्रोतों वा दैत्यपुरके द्वारोंको शून्य किया वा खोला १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र १ इन्द्र १ प्रजापति यह तैंतीस देवताहैं

त्रीणिशतात्रीसहस्राण्यग्निन्त्रिं ऽशच्चदेवानवचासपर्यन्
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्माआदिद्धोतारन्यसादयन्त७मं.अ. ३३

अथ (त्रीणिशतानि त्रीणिशता त्रिंशत च नवदेवाः) तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवता अग्निकी परिचर्या करते हैं उन्हौंने घृतसे अग्निको सींचा और इस अग्निके लिये कुशाको आच्छादन करते हुए होताको होतृकर्ममें नियुक्त किया.

तिस्राएवदेवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथिवीस्थानोवायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्योद्युस्थानस्तासांमहाभाग्यादेकैकस्या बहूनिनामधेयानिभवन्ति ॥ नि० दैवतकां०अ०७ पा०२ खं०१

यह तीन देवता हैं अग्नि पृथ्वी स्थानमें वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानमें और सूर्य द्यु स्थानमें इन महाभाग्योंके बहुत नाम होते हैं तीन स्थानमें देवताओंकी स्थिति कहने और इनको महाभाग्य और एक २ के बहुत नाम कहनेसे यहां विद्वान् देव शब्दार्थ नहीं और जब एक२के बहुत नाम हैं तो तैंतीस करोड़भी कह सक्ते हैं और यह जो स्वामीजीने लिखाहै (विद्वांसोहिदेवाः) यह शतपथकी श्रुति है सो यथार्थ है परन्तु यह श्रुति कुछ देवताओंका निषेध नहीं करती किन्तु विद्वानोसे भिन्न देवताओंकी साधक है इसका यह अर्थ है देवबुद्ध्याविद्वांसउपासनीयाः परिचरणीयाः यदि देवता नहीं होंगे तो किनकी बुद्धि करके विद्वान पूजनीय होंगे और दयानंदजीके अभिप्रायसे देवताओंका निषेध करैं तो (वाग्वैब्रह्म) शतपथ बृह० उप० अ० ६ ब्रा० १

यह श्रुतिभी शतपथमें पठितहै तो ब्रह्मका निषेध कर देना चाहिये क्यों कि वाणीही ब्रह्महै ब्रह्म तो इस श्रुतिसे वाग् सिद्ध होगई इस्से यहांभी ब्रह्मको वाक्यान्तरमें प्रसिद्ध होनेसे निषेधका असंभव है इस्से इस श्रुतिका यह अर्थ होना चाहिये कि ब्रह्म बुद्धि करके वाग् उपासनीय है जब देवता वाक्यान्तरसे प्रसिद्ध हैं तो उनका निषेध नहीं हो सक्ता और यही देवता

इतीमादेवताअनुक्रांता सूक्तभाजो हविर्भाजंऋग्भाजश्च भूयिष्ठाः निरु०

यह जो देवता कहे हैं इनमें कोई सूक्तोंको भजते हैं कोई हविको कोई ऋगको कोई दोनोको.

देवताओंको सर्व शक्ति संपन्नत्वभी निरुक्तिमें बोधन कियाहै

आत्मैवैषांरथोभवत्यात्माश्व आत्मायुध आत्मेषव आत्मासर्वंदेवस्यदेवस्य ॥ नि०अ०७ पा० १ खं० ५ दैव०कां०

देवताओंका प्रभाव यह है आत्माही देवताओंका अश्व रथ आयुध इषुरूप होताहै और सबही उपकरण देव देवका आत्मारूपहै क्यों कि देवता सत्य संकल्प रूपहैं औरभी मंत्र देवताओंका महत्व बोधक है

रूपंरूपंमघवाबोभवीतिमायाः कृण्वानस्तन्वंपरिस्वाम् त्रिर्यद्दिवः परिमुहूर्तमागात् स्वैर्मंत्रैरनृतुपाऋतावा

ऋ० मं० ३ अ० ४ सूक्त ५३ मं० ८

इस मंत्रके व्याख्यानमें निरुक्ति

यद्यद्रूपंकामयतेतत्तद्देवताभवति रूपंरूपंमघवाबोभवीती त्यपिनिगमोभवति ॥ नि० अ० १० पा० २ खं० ४

अर्थ–इन्द्र जिस जिस रूपकी कामना करते हैं तिस तिस स्वरूपको प्रतिबंध र-हित धारण करकै पुनः प्रादुर्भाव करतेहै क्यों कि (माया) अर्थात् अपना संकल्प करता हुआ अपनी (तन्वं) शरीराकृतिको अनेक प्रकारसे प्रगट करता है (और उसका प्रभाव देखना चाहिये कि) मुहूर्त काल परिमाणमें तीन वार स्वर्गसे अपने मंत्रों करके हूयमान और स्तूयमान हुआ आता है और यजमानोंके यज्ञोंमें सदा सोमपान करता है और (ऋतावा) अर्थात ज्ञानवान् है जब कि देवता अनेक प्रका-रके रूप धारण करलेते हैं और तीन वार मंत्रोंके उच्चारण करनेसे आते हैं तौ यह मुहूर्त मात्रमें स्वर्गसे आना मनुष्यों वा विद्वानोमें संभव नहीं होता इसीसे विदित है कि देवता मनुष्य विद्वानोंसे पृथक् हैं

पुनः केन उपनिषदमें देवताओंका परस्पर संवाद है

ब्रह्महदेवेभ्योविजिज्ञेतस्यह ब्रह्मणोविजयेदेवाअमहीयन्ततऐ क्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायंमहिमेति ॥ केनउ०

ईश्वरने देवताओंको जयदी उसकी कटाक्ष कृपासे सव देवता महिमाको प्राप्त होते हुए और फिर यह जाना कि यह सव जगत हमाराही जय किया है और हमारीही महिमा है तव ईश्वर यज्ञ रूप अवतार ले प्रगट हुए और वे देवता परस्पर उनका वृत्तान्त पूछने लगे (तेग्निमब्रुवन्) इत्यादि वाक्य हैं कि उन्होंने अग्नि वायु आदिसे पूछा तुम इनको जान्ते हो उन्होने कहा नहीं इसी प्रकार देवता अनेक विधि सूचित होते हैं और देवताओंका लोक पृथक् प्रतीत होताहै जैसे इन्द्रका स्वर्गसे आना लिखाहै

यत्रब्रह्मंचक्षत्रञ्चं सम्यञ्चौचरंतःसह

तँल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्रंदेवाःसहाग्निना ॥ यजु०अ०२० मं०२५

जहां ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति संग मिले रहते हैं और जहां देवता अ-ग्निके साथ वास करते हैं उस पवित्र लोकको में देखूं यह यजमानका वाक्य है

यत्रेन्द्रश्चवायुश्चं सम्यञ्चौचरंतः सह तल्लोकम्पुण्यम्प्रज्ञेषं यत्रं सेदिर्न्नविद्यते ॥ य० अ० २० मं० २६

जिस लोकमें इन्द्र वायु देवता मिले हुए विचरते हैं जिस लोकमें दुःख नहीं है उस लोकको मैं प्राप्त करूं

इन दोनों मंत्रोंसे यह बात प्रगट है कि देवता लोक दुःख रहित है वहां यजमान जाना चाहता है यदि देवता विद्वानोंका नाम होता तौ ब्राह्मण क्षत्रिय जाति क्यों कही यह जो देव लोकमें विचरते हैं क्या विद्वान न होंगे और फिर देवता अग्निके साथ रहते हैं ऐसा पृथक क्यों लिखा और (यत्र) नाम जिस लोकमें यह शब्द लिखनेसे जाना जाता है कि वोह कोई दूसरा लोक है यह लोक होता तौ अत्र लिखते इस कारण देवता विद्वानोंहीका नाम है यह असत्य है देवता पृथक्है और सुनिये

नित्यंस्नात्वाशुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्प्पणम्
देवताभ्यर्चनंचैवसमिदाधानमेवच ॥ मनु०

नित्य स्नानकर पवित्र हो देवता ऋषि पितरोंका तर्पण करै देवताओंका पूजन और हवन करै तथा

पूर्वाह्णएवकुर्वीत देवतानांच पूजनम्

देवताओंका पूजन दुपहरसे पहले करै

देवतान्यभिगच्छेत्तुधार्मिकांश्चद्विजोत्तमान्
ईश्वरंचैवरक्षार्थंगुरूनेवचपर्वसु मनु० अ० ४ श्लो० १५३

अपनी रक्षाके वास्ते देवताओंके दर्शन धर्मात्मा ब्राह्मणोंके दर्शन करनेको जाय और गुरुजनोंकेभी दर्शन करै ईश्वरका ध्यान करै

(देवाः दीव्यतिदानार्थोदीप्त्यर्थोवा पचाद्यच् दातारो ऽभिमताभक्तेभ्यः तेजसत्वाद्दीप्तावा दिवः सम्बंधिनोवादेवाः) जो भक्तोंकी कामना इच्छित सुफल करैं जो स्वर्गमें रहैं वे देवता कहाते हैं और ऋषि दर्शनात् पश्यत्यसौसूक्ष्मानर्थान् जिनको तपके प्रभावसेही विना अध्ययन वेदादिकोंके अर्थ प्राप्त हुए हैं वे ऋषि कहाते हैं

इस स्थानमें देवता ऋषि गुरू आदि सब पृथक् कहे और देवता स्वर्गके रहने वाले वर्णन किये गये हैं

स्वामीजीने जो सत्यार्थप्रकाश पृ० ९९ पंक्ति २८ में विद्वांसोहिदेवाः यह लिखा है कि विद्वानोंका नाम देवता है (यहां यहभी रहस्य लिखाहै) जो साङ्गोपाङ्ग चारों वेदोंको जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून हों उनकाभी नाम देव विद्वान है ऐसा लिखा है यह लेख बुद्धिमान विचारेंगे कितना निर्मूल है देवता शब्द और वे किस प्रकारके होके रहते हैं यह सब कुछ हम पूर्व कथन कर चुके हैं पर यह लक्षण देवताका कहीं नहीं देखा कि चारों वेदोंको उपाङ्ग सहित जाननेसे ब्रह्मा होताहै यह तौ कहिये कि आप वेदोंके उपांगऋषिकृत और वेदक पश्चात् वने ब-

ताते हो जिस समयतक कि वेदाङ्ग नहीं बनेथे संहिता मात्र वेद था तौ उस समय ब्रह्मा संज्ञाही न होनी चाहिये थी फिर अथर्ववेदमें लिखा है (भूतानांप्रथमोब्रह्माहजज्ञे) सृष्टिमें सबसे पहले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए बिना उपांग इन्हे ब्रह्मा किसने बना दिया जो आपकाही नियम होता तौ वेदाङ्गव नानेवालोंका नाम महाब्रह्मा होता, क्यों कि पढनेवालोंसे ग्रंथ कर्ता बड़े होते हैं और जो सांग वेद जान्नेहीसे ब्रह्मा कहावै तौ रावणको ब्रह्मा वा देवता क्यों नहीं कहते, मालूम तौ ऐसा होताहै कि आपने यह ढंग अपनेको ब्रह्मा और देवता कहलानेका निकाला था, परन्तु सिद्ध न हुआ कोईभी ऐसा भक्त चेला न हुआ जो आपको ब्रह्मा नामसे पुकारता, यदि वेदाङ्ग जान्नेसे ब्रह्मा होते तौ वशिष्ट गौतम नारदादि सबही ब्रह्मा हो जाते, परन्तु आजतक एकही ब्रह्मा सुने हैं ऋषि अध्ययनसे, देवता हवनसे, पितर श्राद्ध और हवनसे, प्रसन्न होते हैं यह तीनो पृथक है देवता आहुतिसे तृप्त होते हैं, विद्वान भोजनसे, देवताओंके आकार और मूर्ति तथा निवास स्थानका वर्णन ग्यारह वे समुल्लासमें सिद्ध करैंगे, यहां तौ केवल उनका हौनाही सिद्ध किया है. अब श्राद्धविषय लिखते हैं ॥

स० प्र० पृ० ९९ पं० १८ पितृ यज्ञके दो भेद हैं एक श्राद्ध दूसरा तर्पण श्राद्ध अर्थात् श्रत् सत्यका नामहै श्रत्सत्यंदधातिययाक्रियया साश्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम् जिस क्रियासे सत्यका ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धासे कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्धहै और तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम् जिस २ कर्मसे तृप्त अर्थात् विद्यमान मातापितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जांय उसका नाम तर्पण परन्तु वोह जीवितोंके लिये हैं मृतकोंके लिये नहीं

ॐब्रह्मादयोदेवास्तृप्यन्ताम् ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्
ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्
इति तर्पणम्

जो सांगोपांग चारों वेदोंको जान्नेवाले हैं उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसेभी न्यून हों उनका नाम देव अर्थात् विद्वानहै उनकें सदृश विदुषी स्त्री उनकी ब्राह्मणी और देवी उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है

स० पृ० १०० पं० ३ अथर्षितर्पणम्—

ॐमरीच्यादयऋषयस्तृप्यन्ताम् मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्
मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम् मरीचाद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्
इ० ऋ० त०

जो ब्रह्माके प्रपौत्रमरीचिवत् विद्वान हो कै पढावै और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओंको विद्या दान देवै उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों उनका सेवन करना सत्कार करना ऋषि तर्पण है

अथ पितृतर्पणम्

ॐसोमसदःपितरस्तृप्यन्ताम् अग्निष्वात्ताःपितरस्तृप्यन्ताम् बर्हिषदःपितरस्तृप्यन्ताम् सोमपाःपितरस्तृप्यन्ताम् हवि-र्भुजःपितरस्तृप्यन्ताम् आज्यपाःपितरस्तृप्यन्ताम् यमादि-भ्योनमः यमादींस्तर्पयामि पित्रेस्वधानमः पितरंतर्पयामि पितामहायस्वधानमः पितामहंतर्पयामि मात्रेस्वधानमः मा-तरंतर्पयामि पितामह्यैस्वधानमः पितामहींतर्पयामि स्वपत्न्यै स्वधानमः स्वपत्नींतर्पयामि सम्बन्धिभ्यःस्वधानमः सम्ब-न्धिनस्तर्पयामि सगोत्रेभ्यः स्वधानमः सगोत्रांस्तर्पयामि

इति पितृतर्पणम्

येसोमेजगदीश्वरे पदार्थविद्यायांचसीदन्ति ते सोमसदः जो परमात्मा और पदार्थ विद्यामें निपुण होंवे वे सोमसद "यैरग्नेर्विद्युतोविद्यागृहीतातेअग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थोंके जान्नेवाले हों वे अग्निष्वात्त "येवर्हिषिउत्तमेव्यवहारे सी-दन्ति ते वर्हिषदः" जो उत्तम विद्या वृद्धि युक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित होंवे वर्हिषद "येसोमैश्वर्यमौषधीरसं वा पान्ति पिवन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्वर्यके रक्षक और महौषधिका पान करनेसे रोगरहित और अन्यके ऐश्वर्य रक्षक औषधोंको दे कै रोग नाशक होंवें वे सोमपाः "येहविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़कै भोजन करते हैं वे हविर्भुज "यआज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिवन्ति तआज्यपाः" जो जान्नेके योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे होंवें वे आज्यपा "शोभनः कालोविद्यतेयेषांते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय होवै वे सुकालिन् "येदुष्टान् यच्छन्तिनिगृह्णन्तितेयमा न्यायाधीशाः" जो दुष्टोंको दण्ड और श्रेष्ठोंका पालन करने हारे न्यायकारी हों वे यम "यः पाति स पिता" जो सन्तानोंका अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वोह पिता "पितुः पिता पितामहः पितामहस्यपिताप्रपितामहः यामानयति सामाता" जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानोंका मान्य करै वोह माता "यापितुर्मातासापितामही पितामहस्यमाताप्रपितामही" अपनी स्त्री तथा भगिनी स-

म्बन्धी और एक गोत्रके तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हो उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न वस्त्र सुन्दर पान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस जिस कर्ममे उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहै उस २ कर्मसे प्रीति पूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है

समीक्षा—पहले सत्यार्थप्रकाशमें मरोंका श्राद्ध तर्पण लिखाथा इसमें आप किसी पादरीसे हारकर जीतोंका श्राद्ध तर्पण लिखते हैं इस्से पहले हम यही निर्णय किया चाहते हैं कि श्राद्ध मृतक पुरुषोंका होताहै वा जीवतोंका देखो यजुर्वेद

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑ तेषां॑ल्लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञोदे॒वेषु॑कल्पताम् अ० १९ मं० ४५

अर्थ—अपसव्य और दक्षिण मुख होकर यजमान एकवार लिये हुए घृतको जुहूसे दक्षिणाग्निमें होमताहै उसका मंत्र प्रजापतिऋषिः अनुष्टुप्छन्दः पितरोदेवता

जो सपिण्ड मनस्वी पितर यमलोकमे हैं स्वधा नाम अन्न उनके दृष्टिगोचर हो पितृ यज्ञ वसु रुद्र आदित्य देवताओंमे वास करो ४५

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जीवा॒जीवे॑षु॒माम॒काः तेषा॒ꣳ श्रीर्मयि॑कल्पताम॒स्मिँल्लो॒केश॒तꣳ समाः॑ ४६

अर्थ—जो प्राणियोंके मध्य समदर्शी मनस्वी हमारे सपिंड पितर है उनकी धन संपत्ति सौ वर्षतक हमारे पास निवास करो ४६

द्वे सृ॒तीअ॑शृणवम्पितृ॒णाम॒हन्दे॒वाना॑मु॒तमर्त्या॑नाम् ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्सम॑ति॒यद॒न्त॒रापि॒तर॒म्मात॑रञ्च ४७

प्रजापतिर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः देवयानपितृयानमार्गौदेवते

अर्थ—मैंने मनुष्यों देवताओं और पितरोंके दो मार्गको सुना जो कि स्वर्ग और पृथ्वीके मध्य वर्तमान हैं यह क्रियावान विश्व उन देवयान पितृयान मार्गोंसे जाताहै उन मार्गोंके लिये श्रेष्ठ होमहो ४७

उदी॑रता॒ मव॑र॒ उत्परा॑स॒ उन्म॑ध्य॒माः पि॒तरः॑ सो॒म्यासः॑ असुं॒ यई॒युर॑वृ॒काऋ॑तज्ञा॒स्तेनो॑ऽवन्तु॒पि॒तरो॒हवे॑षु

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० १

उदीरतामवरउदीरतां परउदीरतां मध्यमः पितरः सोम्याः सोमसम्पादिनस्तेऽसुंये प्राणमन्वीयुरवृकाअनमित्राः सत्यज्ञावा यज्ञज्ञावा तेनआगछन्तु पितरोह्वानेषु माध्यमिको यम इत्याहुस्तस्मान्माध्यमिकान् पितॄन्मन्यन्ते नि०अ०११ पा०२ खं० ६ कां०दैवतम्

शंखऋषिः पितृमेधेविनियोगः

भाष्यम् येतावत् अवरे पितरः पृथिवीमाश्रिताः तेतावत् उदीरतां ऊर्ध्वंगच्छन्तु अथ पुनर्ये (परासः) परेद्युलोकमाश्रिताः तेष्युदीरताम् तेषामप्यप्रच्युतिरस्तु मुच्यन्तां वातदधिकारप्रक्षये (उन्मध्यमाः) पितरोयेऽपि मध्यमाः मध्यस्थानाश्रयाः तेप्युदीरतां उत्तमंलोकमाश्रयताम् सोम्यासः सोमसम्पादिनः कर्मण्यङ्गभावमुपगछन्तोयेसोमंसम्पादयन्ति किं प्रकाराः "असुंयईयुः" प्राणमात्रमूर्तयः अस्थूलविग्रहाः "अवृकाः" अनमित्राः परंसाम्यमुपगताः "ऋतज्ञा" यथावत् सत्यवेदितारः यज्ञस्यवा य एवमादिगुणयुक्ताः पितरः "ते नः" अस्माकम् नित्यं "अवन्तु" आगछन्तु "हवेषु" आह्वानेषु इत्येतदाशास्महे माध्यमिकोयम इत्याहुः नैरुक्ताः तस्मात् पितॄन् माध्यमिकान्मन्यन्ते सहितेषां राजेति

वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषादुवस्य

ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० १

इति मंत्रप्रमाणात् यमस्यपितृराजत्वं भवतिदुवस्य परिचरेत्यर्थः

भाषार्थ—जो पितर अवर अर्थात् पृथ्वीमें स्थितहैं वे ऊपरगमन करो और जो स्वर्लोकमें स्थितहैं वे प्रच्युतिरहित होवैं, अथवा अधिकारकी क्षीणतासे मुक्त होवैं और जो मध्यस्थानमें स्थितहैं वे उत्तम लोकका आश्रय करो वे पितर सोम्यास हैं, अर्थात् कर्ममें अंग भावको प्राप्त होकर सोमको सम्पादन करते हैं, और स्थूल शरीरको त्याग कर प्राण मात्र मूर्तिवाले हैं (अवृक) अर्थात् शत्रुभाव रहित यथावत् सत्य वा यज्ञके ज्ञाता हैं वे पितर आवाहन स्थानोंमें आगमन करो माध्यमिकयम है इस कारण पितरोंको माध्यमिकही मान्ते हैं, क्यों कि यमराज मध्यस्थानमें स्थितहैं और तदनुवर्ती पितरभी मध्यस्थानमें स्थितहैं, यमको पितृराज होनेमें (वैवस्वतं०) यह मंत्र प्रमाण है इसका अर्थ यह है कि प्राणीमात्रका यमके प्रतिगमन होताहै तिस यमराजकी हविसेपरिचरणकर "दयानंदी इन मंत्रोको विचारैं"

येनः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वशिष्ठाः
तेभिर्यमः संरराणोहवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु

यजु० अ० १९ मं० ५१

(शंखऋषिः पितरोदेवता) जिन सोमके योग्य वशिष्ठ बंशी हमारे पूर्व पितरोंने

सोमप.न देवताओंको प्राप्त कराया हवि चाहनेवाला यजमान उन हवि चाहनेवाले पि-तरोंके साथ प्रसन्न होता इच्छानुसार हवियोंको भक्षण करो ५१

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः

वन्वन्नवातः परिधीँ२ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ५३

(शंखऋषिः सोमोदेवता) हे संशोधक सोम हमारे बुद्धिमान् पूर्व पितरोंने तेरे द्वारा यज्ञ आदि कर्मोंको किया इस कारण प्रार्थना करता हूं इस कर्ममें युक्त वायु आदि उपद्रवसे रहित तुम उपद्रव करनेवालोंको हटाओ और वीर तथा सूर्य रूप पि-तरोंसे युक्त तुम हमारे धनदाता हूजिये ५३

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्

तऽआगताऽवसा शन्तमेनाथा नः शंयोररपो दधात ५५

(शंखऋषिः पितरोदेवता) कुशासनपर बैठनेवाले जो पितर हैं वे आप रक्षाके निमित्त समीप आईये तुह्मारे येहवि हमने संस्कार किये तुम इनको सेवन करो उसके पीछे बड़े सुखदाता अन्नसे तृप्त होते हमारे सुख, रोगनाश, भयका हटाना और पापके अभावको स्थापन करो ५५

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः

अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ५८

(शंखऋषिः पितरोदेवता) सोम पानके योग्य श्रौत स्मार्त कर्मके अनुष्ठाता ह-मारे पितर देवयान मार्गोंसे आओ इस यज्ञमें स्वधानाम अन्नसे तृप्त और सन्तुष्ट होते हमको अधिक कहो अर्थात् हम उनके आशिर्वादसे वृद्धि पावें वे पितर हमको पालन करो५८

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते

तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशन्तन्वङ्कल्पयाति ६०

जो पितर अग्निसे दग्ध हुए और्ध्व देहिके कर्मको प्राप्त हैं और जो पितर अग्निमें दग्ध नहीं हुए अर्थात् श्मशान कर्मको नहीं प्राप्त किया और स्वर्गमें अपने कर्मोपा-र्जित अन्नसे तृप्त रहते हैं जिस कारण ईश्वर उन पितरोंके लिये इच्छानुसार इस प्राणयुक्त शरीरको देताहै ६०

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६२

हे पितरो तुम सब जानुको गिराकर दक्षिण मुख बैठकर इस यज्ञको सराहो किसी अपराधसे हमको मत पीडा दो जिस कारण पुरुष भावसे तुह्मारे अपराधको हम करते हैं ६२

आसीनासोअरुणीनामुपस्थेरयिन्धत्तदाशुषेमर्त्याय
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्यवस्वः प्रयच्छततइहोर्जन्दधात ६३

हे पितरो (अरुणीनाम्) अरुणवर्ण ऊनके आसनो अथवा सूर्यकी किरणोंके (उपस्थे) ऊपर वागोदमें (आसीनासः) बैठे हुए तुम (दाशुषे) हविके दाता (मर्त्याय) यजमानमें (रयिम्) धनको (धत्त) धारण करो (पुत्रेभ्यः) (तस्य) उसके पुत्रोंके लिये (वसुनः) धनको (प्रयच्छत) दो (ते) वे तुम (इह) इस यज्ञमें (ऊर्जं) रसको (दधात) स्थापन करो ६३

पुनन्तुमापितरः सोम्यासः पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्र-
पितामहाः पवित्रेणशतायुषा पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्र-
पितामहाः पवित्रेणशतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै अ० १९ मं० ३७

सोमके योग्य पितर पूर्णायुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो पितामह मुझको पवित्र करो प्रपितामह पवित्र करो पितामह पूर्ण आयुके दाता पवित्रासे मुझको शुद्ध करो प्रपितामह शुद्ध करो पूर्ण आयुको प्राप्त करूं

आधत्तपितरोगर्भङ्कुमारम्पुष्करस्रजम् ॥ यथेहपुरुषोसत्
यजु० अ० २ मं० ३३

हे पितरो जिस प्रकार इस ऋतुमें देवता पितर मनुष्योंके अपेक्षित अर्थका पूर्ण करनेवाला पुत्र होवै उसी प्रकार पुष्कर मालाधारी अश्विनीकुमारोंके तुल्य कमल माला धारण करनेवाले पुत्ररूप गर्भको सम्पादन कीजिये ३३, पुत्रकी कामना करने वाली स्त्री मध्य पिंडको भोजन करै उस समय इस मंत्रको पढै यह आश्वलायनमें लेखहै

येचजीवायेचमृतायेजातायेचयाज्ञियाः ॥
तेभ्योघृतस्यकुल्यैतुमधुधाराव्युंदती अथर्व०

जो जीवित हैं जो कोई मृतक हो गये जो उत्पन्न हुए जो यज्ञके करानेवाले है उनके वास्ते घृतकी कुल्या मधुधारा प्राप्त हो

प्रेहिप्रेहिपथिभिः पूर्याणैर्येनातेपूर्वेपितरः परेताः ॥
उभाराजानौस्वधयामदन्तौयमंपश्यासिवरुणंचदेवम् अथर्व०

जिस समय मृतकका अग्नि संस्कार करते हैं तो कहते हैं हे अमुक तुम उसी मार्गसे जाओ जहां तुह्मारे पूर्व पितर शरीर त्यागनकरके गये हैं जहां वरुण और यम हविपाकर आनन्दसे रहते हैं उन दोनोंको तू देखैगा

येनिनिखातायेपरोप्तायेदग्धायेचोद्धिताः ॥
सर्वांस्तानग्नआवहपितॄन्हविषेअत्तवे अथर्व प्र.३३अ.२मं.३४

हे अग्ने जो पितर गाड़े गये जो पड़े रहे जो अग्निसे जलाये गये जो उद्धित हैं (फैके गये) उन सबको हवि भक्षण करनेको सम्यक् प्रकारसे लेजा

येअग्निदग्धायेअनग्निदग्धामध्येदिवः स्वधयामादयन्ते
त्वंतान्वेत्थयदितेजातवेदः स्वधयायज्ञंस्वधितिंजुषन्ताम् अथ०

जो अग्निमें जलाये गये और जो नहीं जलाये गये जो हवि भक्षण कर स्वर्गके मध्यमें आनन्दित हैं हे अग्नि तू उनको जानता है सो यह हवि उनके अर्थ सेवन करनेको लेजा

येनःपितुः पितरो येपितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्
य आक्षिपन्तिपृथिवीमुतद्यांतेभ्यःपितृभ्योनमसाविधेम अथर्व०

जो हमारे पिताके पितर जो पितामह जो कि आकाशको गये वा जो पृथ्वी और स्वर्गमें है तिन पितरोंके वास्ते नमस्कार करते वा अन्न देते हैं

योममारप्रथमोमर्त्यानांयः प्रेयायप्रथमोलोकमेतम्
वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषासपर्यत अथर्व०

जो मनुष्योंको मारके प्रथम इस लोकसे लेजाते हैं उन मनुष्योंके प्राण लैनेवाले यम राजाको हविद्वारा हम पूजन करते हैं

यास्तेधानाअनुकिरामितिलमिश्रास्वधावती
तास्तेसन्तुविभ्वीप्रभ्वीस्तास्तेयमोराजानुमन्यताम् ६ अ०

जो मैं तिलमिश्रित धान यह जल सहित देताहूं वोह इस मृतकको सुखकारक हो और राजा यम इसको माने

आरभस्वजातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तुते
शरीरमस्यसंदहाथैनंधेहिसुकृतामुलोके अथर्व०

हे अग्नि प्रचण्ड तेज युक्त अपनी ज्वालासे इस मृतकके शरीरको जला और पुनः पुण्यवानोंके लोकमे लेजा

येतेपूर्वेंपरागताअपरेपितरश्चये
तेभ्योघृतस्यकुल्यैतुशतधाराव्युंदती अथ०

हे मृतक जो तेरे पूर्व पितर अथवा औरभी स्वर्गमें गये उनके हेतु यह घृत कुल्या शतधारा होकर प्राप्तहो

स्वधापितृभ्योदिविषद्भ्यः स्वधापितृभ्योअन्तरिक्षसद्भ्यः अथर्व०

स्वर्गमें रहनेवाले पितरोंको स्वधा नाम अन्न प्राप्तहो अन्तरिक्षमें रहनेवाले पितरोंको स्वधा नाम अन्न प्राप्तहो

अङ्गिरसोनः पितरोनवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः
तेषां वयंसुमतौयज्ञियानामपिभद्रे सौमनसे स्याम य.अ.१९मं.५०

जो नवीन गतिवाले सोम योग्य अंगिरावंशी अथर्ववंशी भृगुवंशी हमारे पितरहैं उन यज्ञ योग्य पितरोंकी श्रेष्ठ बुद्धि और कल्याण करनेवाली सुन्दर मनोवृत्तिमेंभी हम स्थित होवें ५०

यौतेश्वानौयमरक्षितारौचतुरक्षौपथिरक्षीनृचक्षसौ
ताभ्यामेनंपरिधेहिराजन्त्स्वस्तिचास्माअनमीवंचधेहि
ऋ० मं० १० अ० १ सू० १५ मं० ११

हे राजा यम जो तुह्मारे दोनो कुत्तेहैं उनको इस प्रेतकी रक्षा करनेको भेजो वे श्वान कैसे हैं कि यमराजाके ग्रहके रक्षकहैं चार अक्षियोंसे युक्त हैं मार्गके रक्षा करनेवालेहैं मनुष्य जिनकी वडाई करते हैं सो इन कुत्तेको भाग देते हैं इस प्रेतका कल्याण औररोगा भाव संपादन करो

इत्यादि मंत्रोंसे विदित होताहै कि श्राद्ध मृतक पितरोंकाही करना चाहिये यदि कोई यह शंका करे कि क्या वहां डांक जाती है कि जो उन पितरोंके पास अन्न पहुंचताहै तो इसमेंभी वेदक.ही प्रमाणहै (उदीरिता)इस मंत्रमें प्राण मात्र मूर्ति पितरोंकी कथन करी हैं तथा (पितरो यमराज्ये) जो पितर यम लोकमें हैं ॥ इस कथनसे यह विदित होताहैं कि प्राण मात्र तथा सूक्ष्म शरीरधारी पितर लोकान्तरमें वास करते हैं उन सबको मंत्र संस्कृत अग्नि हवि पहुंचाता है यथाहि

यमग्नेकव्यवाहनत्वञ्चिन्मन्यसेरयिम्

तन्नोगीर्भिः श्रवाय्यन्देवत्रापनयायुजम् ६४ मं० अ० १९ यजु०

(शंखऋषिः अग्निर्देवता) (कव्यवाहन) पितरोंके अन्न प्राप्त करानेवाले (अग्ने) हे अग्नि (त्वम्) तुम (चित्) भी (यम्) जिस (रयिम्) हविरूप धनको (मन्यसे) उत्तम जान्ते हो (नः) हमारे (तम्) उस (गीर्भिः) वचनोंसे (श्रवाय्यं) श्रवण योग्य (युजं) हवि रूप धनको (देवत्रा) देवताओंके मध्य (आपनय) सब औरसे दो ६४

योऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः

प्रेदुहव्यानिवोचतिदेवेभ्यश्चपितृभ्यआ ६५

(यः) जिस (कव्यवाहनः) कव्य वाहन नाम (अग्निः) अग्निने (ऋतावृधः) सत्य वा यज्ञके वृद्धि देनेवाले (पितॄन्) पित्रोंको (यक्षत्) यजन किया (उ इत्) वही अग्निः (देवेभ्यः) देवताओं (च) और (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (हव्यानि) हवियोंको (आ) सब औरसे (प्रवोचति) जतलाताहै ६५

त्वमग्नईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानिसुरभीणिकृत्वी

प्रादाः पितृभ्यः स्वधयाते अक्षन्नद्धि त्वन्देव प्रयताहवींꣳषि ६६

हे कव्यवाहन नाम अग्ने देवताओं अथवा ऋत्विजोंसे स्तुति किये हुए तुमने हवियोंको सुगन्धित करके धारण किया पितृ मंत्रसे पित्रोंके लिये दिया उन पितरोंने भक्षण किया हे अग्नि देवता तुमभी शुद्ध हवियोंको भक्षण करो ६६

येचेहपितरोयेचनेहयाँश्चविद्मयाँ॥ उचनप्रविद्म

त्वंवेत्थयतितेजातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतञ्जुषस्व ६७

(च) और (ये) जो (पितरः) पितर (इह) इस लोकमें देहको धारण करके वर्तमान हैं (च ये) और जो (इह) इस लोकमें (न) नहीं है अर्थात् स्वर्गमें है (च) और (यान्) जिन पितरोंको (विद्म) हम जान्ते हैं (च) और (यान्) जिन पितरोंको (न) नहीं (प्रविद्म) जान्ते हैं स्मरण न हौनेसे (जातवेदः) हे सर्वज्ञ अग्नि (ते) वे पितर (यति) जितने हैं (त्वम्) तुम (उ) ही (वेत्थ) उनको जान्ते हो (स्वधाभिः) पितरोंके अन्नोंसे (सुकृतं) शुभ यज्ञको (जुषस्व) सेवन कर ६७

यहां इह शब्दसे जीते पितरोंका ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्होंने मरकर कर्मवश इस लोकमें देह धारण किया है अन्यथा न अविद्म इसका शब्दार्थ नहीं घट सक्ता विद्मका अर्थ यह हैं कि जिनको में अपना पितर जान्ताहूं परन्तु कहां है यह नहीं जान्ता अथवा जिनको जान्ताहूं (वाप दादे परदादेकूं) जिनको नहीं जान्ता इक्कीस पीढीतक ॥ यह तात्पर्य है ॥

इदम्पितृभ्योनमो अस्त्वद्ययेपूर्वासोयउपरासईयुः ॥
येपार्थिवेरजस्यानिषत्तायेवानूनंसुवृजनासुविक्षु ६८

(अद्य) अब (इदम्) यह (नमः) अन्न (पितृभ्यः) पितरोंके लिये (अस्तु) हो (ये) जो (पूर्वासः) पूर्वऋषिहैं (ये) जो (उपरासः) कृतकृत्य (ईयुः) ईश्वर को प्राप्तहुए (ये) जो (पार्थिवेरजसि) स्वर्गादिलोकमें (निषत्ताः) विराजमानहैं (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय (सुवृजनासु) धर्मवलरूप बलसे युक्त (विक्षु) प्रजाओं अर्थात् मनुष्यलोकमें देहधारण करके वर्तमानहैं ६८

अधायथानः पितरः परासः प्रत्नासोऽअग्नऽऋतमाशुषाणाः ॥
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामाभिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ६९

(अग्ने) हेअग्ने (नः) हमारे (परासः) उत्कृष्ट (प्रत्नासः) सनातन (ऋतं) यज्ञको (आशुषाणः) प्राप्तकरनेवाले (पितरः) पितरोंने (यथा) जैसे (अधा) अधोलोकसे (शुचि) पवित्र (दीधित् सूर्यमंडलको (इत्) ही (अयन्) प्राप्तकिया उसी प्रकार (उक्थशासः) यज्ञोंमें उक्थशास नामस्तोत्रोंको पढते (क्षामाः) वेदीआदि खोदनेसे भूमिको (भिन्दन्तः) भेदते हम (अरुणीः) सूर्यज्योतिको (अपव्रन्) प्राप्तहोवें ६९

उशन्तस्त्वानिधीमह्युशन्तः समिधीमहि
उशन्नुशतआवहपितृन्हविषेअत्तवे ७०

हेअग्ने (उशन्तः) कामार्थी हम (त्वा) तुझे (निधीमहि) स्थापनकरतेहैं (उशन्तः) कामार्थी हम तुझे (समिधीमहि) प्रज्वलित करतेहैं (उशन्)हविचाहनेवाले (उशतः) हविचाहनेवाले (पितृन्) पितरोंको (हविषे) (अत्तवे) हविभक्षणकेलिये (आवह) लाओ

यमायसोमः पवते यमायक्रियतेहविः

यमंह यज्ञोगच्छत्यग्निदूतोअरंकृतः अथर्व ०

यमकेअर्थ सोमकियाजाता यमके वास्ते हवि कियाजाता और मंत्रद्वारा अग्नि दूतही यज्ञसे यमके प्रति हविले जाताहै

इत्यादि मंत्रोंसे अग्निकाश्राद्धमै हविलेजाना सिद्धहै अब मनुजीका वाक्यदेखिये

अपसव्यमग्नौकृत्वासर्वमावृत्यविक्रमम्

अपसव्येनहस्तेननिर्वपेदुदकंभुवि अ० ३श्लो० २१४

अपसव्यहोकर अग्निकरणादिहोम और अनुष्ठान क्रमको करकै पश्चात् दक्षिणहाथसे भूमिपर पानीडाले २१४

प्राचीनावीतिनासम्यगपसव्यमतन्द्रिणा

पित्र्यमानिधनात्कार्यंविधिवद्दर्भपाणिना २७९

दहिने कंधेपर यज्ञोपवीतरखकै आलस्य रहित होकर दर्भ हाथमें ले अपसव्य यथाशास्त्र सब कर्म पितृसम्बन्धी समाप्ति पर्यन्तकरै २७९

इनबातोंके विचारनेसे विदित होताहै कि जीवित विद्वान पुरुषोंका नाम पितरनहींहै किन्तु जो मृतकहोगयेहैं श्राद्धतर्पण उन्हींका होताहै यदि देवता और पितर यह दोनौ नामविद्वानोंके होते तौ पितृकर्म अपसव्य और देवकर्म सव्यहो करने क्यों लिखेजाते तथा जो सपिंड पितर यमलोकमेंहैं उनकौ यह अन्नप्राप्तहो इस वेदवाक्यसे यमलोकमें स्थित पितरोंको अन्न मिलनाकहाहै यदि विद्वानोंका अर्थकरैं तौ विद्वानतौ इसीलोकमेंहैं (उनको यह अन्नदृष्टिगोचरहो) ऐसा कहना नहीं वनसक्ता क्योंकिवेतो इसी लोकमेहैं और सामने बुलाकर अन्नदे सक्तेहैं फिर (समानासमनसः) सपिंड और मनस्वीपितर सपिंड पितर कहनेसे तौ पितामहादिकोंकाही बोध होताहै यदि विद्वानअपने सम्बन्ध के नहीं तौं उनकेलिये सपिंड शब्दका प्रयोग नहीं होसक्ता

फिर सपिंड मनस्वी पितरोंकी धन सम्पत्ति हमारेपास १०० वर्षतक वासकरी यह बात तौ पितामहादिकौमेंही वनसकैगी क्योंकि पुत्र पिता पितामहादिकोंकेही धनका अधिकारी होताहै और जो विद्वानोंहीकानाम पितरकहतेहो तौ इसमंत्रके अनुसार जैसे उनको सत्कार पूर्वक बुलावैं सो झट उनका मालमता छीनलें और कहदेकि स्वामीजी कहगयेहैं तुम्हारा धन हमारे यहां सौवर्षतक रहै वस ऐसे अर्थोंसे बहोतसे विद्वान स्वामीजी की जानको रोवैंगे क्योंकि मंत्रके अर्थ कर आज्ञादेदीहै पुनः मनुष्यदेवता पितरोंके दोमार्ग कैसे वनैंगे वे मार्ग स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें वर्तमानहैं यह क्रियावान विश्वइन्हीं दो मार्गोंसे जाताहै यह जो पूर्व मंत्रका अर्थ कर आयेहैं यदि विद्वानोंका नाम पितरमानले

तौ यह दोमार्ग कैसे बनेंगे और क्या विद्वान् पृथ्वी और स्वर्गके बीचमें लटकतेहैं यह होनहीं सक्ता केवलपितरही जो प्राणमात्र मूर्तिहैं वायुके आधार मध्यमें स्थित रहसक्तेहैं क्योंकि (असुंयईयुः) इसका यही अर्थ है पितर प्राणमात्रमूर्तिवाले और सूक्ष्मशरीरहैं और इसलोक मध्यलोक परलोकमें स्थितजो पितरहैं वे ऊर्द्धलोकको जाओ तौ क्या इसमंत्रसे आपके विद्वाननामके पितर मध्यलोकमें और परलोकमें कैसे स्थितहोसक्तेहैं कभी स्वामीजी ऐसी करामत दिखातेकि दोचार घंटेको आकाशमें प्रवेश करजाते तौ लाखोंही चेले होजाते, और महायोगीराजमें गिन्तीहोती यदि विद्वानोही का नामपित रहै जो जिवितहैं तौ जिस समय में वेघरमें आवैं तौ उन्है ऊर्द्धलोक कैसे भेजैं स्थूलशरीर हौनेसे देहसे तौ जानहीं सक्ते यदि उनजीवतौंका प्राणबहिर्गत कियाजायतौ ऊर्द्धलोकजासक्तेहें तौ तौ वही दशाहोंयकि जैसे एकनाई किसीबावाजीको मार आफतमें पडाथा यह दृष्टान्त इस प्रकारहै कि एक मनुष्यने तपकर यह वरदान पाया कि हजामत बनवाते समय जो मंगताआवे तू उसे मारडालियो सौनाहो जायगा एकसमय हजामत बनवाते समय कोई मंगताआया और उसपुरुषने झटमार गिराया कि वोह सौनाहोगया नाई देखतेही कहने लगाकि यह तौ खूबनुकशा हाथलगा सौना सहजमें होताहै बस वोभी घरजाकर इसी फिक्रमें बैठा और मांगनेको आयेहुए किसीसाधूको मार गिराया और उसमें कुछनपाया अन्तमे राजदर्बारमें पकडेजाकर दंडभागीहुआ इस्से जीवित विद्वानोका ऊर्ध्वगमन सर्वथा असंभव होनेसे मृतकोकाही श्राद्धकरना और (पूर्वे पितरः) इसवाक्यमें जो पूर्वशब्दहै वोह पहले पितामहादिकाही सूचकहै और वही ह विग्रहण करसक्तेहैं यदि विद्वानोंका अर्थ लगावैं तौ बस उन्है बैठालदें उनके सामने हवनकरदें बस उनका पेटभरजायगा सो यह बात देखनेमें नहीं आती इसकारण पितर वेहीहै जो शरीर त्यागन करगयेहैं (बर्हिषदः) “कुशासनपर बैठनेवाले पितर आवें हमारे शोक और भयको हरावें और हमें सुखदें जो हमारे पूर्व पितरहैं वोह पापका अभाव स्थापनकरें देवयान मार्गहोकर आवैं, जो अग्निमें जलायेहुएहैं जो अग्निसंस्कारसे रहितहैं, प्राणमात्रमूर्ति स्वर्गमें रहनेवाले पितर मेरा कल्याणकरैं” यदि स्वामीजी विद्वानोहीका अर्थकहैं तों ऊपरके वाक्यानुसार जलायेहुए विद्वानोको कहांसे लायाजायगा जलनातौ मृतकहीकाहै हां एक बातसे दयानंदजीका इष्ट सिद्धहोसक्ताहै परन्तु वे इसको मान्तेनहींहै अचारी मतवाले दग्ध और अदग्धहोतेहैं ततऔर ठंडीमुद्राकेभेदसे यदि इनको दयानंदजी अपना पितर मान्तेहों तौ कुछ थोडीसी ठीक लगजाय परन्तु अगिचलकर फिर वही दुर्दशा क्योंकि “स्वर्गमें वर्तमान पितर और प्राणमात्र मूर्तिवाले यह बात जीवित विद्वानोंमें नहीं घट सकती इस्सेभी जीवित पुरुषोंका श्राद्ध और विद्वानोंहीका नाम पितरहै यह नहीं सिद्धहोता फिर दक्षिणकी ओर दक्षिणजांघ झुकाकर

।पितर बैठे "यह बात भी मृतकपुरुषोंको बतातीहै श्राद्धादिकार्य दक्षिणादि शामें मुखक- रकै करने लिखेहैं और देवकार्य पूर्वकी तरफको मुखकरकै इसकारणइनदौनो कार्योंमें महानअंतरहै यदि विद्वानही देवतापितरहों तौ फिर अंतर क्या दक्षिणपूर्व मुखकरनाक्या फिर उनके आसनपर बैठना यजमानको धनदो यह बातभी जीवित विद्वान नहीं करते यजमानको अपना धननहीं देते पुनः पिता पितामह प्रपितामह मुझे पूर्ण आयुदो पवि त्रकरो " यह बातभी जीवितोंमें नहीं कोई आयुनहीं देसक्तावे स्वर्गपितरही भला करने में समर्थहैं और पितरोंसे पुत्रकी कामनाकरना स्त्रीका पिंडभक्षणकरना यदि स्वामीजी जीवित विद्वानोको पितर मान्तेहैं तौ भला यह विद्वानविना संगकिये कैसे पुत्र देसकैं औ र स्त्री क्या पिंडके स्थानमें भक्षणकरै कदाचित् यह नियोग आपने इसीकारण चलाया होगा फिर अथर्ववेदके यहवाक्य " कि जो मरगयेहैं जो अन्तरिक्षमेंहैं उनपूर्व पितरों- को यह घृतमधु धारा प्राप्तहो तथा जो गाड दिये गये जो फेंकेगये जिनको हम जान्ते जि नको हम नहीं जान्तेहैं हेअग्नि उन्है बुलाला उनके अर्थ हवि लेजा तथा (पूर्वे पितरः) और (परेताः) जिसके अर्थ पहले पितामहादि मृतकहुएहुए यह शब्दबहुधा वेदोंमें आताहै जलेहुओंको स्वर्गमें अग्नि हवि पहुंचावै यह बात जीवितौमें कदापि नहींहोसक्ती और वेदमें लिखाहै जो सन्तानरहित पितर स्वर्गमें गयेहैं (इत्वाद्वेषांस्यनपत्यवन्तः अथर्व) और जो पितामहादिक अन्तरिक्षमें प्रवेशकरगयेहैं उनका हम अन्नद्वारासत्का रकरतेहैं स्वामीजीसे बूझनाथा कि क्यापितामहादिक जीवितही अन्तरिक्षमें प्रवेशकर जातेहैं यावै जीवित विद्वानही पितामहादिकहैं क्यावेभी जीवित अन्तरिक्षमें प्रवेशकरगयेहैं सो तो नहींहुआ परन्तु स्वामीजी मृतकहो अन्तरिक्षमें प्रवेश करगये यदिस्वामीजी अथ र्ववेदका पाठमात्रभी करते तौ ऐसी भूलनहोती "तथा जो मृत्युद्वारा प्राणियोंका वध क- रताहै जो पितरोंका राजाहै जिसे यम कहतेहैं उनकेअर्थ हम यह तिल मिश्रित धानदेतेहैं वे हमसे प्रसन्नहों (यमराजाके आधीन पितरहैं इसकारण उन्हैभी भागदेतेहैं) और फिर अग्निकी प्रार्थना कि हे अग्नि इसके शरीरको जलाकर इसकी आत्माको पुण्यलोकको ले- जा जो पूर्वपितरहैं जिन्है हमनहीं जान्तेहे अग्नितू जान्ताहै जो स्वर्ग अन्तरिक्ष लोकमेंहैं उनको हवि अग्निद्वारा पहुंचै स्वामीजीको यह न सूझी जीवितअन्तरिक्षमें कैसे ठहरसक्ते- हैं अथवा यह युक्ति करते कि दोकडी गाड एकऊपरहिंडोलेकी तरह गाड देते उसमें किसी विद्वान्के मातापिताको टांगदेते तौ (दिविषद्भ्यः) आकाशमें रहनेवाले पितरहैं यह शब्द सिद्धहोजाता अर्थ बदलनेकी आवश्यकता नरहती परस्वामीजीने तौ यह वाक्यही हजमकरलिये लिखेहीनहीं पर यह न शोचाकि पुस्तकें तो कहीं लोप नहीं हो गई और (यौतेश्वानौ) देखिये आजतक श्राद्धमें कुत्तेको भागदियाजाताहै यह यमके दूतहैं प्रथम इनको भागदेतेहैं जो यह पितरोंके भागमेंसे नलें, और अंगिरावंशी पितर

नवीन गति वाले (अथर्वाणः) नहीं चलने वाले और भृगु वंशी पितर (यह पितृगण हैं) हमारा कल्याण करैं इत्यादि बहुतसे वचन चारों संहिताओंमें पूर्ण हैं जो विस्तार भयसे नहीं लिखे न्यायी महात्मा जो पक्षपात रहित हैं उन्हें तो यही बहुत हैं श्राद्ध मृतकोंकाही प्राचीन समय से होता आताहै जो वेदमें सिद्धहै और यह जो कहीं दयानंदजीने आक्षेप किया है कि क्या वहां डांक जाती है डांकखाना है जो उनके पास अन्न पहुंचताहै सो सुनिये यह मंत्रसंस्कृत अग्निही वहां लेजाताहै इसमें यजु और अथर्वका प्रमाणहै, पूर्वमंत्र लिख दियेहैं (यमग्ने) इस मंत्रमें अग्निसे प्रार्थना कीहै कि हविको लेजा और पितरोंको दे तथा (योऽयमग्नि) इस मंत्रमें भी पितरों को अग्नि का हवि लेजाना कहकर अगले मंत्रमें यह कहाहै कि हे अग्ने तेरे दिये हुए हविको पितरोंने भक्षण किया, और जो पितर परलोकमें हैं जिनको हम नहीं जानते उन सबको हविसे तृप्तकर, तूही सब पितरोंको जानताहै, हे अग्नि! हम तुझे प्रज्वलित करते हैं, पितरोंको हवि भक्षणको ला, अग्नि दूत होकर यमलोकमें पितरों के पास जाता है हवि देनेको इत्यादि मंत्रोंसे अग्निका पितरोंके पास हवि लेजाना सिद्धहै और यही अग्नि मृतकके आत्माको संस्कृत होनेसे पितृलोकको लेजाता है जैसा कि (प्रेहि) इस मंत्रसे सिद्धहै. जब कि पिता दादा परदादा इन तीनोका श्राद्ध करना यह वेदकी प्रबल आज्ञाहै जब किसी के पितामह मृतक होंजाय तो वोह आपके मतमें श्राद्धही न करैं क्योंकि जीवितमें हीं श्राद्धकरना कहते हो बस सारा झगडाही समाप्त करदिया, दादा परदादा तौ वह तोंके देखने में नहीं आते, पोतेके जन्मतक वृद्ध होनेके कारण मृत होजातेहै बस आपने उनका चुल्लु भर जलभी उडादिया (इस अपराध करनेवालेका जन्म मारवार देशके कठिन जंगलमें हुआ होगा जहां पानीका नाम नहो) जलदानका वर्णन नियोग प्रकरणमें करेंगे कि किस प्रकार जल पहुंचताहै, इन मंत्रोंसे यह सिद्ध होगया कि श्राद्ध मृतक दादा परदादा आदिकोंका होना चाहिये, अब स्वामीजीके कल्पित वाक्योंका उत्तर लिखतेहैं "जो सांगोपांग, चारों वेदोंको पढाहो वोह ब्रह्मा उससे न्यून देवता उनकी सदृश स्त्री आदि कौंकी सेवा करनी, श्राद्ध और तर्पण कहाताहै" यह दयानंदजीकी महाभ्रांति है ब्रह्मा नाम उसी स्वयंभूका है जिसे चतुर्मुख कहते है, जैसे पूर्व लिख आये हैं कि प्राणियों प्रथम ब्रह्माहुए तथा (योवै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं) यह उपनिषद् वाक्यहै कि जो ब्रह्माको सबसे प्रथम उत्पन्न करताहै तथाच मनुः (तस्मिञ्जज्ञेस्वयंब्रह्मासर्वलोकपितामहः) उसमें सर्व लोकके पितामह ब्रह्माजी उत्पन्नहुए (हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे.) ब्रह्मा सबसे पहले थे यह यजुर्वेदमें लिखाहै तर्पणमें इन्हीं ब्रह्माजीका नामहै इन्हीके अर्थ जलदान होताहै न कि जो चार वेद पढा हों

वोह ब्रह्मा कहावै क्योंकि (उदीरता) इस मंत्रमें जो (ऋतब्रह्मा) शब्द पडाहै उसका यह अर्थ है कि जो यथावत सत्यको जानताथा (विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भी रवेपसः ॥ तेअङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परिजज्ञिरे) इसमें (विरूपाः) नानारूपा अनेक प्रकारके रूप रचनेवाले (ऋषयः) अवितथस्य ब्रह्मणो द्रष्टारः न केवलं पश्यन्ति अपिच गम्भीरवेपसः अप्रमेयकर्माणः।अप्रमेयबुद्धयो वा ते अङ्गिरसः सूनवः ते अग्नेः परिजज्ञिरेइत्यादि) ऋषिलोग जो आंगिराके पुत्र अग्निसे उत्पन्न हुए, वे सम्यक्प्रकार ब्रह्मके देखनेवाले थे, और अप्रमेय बुद्धिमान्‌थे, जिनकी बुद्धि यथावत वेद शास्त्रमें प्रवृत होतीथी जबकि ऋषि योगी आदि यथावत वेदको साङ्ग जान्तेथे, उनकानाम कही ब्रह्मा किसीने नहीं कहा, तौ यह बात कैसे प्रमाण होसक्ती है, कि जो साङ्ग चारों वेदोंको जाने वही ब्रह्मा, दयानंदजी तुमभी तौ सृष्टीक्रम और साङ्ग वेदोंके जान्नेका अभिमान रखतेहो अपना नाम ब्रह्मा रख लिया होता, और व्यास वशिष्ठादि जो यथावत वेदको जान्नेवालेथे कहीं ब्रह्मा न कहलाये इस्से वेदपढनेवालेको यहां ब्रह्मा कहना सर्वथा झूंठहै और “ जोब्रह्माकेपोते मरीचिवत् विद्वान् होकरपढावै उनके सदृश विदुषी स्त्री उनकी सेवा करनी ऋषितर्पणहै (ॐमरीच्यादयऋषयस्तृप्यन्ताम्)” स्वामीजी इस्मेसेवत् आपने कहांसे निकाला ब्रह्माकेपोते मरीचवत् विद्वान होकर पढावै, उसकी सेवा ऋषि तर्पणहै उपर तौ आप वेद जान्नेवालेका नाम ब्रह्मा लिख आयेहैं, अब किसी निश्चित पुरुषकानाम कहकर उनके पोतेका नाम मरीच वताते हो, धन्यहै इस बुद्धिको कि बालकोकोभी हसीआतीहै, यह नलिखा मरीचिमें कितनी विद्याथी, यहकहना आपका सर्वथा असत्यहै अथर्ववेदमें ऋषियोंके नाम लिखेहैं, सो आगे लिखेंगे, उनको जलदेना ऋषितर्पणहै अब सोमसदादि शब्दोंकी जो दयानंदजीने व्युत्पत्ति लिखीहै उसे जिन २ का बोध होताहै सो सुनिये जोपरमात्मा औरपदार्थ विद्यामें निपुणहोंवे सोमसद् कहाते हैं इस्से यह जानाजाताहै कि जितने मनुष्य पदार्थविद्या जान्तेहों चाहै वे शूद्र यवन क्रुश्चीन अंगरेजादि क्योंनहों सब पदार्थ विद्या जान्नेवाले सोमसद् होगये, साफही लिखदिया होता कि कि जिसशालामें Physics फिजिक्स पढाई जातीहै वहांके अंगरेज अध्यापक और विद्यार्थियोंको बुलाकरकर सत्कारकरना वेही सोमसद् पितरहैं धन्यहै, अच्छे२पितर सत्यार्थ प्रकाशमें लिखेहै,लाखो सोमसद मिलजायगे, पर अंग्रेज अधिकहोंगे और आपको उन्है पितर कहना युक्तहीहै (जोअग्निऔर विद्युदादि पदार्थों को जान्नेवालेहों वेअग्निष्वात्त) यह विद्या तौ तारवाबू और रेलकेगार्ड इंजीनियर आदि महाशयोंकोही आतीहै सो हजारों क्या लाखो अग्निष्वात स्टेशन २ पर मिल जायगे, दयानंदजीने खूब सोचाकि एक दिन ड्राइवर इंजीनियर और तारवाबूओंका भी सत्कार करना शायद कभी विना टिकटके प्लेटफार्म पर तौ घूम सकेंगें, सिपाही लोगोंके धक्के तौ न सहने पडेगे धन्यहै रेलवाले

भी पितरहैं और सिपाही लोगोंकि कौनसे पितरोंमें रक्खा इन्है भी तौ कुछ देना चाहियेथा कोईपितरोमें मिलादिया होता(जोउत्तमविद्यावृद्धिव्यवहारमें स्थितहोवे बर्हिषद्) उत्तमविद्यावृदिव्यवहारोंमें आजदिन गौरङ्गोंसे उत्तमकौनहै जहा सौमै८८पढे हुहैं भारतवर्षमें सौ मेसे १३,कैसी २ उतमविद्या निकालीहैं, बस बर्हिषद पितर गौरांगही हुए आपने सोचा होगाकि इन महाशयोंके भोज्यमें भी अधिकलाभहोगा कृपादृष्टि होतेही दरिद्र पार होजायगा वाह गौरांगभी पितर बनाये सब कुछ आपकी चाल इन्हीसें मिलतीहै (जो ऐश्वर्यके रक्षक महौषधि पानसे रोग रहित अन्यके ऐश्वर्यके रक्षक तथा रोगको ओषधी देकर नाश करने वालेहै वे सोमपा) धन्य है डाक्तरभी आगये लो अब हकीमजी भी पितर होगये और वोह महोषधि कौनसी उसका नाम न लिखा हकीमों को जरूर श्राद्धमें जिमाना कदाचित् यजमान बीमार होजायतौ औषधीतौ अछी प्रकार करैगा परन्तु डाक्तर और हकीमजी ऐश्वर्य रक्षक तौ नहीं किन्तु भक्षकहैं यह शब्द कैसे घटैगा क्योंकि १६ (रुपये ४) प्रति दिन भेंट चाहिये इन्है निर्धन कैसे पितर बना सक्तेहैं और मनुजी ऐसे पितरोंका निषेध करते हैं।

चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा
विपणेन च जीवंतो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥ अ० ३ श्लो० १५२

वैद्य पुजारी मांस बेचनेवाला वाणिज्य करनेवाला यह सब श्राद्धकर्म और देवकर्म में वर्जित हैं इस कारण सोमपाका अर्थ ठीक नहीं सोमएक औषधी है देवता पितरोंको प्रियहै उसके पानसे वे सोमपा कहातेहैं (जो मादक और हिंसाकारक द्रव्योंको छोडके भोजन करते है वे हविर्भुज) अबके आर्य्यावर्तवासी पितर बनाये सरावगी आचारी वैष्णव शैव सब ही पितर होगये परन्तु मादक द्रव्य भंग तमाखू सुलफा अफीम मादक द्रव्यका तौ सेवन सब ही करते होंगे अन्य देशवासी हिंसा और पान दोनोसें नहीं बचे इसकारण दयानंदजीको हविर्भुज पितर मिलने कठिनहैं (जो जान्ने योग्य वस्तुके रक्षक और घृतदुग्धादिके खाने और पीने हारे हों वे आज्यपा.) इसमें तौ सब ही पितर होगये दूध पीनेवाले भी पितरहैं तौ बालक जन्महीसे दूध पीतेहै हलवाई घोसी और इनके यहांके सब दूधके ग्राहक पहलवान मुसल्मान आदि चारों वर्ण सबजात एवं संसारही दूधपीताहै तौ यह सबके सब आपके पितर हैं आपना नाम न लिखाकि स्वयं कौनसे पितरोंमेंहो (जिनका अच्छा धर्म करनेका सुख रूप समय होवे सुकालिन्) यह तौ अमीर और भक्त पितर बनाये क्योंकि अमीरोंका रुपयेसे भक्तोंका ज्ञानसे अच्छा समय कटताहै (जो दुष्टोंको दंड और श्रेष्ठोंके पालन करने हारे न्यायकारीहों वे यम) बस इतनीही कसरथी हाकिमोंकी जरूर भोज्य देना चाहिये क्यों दंड यही देते श्रेष्ठोंको यही पालते इसकारण

इनको बुलाकर जरूर जिमाना चाहिये किसी मुकदमेंमें सहायता करदेंगे परन्तु इनका भोजन अन्यत् प्रकारका है और अथर्ववेदमें (यास्तेधाना) यमराजको तिलधान देना लिखाहै और आपके यम इसे स्वीकार करेंगे नही तौ कैसे ठीक लगैगी और शतपथ ब्राह्मणमें यह लेखहै कि-

अथ पुरस्तादुल्मुकं निदधाति सयदनिधायोल्मुकमथैतत्॥ पितृभ्यो दद्यात् असुर रक्षसानिह्येषामेताद्विमथीरन् तस्मात्पुरस्तादुल्मुकं निदधाति १

अर्थ-पितरोंके पिंडदान करनेकी वेदीके आगे उल्मुक धरै यदि जल तीलकडी न धरकर पितरोंको दे तौ असुर राक्षस इनके भागको गडबड कर देतेहैं इस लिये जल ती लकडी धरदे यह वैदिक विधिहै तौ जब पंडित हाकिम विद्वान् इनको महाभोज करावे तौ मेजपर एक जलतावबूरका लकड़भी ला रक्खाकरै क्यौ कि पितृ यज्ञकी विधि ही ऐसीहै और मनुजीने लिखाहैकि

पित्रोरात्र्यहनीमासः प्रविभागस्तुपक्षयोः ॥

(पित्रोंका रातदिन एक मासकाहै जिसका विभाग दोपक्षोंमें है कृष्ण पक्षका दिन शुक्लकपक्षकी रात्रिहै तौ क्या दयानंदियोंके पंडित और यम पंद्रह दिन सोतेहैं) इस्में तौ सारा संसारही पितृरूप बना दिया अच्छा जीवित श्राद्ध निकाला. जब आप वृद्धोंकी सेवाका नाम श्राद्ध बताते हो तौ वे वृद्ध जिनके पितामहादि नहीहें किनकी सेवा करै बस बैठ रहें आपके लेखसे यह सूचित है कि दादा जीवितहो तौ पोता श्राद्ध करै पिता दादा कुछ नकरैं और यदि जीवित पितरोंका श्राद्ध मान्तेहो तौ (श्राद्धेशरदः) यह अष्टाध्यायी का सूत्र है कि शरदऋतुमें श्राद्ध करे (तथाअमावसकूंकरेयहमनुजीकहतेहैं) तौ ग्यारह महीने तक पिता मातादिकोंको उपवास करावे, और माता पिता बालकोकों जन्मसे पालेतेहें, तौ क्या यहभी श्राद्धही हुआ और जिसके पिता दादापै लाखोंकी सम्पति हो उसका पुत्र क्या सेवाकरैगा, तौ बस श्राद्धही उडगया इस्से आपका कथन ठीक नही श्राद्धका समय नियतहै, अब तुह्मारे कल्पित अर्थोंकी पोल खोलें सो मसदादि अर्थोंकी व्याख्या लिखतेहैं

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥
तेषामृषीणां सर्वेषांपुत्रापितृगणाः स्मृताः १९४ अ० ३
विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥
अग्निष्वाताश्चदेवानां मारीचा लोकविश्रुताः १९५

दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥
सुपर्णकिन्नराणांच स्मृतावर्हिषदोऽत्रिजाः १९६
सोमपानामविप्राणां क्षत्रियाणांहविर्भुजः ॥
वैश्यानामाज्यपानाम शूद्राणां तु सुकालिनः १९७
सोमपास्तुकवेः पुत्रा हविष्मंतोऽङ्गिरःसुताः ॥
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रावसिष्ठस्यसुकालिनः १९८
अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्वर्हिषदस्तथा ॥
अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेवनिर्दिशेत् १९९
यएतेतुगणामुख्याः पितॄणांपरिकीर्तिताः ॥
तेषामपीह विज्ञेयंपुत्रपौत्रमनंतकम् २००
राजतैर्भाजनैरेषामथोवाराजतान्वितैः ॥
वार्यपिश्रद्धयादत्तमक्षयायोपकल्पते २०२

स्वायंभू मनुके जो मरीचि आदि, उन ऋषियोंके पुत्र पितृगणोंको मनुजीने कहाहै विराटके पुत्र सोमसदनामवाले वे साध्योंके पितर ऐसे कहेहै अग्निष्वात्तादि मरीचिके पुत्रहैं वे लोगोंमें विख्यातहैं और देवताओंके पितर कहातेहै दैत्योंके पितर वर्हिषद नाम वाले अत्रिके पुत्रहैं (वे दैत्य दानव यक्ष गर्धव उरग राक्षस सुपर्ण किन्नर इन भेदोंके हैं १९६ सोमपा ब्राह्मणोंके हविर्भुज क्षत्रियोंके आज्यपा वैश्योंके सुकालिन शूद्रोंके पितरहैं १९७ भृगुके पुत्र सोमपादि अंगिराके पुत्र हविष्मंत, पुलस्त्यके पुत्र आज्यपादि, और वशिष्ठके पुत्र सुकालिन हैं, यह पितर इन ऋषियोंसे हुए १९८ अग्नि दग्ध अनग्नि दग्ध और काव्योंके तथा वर्हिषदोको भी और अग्निष्वात्त तथा सौम्य यह सब ब्राह्मणोंके पितर जान्ने १९८ यह इतनें पितरोंके गण मुख्य कहेहै उनके इस जगतमें पुत्र पौत्र अनन्तहै सो जान्ना २०० चांदीके पात्र करकै या चांदीके लगेपात्रसे पितरोंके श्राद्ध करके दिया पानी अक्षय सुखका हेतु होताहै २०२ इस प्रकारसे यह पितरोंके गण हैं जो जिसके पितर हैं पितामहादिक जो मृतक होतेहै इन्हीं मुख्य पितरोंके द्वारा जौ कुछ दिया जाता है सो पहुंचताहै दयानंद जीने व्याकरण खर्च कर सारे जगतको ही पितर बना दिया यह नाम इन्ही पितरोंमें रूढीहै और इनके पास जिनका गमन होता है वो हभी इसी नामके होजातेहै और स्वामीजीने वोह बात करी है कि जैसे गंगा शब्दकेवल भागीरथी

नदीमें ही रूढिहै यदि कोई कहै कि गच्छतीति गंगा यह नदी नही, तौ बस हवा आदमी कीट पतंगादि सब गंगाहोगये, ठीक गंगा खोदी, सोई दयानंदजीने पितरोंका हटाय इंजीनियर सरावगी हाकिमादि पधरा दिये, इसी प्रकार वेदोंमें जिस पदको अपने विरुद्ध पाया झट अर्थ बदल दिये, यही श्राद्धमें गडबडी मचाई, मनुजी विराटके पुत्र सोमसद लिखतेहैं, दयानंदजी उत्तम व्यवहार में बैठने वालोंके सोमसद कहतेहैं, ऐसा महान अंतर स्वामीजीके अर्थ और प्राचीन वाक्योंमें है इसकारण स्वामिजी का अर्थ मिथ्याहै और सुनिये ।

ज्ञाननिष्ठाद्विजाःकेचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ॥
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्चकर्मनिष्ठास्तथापरे १३४
ज्ञाननिष्ठेषुकव्यानि प्रतिष्ठाप्यानियत्नतः ॥
हव्यानितुयथान्यायंसर्वेष्वेवचतुर्ष्वपि १३५ मनु० अ० ३

कोई ब्राह्मण आत्मज्ञानपरायण होतेहैं और दूसरे प्राजापत्यादि तपतत्पर होतेहैं और और कोई तप अध्ययन रतहोतेहैं और कोई यज्ञादि कर्ममें तत्पर रहतेहैं॥१३४॥इनमें ज्ञान निष्ठोंको श्राद्धमें यत्न पूर्वक भोजन देना, और यज्ञोंमें क्रमसे सबको भोजन देना।

निमंत्रितान्हिपितर उपतिष्ठन्तितान्द्विजान् ॥
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपावसेत् अ० ३ श्लो० १८९

पितर श्रेष्ठ गुणवाले निर्मन्त्रित ब्राह्मणोंके पास आजातेहैं, वायुकी समान उनके पीछे चलतेहैं, बैठने पर बैठतेहैं इस कारण निर्मंत्रित ब्राह्मण नियम पूर्वक रहै १८९ जब कि पितर वायुवत् पीछे चलतेहै तौ निश्चय है कि पितरोंकी प्राण मात्र मूर्त्ति हैं, इसी कारण मृतक पुरुषोंही का श्राद्धहोताहै, नही तौ निर्मंत्रित ब्राह्मणोके संग कौन चलतेहैं, उन्हीके अर्थ जल देतेहै, तथा वाल्मीकि अयोध्याकाण्ड सर्ग १४ श्लोक १६ से

रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः ॥
रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम् १६

पुनः ११ सर्गे

ततोदशाहेतिगते कृतशौचोनृपात्मजः ॥
द्वादशेहनिसंप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत् १

उत्तिष्ठपुरुषव्याघ्र क्रियतामुदकंपितुः ॥
अहंचायंचशत्रुघ्नःपूर्वमेवकृतोदकौ ७
प्रियेणकिलदत्तंहि पितृलोकेषुराघव ॥
अक्षयंभवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः॥८ सर्ग १०२ अयो०
शीघ्रंस्रोतःसमासाद्यतीर्थंशिवमकर्दमम् ॥
सिषिचुस्तूदकं राज्ञे ततएतद्भवत्विति २५
प्रगृह्यतुमहीपालो जलपूरितमंजलिम् ॥
दिशंयाम्यामभिमुखोरुदन्वचनमब्रवीत् २६
एतत्तेराजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम् ॥
पितृलोकगतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु २७
ततोमंदाकिनी तीरंप्रत्युत्तीरेसराघवः ॥
पितुश्चकारतेजस्वी निर्वापं भ्रातृभिः सह २८
ऐंगुदंबदरैर्मिश्रंपिण्याकं दर्भसंस्तरे ॥
न्यस्य रामः सुदुःखार्तो रुदन्वचनमब्रवीत् २९
इदंभुक्ष्वमहाराज प्रीतो यदशना वयम् ॥
यदन्नः पुरुषोभवति तदन्नास्तस्यदेवताः ३०

अर्थ—महाराज दशरथने कहा यह जो रामचन्द्रके अभिषेकके कारण सामग्री आई है सो रामको अभिषेक न होगा किन्तु जब में मरजाऊंगा तौ रामचंदसे इसी जलादिकसे मेरी जलक्रिया करानी १६ जब राजाका शरीर छुट गया तौ दशाह होनेके पश्चात् बारहवें दिन भरतजीने श्राद्ध किया ७ जब भरतजी चित्रकूटमें गयें तौ रामचंद्रसे कहा हे पुरुषोतम उठो और पिताकी जल क्रिया करो मे और शत्रुघ्न पूर्व कर चुकेहैं ७ जो प्यारे जन कुछ देतेहैं सोह पितृ लोकमें अक्षय होताहै तुम तौ पिताके प्यारेहो ८ फिर रामचंद्र मंदाकिनीके किनारे सुन्दर निर्मल स्थानमें बैठ जलदान कर कहने लगे कि यह पिताको पहुंचै २५ हाथमें जलले दक्षिण दिशाको मुखकर रोते हुए यह वचन बोले २६ हे राजशार्दूल यह निर्मल जल आपके हेतु अक्षय होय यह मेरा दिया जल पितृलोकमे प्राप्त हुवा तुमको मिलै २७ फिर मंदाकिनीके किनारे आकर तेजस्वी भाइयों सहित राजाकी पिंड क्रिया करते हुए २८

इंगुदी और बेरमिश्रित पिण्याकके पिंड कुशाओपर रख रामचंद्र दुखसे रोते यह वचन बोले २९ महाराज जो वस्तु हम भोजन करतेहैं उसका ही आप प्रसन्न हो भोग लगाइये क्यों कि जो अन्न पुरुष खातेहै वोही अन्न उनके देवता खातेहै ३० इन वाल्मीकिरामायणके वाक्योंसे भी मृतकके अर्थ पिंड जलदानादि सिद्ध होताहै इस प्रकार महाभारतमें युद्ध हो चुकने पश्चात् जलदानपर्वाध्याय स्त्रीपर्वमें है जो मृतकोंको जल दिया गयाहै, सो विस्तार भयसे नहीं लिखते बुद्धिमानोको यही बहुतहै

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः अ० ३ श्लो० २७६
युक्षुः कुर्वन्दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥
अयुक्षुतुपितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोतिपुष्कलाम् २७७

कृष्णपक्षमें दशमीसे लेकर चतुर्दशी छोड यह तिथि श्राद्धमें जैसी प्रशस्तहैं वैसी और नहीं २७ युग्मतिथि और युग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेवाला पुत्रादि संतति और यथेष्ट द्रव्यको पाताहै २७७

यद्यद्ददातिविधिवत्सम्यक् श्रद्धासमन्वितः ॥
तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानंतमक्षयम् २७५ मनु०

विधि पूर्वक श्राद्धमें जो पितरोंको दिया जाताहै वोह पितरोंकी अक्षय तृप्तिके अर्थ होताहै ।

वसून्वदन्तितुपितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् ॥
प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषासनातनी अ० ३ श्लो० २८५

पितरोंको वसु पिता महाको रुद्र प्रपितामहाओंको आदित्य रूपसे ध्यान करके श्राद्ध कर्म कर्तव्यहै, यह सनातन श्रुति कहतीहै इन सब वाक्योंका तात्पर्य यही है कि मृतक पुरुषोंका श्राद्धहोता है श्राद्ध कर्ताकोभी महा फलकी प्राप्ति होतीहै ।

आविरभून्महिमावोनमेषां विश्वंजीवंतमसो
निरमोचि ॥ महिज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादु-
रुः पंथा दक्षिणाया अदर्शि ऋ० मं० १० अ० ९ सू० १०७ मं० १

एषां श्राद्धादिकर्मकारिणां मघवतं इदं माघोनं महिमहिमा आविरभूत् प्रादुर्भूतः किञ्च विश्वंजीवं विश्वसंज्ञकं जीवं तमः

सो जन्ममरणप्रबंधरूपतमसोनिरमोचि कृतवंतः पितृभिः पितृभ्योदत्तमेव महिज्योति अगात्प्राप्तं परिणतमित्यर्थः किञ्चदक्षिणायादिशोमार्गंउरुर्विस्तृतः अदर्शिदर्शितः पितृदत्तश्राद्धादिभिः॥

अर्थ—श्राद्धादि कर्म करने वालोंको इन्द्र तुल्य विभूतिकी प्राप्ति होतीहै वे श्राद्धादि कर्म करने वाले आपने जीवात्माका उद्धार करतेहै, और वोह पितृदत्त श्राद्धादि दक्षिणायन मार्गको दिखायकर स्वर्गमें कर्ताकाभी कल्याण कर्तेहैं, ब्राह्मणोंको तपादि हों नेसे अग्निमुख कहतेहैं, इस कारण इनका भोजन किया भी पितरोंको पहुंचताहै, जैसे कि कर्मोंका फल सूक्ष्म रीतिसे कर्ताको प्राप्त होताहै, अव इसके आगे हवन विषयमें लिखा जायगा. ।

सत्या० पृ० १०१ पं. २५

धन्वन्तरयेस्वाहा अनुमत्यैस्वाहा सहद्यावापृथिव्यांस्वाहा पृ. २०२ ओंसानुगायेन्द्रायनमः ओंसानुगाययमायनमः सानुगायवरुणायनमः सानुगायसोमायनमः मरुद्भ्योनमः अद्भ्योनमः वनस्पतिभ्योनमः श्रियैनमः भद्रकाल्येनमः ब्रह्मपतयेनमः विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः दिवाचरेभ्योभूतेभ्यनमः नक्तंचारिभ्योभूतेभ्योनमः इनमंत्रोंसे भागोंको रखकर जो कोई अतिथि हो उसको जिमा देवे वा अग्निमें छोडदेवे फिर लवणान्न दालभात शाक रोटी आदि लेकर छभाग पृथ्वीमें धरे ।

समीक्षा इन हवन करनेके मंत्रोंमें जो धन्वन्तरि वैद्य तथा पूर्णिमा द्यावापृथिवी इनके वास्ते होमहो इस्से स्वामीजीने क्या प्रयोजन निकाला तुम तो विद्वानोंका नाम देवता बताते हो फिर यह भाग किसके और क्या वनस्पति और लक्ष्मीभी रोटी खातीं हैं या पृथ्वीभी जीमने आती मूर्तिके आगे भोग निवेदन करनेमें आप यह गडवडी करतेहैं और आप जडपदार्थोंको भाग दिये जातेहैं और अनुचरोंसहित इन्द्र वरुण यम मरुत् जल वनस्पति भद्रकाली लक्ष्मी ब्रह्मपति, विश्वेदेव दिनके फिरनेवाले प्राणी रात्रिके फिरनेवाले प्राणी इनके नामसे अन्न रखना यह क्या वातहै यह तो आप फिर पुरानीही कथा ले वैठे या यमका नाम यहांभी न्यायकारी हाकिम ही मानोगे तो जव वे अपने अनुचर अर्थात् आमलेवालोंसहित आवेंगे तो वस यह काम ठहरा नित्यका वसगरीव आदमीका तो एकही दिनमें दिवाला निकल जायगा और भद्रकाली वनस्पति जल मरुत् यहभी कोई आपके चेले विद्वान् घरघर फिरते होंगे जो इन्हे आपने पृथक् २ भाग देना लिखाहै पन्द्रह सोलहको कहां तक भोजन करावे और फिर इनके गणोंकी क्या ठीक तीन वुलाये तेरह आये

देखो गांवकी रीति, बाहर वाले खागये घरके गावैं गीत, बस इनका रोज न्यौता करनेसे जिमानेवालेका पट राही होजायगा. और जो यह कहो कि एक एक ग्रास निकालै तौ यह कब एक २ ग्राससे मानेगे उलटा दंड देंगे कि हमारी इज्जत हदक हुई यदि कहो कि यह ईश्वरके नामहै तौ एक भाग निकालना चाहिये फिर (सानुगाय) गणों सहित ऐसे क्यों लिखाय दिकहो ईश्वरके अनन्त नामहै तौ अनन्त भाग निकालने चाहिये इतने हीं क्यों और आगे सत्यार्थ प्रकाशमें आपने यम नाम वायुका लिखाहै (यमेन वायुना सत्य राजन् कहीं कुछ आपके लेखकी क्या ठीकहै) इस्से यह सिद्ध है कि यह नामनतौ ईश्वरके हैं न विद्वानोके हैं इन्द्रादिक देवताहैं भद्रकाली आदि देवीहैं इसी कारण स्वामीजीने इनके नाम मात्र लिखे और कुछ अर्थ न लिखा लिखते तौ गडबडी मचती मनुजी तौ यों लिखतेहैं ।

मरुद्भ्य इतितुद्वारिक्षिपेदप्स्वद्भ्यइत्यपि ॥
वनस्पतिभ्यइत्येवं मुशलोलूखले हरेत् १
उच्छीर्षकेश्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ॥
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् २

मरुद्भ्योनमः ऐसा कहकर द्वारमें बलि देवै और जलमें अद्भ्यः ऐसा कहकर बलिदे वनस्पतिभ्योनमः ऐसा कहकर ऊखलमें मूशलमें डालै इसप्रकार बलि हरण करै १ वास्तु पुरुषके शिर प्रदेशमें अर्थात् पूर्व उत्तरदिशामें श्रीके अर्थ बलिदेवै उसीके पैरकी ओर पश्चिम दक्षिण दिशामें भद्रकालीके अर्थ बलि देवै, और ब्रह्मा वास्तोष्पतिके अर्थ घरके बीचमें बलि हरणकरै २ स्वामीजीने मनुस्मृतिमेंसे यह नमः तौ निकाला, परन्तु यह क्रिया नलिखी कि जलमें डाले, पूर्व दक्षिण पश्चिमादिमें इस प्रकार बलिदे, पर बात छिपती नहीं देखिये कलई खुलगई ।

स० पृ० १०२ पं २१ हवन करनेसे अज्ञात अदृष्टजीवोंकी जो हत्या होतीहै उसका प्रत्युपकार करना ।

समीक्षा जब कि एक चीजका बदला देदिया जाताहै, तौ उस ऋणसे वोह मुक्त होता है, जब कि कोई पाप करै तौ उसका धर्मसे प्रत्युपकार करसक्ताहै, और फिर वोह उसका अनिष्ट फल नहीं भोगसक्ता, जैसे कोई १० रुपयेका कर्जदार हो और उसकी ऐवजमें कपडा वर्तन गहना आदिदे देतौ वोह कर्जसे च्युत होजाताहै (प्रत्युपकार) के अर्थ बदलेके हैं जब कि जिसका बदला देदिया फिर उसका क्या अहसान जब कि प्रत्युपकार करदिया तब पापका फल भोगना नहीं पडेगा, तौ

पापक्षय होगया फिर तुम पापक्षय नहीं मान्ते, और यहां पापक्षय अच्छीतरहसे मान लिया, जब प्रत्युपकार करदिया तौ फिर फल भोगना नहीं पडेगा.

स. पृ. १०३ पं. २९ विना अतिथियोंके संदेहकी निवृत्ति नही होती

समीक्षा—यहभी कहना मिथ्याही है अतिथिसे संदेह क्यों कर निवृत्त हो सक्ताहै, और जिन्है अतिथि जिमानेकी समाई न होवे, सन्देहहीमें पडेरहैं और अतिथिके अर्थ पाहुनेके हैं, जिसके आनेकी कोई तिथि नियत नहो, यदिकोई अतिथि आजाय तौ उसे यदि होसकै तौ भोजन देदेना, इसमें पुण्यहोताहै पर यह नहीं कि वोह तौ हाराथका भूंखा आया आप उसे पावभर अन्न देकर छः घंटेतक मगज मारने बैठ गये, और अतिथि तो भोजन मात्र लेकर चला जायगा वोह ठहरता नहीं यदि संदेह होतौ विद्वान बहुत मौजूद है उनसे ही बूझलेना अतिथियोंके शिरपर संदेह निवृत करनेका भार नहीहै अथवा यदि उस्से संदेह निवृत्त न होतौ क्या उसे जो कुछ दियाहै वोह छीन ले, और यह नियम नहीं कि सबही अतिथि पढेहो, जो किसी योग्य होगा वोहघरसे कुछ लेकर ही चलैगा, तौ बस निरक्षर ही अतिथि ठहरे, वे संदेह निवृत्त क्या करेंगे, यह बातभी लिख दीहोती कि बेपढा अतिथि नहीं होसक्ता, वोह चाहें भूंखों मरता होपर उसे कुछ नदैना, कारण कि वोह संदेह तौ दूरकर ही नहीं सक्ता, और विद्वानोंकों तथा जिन्है संदेह न हो उन्है भी अतिथियोंको कुछ दैना न चाहिये, क्योंकि उन्है कुछ संदेह तोहै ही नहीं जिसे संदेह होवो उन्है जिमावै धन्यहै अच्छा अतिथि बनाया मनुजी अतिथिके लक्षण लिखतेहै

एकरात्रं तुनिवसन्नातिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ॥
अनित्यंहि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते १

एक रात्रिमें रहने वाला ब्राह्मण अतिथि होताहै, क्यों कि नित्य रहना नहीं इस कारण अतिथि कहताहै १ बस जब संध्या समय अतिथि आया उसकी इच्छा टिकनेकी हुई टिकादिया भोजन देदिया सो रहा सवेरेही उठकर चल दिया, इसी प्रकार सब वर्णोंमें अतिथि होतेहैं उन्है भोजन निश्चय देना. ।

मू० पृ० १०६ पं. १७

नामुत्र हि सहायार्थं पितामाताचतिष्ठतः ॥
न पुत्रदारं नज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः १

परलोकमें न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहायकर सक्तेहैं किन्तु एक धर्मही सहाय रहताहै ।

समीक्षा. दयानंदजी तौ इससे यह बात सिद्ध करतेहैं, कि परलोकमें जब कोई सहायकारी नही होता, तौ दूसरेका दिया हुआभी कुछ प्राप्त नहीं होसक्ता, परन्तु इस्से यही विदित होताहै कि सब सहाय करसक्तेहै, और कैसे करसक्तेहैं सौ लिखाहै कि (धर्मस्तिष्ठति केवलः) केवल धर्मही स्थित रहताहै, धर्म सहाय करताहै तौ धर्म से जिस की जो सहाय करैगा वोह धर्ममें स्थित होगा वैसे माता पिता शरीरसे सहाय नहीं करसक्ते, धर्मनुष्ठानसे करसक्तेहैं, धर्मसे पिता पुत्रका पुत्र पिताका उद्धार करताहै विश्वामित्रने अपना तप दे त्रिशंकुको स्वर्ग भेज दिया, और भी मनुजीने लिखाहै ।

दशपूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् ॥
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितॄन् मनु० १

ब्राह्म विवाहसे जो पुत्र उत्पन्न होताहै वोह सत्कर्मोंको कर्ताहै, सो दश पुरुषा पूर्वके और दश आगे इक्कीसवां अपनेको पापसे छुटाताहै, यहां तक एक पुरुषका धर्मानुष्ठान सहायक होताहै ।

स० पृ० १०९ पं० १८

श्रुतंप्रज्ञानुगं यस्यप्रज्ञाचैव श्रुतानुगा ॥
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताण्यालभेतसः १

जिसकी प्रज्ञा सुनेहुए सत्य धर्म के अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धिके अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषोंकी मर्यादा का छेदन न करै वोही पंडित संज्ञाको प्राप्त होवै

समीक्षा—इस श्लोक के अनुसार तौ दयानंदजीमें पंडित शब्दभी नहीं घटसक्ता सुने हुए सत्यधर्मके अनुकूल महात्माजी की बुद्धि ठीक नहीं, स्मृति भी ठीक नहीं, कहीं कुछ कहीं कुछ लिख दियाहै, पहले सत्यार्थ प्रकाशमें मृतक श्राद्ध मांस विधान किया फिर कहा मुझे स्मृति नहीं रही भूलसे लिख गया, जो भूले वोहकैसा पंडित और श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणभी आपमें नहीं पाये जाते, क्योंकी आपने प्राचीन मूर्तिपूजन श्राद्धादिखंडन करकै महा भ्रष्ट नियोग पंथ चलायाहै, इससे आप पंडित नहीं अब नियोगके विषयमें लिखा जायगा

नियोगप्रकरणम्

स० पृ० ११२ पं० १६

याऽस्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ॥
पौर्नर्भवेन भर्त्रा सापुनःसंस्कारमर्हति ॥ मनु०

जिस स्त्री वा पुरुषका पाणीग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो, और संयोग अर्थात् अक्षत-योनि स्त्री और अक्षत वीर्य पुरुष हो उन का अन्य स्त्री वा पुरुषके साथ पुनर्विवाह न होना चाहिये, किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णोंमें क्षत योनि स्त्री और क्षतवी-र्य पुरुषका पुनर्विवाह न होना चाहिये

समीक्षा—जव स्वामी जी इस श्लोकका अर्थ करने वैठे थे तो वडी भंगकी तरंग में होंगे इसके अर्थ में दोनो जगह यही लिखाहैकि विवाह न होना चाहिये, परन्तु इतना तो मानाही कि ब्राह्मणादि तीन वर्णोंका पुनर्विवाह न होना चाहिये, परन्तु इस श्लोकेमें यह वात नहीं आती, और इसश्लोकको स्वामीजीने उलट दियाहै सो लिखतेहैं यह वहांका श्लोकहै कि जहां मनुजीने वारह प्रकारके पुत्र गिनायेहैं

यापत्यावापरित्यक्ता विधवावास्वयेच्छया ॥
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते १७५
साचेदक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापिवा ॥
पौनर्भवेनभर्त्रासा पुनःसंस्कारमर्हति १७६ अ० ९

जो स्त्री पतिने त्यागन कर दीहो या विधवा हो वा अपनी इच्छासे दूसरेकी स्त्री हो-कर पुत्र उत्पन्न करे, तो उस पुत्रको पौनर्भव कहतेहैं १ वोह उत्पन्न करने वालेका पौ नर्भव पुत्र कहलाताहै १७५ वोही स्त्री यदि अक्षत योनि होय जो कि घरसे निकल गई और वा पतिने त्यागन करदीहै फिर अपने पतिके पास चली आवे तो उसको पुनः संस्कार करके ग्रहण करना यदि शुद्धहोय तो, यह परिपाटी प्रशंसित नहींहै, अथवा वोह जिसके पास जाय वोह स्त्रीका संस्कार कर ग्रहण करै, परन्तु इसके जो सन्ता न होगी वोह पौनर्भव कहलावेगी, जो प्रशंसित नहींहै स्वामीजीने (साचेत्) के स्थानमें (या) लिखाहै जो प्रसंग विरुद्धहै, और यह कैसीवात लिखीकि अक्षत वीर्यपुरुष विवाह न करें, क्या विवाह उस समय करैं जिस समय सर्व वीर्य क्षत होजाय, धन्यहै स्वामीजी पृ. ११२ पं.२१ (प्रश्न) पुनर्विवाहमें क्या दोषहै (उत्तर) स्त्री पुरुषोंमें प्रेम न्यून होना क्योंकि जव चाहें तव पुरुषको स्त्री और स्त्रीको पुरुष छोडकर दूसरेके सा-थ सम्बन्ध करलें, दूसरे जव स्त्री वा पुरुषपति स्त्री मरने के पश्चात दूसरा विवाह करना चाहै तो प्रथम स्त्रीके पूर्व पतिके पदार्थोंको उडा लेजाना, और उनके कुटुम्ब वालोंका उनसे झगडा करना, तीसरे वहुतसे भद्रकुलका नाम वा चिन्हभी न रहना, और उनके पदार्थोंका छिन्न भिन्न होजाना, चौथा पतिव्रत और स्त्री व्रत धर्म नष्ट होना इत्यादी दोषोंके अर्थ द्वि-

जोंमे पुनर्विवाह अनेक विवाह कभी न होना चाहिये (देखिये इसके विरुद्ध लेख) स. पृ. ११३ पं. ५ जो ब्रह्मचर्य नरख सकें तौ नियोग करकै सन्तानोत्पत्ति करलें समीक्षा-यदि सन्तानहीके अर्थ नियोग है तौ जो स्त्री विधवा हो और वंध्याभी हो तौ वोह कैसे सन्तान उत्पन्न कर सक्तीहै, जो कहो कि वोह गोद लडका लेकर कार्य कर सक्तीहै तौ (जो कि आपने पृ० ११३ पं० ४ मे गोद लेना लिखाहै) फिर इस महा अनर्थ व्यभिचार नियोगकी आवश्यकता क्याहै, जिसेइच्छा होगी गोद लेलेंगा, नियुक्त पुरुषका उत्पन्न किया पुत्र जैसे दूसरेकाहै, उसी प्रकार गोद लियाहै, परन्तु गोद का उस्से शुद्धहै क्योंकि संस्कार युक्तहै, नियुक्त पुत्र वैसा शुद्ध नहीं क्योंकि उसमें पर पतिसे भोग करना पडताहै, इस कारण गोदही क्यों न लिया जाय, यदि पुत्रके वास्ते नियोग करते हो तौ तौ कुछ लाभ नही, यदि कामाग्नि मिटानेके लिये यह वेश्या धर्म प्रवत्त किया है तौ दूसरी वातहै

स० पृ. ११३ पं. ५ पुनर्विवाहऔरनियोगमेंक्याभेदहै (उत्तर)

१ जैसे विवाह करनेमें कन्या अपने पिताका घर छोड पतिके घरको प्राप्त होतीहै और पितासे विशेष संबंध नहीं रहता, विधवा स्त्री उसी विवाहित पतिके घरमें रहतीहै

२ उसी विवाहिता स्त्रीके लडके उसी विवाहित स्त्रीके पतिके दाय भागी होतेहैं, और विधवा स्त्रीके लडके वीर्य दाताके न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता न उसका सत्व उन लडकों पर रहता किन्तु वे मृतपतिके पुत्र बजते उसीका गोत्र रहता और उसीके पदार्थोंके दायभागी होकर उसी घरमें रहतेहैं

३ विवाहित स्त्री पुरुषको परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है, और नियुक्त स्त्री पुरुषका सम्बन्ध कुछभी नहींरहता ।

४ विवाहित स्त्री पुरुषोंका सम्बन्ध मरण पर्य्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री पुरुषका कार्य पश्चात् छुट जाताहै ।

५ विवाहित स्त्री पुरुष आपसमें गृहकार्योंकी सिद्धि करनेमें यत्न किया करते हैं और नियुक्त स्त्री पुरुष आपने २ गृहका काम किया करतेहैं ।

समीक्षा दयानंदजीने यह नियोगके पांच नियम कौनसी संहितासे निकालेहैं, क्या यह स्वामीजीकी मिथ्या कल्पना नहींहै, पीछे जो पुनर्विवाहमें चार दोष दिखलाये हैं क्या वे इन पांच नियमोंसे नहीं टूटतेहैं ।

१ जब कि स्त्री पतिके घरही रहती है तौ सास ससुरकी लाज अधिक होती है और पर पुरुषसे भाषणमेभी संकोच लगताहै, दयानंदजी यह आज्ञा करतेहैं कि पतिके घरहीमें परपुरुषको बुलाकर नियोग करै, जबकि स्त्रियोंको पुत्रकी अधिक इच्छा होतीहै, तौ उनका पतिसेंभी प्रेम न्यून हो जायगा, क्योंकि यह तौ उनको विदितहीहै

कि यदि पति मरजायगा तौ नियोग दूसरेसे कर पुत्र उत्पन्न करलैंगी फिर पुत्रेष्टि व्रत कर्म पुंसवन आदिभी कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं, एवं लज्जा आदि सब खो बैठेंगी परन्तु.–

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्माप्रजेति ह ॥
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्त्ता सा स्मृतांगना ॥ मनु०

पुरुष और स्त्रीका आत्मा मिलके प्रजा होतीहै, इसकारण वेदके जान्ने वाले विप्र कहतेहैं जो पति वोही भार्या उससे जो भार्यामें उत्पन्न होताहै वोह पतिका पुत्र कहाताहै, यह मनुजी कहते हैं, तौ नियुक्त पुरुषसे संतान उत्पन्न करीहुई चाहें किसीके घरक्यों न रहे, परन्तु उस सन्तानमें नियुक्त पुरुषकेही गुण आवेंगे, जैसा वेदमें लिखाहै (अङ्गादङ्गादिति) पुत्र पिताके अंग २ से उत्पन्न होताहै तौ उस पुत्रमें नियुक्त पुरुषके लक्षण निश्चयही आवेंगे, और वोह पुत्रहैभी उसीका क्योंकि आमवौनेसे आमही होगा, नियुक्त पुरुषसे उत्पन्न हूए वालकका मृत पुरुषसे कुछभी संवन्ध नही और दायभाग तौ गोदलिये पुत्रका होताहै, जिसे सर्व संम्मतिसे स्त्री पुरुष गोद लेतेहैं "प्रत्यक्षमें देखा जाताहै कि कैसाही गोत्र क्यौ न हो परन्तु जान्ने वाले तौ जो जिस्से उत्पन्न होताहै उसी नामसे पुकारतेहैं यथा वायु तनय भीम इन्द्रतनय अर्जुन धर्मपुत्र युधिष्ठिरादि" और जव कि वोह नियुक्त पुरुषसे उत्पन्न पुत्र मृतके धनका अधिकारी हुआ तौभी स्वामीजीका वोह कहना कि (यदि पुनर्विवाह होगा तौ धन दूसरोंके हाथ लग जायगा) मिथ्याही हुआ क्योंकि अवभी उस मृतका धन दूसरोंहीके हाथ लगा, आपना पुत्र तौ जभी होगा जव अपनेसे उत्पन्न होगा वोह नियुक्त मृतकके गोत्रसे सम्वन्धी नहीं होता देखिये ऋग्वेदमें लिखाहै जिसकी व्याख्या कलकत्तेके छपे हुए निरुक्तके २५४ पृष्ठमें कीहै

परिषद्यंह्यरणस्यरेक्णो नित्यस्यरायः पतयःस्याम ॥
नशेषोअग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्यमापथोविदुक्षः ॥

(निरुक्तभाष्यम्) परिहर्तव्यं हि नोपसर्तव्यमरणस्य रेक्णोऽरणोऽपार्णोभवति रेक्ण इतिधननाम रिच्यते प्रयतो नित्यस्य रायः पतयः स्याम पित्र्यस्येवधनस्य नशेषो अग्ने अन्यजातमस्ति शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते प्रयतोऽचेतयमानस्य तत्प्रमत्तस्य भवति मानः पथोविदूदुष इति तस्योत्तरा भूयसेनिर्वचनाय–

भाषार्थ–एक समय हतपुत्र वसिष्ठने अग्निकी स्तुति याचना करी कि मुझे पुत्र दे तव अग्नि देव वोले कि क्रीतक दत्तक कृत्रिम आदि पुत्रोंमें कोई एक पुत्र बनालो यह वात सुन वसिष्ठजी औरसे उत्पन्न हुए पुत्रोंकी निन्दा करते हुए और निज वीर्यसे पुत्र चाहते हुए यह वेद मंत्र बोले

(परिषद्यं) त्याग देने योग्य है वोह पुत्ररूपी धन जो कि (अरणस्यरेक्णः) पर कुलमें उत्पन्नहै, जिस्में उदक सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि वोह परकीय होनेसे पुत्र कार्यमें समर्थ नहीं, होता चाहें उसकी पुत्र कार्यमें कल्पना करलो, इसकारण (नित्य स्य रायः पतयः स्याम) (पित्र्यस्येवधनस्य) जैसे पिताका धन पुत्रत्वमें होताहै इसीसे वोह उसके धनका स्वामी होताहै, क्योंकि वोह स्वयं अपनेसे उत्पन्न होताहै (अपत्यकहाताहै) इसीसे मुख्य होताहै क्षेत्रज क्रीतक एसे नहीं, इसीसे कहते हैं कि जो नित्य आत्मीय अगौण अपनेसे उत्पन्न जो पुत्र रूपी (रायः) धन तिसीके हम (पतयः) मालिक पालने वालेहो, परकीयके नहीं, जिस्से कि (नशेषोअग्नेअन्यजातमस्ति) औरसे उत्पन्न हुआ अपत्य नहीं होताहै; जो उत्पन्न करताहै वोह उसीका होताहै दूसरेका नहीं जो (अचेतयमानस्य) अचेतयमान अर्थात् अविद्वान् प्रमादीजो शास्त्रसे रहित हो वोहभी धर्मसे परितोष मात्र होताहीहै, कि यह मेरा पुत्रहै इस्से कहतेहैं कि (मापथोविदुक्षः) कि हमको पितृ पितामह प्रपितामहकी अनुसन्ततिके (पथः) मार्गसे (विदूदुषः) तू औरसपुत्र दे, यह आशयहै जो अपने वीर्यसे अपनी सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न हो वोह औरस पुत्र कहाताहै.

" अपत्यंकस्मादुच्यते अपततंभवतिपितुःसकाशादेत्यपृथगिवततंभवति अथवाअनेनजातेनसतापितरोनरकेनपतन्ति " (भाषा) अपत्य नाम पुत्रका क्यों है पितासे उत्पन्न होकर पृथक्की नाई विस्तृत होताहै, वा जिसके उत्पन्न होनेसे पितर नरकमें नहीं पडतेहैं इस्से अपत्य कहतेहैं

पुत्रःपुरुत्रायतेवह्वपियत् पित्रा पापं कृतं भवति ततोयंत्रायतीतिपुत्रः (भाषा) जो कि पिताने पाप कियाहै उस्से पिताकी रक्षा करनेसे इसका नाम पुत्रहै "निपरणाद्वा निपृणाति निद्दाति ह्यसौ पिण्डान् पितृभ्यः इतिपुत्र" जोकि पितरोंके वास्ते पिंडोंको देताहै वोह पुत्र कहाताहै । .

(अरणोऽपार्णः) जिस्से जलका सम्बन्ध नहींहै अर्थात् मृतक हुए पिताको जिसका दिया हुआ जल न पहुंचै उसे (अरणः) कहतेहैं "इतोलोकादमुंलोकंप्रयतः म्रियमाणस्येत्यर्थः शेष इत्यपत्यनामतद्धिशिष्यते" पिताके परलोकमें जानेसे यह यहीं रहताहै इस कारण इसे शेष कहतेहैं " ।

नहिग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्योमनसामन्तवाउ ॥ अधा चिदोकः पुनरित्सएत्यानोवाज्यभीषाकेतुनव्यः ऋ०

भाष्यम्—नहिग्रहीतव्योरणः सुसुखतमोप्यन्योदर्योमनसापिनमन्तव्यो ममायंपुत्रइस्यथ सओकः पुनरेवतदेति यत आगतोभवत्योक इति निवासनामोच्यत एतु नोवाजी

वेजनवानभिषहमाणः सपत्नावावजातन्न सएवपुत्र इत्यैथतां दुहितृदायाद्यउदाहरन्ति पुत्रदायाद्यइत्येके ॥ नि. अ. ३ पा. १ मं. ३

(नहिग्रभायेति) नहीं अंगीकार करने योग्यहै क्योंकि वोह पुत्र नहींहै (अरणः) अपार्णः उदक सम्बन्ध अपगत होनेसे अन्य कुलमें उत्पन्न हौनेसे यद्यपि (सुशेवः) सुखतमः अर्थात् सुख देनेवालाहो (अपिअन्योदर्यः) ओरके वीर्यसे उत्पन्न हुआ वो अन्यके उदरसे (जो अपनी विवाहित सवर्णा स्त्री नहीं है) उत्पन्नहै (अद्धोंहवाएषआत्मनोयज्जायतेविज्ञायते) जो अपने वीर्यसे अपनी जायामें उत्पन्न हो वोह उदरसम्भूतहै इस कारण मुझे अन्य जायासे उत्पन्न पुरुष मनसेभी अंगीकार नहीं है क्योंकि (अधा) जिस्से (ओकः) अपने वंशकू वोह बहुत कालमें प्राप्त होताहै (अपने वीर्यसे अन्यमे उत्पन्न) (तद्वंश्यएवभवति) इस कारण यह अपुत्रहै (एतु) आवै वा प्राप्तहो (नः वाजी) वेगवाला शत्रुओंको भयदाता (अभीषाट्) वैरियोंका तिरस्कार करनेवाला (नव्यः) नव जात पुत्र शिशु वोह सवर्णासे उत्पन्न पुत्र प्राप्त हो अन्य जात नहीं अब दयानंदजीको और उनके शिष्योंको निरुक्त कृत व्याख्या सहित इस मंत्रपर ध्यान देना चाहिये यह वशिष्ठजी क्या स्वामीजीसे कमती विद्वान्थे जो चाहते हैं कि अन्य जात पुत्रमें नहीं चाहता और उस्से उदक आदि संबंध कुछ नहीं हो सक्ता और आगे आपने नियोगसे दश सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दे दीहै तो जब स्त्री नियोगसे १० सन्तान उत्पन्न करै तौ फिर उस पुरुषका सम्बन्ध छुट जाय इसका उत्तर यह है यदि दो दो वर्ष वादभी एक २ सन्तानहो तौ वीस वर्षतक जिसका सम्बन्ध रहै फिर वोह क्यों कर छुट सक्ताहै जो कि स्त्री एक वार पर पुरुष गामिनी हो चुकी फिर क्या सन्तानके लालचसे वोह प्रीति छुट सक्तीहै २० वर्षका अभ्यास सहजमें छुट सक्ताहै क्या जो बालक उस्से उत्पन्न होंगे उसमेंभी नियुक्त पुरुषका असर निश्चयही आवैगा वीर्यका गुण अवश्य आवेगा जब कि पिताकूं उपदंशादिकी बीमारीहो तौ पुत्रमें आजाती है फिर गुण स्वभाव तो अधिकही सूक्ष्महै वोहभी अवश्य आवेंगे और दयानंदजी वोह नियम (कि विवाह पुनर्करनेमें भद्र कुलका नामभी नहीं रहता पदार्थ छिन्न भिन्न हो जायगे) विगड़ जायगा क्योंकि जब सन्तान दूसरेकी है तौ अपने पिताहीकी ओर झुकेगी उस मृतकका मालमता तौ औरोंहीके हाथ लगा इसकारण मृतक पुरुषके धनके उसके भ्राता आदिही अधिकारीहो सक्तेहैं फिर स्वामीजीने लिखाहै कि पुनर्विवाहमें स्त्रीधर्म पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाताहै ॥ और नियुक्त पुरुष भोगनेके पश्चात् अपने २ घरका काम करैं) वाहजी बुद्धिमान् पुनर्विवाहमें तौ पतिव्रत धर्म नष्ट हो जाताहै जो एकही पतिके आश्रित रहै और नियोगमें ११ पुरुषोंतक स्त्री संभोग करै तौ भी पतिव्रतधर्म

नष्ट नहो देखिये इन परमहंसजीकी बुद्धिमानी वाह ग्यारह पुरुषोंके भोगवाली स्त्री पतिव्रता यह तो गृहस्थ स्त्रियोंको वेश्याही बनाया सब थोडेही इसे मानेंगे यह कर्म वोहीआपके अनसमझ अनुयायी करैंगे जो तुह्मारे वाक्योंको पत्थरकी लकीर मान्ते हैं जाने उन लोगोंकी मति पर क्या पत्थर पडे हैं, जो इस व्यभिचार भरी कथाको प्रीतिसे सुन्ते और उसकी रीति प्रचार करनेका यत्न करते हैं, और यह एक बात तौ विषयी पुरुषोंको लाभकी लिख दीहै, कि रातको नियुक्त स्त्री पुरुष अपने एक विस्तरपर, सबेरे अपने २ कामकाज करै (शायद विवाहित स्त्री पुरुष दिनको घरका कामकाज नहीं करते होंगे दिनरात एक विस्तरपर रहते हैंगे) सो विषयी पुरुषोंका बहुत द्रव्य बचैगा, क्योंकिवेश्याके यहां जानेसे तौ द्रव्य खर्च होताहै तुह्मारे नियमानुसार ऐसे मतमाननेवालोंकी विधवाओंके यहां रातको वे खटके प्रवेश कर गये, सबेरेही चले आये, जबतक गर्भ नरहै यही कृत्य करते रहैं, परन्तु स्वामीजी तौ अमोघवीर्य थे, कुछ सन्तान तौ उत्पन्न कर जाते जो वैदिक यंत्रालय और आपके दुशाले घड़ी चैनके मालिक होते, जब स्त्रीको सन्तानार्थ ग्यारह पुरुषोंकी आज्ञा है तौ अच्छे वीर्यवाले पुरुष तो बहुतही कम सौमें कोई पांचही होंगे, विनासंभोग परीक्षा नहीं होती तौ लीजिये अब सेकडो पति बनाने पडैं और जो कोई मनोहर मिलगया तौ ससुर और पतिकी कमाई और अपना सब गहना पाताले उसके संग हुई, जन्म पर्यन्त आपको दुआऐं देती रहीं, और पुरुषभी आपका गुण गाते रहे शोकहै इस महा अनर्थपर.

स. पृ. ११३ पं. २१ जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाताहै उन्हीका नियोग होताहै पं. २६ वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्यन्त उन लडकोंका पालन करके नियुक्त पुरुषको दे दे, ऐसे एक २ विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषोंको दो दो सन्तानकर सक्ती और एक मृत स्त्री पुरुषभी दो अपने लिये दो दो अन्य चार विधवा ओंके लिये पुत्र उत्पन्न कर सक्ताहै, ऐसे सब मिलकर दश दश सन्तानोत्पत्तिकी आज्ञा वेदमें है

इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगांकृणु ॥
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशंकृधि ऋ०मं१०सू०८५ मं० २५

(हेमीढ्वइन्द्र) वीर्यसीचनेमें समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस विवाहिता स्त्री वा विधवा स्त्रियोंको श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्य युक्त कर, इस विवाहिता स्त्रीमें दश पुत्र उत्पन्न कर, और ग्यारहवीं स्त्रीको मान, हे स्त्रि तूभी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषोंसे दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवांपतिको मान, इस वेदकी आज्ञासे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश दश सन्तानसे अधिक उत्पन्न न करैं

क्योंकि अधिक करनेसे सन्तान निर्वल निर्बुद्धि और अल्पायु होताहैं, और स्त्री तथा पुरुषभी निर्वल अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्थामें दुःख पाते हैं

समीक्षा धन्य है। स्वामीजी कलियुग धीरे २ आताथा, आपने उसे शीघ्र प्रवृत्त करने का ढंग निकाला, एक स्त्री चारनियुक्त पुरुषोंके अर्थ, और दो अपनेलिये उत्पन्नकरले यह तो घरकी खेती समझली जब गये और पुत्र हो गया, कन्याका नामही नहीं, सब पुत्रही पुत्रहोंगे, यदि यह ईश्वरकी, आज्ञा है तो ईश्वर सत्यसंकल्पहै, सबके पुत्रही होनेचाहियेथे कन्या एकभी नहीं, बस सारानियोग यहीं समाप्त हो जाता, परन्तुं यह देखानहीं जाता इससे यह वेदमंत्रका अर्थ नहीं है वहुतेरे निस्सन्तान रहतेहैं, यह व्यभिचारका प्रचार भारत वासियोंको महाअंधकारमें डालनेहराहै, इसमें वेदमंत्रकोक्यों सानलिया आपनी कोई मिथ्या संस्कृत बना लीहोती, वेदमें ऐसी बातें कभी नहीं होतीं ' य ह विवाहप्रकरणका मंत्रहै आशीर्वादआर्थमें है इसके अर्थ इस प्रकार है.

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त देव (मीढ्वः) सर्वसुखकारी पदार्थोंकी वृष्टि करनेवाले इस स्त्रीकोभी पुत्रवती धनवती करो, और दश इसमें पुत्रोंको धारण करो भाव यह है कि दशपुत्र पैदा करनेके अदृष्ट इस स्त्रीमें स्थितकरो, और ग्यारहवां पतिको करो अर्थात् जीवित पुत्र और जीवित पति इसको करो, यह इसका अर्थ है जो स्वामी जीने कुछका कुछ लिख दियाहै, और यह स्वामीजीने न सोचा कि यदि एकादशपति पर्यन्त नियोग करनेकी ईश्वरकी आज्ञा है, तो ईश्वर तो सत्यसंकल्पहै तब तो सब स्त्रीयोंके दश दश पुत्रसे कमती होनेहीं नहीं चाहिये, यदि दश दशसे कमती होंगे तो परमेश्वरका संकल्प निष्फल होगा, इस्से स्वामीजीका किया अर्थ अशुद्ध है.

अब विचारनेकी बात है कि इसमें नियोग प्रचारक कौनसा शब्दहै, दयानंदजीने तो यह समझ लिया कि हमारे अनुयायी हमारे वाक्यको पत्थरकी लकीर मान्ते हैं वेदपर टीकाभी हमारीही किया मान्ते हैं, जो चाहै सो वकवाद किये जांय, आपके मतमें तो किसीके दशसे कमती पुत्रही न होने चाहियें जिनके कमती हों वोह आ-पके वाक्यानुसार कुछ फिक्रकरें और दश सन्तानोंमें समय कितना लगेगा यह अ-पने न लिखा।

(पृ. ११४ से ११५ तक) पृ० यह वेश्याके सदृश कर्म दीखता है (उत्तर) नहीं क्योंकि वेश्याके समागममें किसी निश्चित पुरुप वा कोई नियम नहीं है, और नियोगमें विवाहके समान नियमहैं, जैसे दूसरेको विवाहमें लड़की देनेसे लज्जा नहीं आती वैसेहि नियोगमें भी लज्जा नही करनी चाहिये, जो नियोगकी बातमें पाप मान्ते हो तो विवाहमें भी पापमानो, नियोग रोकनेमें ईश्वरके सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुषका स्वभाविक व्यवहार नहीं रुकसक्ता, सिवाय वैराग्यवान पूर्ण विद्वान योगियोंके क्योंकि

जवान स्त्रीपुरुषोंको सन्तानोत्पत्तिविषयकी चाहना रुकनेसे महा सन्ताप होता है और गुप्त २ वे करतेही हैं, जो जितेन्द्रिय रहैं नियोग न करैं तौ ठीकहै, जो नरुक्सकैं तौ उनका विवाह और आपत् कालमें नियोग अवश्य होना चाहिये, ऊंचसे नीचका नीचसे ऊंचका व्यभिचाररूप कुकर्म होनेसे कुलमें कलंक वंशका उच्छेद स्त्रीपुरुषोंके सन्ताप नियोगसे निवृत्त होते हैं, जैसे प्रसिद्धीसे विवाह करैं तैसेही प्रसिद्धीसे नियोग, जब नियोग करे तब अपने कुटुम्बमें पुरुषस्त्रियोंके सामने कहैं हम दौनो नियोग सन्तानोत्पत्तिके लिये करते हैं, जब नियोगका नियम पूरा हो जायगा तब संयोगन करैंगे, इसमेंभी कन्या और वरकी प्रसन्नता लैनी अपने वर्णमें वा अपनेसे उत्तम वर्णस्थ नियोग करना, वीर्य सम वा उत्तम वर्णका चाहिये अपनेसे नीचका नहीं स्त्री और पुरुषकी सृष्टिका यही प्रयोजन है कि वेदोक्त रीतिसे विवाह वा नियोगसे सन्तानोत्पत्ति करना, द्विजोंमें स्त्रीवा पुरुषका एकवारही विवाह हौना वेदादिशास्त्रोंमें लिखाहै दूसरा नहीं जिसकी स्त्री मरजाय उसके साथ कुमारीका विवाह नहीं करना, और विधवाका कुमारके साथ विवाह न करै तौ, पुरुष और स्त्रीको नियोगकी आवश्यकता होगी, यही धर्म है जैसेके साथ वैसेहीका संबंध हौना चाहिये, यह दौनो पृष्ठोंमेंसे संक्षेप कर सारांश ले लियाहै.

समीक्षा आपही प्रश्नकरते हैं कि यह कर्म वेश्याके सदृश दीखता है आपही उत्तर देते हैं कि नहीं, यदि यह कर्म वेश्याके सदृश न होता तौ महात्माजी के मुखसे ऐसी बात क्यों निकलती जैसी बात होती है वैसी मुहसे निकल ही जाती है, यह जो लिखा है कि वेश्या के समागममें किसी निश्चित पुरुष का नियम नहीं, नियोगमें विवाह के समान नियम हैं, सोनियोगमें कोई नियम नहीं, ग्यारहपति बनानेतककी आज्ञा है, बस नियम कैसा "और जैसे विवाहमें लज्जा नहीं वैसेही नियोगमें लज्जा नहीं करनी चाहिये" यहां तो आपने लाज को भीतिलांजलि देदी, इस ग्रंथका नाम निर्लज्जप्रकाश क्यों न रख दिया, विवाह तौ आपने अक्षतयोनिका ठहराया, और विधवाका विवाह के समान नियोग, तौ पतिव्रता वेश्या एकही बताई, कर्रकपूरएक हीभाव करदिये, क्यों नहो आप तौ समदर्शी हैं, जब कि ईश्वरकी सृष्टि क्रमानुकूल मनुष्य का स्वभाव कामचेष्टासें रुकही नहीं सकता तौ भला योगी कैसे रोक सक्ते हैं, यदि योगी रोकलैं तो ईश्वर की सृष्टिका क्रम मिथ्या हो जाय, दौनोंमें एक बात लिखी होती या तौ ईश्वर की सृष्टिका क्रम वृथाया, वह और जो योगियैंने सृष्टि क्रम उलंघन करदिया तौ वे ईश्वरकी इच्छाके प्रतिकूल हुए, जब योगीयोंको सृष्टि क्रम नहीं व्यापता फिर तौ वे सबही कुछ सृष्टिक्रम विरुद्ध कर सक्तै हैं, यह स्वामी जीकी बात परस्पर विरुद्ध है, इस्से अप्रमाण है, पीछे तौ नियोगसे सन्तानोत्पत्तिका

प्रयोजन बताया और अब लिखा कि जवान स्त्रीपुरुषविषयकी चाहना होनेसे सन्तापित होते है, नियोगसे उसे शान्त करलेंगे, यह बात स्वयं महात्माजीपर बीती है नहीं तौ "जाके पैर न फटे बिवाई, सोक्या जाने पीरपराई, यह सूझती कैसे फिर- लिखा है कि जितेन्द्रिय रहैं नियोग न करैं तौ ठीक है, यह आपनें क्या कही नियोग विषयको महाकष्ट उठाकर वेदसे सिद्धकर सृष्टिके क्रम और प्रयोजनमें बताया, ईश्वरेच्छा ठहराई, तौ फिर यह सृष्टिक्रम विरुद्ध ईश्वरेच्छाके प्रतिकूल वेदका क्यों निरादर करते हो, नास्तिको वेदनिंदकः वेदाज्ञा नमानेवाला नास्तिक होता है "जो न रुकसकैं उनका नियोग विवाह करदो" यह क्या आभीतक तौ विधवाविवाहका निषेध और अब व्याह करनेकी आज्ञा सुनादी यदि कहो विवाह कुमार कुमारीका कहा है सो यहां यह प्रसंग नहीं, और उनका तौ होता ही है, लिखने की क्या आवश्यकता यावे भी जितेन्द्री रहें तौ ईश्वर की सृष्टि क्यों कर बढैगी, यादि यह पशुधर्म भारतमें चलता तौ यह देश रसातलको चला जाता, स्वामीजी चलानेकोथे सो चलदिये "आपही नीच ऊंच वर्णमें व्यभिचार हो सेने कुलमें कलंक और वंशोच्छेद होना लिखते है और आपही आपनेसे उच्च वर्णाका वीर्य नियोगमें ग्रहणा करना लिखते हो" यह साक्षात् वर्णसंकरताका हेतु है ऊंच नीच तौ हो ही गया देखिये मनुस्मृति-

ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ॥
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते १
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान्
क्षत्रशूद्रवपुर्जंतुरुग्रो नामप्रजायते २
सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एवते ॥ अ० १० श्लो.९,८,५

ब्राह्मणसे वैश्यकन्यामें अम्बष्ठ नाम जाति उत्पन्न होती है और, ब्राह्मणसे शूद्रकन्यामें निषाद जाति जिसे पारशव कहते हैं उत्पन्न होती है १ क्षत्रियसे शूद्रकन्यामें क्रूराचार विहारवाला और क्षत्रिय शूद्र स्वभाववाला उग्र जातवाला उत्पन्न होता है २ इस्से ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको अपनी समान जाति और पुरुष सम्बन्ध रहित ऐसी कन्यासे यथाशास्त्र विवाहादि व्यवहार करके उस स्त्रीमें जो सन्तान उत्पन्न होवे उसे उसी जातिका जान्ना चाहिये शेष वर्णसंकर जाने ३

स्वामीजीने तौ यहां मनुस्मृतिभी न देखी इच्छा तौ भारतवर्षको वर्णसंकर बनानेकी थी परन्तु यमराजने पूर्ण नहीं होनेदी "पुनः लेख है नियोगमी विवाहकी नाई

प्रसिद्ध रीतिसे करै उस स्त्रीकीभी प्रसन्नता लेले" प्रसिद्ध करनेको कोई इस्तहार देदेया ढंढोरा पिटवादेया मिठाई वटवादे कि में नियोग करूंगा, अब मुझसे रहा नहीं जाता इसी प्रकार वोह स्त्रीभी अपनी सम्मति प्रकाश करै कितनी निर्लज्जता भरी है क्या कहाजाय. "नियोग और विवाहसे ईश्वरकी सृष्टिका प्रयोजन है" यदि ईश्वरकी यही इच्छा थी कि सृष्टि बढै तौ उसने अग्नि वायु आदिकी नाई करोडों जीव एक संगही क्यों न उत्पन्न करदिये, अथवा स्त्रि ओंको विधवा क्योंकिया, जो उनके स्वामी विद्यमान रहते तौ वे चारियोंको ऐसी कठिनाज्ञा क्यों दी जाती, यदि कहो कि यह सुख दुख कर्मानुसारही होताहै, कर्मानुसारही विधवा होती हैं, तौभी आप सृष्टिक्रम प्रतिकूलही करते हैं, क्योंकि ईश्वर जब कर्मानुसार दुख सुख देता है, तौ जो कर्मानुसार दुख पानेको विधवा हुई तुम उसका कर्मानुकूल दुख मेटनेका उपाय करके ईश्वरका नियम तोड़ना चाहते हो, और यहभी ठीक नहीं कि सन्तान जानें कैसी हो ईश्वरकी कर्मानुकूल व्यवस्थामें हस्तक्षेप करना वृथा है, नियोगसे सृष्टि नहीं बढ सक्ती उसकी सृष्टि अनन्त है, कौन पार पा सकता है, इस ब्रह्मण्डमे करोडों लोक उसने रचदिये हैं किसीके वढाये घटायेसे उसकी सृष्टि बढ घट नहीं सक्ती आप पुरुषका दूसरा विवाह नहीं बताते हो सुनिये

वंध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ८१
या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलता ॥
आनुज्ञाप्यधिवेत्तव्या नावमान्याचकर्हिचित् ८२ मनु अ० ९

रजस्वला होनेसे आठ वरस तक कोई सन्तान नहीं हो तौ दूसरा विवाह करै, और पुत्र होकै मर २ जाते हौं तौ दशवें वर्ष उपरान्त दूसरा विवाह करले, और कन्याही उत्पन्न हौं तौ ग्यारहवें वर्षमें विवाह करै, और अप्रिय बोलनेवाली स्त्री हो तौ उसी समय दूसरा विवाह करै ८१ जो बीमार रहै और पतिके अनुकूल हो शीलवालीभी हो तौ उस्सी आज्ञा लेकै दूसरा विवाह करै; उसका अवमान करना उचित नहीं है ८२

स० पृ० ११५ पं० ३१ जैसे विवाहमें वेदादि शास्त्रका प्रमाण है वैसा नियोगमें प्रमाण है वा नहीं (उत्तर) इस विषयमें बहुतसे प्रमाण हैं सुनो

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विनाकुहाभिपि-
त्वंकिरतःकुहोषतुः ॥ कोवांशयुत्राविधवेवदेव-
रं मर्य्यं न योषाकृणुतेसधस्थआ ऋ० मं. १० सू. ४०मं. २

हे (आश्विना) स्त्री पुरुषो जैसे (देवरं विधवेव) देवरको विधवा (योषामर्य्यन्न) विवाहित स्त्री अपने पतिको (सधस्थे) समान स्थान शय्यामें एकत्र होकर सन्तानोत्पत्तिको (आकृणुते) सर्व प्रकारसे उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनो स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्रि और (कुहवस्तः) कहां दिनमें वसेथे (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थोंकी प्राप्ति (किरतः) की और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करतेथे (कोवांशयुत्रा) तुह्मारा शयन स्थान कहां है, तथा कौन वा किस देशके रहने वालेहो इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेशमें स्त्री पुरुष संगही रहें, और विवाहित पतिके समान नियुक्त पतिको ग्रहण करके विधवा स्त्रीभी सन्तानोत्पत्ति करले (प्रश्न) यदि किसीका छोटा भाईभी न हो तो विधवा स्त्री नियोग किसके साथकरे (उत्तर) देवरके साथ परन्तु देवर शब्दकाअर्थ जैसा तुम समझेहो वैसा नहींहै देखो निरुक्तमें

देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते नि. अ. ३ खण्ड १५

देवर उसको कहते हैं जो विधवा का पति दूसरा होता है, छोटाभाई वा बडाभाई अथवा अपने वर्णवा अपनेसे उत्तम वर्ण वालाहो जिस्से नियोग करे उसी का नाम देवर है

समीक्षा धन्यहै स्वामीजी वडा भारी जाल डालाहै, इस मंत्रमें तो नियोगका कुछ भी आशय नहीं निकलता यह कौन किस्से पूछता है, क्या परदेशी लोग स्त्रियोंसे पूछें कि तुम रातमें कहांथी कहां सन्तानोत्पत्ति कर रहेथे, या ईश्वर स्त्री पुरुषोंसे पूछताहै कि तुम दोनो कहांथे, क्या ईश्वर आज्ञान है, जो विधवासे रतिकरे वोह देवर चाहें वडा हो, या छोटा, शोक है ऐसी बुद्धिपर नियोग करनेमें वडाभी जो ज्येष्ठ होतो स्त्रीका देवर होजाय, इसमंत्रमें आश्विना इस पदसे स्त्रीपुरुषका ग्रहण करके केवल जाल रचाहै मिथ्या अर्था किये हैं, इस मंत्रमें आश्विनौ यह शब्द देवताका वाचक है स्वामीजीने इसमें कुछ प्रमाण नहीं लिखा है निरुक्तमें यह लिखा है

अथातोद्युस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमागामिनौ ॥

निरुक्तदैवतकाण्ड अ.१२पा.१.खं. १

अब द्युस्थान देवताओंका व्याख्यान करते हैं, सर्व द्युस्थान देवता ओंके मध्य आश्विनौ दो देवता प्रथम यज्ञमें आगमन करते हैं यह निरुक्तकारका मत है अब इस्से यह सिद्धहुआ कि आश्विनौ देवता हैं अब इसमंत्र का अर्थ लिखते हैं जो निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने लिखा है इसका आश्विनीकुमार देवता जगती छन्द है हे आश्विनौ "कुह स्वित् दोषा" "क्व" नुयुवां (रात्रौ) "भवथः" (कुह-

वस्ताः) क्वा (दिवा) (भवथः युवाम्) येनापि रात्रौ अस्माकं दर्शनमुपगच्छथः (नापि दिवा) स्विदिदिति परिदेवनायाम् ईर्ष्यायां वा (कुह) क्च (अभिपित्वम्) अभिप्राप्तिं स्नानभोजनाद्यर्थं (किरतः) (कुह) क्वा (ऊषतुः) (वसथः) सर्वथान विज्ञायते वामागन प्रवृत्तिः किञ्च (कोवांशयुत्रा) कतमो युवां यजमानः शयुत्राशयने किं विधवा इव देवरम् यथा विधवा मृतभर्तृका काचित्स्त्री शयने रहस्यतितरां-यत्नवती देवरमुपचरति सहिपरकीयत्वात् नार्या दुराराध्यतरोभवति यत्नेनोपचर्यते नतथा निजोभर्ता तस्मात् तेनोपमिमीते आश्विनौ तथा मर्यं मनुष्यं देवरं सैव मृतभर्तृका (योषा) आकृणुते आभिमुख्येन कुरुते कावां एवं आभिमुख्येन (सधस्थे) सहस्थाने समाने-सहयोगिनाप्यात्मनाकृत्वा परिचचार येनेह नोपगतवन्तौ स्थोऽस्मद्दर्शनमिति एवमस्यामृच्चि देवरेण कनियसाज्यायांसावश्विनावुपमियेते विधवया च यजमानः ।

भाषार्थः हे अश्विनौ तुम दौनो रात्रिमें कहांथे और (वस्तोः) नाम दिनमेंकहां थे जिससे न रात्रिमें न दिनमें तुह्मारा दर्शन हमें मिला स्नान भोजनादि की प्राप्ति कहांकी कहां निवास करा सर्वथा तुह्मारी आगमन प्रवृत्ति नहीं जानी जाती (कोवां-शयुत्रा विधवा इवदेवरम्) शयनमें देवरको विधवावत् कौन यजयान तुमको परि-चरण करता हुआ क्योंकि परकीय पति हौनेसे दुराराध्य देवरको मृतभर्तृका य-त्नसे आराधन करती है (इसकर्मको निन्दित जान छिपकर बडे यत्नसे उससे मि-लती है) तद्वत् तुमको किस यजमानने आराधन करा, यथा एकान्तस्थानमें मृतभ-र्तृका नारी मनुष्यको अपने शरीरके साथ संबंध कर परिचरण करती है तद्वत् तुह्मारी किसने सेवाकी जो हमें दर्शन नहीं प्राप्तहुए इसमंत्रमें अल्प देवर कर म-हान्त अश्वनी कुमार उपमेय होते हैं और विधवा शब्दसे यजमान उपमेय होता है इसस्थलमें (सहि परिकीयत्वात् नार्य्या दुराराध्यतरोभवति) जबकि देवरको पर-कीयत्व कहातौ दूसरी का पतित्व हो गया, स्वामी जी स्त्रीरहितकानियोग मान्ते हैं तौ इसमंत्रमें नियोग का कुछ भी आशय नहीं प्रतीत होता, प्रत्युत मृतभर्तृकाका दे-वरके पास जाना भी शङ्कायुक्त इस दृष्टान्तसे विदित होता है, आपके नियोगमें निशंक आज्ञा है उस पुरुषको जिसके स्त्री नहो वोह बात इसमंत्रसे तनक भी नहीं प्रतीत होती यहमंत्र प्रातःकाल अश्वनी कुमारों की स्तुतिका है, और (देवरः कस्मा०) इसके अर्थ भी गडबड लिखे हैं और यह निरुक्तकारकावाक्यभी नहीं है निरुक्त ग्रंथके छापने वालोंने लिखा है कि यहवाक्य प्राचीन तीन पुस्तकोंमें नहीं है इसीकारण इसको उन्होने कोष्ठमें बंदकर दिया है, और दुर्गाचार्यने इसपर भाष्य भी नहीं किया इस्सेयह क्षेपक है यास्कजीने इसका अर्थ यों लिखा है कि देवरोदीव्यतिकर्मा भाष्य साहि भर्तुर्भ्रातानित्यमेव तया भ्रातृभार्यया देवनार्थं व्रियत इति देवर इत्युच्यते

यह इसका अर्थ है कि भाईकी स्त्रीकी शुश्रूषा करनेसे इसका नाम देवरहै यदि वोह पाठ यास्कमुनिकृत होता तौ पुनः देवर शब्दका क्यों आर्थ करते इस्से वोह प्रक्षिप्तही है सारे ग्रंथों में स्वामीजीको प्रक्षिप्तता सूझी, और यहां लिखी हुईभी न सूझीं, और फिर इस वाक्यमें तौ प्रश्न है, कि देवरको दूसरावर क्यों कहते हैं, इसका उत्तरनहीं लिखा, और प्रक्षिप्तभी नहीं सही इसे मानभी लें तौ भी स्वामीजी का अर्थ नहीं बनसक्ता, मनुजीने इसका अर्थ लिखा है (यस्याम्रियेत०) श्लोक यह आगे लिखेंगे, अर्थ यह है कि वाग्दान के उपरान्त जिस कन्याका पति मरजाय उसे देवर अर्थात् उसके छोटे भाईसे व्याह दे, इसी कारण देवरको दूसरा वर कहते हैं परन्तु नियोग यहांभी सिद्धनहीं होता, और (विधावनात्) भर्ताके मरनेसे स्त्री रोकी जाती है, कहीं आने जाने नहीं पाती इस कारण इसे विधवा कहते हैं, स्वामी जी उसे ऐसा स्वतंत्र करते है कि कुछ बूझिये मत, आपको बताही चुके हैं आपने सवही जातवालोंको देवर बनादिया, जो नियोग करै वोह देवर, और सुनो सं. प्र. पृ. ११६ पं. ६

उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं गतासुमेतमुपशेषएहि
हस्तग्राभस्यदिधिषोस्तवेदंपत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ
ऋ. मं. १० सू. १८ मं ८

(नारि) विधवे तु (एतंगतासुं) इस मरे हुए पतिकी आशा छोड़के (शेषे) बाकी पुरुषोंमेसे (अभिजीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पतिको उपैहि प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बातका विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्यदिधिषोः) तुझ विधवाको पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पतिके सम्बन्धके लिये नियोग होगा तौ (इदम्) यह (जनित्त्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पतिका होगा और जो तू अपने लिये नियोग करैगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा ऐसे निश्चय युक्त (अभिसंबभूथ) हो और नियुक्त पुरुषभी इसी नियमका पालन करै

समीक्षा—स्वामीजीकी बुद्धि कहां लोटगई, इधर तौ पति मरा पडाहै, नारी जिसका वोह पालक पोषक नाथथा, उसके शोकमे विलाप करती है, उसी समय उसको कहने लगेकि इसे छोड़ औरोंको पति बनाले, क्या उसका पतिसे कुछभी प्रेम न था सोचनेका स्थान है, बुद्धिमानो को और जबकि उसके पास बालक मौजूद है, तौ अब उसे नियोग की आवश्यकताही क्या है, और पूर्व पतिसे उत्पन्न हुआ बालक नियुक्त पुरुषका क्योंकर होसक्ता है, यह स्वामीजीका महाप्रलापहै जो सायनाचार्यने इस मंत्रका यथार्थ व्याख्यान किया है, सो लिखते हैं

हेनारिमृतस्यपत्निजीवलोकं जीवानां पुत्रपौत्रादीनांलोकं स्थानंगृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व अस्मात्स्थानादुत्तिष्ठ ईरगतौ आदादिकः गतासुमपक्रान्तप्राणमेतं पतिमुपशेषे तस्यसमी पेस्वपिषितस्मात्त्वमेहि आगच्छ यस्मात्त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहंकुर्वतो दिधिषोर्गर्भस्यनिधातुस्तवास्यपत्युः सम्बधादागतमिदंजनित्वं जायात्वमभिलक्ष्यसंबभूथ संभूतास्यनुमरण निश्चयमकार्षीस्तस्मादागच्छ अत्रार्थेकल्पसूत्रमप्य नुसंधेयम् तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासीजरद्दासो वोदीर्ष्वनार्य्यभिजीवलोकमिति

भाषार्थ– हे नारि मृतपत्नी तू (जीवलोकं) पुत्रपौत्रादि स्थान गृहको जानेका विचार कर इस स्थानसे उठ और तू मृतपतिके समीप सोती है इस हेतुसे आ अपने घरको गमनकर, और जिस पाणिग्रहण करनेवाले तथा तेरेमें गर्भको स्थापन करनेवाले तेरे पतिके संबंधसे प्राप्त तेरेमें जनित्व अर्थात् जायात्वको अभिलक्ष्य जानकर मरण निश्चयकोभी पश्चात् तैने किया है, इससे चलो अपने गृहको गमन करो, इस अर्थमें कल्प सूत्रभी देखना कल्प सूत्रमें यह लिखा है कि तिस स्त्रीको देवर समीप रहने वाला अथवा वृद्धदास मृतकके धोरेसे उठावै (उदीर्ष्वनार्य०) इसमंत्रसे अब बुद्धिमान विचारेंगे कि स्वामीजीने कितने मंत्रार्थ बदल दिये हैं स. पृ. ११७ पं. ४

आदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवापशुभ्यः सुयमासुवर्चाः
प्रजावतीवीरसूर्देवृकामास्योनेममग्निंगार्हपत्यंसपर्य
अथर्व का० १४ अ. २ मं. १८

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पतिऔर देवरको दुःख देनेवाली स्त्री तू इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (शिवा) कल्याण करने हारी (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म नियमसे चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्रपौत्रादि सहित (वीरसूः) सूरवीर पुत्रोंके जनने (देवृकामा) देवर की कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवरको (एधि) प्राप्तहोकै (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थसंबंधी (अग्निं) अग्निहोत्रका (सपर्य) सेवन किया करें.

समीक्षा प्रथम तो दयानंदजीने इसका पाठही अशुद्ध लिखा है (अदेवृ) के स्थानमे मंत्रमें (आदेवृ) यह दीर्घ आकार लिखा है और पति और देवरको दुःख न देनेवालीके स्थानमें (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) इसका अर्थ पति देवरको दुःख देनेवाली लिखा है, यह तौ मंत्रोंमें उलट फेर है, भला जो दुख देनेवाली होगी वोह देवरकी कामना कैसे करसकैगी, और देवृकामासे यह अर्थ नहीं सिद्ध होता कि वोह देवरसे भोग किया चाहती हो, पति मौजूद है तौ कभी देवरके पास नहीं जायगी, और कामना विद्यमानतामे नही होती, अविद्यमान्तामें होती है यदि वोह देवरको पति किया चाहती तो देवरि पतिकामा ऐसा प्रयोग होसक्ता है, सो मंत्रमें किया नहीं इस्से नियोग सिद्ध नहीं होता, किन्तु यह ऐसे स्थानका प्रयोग है, जिस स्त्रीके देवर नहीं वोह चाहती है कि मेरे श्वशुरके बालक हो तौ में देवर वालीहूं, ऐसी स्त्रीको देवृकामा कहते है, जैसे भ्रातृ रहित कन्यामें भ्रातृकामा यह प्रयोग बनताहै कि मेरे भाई हो तौ मे बहन कहाऊं, ऐसेही यह देवृकामा शब्द है नियोग नहीं सिद्ध होता, अब इसके यथार्थ अर्थ सुनिये (अदेवृघ्न्यपतिघ्नि) हे बाले तू पति और देवरकी सुख देनेवाली (एधि) वृद्धिको प्राप्तहो अर्थात् देवर आदि कुटम्बियोंसे विरुद्ध मतकरना (इह) इस गृहाश्रममें (पशुभ्यः) पशुओंके लिये (शिवा) कल्याणकारी (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म नियममें चलनेवाली (सुवर्चाः) रूप गुणयुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि सहित (वीरसूः) वीर पुत्रोंकी उत्पन्न करनेवाली (देवृकामा) देवरके होनेकी प्रार्थना करनेवाली वा आनंद चाहने हारी (स्योना) सुखिनी (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्रको (सपर्य) सेवन कियाकर.

स्वामीजीने यह न जाना कि यह पुस्तकें औरभी कोई देखैगातौ कैसी होगी यह विवाहके मंत्र नियोगमें लगाये हैं, धन्य है आपकी बुद्धि और सुनिये

तदारोहतुसुप्रजायाकन्याविन्दतेपतिम् अथ० १४ । २ मं. २२
स्योनाभवश्वशुरेभ्यः स्योनाभवपत्येगृहेभ्यः
स्योनास्यैसर्वस्यै विशे स्योनापुष्टायेषाभव । १४ । २ । २७

हे नारि श्वशुरोंके वास्ते पतिके वास्ते और घरके कुटम्बियोंकि वास्ते सबके अर्थ सुख देने वालीहो

यदि आपका नियोगही सत्यहै तौ यहां पति और श्वशुर दौनोंके लिये (स्योना) पद आया है अर्थात् सुख देनेवालीहो एवं सब कुटम्बियोंको सुख देनेहारी कहा है तौ क्या जो पतिके संग व्यवहार करै वोही सबके साथ करै यह कभी नहीं होसक्ता पतिको और प्रकारका सुख, श्वशुरादिकौंको सेवा आदिसे सुख दाता होती

है, यह नहीं कि सुख देनेसे सबके संग भोगहीके अर्थ हो जाय, इस्से आपके सब अर्थ भ्रष्ट हैं मिथ्याहैं नियोग एकसेभी नहीं बन्ता, अब दयानंदजी मनुस्मृतिपर आते हैं

पृ. ११७ पं. १४ तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः

जो अक्षत योनि स्त्री विधवा हो जाय तौ पतिका निज छोटा भाईभी उस्से विवाह कर सक्ता है

समीक्षा स्वामीजी यहांभी अर्थ बनानेसे न चूके, यदि इस श्लोकको पूरा लिखते तौ आपकी कलई खुल जाती, यह आधा श्लोक आपने मतलब सिद्धकरनेको लिखा सो इस्से मतलब कुछभी सिद्ध नहीं होता सुनिये

यस्याम्रियेतकन्यायावाचासत्येकृतेपतिः
तामनेनविधानेननिजोविन्देतदेवरः अ. ९ श्लो० ६९

जिस कन्याका वाग्दान करनेके अनन्तर पति मरजाय उसका उसके छोटे भाई से विवाह करदे यह इसका अर्थ है सो आजतक ऐसा सब कोई करते हैं जिसकी सगाई हो जाय और वोह पति मरजाताहै, तौ उसका विवाह औरके संगकर देतेहैं स्वामीजीने अक्षत योनि और विवाह होगई हुई लिखाहै यही महाकपट है

पृ. ११७ पं. १६ प्रश्न एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग करसक्ते हैं और विवाहित नियुक्त पतियोंकानाम क्या होताहै (उत्तर)

सोमः प्रथमोविविदेगन्धर्वोविविद उत्तरः
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ऋ.मं.१०सू.८५मं.४०

हे स्त्रि जो ते तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझको (विविदे) प्राप्त होताहै उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होनेसे सोम जो दूसरा नियोग होनेसे विविदे प्राप्त होताहै वोह (गंधर्वः) एक स्त्रीसे भोग करनेसे गंधर्व जो तृतीय (उत्तरः) दोके पश्चात् तीसरा पति होताहै वोह(अग्निः) अत्युष्णता होनेसे अग्नि संज्ञक और जो तेरे (तुरीयः) चौथेसै लेकै ग्यारहतक नियोगसे पति होतेहैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य नामसे कहाते हैं (इमांत्वमिन्द्र) इस मंत्रसे ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग करसक्ती है और पुरुषभी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग करसक्ता है.

समीक्षा स्वामीजीने ऐशी हठ ठानी है कि अर्थोंका अनर्थ कर दिया है कि वेदार्थको क्षुद्रता प्रतीत होती है, निरुक्तमें इसके अच्छी तरह वर्णन कियेहै हम केवल मंत्रार्थ दिखाते हैं, इस मंत्रका विवाहमें विनियोग है.

हे कन्ये त्वमुच्यसे सोमः त्वां प्रथमो विविदे विन्नवान् प्राप्तवान् सौम्ये प्रथम कौमारके (गन्धर्वो विविद उत्तरः) उपजायमानचारुताङ्गप्रविभाग स्वरः सौ ष्ठवा मीषदनङ्गाङ्गसमाहृत हृदयां गंधर्वो विश्वावसुस्त्वां विविदे विन्नवान् अथ पुनरिदानीं वैवाहिके उपगताया कर्मणि (तृतीयो अग्निष्टे पतिः) तृतीय स्तवा ऽयमग्निः । अत उद्वहनात् परम् तुरीयः चतुर्थः (ते) तवार्यं (मनुष्यजाः) पतिः । इत्येवमनेना ऽपिमंत्रेण समवैति जारत्वं पतित्वं चाग्नेः

सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गन्धर्वश्च शुभांगिरं ॥ पावकः सर्वभक्षित्वं तेन शुद्धाहि योषितः ॥ भाषार्थः हे कन्ये प्रथम कौमार सौम्य अवस्थामें तेरेको सोम देवता प्राप्त हुआ और जब सुन्दर अंग प्रत्यंग हुए तब विश्वावसुगंधर्व तुझे लेता है, और विवाह कर्ममें तृतीय पति तेरा अग्नि है, विवाहसे उत्तर (मनुष्यजाः) मनुष्य पतिहै चौथा और यह विचार कर्तव्यहै कि मनुष्यजाः यहशब्द तुरीयः इसके साथ समान विभक्तिक समान अर्थवाला एक वचनान्तहै, इस वास्ते इस्से बहुत पति बोधन करना असंगत है, और जब तुरीयको मनुष्यजात्व कहा तौ, पूर्वतीनके अर्थ देवत्व प्राप्तहै, अग्नि ही कन्या भावको जीर्णकरता होनेसे जारहै, चंद्रमाने स्त्रियोंको पवित्रता गन्धर्वने सुन्दर वाणी, अग्निनें सर्व भक्षित्व दिया इस कारणसे स्त्री शुद्ध हुई और सुनिये

सोमोददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोददग्नये

रयिंश्चपुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथोइमाम् ऋ.मं.१० अ.७ सू.८५.मं.४१

विवाहमें इस मंत्रका विनियोग है (सोमः एतां प्रथमं कौमारादभ्युह्य गन्धर्वाय ददत् अदात् अथ गन्धर्वः अप्येनामभ्युह्यस्व यौवनाधिकारात् अग्नये ददत् अथअग्निः अपि एनाम् अस्मिन् विवाहे संस्कृत्य रयिंचधनंच पुत्रान् च मह्यम् अदात् ददाति अथो, अपिच धनैश्च पुत्रैश्च सह इमाम् मह्यमदात् मह्यं ददाविति.

भाषार्थ-(सोमः) सोमदेव इसको कौमारसे सर्वथा अवयव संपत्ति करकै गंधर्वाय गंधर्वके अर्थ देता हुआ, और वोह गंधर्वभी इसको यौवनाधिकारसे सर्वथा सम्पन्नकर (अग्नये) अग्निके अर्थ (अददत्) देता हुआ, और अब अग्नि देवभी (इमाम्) इस विवाह कर्ममें इसको संस्कार युक्त करकै (मह्यम्) मेरे अर्थ (रयिंच) धनको (पुत्रांश्च) पुत्रोंकोभी देताहै, तथा इस स्त्रीको देताहुआ

अब विचारनेकी बातहै यदिस्वामीजीका अर्थ मानै तौ सोमनाम विवाहिताकापति जीते जी गन्धर्व संज्ञक नियोगके पतिको कैसे देगा, गन्धर्व अग्निको कैसे देगा, और तृतीय चतुर्थ को कैसे देसक्ताहै, इस कारण यह अर्थ किसी प्रकार नहीं होसक्ता, केवल देवता विवाह होने तक व्यय क्रमसे रक्षा करते हैं, क्योंकि जन्म लेकरही स्त्रीसे नियोगमें कोई समर्थ नहीं होसक्ता, इससे यह तीनो देवता विवाहतक रक्षा करते हैं यही अर्थ ठीक है. और देखिये

सम्राज्ञीश्वशुरेभवसम्राज्ञीश्वश्र्वांभव·
ननांदरिसम्राज्ञीभवसम्राज्ञीअधिदेवृषु ऋ.मं. १०अ ७ सू.८५

श्वशुर श्वश्रूनन्द और देवरोंमें (सम्राज्ञी) अधीश्वरीहो भाव यह है किस सुरसासनन्द और देवर इनसर्व की नियंत्री गृहमेहो, इनमंत्रोंमें केवल प्रार्थना है नियोगका प्रसंगही कौनहै, यदि नियोगका विषय होतो

तौ ससुरमें भी सम्राज्ञी कहनेसे नियोग सिद्ध हो जायगा, और महाअनर्थ होगा इस्से जितने यह दयानंदजीने मंत्रोंके अर्थ लिखे हैं वे सब ही अशुद्ध हैं

स. पृ. ११८ पं२ एकादश शब्दसे दशपुत्र और ग्यारहवें पतिको क्योंनगिने (उत्तर) जो ऐसा अर्थ करोगे तौ 'विधवेव देवरम्'और (देवरःकस्मा०)(अदेवृ०) और (गन्धर्वो०) इत्यादि वेद प्रमाणोंसे विरुद्धार्थ होगा, क्योंकि तुह्मारे अर्थसे दूसरा भी पतिप्राप्त नहीं होसक्ता.

समीक्षा निश्चय हमारे मतमें क्याकिसी प्राचीन आचार्यके मतमें दूसरा पति नहीं माना गयाहै, वेदके मंत्रोंके अर्थ करही चुके हैं और (पतिमेकादशम्) यहां एकादशम् के अर्थ ग्यारहवां, और पतिम् पतिकू यह द्वितीया विभक्तिका एक वचन पडा हुआ है, ग्यारहपतितक करनेका अर्थ तौ स्वामीजीके कपोलके भंडारसे निकलाहै

देवराद्वासपिंडाद्वास्त्रियासम्यङ्नियुक्तया ॥
प्रजेप्सिताधिगन्तव्यासन्तानस्यपरिक्षये ॥ १ ॥
ज्येष्ठोयवीयसोभार्यांयवीयान्वाग्रजस्त्रियाम् ॥
पतितौभवतोगत्वानियुक्तावप्यनापदि ॥ २ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव. मनु० अ. ८ श्लो. ५८—६०

इत्यादि मनुजीने लिखा है कि (सपिंड) अर्थात् पतिकी छः पीढियोंमें पतिका छोटा वा बडाभाई अथवा स्वजातीय तथा अपनेसे उत्तम जातिस्थ पुरुषसे विधवा स्त्रीका नियोग होना चाहिये परन्तु, जो वोह मृतस्त्री और पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा करती होय तौ नियोग होना उचितहै, और जब सन्तानका सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवै, जो आपत्काल अर्थात् सन्तानके होनेकी इच्छा होनेमें बडे भाईकी स्त्रीसे छोटेका, छोटे भाईकी स्त्रीसे बडे भाईकानियोग होकर सन्तानोत्पत्ति होजानेपरभी पुनः वे नियुक्त आपसमें समागम करैं तौ पतित होजाय, अर्थात् एक नियोगमें दूसरे पुत्रके गर्भ रहनेतक नियोगकी अवधिहै, इसके पश्चात् समागम न करैं, और जो दोनोके लिये नियोग हुआ होय तौ चौथे गर्भतक अर्थात् पूर्वोक्त रीतीसे दश सन्तानतक होसक्तेहैं, अर्थात् विवाह वा नि-

योग सन्तानोंहीके लियेकिये जातेहै, पश्चात् विषयासक्ति गिनीजातीहै, इस्से वे पतित गिने जातेहैं, और जो विवाहित स्त्रीपुरुषभी दशवें गर्भसे अधिक समागम करें तौ कामी और निन्दित होतेहैं, यह विवाह नियोग सन्तानौहीको किये जातेहैं पशुवत् काम क्रीडा करनेको नहीं.

समीक्षा यह श्लोकभी दश सन्तान नियोगसे उत्पन्न होना नहीं कहते, क्यों कि इसके आगेके श्लोकमें लिखाहै.

विधवायांनियुक्तस्तुघृताक्तोवाग्यतोनिशि ॥
एकमुत्पादयेत्पुत्रंनद्वितीयंकथंचन ॥ ६० ॥ अ. ९

विधवाके साथ नियोगविधि करिके शरीरमें घृत लगाकर मौन धारणकर रात्रिमें भोगकरे, इस प्रकार एक पुत्र उत्पन्न करे, दूसरा कभी न करै, अब यह मनुस्मृतिसेभी तुम्हारे ग्यारह पुत्रतक कराने तथा अन्य जातिसे नियोग करनेके वाक्य मिथ्या होगये, क्योंकि (देवराद्वा.) इस श्लोकसे अन्य जातिसे नियोगकरना वर्जितहै, एक वार्ता यहभी ध्यान रखने योग्यहै, कि मनुजी नियोग करना बुरा जान्तेहैं, उन्होंने राजा वेनुके समयका वृत्तान्त लिखाहै, कि ऐसा होताथा उसनेयों विधि चलाई, अब वोह अपनी सम्मति इसपर प्रकाश करतेहैं.

नान्यस्मिन्विधवानारीनियोक्तव्याद्विजातिभिः
अन्यस्मिन्हिनियुंजानाधर्मंहन्तिसनातनम् ६४
नोद्वाहिकेषुमंत्रेषुनियोगःकीर्त्यतेक्वचित्
नविवाहविधावुक्तंविधवावेदनंपुनः ६५
अयंद्विजैर्हिविद्वद्भिः पशुधर्मोविगर्हितः
मनुष्याणामपिप्रोक्तोवेनेराज्यंप्रशासति ६६
समहीमखिलांभुंजन्राजर्षिप्रवरः पुरा
वर्णानांसंकरंचक्रेकामोपहतचेतनः ६७
ततःप्रभृतियोमोहात्प्रमीतपतिकांस्त्रियम्
नियोजयत्यपत्यार्थंतंविगर्हंतिसाधवः ६८

अर्थ—ब्राह्मणादितीनो वर्णोंको विधवा स्त्रीदेवर आदिके संगनियोग करनेको नहीं प्रेरणाकरनी, वे स्त्री दूसरे पतिके प्राप्त होनेसे सनातन एक पतिव्रतधर्मका नाश करतीहैं ६४ विवाहके मंत्रोंमें कहींभी नियोग नहीं दृष्टि पड़ता और न विवाह विधायक शास्त्रमें विधवा विवाह दीखताहै ६५ और यह विद्वान् ब्राह्मणोंने पशुधर्म (नियोग)

निन्दित कियाहै, यह पशुधर्म राजा वेनने अपने राज्यमें मनुष्योंके वास्तेभी कहा ६६ वोह राजर्षि सब पृथ्विको भोगता हुआ - (चक्रवर्ती राजा होनेसे राजर्षि कहा धर्मसे नहीं) कामी होकर भाईकी स्त्रीकेसाथ इस नियोगरूप वर्णसंकरताको प्रवृत्त करता हुआ ६७ उस वेनके समयसे यहरीति चली और जो उसकी मति मान्नेवाले लोग शास्त्रके न जान्नेवाले विधवास्त्रीको देवरके साथ योजना करतेहैं उस विधिको साधु पुरुष निन्दा करतेहैं ६८

स्वामीजी तुम तौ राजा वेनका अवतार मालूम पड़तेहौ, या वेनकेभी दादा गुरू कहूंतौ ठीक होय, क्योंकि उसने तौ अपनी जातिहीमें नियोग चलाया, और एकही सन्तान उत्पन्न करने कहा, परन्तु तुम तौ सब जातिमें नियोग करने और ग्यारह तक सन्तान उत्पन्न होने कहतेहो, यह पशुधर्म आपने चलाया जो कि वेनसे आरम्भ हुआहै, आपने मनुस्मृतिके पूर्वापर परभी ध्यान नदिया, जिस्सेइ पशुधर्ममें प्रवृत्त न होना पड़ता मंत्रार्थ न बदलना पड़ता.

स, पृ. ११८ पं. २५ (प्रश्न) नियोग मरे पीछे होताहै वा जीते पतिकेभी (उत्तर) जीतेभी होताहै (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत्) ऋ. मं. १० सू. १० जब पति सन्तानोत्पत्तिमे असमर्थ होवै तब अपनी स्त्रीको आज्ञादे कि हे सुभगे सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझसे (अन्यम्) दूसरे पतिकू (इच्छस्व) इच्छाकर क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्तिकी आशा मतकरै परन्तु उस विवाहित महाशय पतिकी सेवामेंरहै इसी प्रकार जब स्त्री रोगादि दोषोंसे ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थहो तब अपने पतिको आज्ञा देवै कि हे स्वामी आप सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा मुझसे छोडके किसी दूसरी विधवा स्त्रीसे सन्तानोत्पत्तिकीजिये जैसा पाण्डु राजाकी स्त्री कुन्ती और माद्री आदिने किया.

समीक्षा यदि स्वामीजी इस मंत्रको पूरा लिखते तौ कलई खुल जाती बस सारा नियोग उड जाता अब वोह मंत्र लिखा जाता है

आघातागच्छानुत्तरायुगानियत्रजामयः कृणवन्नजामि
उपबर्बृहिवृषभायबाहुमन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत् ऋ.
म० १० अ. १ सू. १० मं. १०

आगमिष्यन्तितान्युत्तराणि युगानि यत्र जामयः करिष्य-न्त्यजामि कर्माणि जाम्याते रेकनाम बालिशस्य वा समानजातीयस्यवोपजन उपधेहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छ स्वसुभगे पतिं मदिति व्याख्यातम् निरु० अ० ४ पा० ३ खं० ४ जामि, इति एत दनेकार्थम् भगिनी बालिशः पुनरुक्तं चास्याभिधेयानि प्रकरणादेवैतेषामन्यत मस्मिन्नवतिष्ठते यथानेन तावद्भगिन्युच्यते तथेदमुदाहरणम् आघाता-मत् इति ॥

इयं यमी किल यमं प्रार्थयाञ्चकार, एहि मैथुनाय सङ्गच्छ वहा इति तामकामय मानाऽसावनयर्चा प्रत्युवाच आघाता गच्छान् घा इत्यनर्थक एव आगच्छान् आगमिष्यन्तीत्यर्थः आह कानि उच्यते ता तानि उत्तराणि युगानि आगमिष्यन्ति तेऽपि कालानतावत् साम्प्रतं वर्तन्ते इत्यभिप्रायः तेषु किम् यत्र येषु जामयः भगिन्यः भ्रातृणाम् अजामि योग्यानि मैथुनसम्बन्धानि कर्माणि करिष्यन्ति कलियुगान्ते हि तादृशः सङ्करो भवति न चेदं कलियुगं वर्तते इत्यभिप्रायः यतो न तावदद्यापि संकीर्णे वर्ण संकरधर्मः स्वाचारा एव तावत् प्रजाः अतो ब्रवीमि उपबर्बृहि उपधेहि कस्मै (वृषभाय) तवोपरि रेतः सेक्तुमन्यकुलजो योग्यः तस्मै किं मुपबर्बृहि इति बाहुम् शयनीये सर्वथा प्रार्थ्यमानोऽप्यहं तव पतिः न भविष्यामीति यतो ब्रवीमि अन्य मिच्छस्व अन्यमन्वेषयस्व हे सुभगे (पतिं) मत् मत्त इत्यर्थः

यमयमीसंवाद की यह ऋचाहै यमी कहती है यमसेजो कि हम दौनै समागम करें तौ यम इस मंत्रसे उत्तर देता है हे यमि वे उत्तर युग आवेंगे जिन युगोंमें (जामयः) भगिनियां (अजामि कृणवन्) भगिनिसे भिन्न सम्बन्धित कर्मको करेंगी भाव यहहै कि कलियुगान्तमेंही यह संकरता होगी जिस कालमें भगिनीसे भिन्न स्त्री योग्य कर्मोंको भगिनी करेंगी किन्तु अभीतो संकर धर्म नहीं अपने २ धर्ममें सब वर्ण वर्त्तमानहे इस वास्ते हे सुभगे मेरेसे अन्य योग्य पतिकी इच्छाकर और उस (वृषभाय) योग्य पतिके वास्ते (बाहुम् उपबर्बृहि अपने पाणिको ग्रहण कराले.

अब बुद्धिमान यह विचारें कि इसमें कौनसी बात नियोगकी है इसमें स्वामीजीने बडी बनावटकी है मंत्रका आशय सम्पूर्णतः बदल दिया

कुन्ती माद्रीकाभी दृष्टान्त इसमें घट नहीं सक्ता पाण्डुको शापथा उन्होनें अपनी स्त्रीसे कहा तौ वोह कठिणतासे सन्तान उत्पन्न करनेमें सम्मत हुई मंत्र बलसे देवताओंको आवाहन किया, इन्द्रमरुत धर्मसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो तत्काल ऋतुदान करतेही उत्पन्न होगये, अश्विनीकुमारसे नकुलसहदेव यह तत्कालही उत्पन्न होगयेथे यदि इस प्रकार मंत्राकर्षणसे पतिकी आज्ञानुसार स्त्रीमें देवताओंके बुलानेकी सामर्थ होतौ वोह कर सक्ती हैं, इस देव सम्बन्धी कार्यका यहां दृष्टान्त नहीं घट सक्ता, यदि कहो कि यह मंत्रकी बात किसीने महा भारतमें मिलादी है, तो हम कह सकते हैं कि इस प्रकार माद्री कुन्तीके पुत्र उत्पन्न होनेकी किसीने मिलादीहै, इस कारण यह कहना नहीं बन सक्ता इसीसे यह नियोग तुम्हारा सिद्ध नहीं स० प्र० पृ० ११९ पं० ९

प्रोषितोधर्मकामार्थं प्रतीक्ष्योष्टौनरः समाः
विद्यार्थं षड्यशोर्थंवाकामार्थंस्त्रींस्तुवत्सरान् १

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्देदशमेतुमृतप्रजाः
एकादशेस्त्रीजननीसद्यस्त्वप्रियवादिनी २

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति परदेश गयाहो तौ आठवर्ष, विद्या और कीर्तिके लिये गया होय तौछः, और धनादि कामनाके लिये गयाहो य तौ तीन वर्षतक वाट देखकै पश्चात् नियोग करकै सन्तानोत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवै तब नियुक्त पति छूट जावै, वैसेही पुरुषके लियेभी नियमहै, वंध्या (जिसको विवाहसे आठ वर्षतक गर्भ न रहै) उसे आठवैं, सन्तान होकर मरजा वैं तौ दशमें, और कन्याही हो पुत्र न हो तौ ग्यारह वैं वर्षतक और जो अप्रिय बोलनेवाली हो तौ सद्यः उस स्त्रीको छोडकै सन्तानोत्पत्ति करले २ वैसेही पुरुष अत्यन्त दुख दायक होय तौ स्त्रीको उचित है कि उसको छोड दूसरे पतिसे नियोगकर उस्से सन्तानोत्पत्तिकर उसी विवाहित पतिका दायभागी सन्तानोत्पत्ति कर लेवै.

समीक्षा यहां स्वामीजीने यह लीलाही रची है पहिला श्लोक ९ अध्यायका ७६ वां है, और दूसरा श्लोक ५१ वां है, इन दौनौका महात्माजीने एकही प्रसंग लगादिया, मनुष्योंके परदेश जानेतकमें बांधा डालदी, अब इस श्लोकका आशय सुनिये कि यह क्या आशयका है इस्से पहला श्लोक यह है

विधायवृत्तिम्भार्यायाः प्रवसेत्कार्य्यवान्नरः
अवृत्तिकर्शिताहि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि ७४
विधायप्रोषितेवृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता
प्रोषितेत्वविधायैवजीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ७५
प्रोषितोधर्म० ७६

जब कोई पुरुष परदेशको जाय तौ प्रथम स्त्रीके खानपानका प्रबंध करता जाय क्योंकि विना प्रबंध क्षुधाके कारण कुलीन स्त्रीभी दूसरे पुरुषकी इच्छा करैंगी ७४ खान पान करके विदेश जानेके अनन्तर उस पुरुषकी स्त्री नियम अर्थात् पतिव्रतसे रहकर अपना समय व्यतीत करै और जब भोजनको न रहै वा पुरुष कुछ बंदोबस्त न करगया होय तौ पतिके परदेश होनेमें शिल्पकर्म जो निन्दित न हों अर्थात सूत-कातना हस्तसे काढना आदि कर्मोंसे गुजाराकरै ७५ यदिवोह धर्मकार्यको परदेश गया होतौ आठवर्ष विद्या पढने गयाहो तौछःवर्ष धन यशको गया हो तौ तीन वर्षतक वाट देखे पश्चात् पतिके पास जहां हो वहांचली जावै यही वशिष्ठजी कहते हैं

प्रोषित्पत्नीपंचवर्षाण्युपासीत् ऊर्द्धंपतिसकाशंगच्छेदिति

पांच वर्ष तक स्त्री पतिकी वाट देखे पीछे उसके पास चली जाय (वंध्याष्टमें) इसका अर्थ पूर्व ही करचुकेहैं, कि ऐसी दशामें पुरुष विवाह दूसरा करले एक स्वामीजीके लेखमें बड़ी हंसीकी बातहै कि (पति दुखदायक होतौ स्त्री उसे छोड किसी दूसरेसे नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करले जो उस्से दाय भागलेलैं धन्यहै पहले तौ लिखाकि पति आज्ञा दे तौनियोग करै, अब स्त्रीही उसे छोड नियोग करै, जब वे दूसरे पुरुषसे नियोग करैंगी पतिसे लडैंगी, तौ वोह उन्हें घरमें क्यों रहने देगा, सासससुर क्यों घरमें रहने देंगे, एक नहीं वोह चार नियोग करै, परन्तु वोह काहे को उसे घरमें घुसने देगा, यह वालकभी निर्बुद्धिकी बात मुखसे नहीं निकाल सक्ते, जो स्त्री दूसरेसे सन्तान उत्पन्न करै पतिसे छोड़ी हुई फिर उसके औरसे उत्पन्न हुएबालक कौनसे शास्त्रसे दाय भागीहोंगे, सिवाय आप के व्यभिचार प्रकाशके, और तौ किसी ग्रंथमें स्वैरिणी स्त्रियोंके पुत्रोंका दाय भाग नहीं मिलसक्ता.

स. प्र. पृ. ११९ । पं. २० जो कोई वीर्य रूप अमूल्य पदार्थ स्त्री वेश्यावा दुष्ट पुरुषोंके संगमें खोते हैं, वे महामूर्ख हैं क्योंकि किसान, वा माली मूर्खहो करभी अपने खेतवा वाटिकाके विना बीज अन्यत्र नही वोते (आत्मावै जायते पुत्रः) यह ब्राह्मण ग्रंथोंका वचन है और (अंगादङ्गा०) यह सामवेदका है.

समीक्षा स्वामीजीकी यह बात स्वामीपर ही पड़ती है जबकि माली किसा नभी बीज अपनी भूमीमें वोते हैं तौ वे पुरुषभी मूर्ख हैं जो अन्य स्त्री से नियोग करते और वृथा बीज खोते हैं, एकही वार जानेसे गर्भ रह नहीं सक्ता, और जब आत्माही पुत्र है तौ मृत पुरुषके वेबालक कहा नहीं सक्ते, और अङ्गा० यह सामवेदका वचन नहीं अव एक और बात सुनिये जो कि कैसे ही बुद्धि भ्रष्ट क्यों नहो कैसे ही नशेमेंचूर क्यौंन हो पर ऐसी वे शिरपैर की बात नहीं कह सक्ता.

स. पृ. १२० पं. २५ गर्भवती स्त्रीसे एक वर्ष समागम न करनेके विषयमें पुरुष वा स्त्रीसे न रहा जाय तौ किसीसे नियोग करकै उसके लिये पुत्रोत्पत्तिकरदे

समीक्षा देखिये इस अन्धेरको गर्भवती स्त्रीसे नरहा जाय तौ नियोग करके किसीके लिये सन्तानोत्पत्तिकरदे, कहिये अब महात्माजीका सृष्टि क्रम कहां चला गया एक बालक तौ उत्पन्नहुआ ही नही दूसरा कैसे उत्पन्न हो सक्ता है, पहला बालक तौउदरमें मौजूदही रहै, और इधर इधर नियुक्त पुरुषको पैदा करकै देदे बेटोंका स्वामीजीने ढेरलगा दिया है, बेटीका नाम नहीं, कोई परमेश्वरने घबडा कर परचा लिखदिया कि नियुक्तपुरुषके जाते ही सन्तान होंगे, स्त्रीका नामभी नहीं, यहां तौ सभी को व्यभिचारिणी बनाया, तुम तौ हकीम वैद्यक जाननेवालेथे, यह क्या लिख बैठे, यहां तौ निर्बुद्धि प्रकाश लिखते २ बुद्धिको सम्पूर्णही तिलांजली देदी, यह नसू-

क्षीकि जब गर्भवती है तौ नियोगकी अवश्यकता क्याहै, अब रहा न जाय इस शब्दसे नियोग विषया शक्तिके अर्थ विदित होताहै अब हम आपको क्या कहें.

स. पृ. १२१ पं. ६ और ऐसे श्लोकों को नमानै

पतितोपिद्विजश्रेष्ठोनचशूद्रोजितेन्द्रियः
निर्दुग्धाचापिगौःपूज्यानचदुग्धवतीखरी १
अश्वालंबंगवालंबं सन्यासं पलपैतृकम्
देवराच्चसुतोत्पत्तिंकलौपंचविवर्जयेत् २
नष्टेमृतेप्रव्रजितेक्लीवेचपतितेपतौ
पंचस्वापत्सुनारीणांपतिरन्योविधीयते ३

यह कपोल कल्पित पाराशरीके श्लोक हैं जो दुष्टकर्म कारी द्विजको श्रेष्ठ और श्रेष्ठ कर्म करी शूद्रको नीच मानै तौ इस्से परे पक्षपात अन्याय अधर्म दूसरा क्या होगा. क्या दूध देनेवाली व नदेनेवाली गाय गोपालकों को पालनीय होती है, वैसे कुह्मार आदिकों को गधीपालनीय नहीं होती, और यह दृष्टान्तभी विषम है, क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्यजाति गाय और गधी भिन्न जाति हैं, कथं चित् पशुजातिसे दृष्टान्तका एक देश दार्ष्टान्तमें मिलभी जावैतौ तौभी इसका आशय अनुक्त होनेसे यह श्लोक विद्वानोंको माननीयभी नहीं होसक्ते, अब अश्वालंब अर्थात् घोड़ेको मारकै होम करना वेद विहित नहीं है, तौ उसकाकलि युगमें निषेध करना वेद विरुद्ध क्यों नहीं, जो कलियुगमें इस नीच कर्मका निषेध माना जाय तौ त्रेता आदिमें विधि आजाय तौ इसमें ऐसे दुष्ट कामका श्रेष्ठमें होना सर्वथा असंभव है, और सन्यास की वेदादि शास्त्रोंमें विधि है उसका निषेध करना सर्वथा निर्मूल है, जब मांसका निषेध हो तौ सर्वथा निषेधही है, जब देवरसे पुत्रोत्पत्ति करना वेदोंमें लिखा है तौ श्लोक करता क्यूं भूंखता है (नष्टे) अर्थात् पति किसी देशान्तरको चला गयाहो घरमें स्त्री नियोग करलेवे तौ उसी समय विवाहित पति आजाय तौ वोह किसकी स्त्रीहो कोई कहै कि विवाहित पतिकी हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरीमें तौ नहीं लिखी, क्या स्त्रीके पांचही आपत्काल है, जो रोगी पडा हो या लडाई होगई इत्यादि आपत्काल पांचसे भी अधिक है, इस लिये ऐसे ऐसे श्लोकोंको कभी न मानना चाहिये.

समीक्षा स्वामीजीने इन श्लोकोंका भाव नहीं समझा यदि इसके पूर्वश्लोकोंको देखते तौ कभी ऐसा न लिखते ब्राह्मण शूद्रकी तौ व्यवस्था पूर्व लिखही चुके हैं यदि शूद्र अच्छे आचरण करै तौ वोह अच्छा है परन्तु वोह ब्राह्मणकी तुल्य नहीं हो

सक्ता "अनेकमुक्ताजटितंच चंचु तथापि काको नचराजहंसः" विदुरजी सब कुछ जान्तेथे परन्तु ब्रह्मज्ञान शूद्र होनेके कारण स्वयं नहीं कहा, सनत्सुजातजीको बुलाया, कहिये विदुरजी सर्वगुणालंकार युक्तथे वा नहीं और दृष्टान्त भी विषम नहीं है, वोह मनुष्योंमें है, वोह पशुओंमें यदि स्वामीजी काव्य जान्ते तौ ऐसा कभी नहीं कहते, और सन्यासके लिये यह आज्ञा है कि ब्राह्मणके अतिरिक्त कलियुगमें और किसी जातिको अधिकार नहीं हैं, और देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति राजावेनने चलाई है, और युगकी कौन कहै इसका कलियुगमें भी निषेध है, और यह अश्वालंभकी रीति पाराशरजीने तौ निषेधही करी है, परन्तु आपने तौ पुराने सत्यार्थ प्रकाशमें ३०३ पृष्ठमें लिखा है, कि कोई मांसन खाय तौ पक्षीजलजन्तु जितने हैं इस्से सहस्र गुने हो जाय, फिर मनुष्योंको मारने लगैं, फिर पृ. ३९ में लिखा है कि पशुओंके मारनेसे थोडासा दुख है, परन्तु चराचरका उपकार होताहै, फिर अपनेही पुराने सत्यार्थ प्रकाशमें पशुओंका यज्ञमें मारना विधिपूर्वक हनन लिखाहै, उस समय क्या आपमें कुछ विद्या कमतीथी, या किसी गुरुसें पढआये, जो अब खंडन करने लगे, पाराशरजीने तौ मने ही लिखा है, आज्ञा तौ आपहीने देदीथी, अब तीसरे श्लोकका आशय सुनिये, कि वोही अर्थका प्रसंग यहां है कि वागदानके अनन्तर यादिपति इन पांच आपदाओंमें पतित होजाय तौ उसका विवाह अन्यपुरुषसे कर देना, पूर्व पुरुषसे करना नहीं, मनुजीने पतिव्रताधर्मकी औरस्त्रीके कालक्षेपकी विधि इस प्रकार लिखी है

पाणिग्राहस्यसाध्वीस्त्रीजीवतोवामृतस्यवा
पतिलोकमपीप्संतीनाचरेत्किंचिदप्रियम् १५६ अ. ५
कामंतुक्षपयेद्देहंकन्दमूलफलैः शुभैः
नतुनामापिगृह्णीयात् भर्तुःप्रेतेपरस्यतु १५७
आसीतामरणाच्छान्तानियताब्रह्मचारिणी
योधर्मएकपत्नीनांकांक्षन्तीतमनुत्तमम् १५८
अनेकानिसहस्राणिकुमारब्रह्मचारिणाम्
दिवंगतानिविप्राणामकृत्वाकुलसंततिम् १५९
मृतेभर्तरिसाध्वीस्त्रीब्रह्मचर्य्येव्यवस्थिता
स्वर्गंगच्छत्यपुत्रापियथातेब्रह्मचारिणः १६०

अपत्यलोभायास्त्रीतुभर्तारमतिवर्तते
सेहनिंदामवाप्नोतिपतिलोकाच्चहीयते १६१
नान्योत्पन्नाप्रजास्तीहनचाप्यन्यपरिग्रहे
नद्वितीयश्वसाध्वीनांक्वचिद्भर्तोपदिश्यते १६२

पतिलोककी इच्छा करनेवाली जीवित वामृत्पतिके अप्रिय कोई कर्म न करे १५६ पवित्र जो मूल फलहैं इन करके देहको कृश करै परन्तु पतिके मरनेपर पर पुरुषका नामभी न ले १५७ क्षमा करके युक्त और नियमवाली पवित्र धर्मकी इच्छा करनेवाली मधुमांसादिककी नहीं इच्छा करती हुई ब्रह्मचारिणी होकर मरण पर्यन्त नियममें रहै १५८ ब्राह्मणोंके कई सहस्र ब्रह्मचारी कुमार स्वर्गमें विना पुत्रोत्पादन किये गये है, इस कारण पुत्र उत्पन्न करनेकी विधवा ओंको कोई आवश्यकता नहीं १५९ साध्वी स्त्री पतिके मरनेपर ब्रह्मचर्यसे रहै, तौ अपुत्रभी स्वर्गको जाती है जैसे वे ब्रह्मचारी चले गये १६० पुत्रके लोभसे जो स्त्री पर पुरुषसे संबंध करती है वोह यहां निन्दाको प्राप्त होती है और स्वर्ग लोक तथा पतिलोकसे भ्रष्ट हो जाती है १६१ दूसरे पुरुषसे उत्पन्न हुई प्रजा शास्त्रसे उसकी है नहीं, और न दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न करनेवालेकी है, और न साध्वी स्त्रीयोंको दूसरा पति कहा है १६२ यह सनातन वैदिक सिद्धान्त है, और महाभारतमें सावित्रीकी कथा देखो पुनः अ.९ श्लो० ४७

सकृदंशोनिपततिसकृत्कन्याप्रदीयते
सकृदाहददानीतित्रीण्येतानिसतांसकृत् ४७

हिसा एकही वार किया जाताहै, कन्यादान एकही वार किया जाताहै, और देंगे यह भी एकही वार कहा जाता है, सत्पुरुषकी यह तीनबातें एकही वार होती है ४७

इयंनारीपतिलोकंवृणानानिपद्यतउपत्वमर्त्यप्रेतम्
धर्मंपुराणमनुपालयन्तीतस्यैप्रजांद्रविणंचेहधेहि । अथर्व०१८।३।१

वोह स्त्री जो पति लोकजानेकी इच्छा करै धर्मको अच्छे प्रकार पालन करै और कन्दमूल फलको भोजन करती हुई उत्तम गतिको प्राप्त होती है और धन पुत्रादिक प्राप्त करती है ॥ इन सब बातोंका सिद्धान्त यह है कि नियोग कभी नहीं करना, और परपुरुषको भूलसे नहीं अंगीकार करना, तथा पतिव्रतधर्म पालन करना.

इति श्रीमद्दयानंद सरस्वती स्वामिकृत सत्यार्थ प्रकाशे समावर्तन विवाह गृहा श्रमविषये चतुर्थ समुल्लासस्य खंडनं समाप्तम् ९ जून ९० शुभम्

श्रीः ।

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत पंचमसमुल्लासस्य

खण्डनप्रारम्भः ।

सन्यासप्रकरणम् ।

स. पृ. १२६ पं. २

वनेषुचविहृत्यैवं तृतीयंभागमायुषः
चतुर्थमायुषोभागंत्यक्त्वासंगात्परिव्रजेत् मनु०

इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् २५ वे वर्षसे पचहत्तर वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयुके चौथे भागमें संगोंको छोड़ परिव्राट् अर्थात् सन्यासी होजावै (प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थ न करके सन्यासाश्रम करै उसको पाप होता है या नहीं (उत्तर) होताहै और नहींभी होता, जो बाल्यावस्थामें विरक्त होकर विषयोंमें फंसे वोह महापापी और जो न फंसे वोह पुण्यात्मा पुरुष है ।

समीक्षा दयानंदजीके ही लेखसे हम इनके सन्यासकी परीक्षा करते हैं आपने ७५ वर्षसे पूर्व ही सन्यास लेलिया, और विषय संगभी नहीं छोड़ा, आपको विषयोंमें फंसे रहनेसे पापही हुआ आपने लक्षोंकी प्राप्तिका प्रबन्ध किया, निवाड़के पलंगपर शयन होता, बड़े बड़े तकिये लगे रहते, रसोईमें षट्रस भोजन होता, पांवधुलानेको कहार नौकर, चटनी मुरब्बे पूरी हलुवेके विना भोज नही अच्छा नहीं लगताथा, दुशाले ओढ़े जातेथे, हुक्का पिया जाता, चार पांच जोड़े बूंटोंके विलायती बने सन्दूकमें रहते, इत्यादि जहां ठहरते कोठी बंगलोंहीमें ठहरते फिर आपको इन संगोंके करनेसे पापही हुआ

स. पृ. १२६ पं. १९

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः
नाशान्तमानसोवापिप्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् । कठवल्ली मं.२४

जो दुराचारसे पृथक् नहीं जिसकी शान्ति नहीं जिसका आत्मायोगी नहीं जिसका मन शान्त नहीं वोह सन्यास लेकै भी प्रज्ञानसे परमात्माको प्राप्त नहीं होता

समीक्षा स्वामीजी आपमें तो शान्ति भी नहीं प्रत्यक्ष देखिये कि जहां कहीं किसी ने आपके विरुद्ध कहा झट उसका उत्तर देनेमें कटिबद्ध हो दुर्वाक्योंकी वर्षा करने लगे, राजा शिव प्रसाद ही पर आपने कैसे कटु वाक्य लिखे हैं और सत्यार्थ प्रकाशमें ११ समुल्लासमें गालियोंकी वर्षाकी है आत्माभी तुह्मारा योगी नहीं था क्योंकि "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" जब कि चित्त की वृत्तिही शान्त नहीं हुई

तौ आत्मामें योग कहां मनभी तुह्मारा शान्त नहीं कभी कुछ लिखा कभी कुछ लिखा इस्से आपका सन्यास लेना वृथा हुआ.

स. प्र. पृ. १२७ पं. १९

अविद्यायामन्तरेवर्तमानाःस्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः
जंघन्यमानापरियन्तिमूढा अन्धेनैवनीयमानायथान्धाः
मु॰खं॰ २ मं. ८

जो अविद्याके भीतर खेल रहे अपनेको धीर और पंडित मान्ते हैं वे नीच गतिको जाने हारे मूढ अंधेके पीछे अंधे दुर्दशाको प्राप्त होते हैं वैसे दुःखोंको पाते हैं,

समीक्षा पंडिताभिमानभी स्वामीजीमें थोडा नहीं है विद्याके घमंडमें आकर ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रंथोंमें अशुद्धता बताते हो तथा कहते हो ब्राह्मण भागमेंभी जो कुछ विरुद्ध है वोह मुझे स्वीकार नहीं, महात्मा लोग जो वेदार्थ को सम्यक् प्रकारसे जान्तेथे आपने उनका अर्थ भी विरुद्ध बताया बस यह श्रुति आपही पर घटती है, ऐसेही दशा पंडिताभिमानियोंकी होनी चाहिये.

पृ. १२७ पं. २३

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः
तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताः परिमुच्यन्तिसर्वे॥मुं.३ खं.२ मं.६

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेद मंत्रोंके अर्थ ज्ञान और आचार में अच्छे प्रकार निश्चित सन्यास योगसे शुद्धान्तःकरण सन्यासी होते हैं वे परमेश्वरमें मुक्ति सुखको प्राप्तहो भोगके पश्चात् जब मुक्ति सुखकी अवधि पूरी हो जाती है, तब वहांसे छूटकर संसारमें आते हैं, मुक्तिके विना दुख का नाशनहीं होता.

समीक्षा अच्छा प्रबन्ध यहींसे बांधाकि मुक्तिसे जीव लौट आता है इस मुक्ति से लौटनेका खंडन तौ मुक्ति विषयमें करैंगे परन्तु अब तौ इसका अर्थ लिखते हैं

विचार जन्य विज्ञानसे जिन्होंने वेदान्तके अर्थोंको यथार्थ जाना है, औरवे यत्नशील सर्वस्वत्यागरूप सन्यासयोगसे शुद्ध चित्त हैं वे ब्रह्मलोकमे महाप्रलयमें परामृत ब्रह्मज्ञानजन्य मुक्तिको प्राप्त होकै (परि मुच्यन्ति) विदेह कैवल्य अर्थात् ब्रह्म भावको प्राप्त होते हैं इसकी विशेष व्याख्या मुक्ति विषयमें लिखी जायगी.

स. पृ. १२८ पं. ११ लोकेषणायाश्च वित्तेषणायाश्चोत्थायाथ भैक्षचर्य्यं चरन्ति

लोकमें प्रतिष्ठा वालाभ धनसे भोग वा मान्य पुत्रादिके मोहसे अलग होकै रात दिन मोक्षके साधनोंमें तत्पर रहते हैं.

समीक्षा दयानंदजी नामके सन्यासी हैं, क्योंकि इनमें यह इच्छा भरपूर पाई जाती है, लोकेषणाके अर्थ लोकमें जन निन्दा करें वा स्तुति, और अ- प्रतिष्ठा करें तौ भी जिसके चित्तमें कुछ हर्ष शोक न होय, स्वामीजी की य- दि कोई निन्दा करता है, तौ कितना शोक होताहै, उसी समय उसके उत्तर देनेको पुस्तक बनाई जाती है, वित्तेषणाका भी त्याग आपमे नहीं पाया जाता धनकी इच्छा यहां तक है कि जिसकी पूर्तिही नहीं होती, धनकी प्राप्तिमें कैसे२ प्रयत्न किये कि निजयंत्रालय जारी किया गया, पुस्तकोंका मूल द्विगुण त्रिगुण नियत हुआ, हमारे पुस्तकोंको और कोई न छाप सके इस कारण उन पर रजिष्टरी कराई गई, लोगोंसे धनके आने और पुस्तक विक्रयके व्यवहारसे धन मिलनेपर भी व्याकरणका पुस्तक छपवानेको धनकी सहायताली, और बहुत पंडित नौकर रखकर वेदभाष्यकी पूर्ति शीघ्र होगी इस बहानेसे पृथक् याचना की, उपदेशक मंडलीके नामसे एकलक्ष रूपया एकत्रित करनेमें यथाशक्ति प्रयत्न किया गया, परन्तु वोह काम आपके विपरीत व्यवहारसे पूर्ण नहीं हुआ, लोभने आपके हृदयमें यहां तक निवास कियाथा कि धनवानोसे प्रीतिसमेत घंटोंवार्ता होतीथीं, निर्धनोकी तौ बूझही नहींथी, प्रतिष्ठा इतनी चाहते कि कोठियों पर ठहरते चरटपरही निकलते रहे, पुत्र तौ थाही नहीं परन्तु जो मुख्य सेवकलोगहैं उनमें आप प्रीतिकरते हो, और उनके सुख दुखमें हर्ष शोक प्रगट करते हो, क्योंकि आपने पृ. १२८ पं. ८ लिखा है जो देह धारी है वोह दुख सुखकी प्राप्तिसे पृथक् नहीं रह सक्ता, निदान आप तीनो एषणाओंसे मुक्त नहीं, और सन्यासी भी नहीं, तीनो एषणा ओंको वही जीत सकेगा जो संसारके व्यवहारोंसे कुछ संबंध न रक्खेगा.

स. पृ. १२८ पं. १५

प्राजापत्यांनिरूप्येष्टिंसर्ववेदसदक्षिणाम्
आत्मन्यग्नीन्समारोप्यब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ।

प्रजापति अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्तिके अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञो पवीतादि चिन्होको छोड आहवनीयादि पांच अग्नियोंको प्राण अपान व्यान उदान और समान इनपांच प्राणोंमें आरोपण करकै ब्राह्मण ब्रह्मवित्. घरसे निकल कर सन्यासी हो जावै

समीक्षा यहांभी स्वामीजीकी बनावटही है, सर्व वेदस् शब्दका अर्थ यज्ञोपवीता दिकका नही किन्तु सर्वस्व है, मनुके टीकाकार मेधातिथि गोविंदराज कुल्लूक भट्टने इसी श्लोकके टीकेमे सर्व वेदस् शब्दका अर्थ सर्वस्व किया है यहां प्राजापत्य इष्टिकी सर्व वेदस दक्षिणा लिखी है, अब ध्यान करोकि उक्त इष्टिकी दक्षिणा सर्वस्व हो

सक्ती है वा यज्ञोपवीत जिसको बुद्धिका कुछ भी स्पर्श होगा वोह यही कहैगा कि यज्ञोपवीत यज्ञकी दक्षिणाके लिये सर्वथा असमंजस है, और सर्वस्व समंजस है, क्यों कि वैराग्यके विना सन्यासका गृहण करना वृथा है, और जिसने धनादि सर्वस्व पदार्थोंका त्याग न किया, उसको वैराग्य कहां. स. पृ. १३१ पं. १ इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक राग द्वेषको छोड सबसे निर्वैर रहै.

समीक्षा स्वामीजीमें विद्या ज्ञान वैराग्य पूर्ण जितेंद्रियता भी नहींथी, विषय भोग की इच्छा पूर्ण है, विद्या और ज्ञान यथार्थ होता तौ परस्पर विरुद्ध शास्त्र प्रतिकूल युक्ति रहित लेख क्यों करते, वैराग्यके विरुद्ध धनादि पदार्थोंमें राग क्यों होता विषय भोगकी इच्छा न होती तौ उत्तमोत्तम वस्त्रों और भोजनोंसे क्या प्रयोजनथा

स. पृ. १३१ पं. २१ सबभूतोंसे निर्वैर रहै

समीक्षा आर्यसमाजोंको छोडकर आपका तौ सबहीसे विरोधथा, फिर कैसे कटु वचन प्राचीनाचार्योंको लिखे हैं, अत एव आप सन्यासी नहींथे.

स. पृ. १३० पं. १७ जवकहीं उपदेशवा संवादादिमें कोई सन्यासी पर क्रोध करै तौ सन्यासीको उचित है कि उस पर क्रोध न करै.

स्वामीजीने यह वचन लिख तौ दिया परन्तु कभी इसका वर्तावभी किया, कोई आप पर क्रोध करै और आप उसपर न करैं, यह असंभव है जो लोग आपकी सेवामें रहतेथे, उनका हृदय भी आपकी क्रोधाग्निसे भस्म हो जाताथा, जो कोई आपके दोषको दोष कहे उसका भी तिरस्कार होताथा, वीसियो दृष्टान्त आपकी बनाई शास्त्रार्थोंकी पुस्तकोंमें विद्यमान हैं.

पृ. १३४ पं. २० सम्यग्नित्यमास्तेयस्मिन्यद्वासम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येनस सन्यासः स प्रशस्तो विद्यतेयस्य स सन्यासी जो ब्रह्म और जिस्से दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो वोह सन्यासी कहाता है.

समीक्षा— वाहजी अच्छा अर्थ किया (जो ब्रह्म और जिस्से दुष्ट कर्मोंका त्याग किया जाय) आपने इस्से अर्थ क्या निकाला जो ब्रह्मको और दुष्ट कर्मोंको छोड देवै क्या वोह सन्यासी (बौद्धमतावलम्बी) जो दुष्ट कर्मोंको छोडनेका नाम सन्यास ह तौ सबही श्रेष्ठाचारवाले गृहस्थ पुरुष सन्यासी हो सक्ते हैं, फिर तौ सबही सन्यासी हो जायंगे, इस कारण (सम्यक्न्यासः आत्यन्तिकस्त्यागः सन्यासः) सम्पूर्ण ही वस्तु ओंका त्याग शिखा सूत्र सहित इसको सन्यासी कहते हैं

स. पृ. १३५ पं. १८

नानाविधानिरत्नानिविविक्तेषूपपादयेत् मनु०

नाना प्रकारके रत्न सुवर्णादि धन विविक्त अर्थात् सन्यासियोंको देवै

समीक्षा यह औरभी द्रव्य लैनेको कपट जाल प्रकट कर मनुके नामसे श्लोक कल्पना किया है, सारी मनुस्मृति देखिये कहीं भी यह श्लोक नहीं लिखा है, यतियोंको धन देनेसे महा पाप होता है, कोई दयानंदी इसके उत्तरमें यह श्लोक देते है कि स्वामीजीने इस श्लोकके आशयसे यह श्लोक बनाया है

धनानितुयथाशक्तिविप्रेषुप्रतिपादयेत् । वेदवि-
त्सुविविक्तेषुप्रेत्यस्वर्गंसमश्नुते अ. ११ श्लो० ६

सो विद्वान लोग इसके अर्थ विचारें इसमें सन्यासियोंको द्रव्य दैनेका कोई भी पद नहीं है, किन्तु इस श्लोकका यह अर्थ है कि अनेक प्रकारसे धन यथा शक्ति ब्राह्मणोंको दैने चाहिये, जो कि वेद पढे है और (विविक्तेषु पुत्रकलत्राद्यवसक्तेषु) कुटम्बी है ऐसे ब्राह्मणोंको दैनेसे शरीर त्यागने उपरान्त स्वर्ग होताहैं, सन्यासीका यहां प्रकरण नहीं सन्यासीको तौ चाहिये कि—

ऋणानित्रीण्यपाकृत्यमनोमोक्षेनिवेषयेत्
अनपाकृत्यमोक्षन्तुसेव्यमानोव्रजत्यधः अ. ६ श्लो. ३५

देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण इन तीनो ऋणोसें उद्धार होके मनको मोक्षमें लगावै, विना तीनों ऋण मुक्तकिये जो मोक्षसेवन करताहै, अर्थात् सन्यासी होताहै सो नरकमें जाताहै, स्वामीजीने इस श्लोककों न विचारा

एककालंचरेद्भैक्ष्यंनप्रसज्जेतविस्तरे
भैक्ष्येप्रसक्तोहियतिर्विषयेष्वपिसज्जति अ.६श्लो० ५५

एक कालमें भोजन करै और भिक्षाके विस्तारकी इच्छा न करै, बहुत स्वादुके अन्न के भोजन करनेसे यतिको विषय गिराय देवेंगे

स्वामीजी आपके तौ प्रतिदिन विविध प्रकारके भोजन बन्तेहै, सन्यासीको पेडके नीचे रहना एक समय भोजन करना लिखाहै, आपमें यह लक्षण एकभी नहीं मिलताहै, इसकारण आपका सन्यास ठीक नहीं और तुम सन्यासीभी नहीं

इतिश्रीमद्दयानंदतिमिरभास्करेसत्यार्थप्रकाशान्तर्गत
पंचम समुल्लासस्यखंडनम् समाप्तम् १० । ६ । ९०

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतषष्ठसमुल्लासस्यखंडनप्रारम्भः ।

राजधर्मप्रकरणम् ।

इस समुल्लासमें स्वामीजीने राजधर्मकी व्याख्या की है, इसमें सम्पूर्ण मनुस्मृतिके श्लोक लिखेहैं, जी कि प्राचीन समयसे आजतक सब मान्ते चले आतेहै इस-

में कोई मतविषयक चर्चा नहीं है परन्तु जो वार्ता स्वामीजीने इसमें मानीहै अन्यत्र न हीं मानी वोही दिखलातेहै

स. प्र. पृ. १४४ पं. २ इस सभामें चारों वेद न्याय शास्त्र निरुक्त धर्मशास्त्र आदिके वेत्ता विद्वान सभासदहों

स. पृ. १६६ पं. ११ जो विशेष देखना चाहें वोह चारों वेद मनुस्मृति शुक्र-नीति महाभारतादिमें देखकर निश्चय करै प्रजाका व्यवहार मनुके अष्टमनवमाध्या यसे करै, समीक्षा यहां स्वामीजीका वोह प्रण कहां गया कि हम वेदानुसारही मानेंगे जब वेदानुसारही मान्ते तौ मनुके लिखनेकी क्या अवश्यकता थी, वेदसेही लिखदि-या होता, इस्से मालूम होताहे कि मनुष्योंका व्यवहार राजधर्मादि यह धर्मशास्त्र-हीसे होताहै, उसका यथावत् मान्नाही बनैगा, वेदानुसारका मान्ना कहना बन नहीं स-कता यदि वेदानुसारहीहे तो बताइये यह राजधर्म कौनसी श्रुतियोंसे निकाला है, यह साक्षी पूछना, दंड विधान आदि कहां के है, इस्से अपनें विषयमे धर्मशास्त्रही स्वतः प्रमाण है

स. पृ. १४७ पं. १४ और कुलीन अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात वा आठ मंत्री करै स.पृ.१४८पं०६ जो प्रशंसित कुलमें उत्पन्न पवित्र चतुर हो उसै दूतपनेमें नियुक्त करै समीक्षा यहां स्वामीजी जन्मसे जाति मान्ना स्वीकार करते हें, क्यों कि यदि शूद्र सं पूर्ण गुणोंसे युक्त हो तौ वोह दूत करनेके योग्य नहीं, किन्तु जिसका कुलभी श्रेष्ठ हो ऐसेही मंत्री और दूत बनावे, कुलीनता तौ जन्मसेंही होती हे अन्यथा नहीं स. प्र. पृ. १४९ पं. २४ बडे उत्तम कुलमें युक्त सुंदर लक्षण अपने क्षत्रिय कुलकी कन्या जो अपने सदृश गुणकर्ममें हो उस्से विवाह करना.

समीक्षा यहांभी स्वामीजी जातिही उत्तम मान्ते है, जो क्षत्रिय कन्या बडे कुलमें उत्पन्न हो, उस्से विवाह करै, यदि पढी लिखी नीच कुलकी गुणवानभी हो तौ उसके साथ विवाह करना नहीं लिखा, किन्तु यहां श्रेष्ठ कुलकी कन्याके साथ विवाह करना लिखा, यहां भी जाति ही प्रधान मानी है, तभी तो शूर वीर उत्पन्न होतेथे जो कि भारतका उद्धारकरतेथे.

स. पृ. १५२ पं. ४ जो उसकी प्रतिष्ठा है जिस्से इस लोक और परलोकमें सुख होनेवाला था उसे उसका स्वामी ले लेता है

पृ, १७० पं ३१ जो साक्षी सत्य बोलता है वोह जन्मान्तरमें उत्तम जन्म और लोकान्तरोंमें जन्मको प्राप्त होके सुख भोगता है.

समीक्षा इनवाक्योंसे प्रतीत होता हैं कि जीवका पृथ्वीके सिवाय अन्य लोकोंमें जाना स्वीकार करते हैं, अब आपने लोकान्तरमें जीवकी गति मानी फिर जाने आप

स्वर्गलोक मान्नेमें क्योंहिचकिचातेहो, परन्तु स्वर्गलोकमें तौ पुण्यात्मा प्रवेश कर तेहैं पक्षपाती वा धर्मत्यागीयोंका वहां प्रवेश नहीं हो सक्ता, इसकारण आपने सो चा कि हमतो वहां जायगे ही नहीं, इसकारण लिखदियाकि स्वर्गहीनही लोकोंकी व्याख्या आगे लिखैंगे.

स.पृ.१६७ पं.२७ और जो २ नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके हौनेकी आवश्य कता पावें तौ उत्तमोत्तम नियम बांधे.

समीक्षा यह क्या स्वामीजीको सूझी आप तौ शास्त्रमें सब कुछ मान्ते है, और जो है नहीं नया बनाओगे तौ उसका प्रमाण कैसे होगा, और वेदानुसारही वोह क्योंकरहो सक्ता है, बस जाना जाता है, कि आपने बहुतसे मेल मिलाये होंगे, तौ तो जरूरत पडनेसे आपजाने क्या क्या लिखेंगे, अब इसनियोगकी क्या आवश्यकता थी जो आ-पने लिखा, परन्तु अब आपकी वेदानुसारकी प्रतिज्ञा जाती रही.

इतिश्रीदयानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत षष्ठ समुल्लासस्यखंडनंसमाप्तम् १०।६।९०

अथ सप्तमसमुल्लासस्यखंडनम्
पुनः देवताप्रकरणम्

स. पृ. १७१ पं. ४

त्रयस्त्रिंशस्त्रिंशता॰ इत्यादि वेदोंमें प्रमाण है, इसकी व्याख्या शतपथमें की है कि तैंतीस देव पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश चंद्रमा सूर्य नक्षत्र सब सृष्टिके निवास स्थान होनेसे आठ वसु प्राणापान व्यान समान नागकूर्म कृकल देवदत्त धनंजय और जीवात्मा यह ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि शरीरको छोडते है तब रोदन करने-वाले होते हैं, संवत्सरके बारह महीने बारह आदित्य इसलिये कहाते है कि वोह सबकी आयु लेते जाते है, बिजलीका नाम इन्द्र इस हेतुसे है कि परम ऐश्वर्यका हेतु है, यज्ञको प्रजापति कहनेका कारण यह है कि जिस्से वायुवृष्टि जल औषधीकी शुद्धि विद्वानों का सत्कार और नानाप्रकारकी शिल्पविद्यासे प्रजाका पालन होता है, यह तैतीस पूर्वोक्त गुणोके योगसे देव कहाते हैं, इनका स्वामी चौंतीसवां उपास्य देव शतपथके १४ काण्डमें स्पष्ट लिखाहै.

समीक्षा यद्यपि देवता पूर्व प्रतिपादन कर आये हैं, परन्तु स्वामीजीनें जो यह पुनः लेख किया उस्से अब फिर कुछ थोडासा लिखते है, कहीं तौ स्वामीजीके विद्वान देव ता हो जाते हैं, कहीं इन्द्र ईश्वर हो जाते है, परन्तु कही मिट्टी पानी लकडी देवताहो जाते हैं, इन्द्रजी बिजली बन जातेहैं (त्रयस्त्रिंशस्त्रिंशता) जिसके अर्थ ३० ३३ देवता-

ओंके है, स्वामीजीने तैंतीस ३३ हीके किये है, वह अर्थ तो बदलेही पर हिसावमेंभी गड वडी, क्या आपको तैंतीससे अधिक गिन्तीनहीं आतीजो ३० ३३ के ३३ ही रहगये देखिये देवता तौ अनेकहै जिनके नाम जपनेसे पाप दूर होता है.

यजुर्वेद अ० ३९ मं० ६ प्रायश्चिताहुति० धर्मके भेद होनेमें.

सविता प्रथमेहन्नग्निर्द्वितीयेवायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चमऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ६

प्रथम दिनका सवितादेवता है, दूसरे दिनका अग्नि, तीसरे दिनका वायु, चौथे दिनका आदित्य देव, पांचवेंका चंद्रमा, छटेका ऋतु, सातवेंका मरुत, आठवेंका बृहस्पति, नवमेंका मित्र, दशमेंका वरुण, ग्यारहवें दिनका इंन्द्र, बारहवेंका विश्वेदेवा देवताहै, इन देवताओंके निमित्त १२ दिनतकप्रायश्चित्तके अर्थ आहुती दी जातीहै, अब स्वामी जी वतावें इसमें यह देवता कहांसे आगये.

नृचक्षसोअनिमिषंतो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्व मानशुः ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवोवर्ष्माणंवसतेस्वस्तये १

ऋ० मं १० सू. ६३ अ० ५

(नृचक्षसः) कर्मनेता मनुष्योंके देखनेवाले (अनिमिषंतः) सदा जागरणशील-जिनके पलक नहीं लगते (देवासः) देवता (अर्हणा) लोकके परिचरणार्थ (बृहत् अमृतत्वं) अपरत्व धर्मकू (आनशुः) प्राप्त हुए है (ज्योतीरथाः) वे दीप्यमान रथवाले (अहिमायाः) अव्यय बुद्धि (अनागसाः) पापरहित देवता । दिवः स्वर्ग लोकके (वर्ष्माणं) उच्छ्रित देशमें (स्वस्तये) लोकके कल्याणार्थ (वसते) रहते है ॥ १

सम्राजो येसुवृधोयज्ञमाययुरपरिह्वृतादधिरेदिविक्षयं ॥ ताँ आविवास नमसासुवृक्तिभिर्महोआदित्याँअदितिंस्वस्तये २

(सम्राजः) अपने तेजोंसे अच्छी तरह प्रकाशमान (सुवृधः) अति वृद्धि युक्त (ये) जो देवता (यज्ञं) यज्ञमेंकू (आयुः) आते है (अपरिह्वृताः) वे सबसे अजेय (दिवि) स्वर्ग लोकमे (क्षयं) निवास (दधिरे) करते हैं (तान्) (आदित्यान्) उन आदितिके पुत्रोंकूं (आदितिं) देवताओंकी माताकू (महो) बडे गुण

युक्त (नमसा) अन्नकी हवि करकै (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियोंकरकै (स्वस्तये) कल्याणके अर्थ (आविवास) पूजो इत्यादि वाक्योंसे विदित होताहै कि देवता यज्ञ में आते हैं इससे विजली आदिका अर्थ जो स्वामीजीने लिखाहै सो मिथ्या होगया आगे ग्यारहवें समुल्लासमें इसका अधिक वर्णन करेंगे

ईश्वरविषय प्रकरणम्

स. प्र. पृ. १८१ पं. ५ (प्र०) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं (उत्तर) है पृ. १८१ पं. ९ न्याय और दयाका नाम मात्रही भेद है, क्योंकि जो न्यायसे प्रयोजन सिद्ध होताहै, वोही दयासे दण्ड देनेका प्रयोजन है पुनः पं. १३ जिसने जितना बुराकर्म किया हो उसको उतना वैसाही दण्ड देना चाहिये, इसीका नाम न्याय है पं. १७ दया वोहीहै कि डाकूको कारागारमें रखकर पापसे बचाना

समीक्षा यहां तो स्वामीजीने दयाकी खूबही रेढ लगाई ईश्वरक्याहै मानो इनका चेलाहै, जो सारा सिद्धान्त स्वामीजीसे कथन कर दिया है, देखिये (नी प्रापणे) धातुसे न्याय शब्द सिद्ध होता है, जिसके अर्थ यह हैं कि यथावत् न्याय करना; जो दण्डके योग्य हो उसको दण्ड देना, और जो दयाके योग्य हो उसपर दया करना, और (दय धातुसे) दया शब्द सिद्ध होता है, जिसके अर्थ यह हैं कि किसी भक्त श्रेष्ठाचरणी पुरुषसे अज्ञातमें कोई अपराध हो जाय तो उसको स्तुति करने पर क्षमा करना, क्योंकि दयाका प्रयोग अपराधी पर ही होता है, जब कि किसीका दुख देखकर उसपर करुणा आती है कि इसका दुख दूरकरें, तो इसीका नाम दया है, ईश्वर अन्तर्यामी है वोह सबके मनकी जान्ता है, कि यह अपराध बेसुधीमें बना है, या जानकर यदि वोह प्रार्थना करै कि आगे ऐसी भूल न करूंगा, और परमेश्वर अपनी सर्वज्ञतासे जान्ता है कि यह आगे को ऐसा नहीं करैगा, बस उसके ऊपर दया करता है, जैसा यजुर्वेदमें लिखा है

सनोबन्धुर्जनितासविधाता धामानिवेद भुवनानिविश्वा ।
यत्रदेवा अमृत मानशानास्तृतीयेधामन्नध्यैरयन्त १ यजु.अ.३२मं१०

(सः) वोह परमेश्वर (नः) हमारा (बन्धुः) विविध प्रकारकी सहायता रक्षा करनेसे बन्धु है (जनिता) उत्पन्न करता है (सः) वोह (विधाता) विधाता मालिक पिता है (सः) वोह (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणी (धामानि) स्थानोको (वेद) जान्ता है (देवाः) देवता (यत्र) जिस ईश्वरमें (अमृतम्) मोक्ष प्रापक ज्ञानको (आनशानः) प्राप्त करते (तृतीये धामन्) स्वर्गमें (अध्यैरयन्त)

स्वेच्छानुसार वर्तते हैं आनन्द करते हैं ॥ इस मंत्रमें । बन्धु जनिता आदि शब्दोंसे ईश्वरमें अपार दया जानी जाती है, बन्धुत्वपन यही है कि आपदामें सहायता करनी, पातीति पिता जो रक्षा करै वोह पिता, जनिता पिता पुत्रके अपराधोंको क्षमा कर देता है और दया करता है

शंवातः शꣳहिते घृणिः शन्ते भवन्त्विष्टकाः

शन्तेभवन्त्वग्नयः पार्थिवा सोमात्वाभिशूशुचन् यजु. ३५ मं. ८

भावार्थ यह है कि ईश्वर दया दृष्टिसे कहता है हे यजमान भक्त वायु तेरा सुखरूप हो, सूर्य किरण तुझे सुखरूप हो, मध्यमें और दिशा ओंमें स्थापित इष्टिका तेरे लिये सुख स्वरूप हों तुझे तापित नहीं करैं ॥ १ ॥ अब विचारना चाहिये कि यह वाक्य दयारूप हैं वा नहीं, इस कारण न्याय दया पृथक् हैं, ईश्वरमें सर्व शक्तिमानता होने से दोनो वाते बनती हैं

निराकारसाकारप्रकरणम्

स. पृ. १८२ पं. २ (प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? (उत्तर) निराकार. क्योंकि साकार हो तौ व्यापक नहीं हो सक्ता, जब व्यापक नहीं हो सक्ता तौ सर्वज्ञादि गुण उसमें घट नहीं सक्ते, क्योंकि परिमित वस्तुमें गुण कर्म स्वभाव भी परिमित् होते हैं, तथा शीतोष्ण क्षुधा तृषा राग दोष छेदन भेदन आदिसे रहित नहीं हो सक्ता इस्से यही निश्चय है कि ईश्वर निराकार है, जो साकार हो तौ उसके शरीर नाक कान आदि अवयवों का बनाने हारा दूसराहौना चाहिये, क्यों कि जो संयोगसे उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेहारा चेतन अवश्य हौना चाहिये, जो कोई कहै कि ईश्वरने अपनी इच्छासे शरीर धारण किया तौ भी यही सिद्ध हुआ कि शरीर बन्नेके पूर्व निराकार था, इस्से यही सिद्ध हुआ कि ईश्वर निराकार है.

समीक्षा ऐसा विदित होताहै कि दयानंद जीने ईश्वरको मनुष्यवत् समझ लियाहै यदि वोह साकार होजाय तौ व्यापक न रहै, उसका कोई बनाने वाला होजाय जब कि ईश्वर सर्व शक्तिमानहै, तौ वोह आकारवाला होकर शक्ति वा ज्ञानसे रहित नहीं हो सक्ता जिस समय प्रलय होतीहै उस समय वोह निराकार, जब उसमें सृष्टि रचनाकी इच्छा होतीहै तभी उसको सगुण वा साकर कहते है, यह न्याय दयालु आदि नाम साकारमेंही घटते है, यजुर्वेदके शत पथ ब्राह्मणमे स्पष्ट लिखाहै

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्चपरिमितश्चापरिमि-

तश्च तद्यद्यजुषाकरोति यदेवास्यनिरुक्तं परिमितꣳरूपं तु-

दस्यतेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमित॰ रूपंतदस्यतेनसंस्करोतीतिब्राह्मणम् श.का.१४अ.१ब्रा.२मं१८

परमेश्वर दो प्रकारका है परिमित अपरिमित निरुक्त और अनिरुक्त इसका रण जो कर्म यजुर्वेदके मंत्रोंसे करताहै उसके द्वारा परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करताहै जो निरुक्त और परिमित नामहै और जो तूष्णींभावसम्पन्नहै अर्थात् अध्यात्ममंत्रकाही मनन करताहै उससे परमेश्वरके उस रूपका संस्कार करताहै जो अनिरुक्त और अपरिमित नामहै इससे प्रत्यक्ष परमेश्वरमें निराकारता साकारता पाई जातीहै

स. पृ. २०१ पं.७ जो गुणोंसे सहित वोह सगुण और जो गुणोंसे रहित वोह निर्गुण कहाताहै अपने २ स्वाभाविकगुणोंसे सहित और दूसरे विरोधीगुणोंसे रहित होनेसे सब पदार्थोंमें सगुणता और निर्गुणता वा केवल सगुणता हो किन्तु एकहीमें सगुणता और निर्गुणता सदा रहतीहै वैसेही परमेश्वर अपने अनन्तज्ञानबलादि गुणोंसे सहित होनेसे सगुण और रूपादि जडके तथा द्वेषादि जीवके गुणोंसे पृथक् होनेसे निर्गुण कहाताहै

समीक्षा इस लेखसे तौ स्वामीजी काही पक्ष विगडताहै जब इसप्रकार निराकार शब्दका अर्थ माना तब तुह्मारे तात्पर्यवाला निराकार शब्दका अर्थ नहीं जो मूर्तिमानको न बोधन करै किन्तु दिव्यअलौकिकमूर्तिमानका बोधकभी निराकार शब्द होसक्ता है जैसाकि सत्यार्थ प्रकाशमें लिखाहै कि दिव्यअलौकिकगुणवालेकाभी निर्गुण शब्द बोधकहै वैसेही निराकार शब्द जब साकारकाभी बोधक हो गया तौ निर्गुणशब्दके दृष्टान्तमें कोई विरोध नहीं निराकारका आकारहै सर्वथा आकार शून्यका नाम निराकार कहोगे तौ सर्व गुण शून्यका नाम निर्गुण हुएसे दयानंदजीका मत भंग हो जायगा क्योंकि सत्यार्थप्रकाशमें सर्व गुण शून्यका नाम निर्गुण नहीं माना इस्से निराकारशब्दभी साकारका बोधक है

जब इसप्रकार निराकारकी अविरोधी साकारता सिद्ध होगई तौ (सपर्य्यगात्) इस मंत्रमें (अकायम्) इसपदका अच्छीतरह समन्वय होगया भौतिकमलिनकायाकरके वर्जित है और बृहदारण्यकउपनिषदमें लिखाहै

द्वावावब्रह्मणोरूपेमूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चेति॰

ईश्वरके दो रूप है एक मूर्तिमान् एक अमूर्तिमान् और (एकं रूपं बहुधा यः करोति) १ और एक रूपको जो बहुत प्रकारका करताहै इस मंत्रसे तथा औरोंसेंही सर्व कारण बीजस्थापन्न परमात्मामें साकारता इस प्रकारसे प्रगट है

अवतारप्रकरणम्

स. प्र. पृ. १९० पं. २७ ईश्वर अवतार लेताहै वा नहीं (उत्तर नहीं क्योंकि "अज एक पाद" "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" ये यजुर्वेदके वचनहै इत्यादि वचनोंसे परमेश्वर जन्म नहीं लेता. १९१ पं. २४ और युक्तिसेभी ईश्वरका जन्म सिद्ध नहीं होता जैसे कोई अनन्त आकाशको कहैकि गर्भमें आयावा मूठीमें धरलिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सक्ता क्योंकि आकाश अनन्त और सर्वमें व्यापकहै इस्से न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता वैसेही अनन्त और सर्वव्यापक परमात्माके होनेमें उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता जाना वा आना वहां हो सक्ताहै जहां नहो क्या परमेश्वर गर्भमें व्यापक नहींथा जो कहींसे आया और बाहर नहींथा जो भीतरसे निकला ऐसा ईश्वरके विषयमें कहना और मान्ना विद्याहीनोंके सिवाय कौन कह और मानस कैगा, परमेश्वरका जाना आना जन्ममरण कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता.

समीक्षा—स्वामीजी ईश्वरकू अज अकाय बताकर ईश्वरके अवतार होनेमें संदेहकर तेहैं तौ, जीवात्माभी अज और व्यापक श्रवण कराजाताहै, उसकाभी जन्म न होना चाहिये यथा

नजायतेम्रियते वा विपश्चिन्नायंकुतश्चिन्नबभूवकश्चित् ॥
अजोनित्यः शाश्वतोयम्पुराणोनहन्यते हन्यमानेशरीरे ॥ १८ ॥
हन्ताचेन्मन्यतेहन्तुं हतश्चेन्मन्यतेहतम् ॥
उभौतौनविजानीतो नायंहन्तिनहन्यते ॥ १९ ॥
अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्यजंतोर्निहितोगुहायाम् ॥
तमक्रतुः पश्यतिवीतशोको धातुःप्रसादान्महिमानमात्मनः २०

कठवल्ली ३ उपनिषद्वल्ली २

(विपश्चित्) सर्वका द्रष्टा जीवात्मा जो कि पूर्ववात्स्यायनभाष्यमें लिखाहै (सर्वस्य द्रष्टा सर्वस्य भोक्ता सर्वानुभवः) इत्यादि वाक्योंसे और (यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः) इत्यादि मैत्र्युपनिषदमें निर्णीत है सो जन्म मरणसे रहित है और यह आप किसीसे नहीं उत्पन्न होता और न इस्से (कश्चित्) कुछभी उत्पन्न होता है अज नित्य एकरस वृद्धिरहित है और शरीरके नाशसे इसका नाश नहीं होता १८ यदि कोई हनन कर्ता पुरुषही हनन कर्ता आत्माचिन्तन कर्ता है तैसे यदि कोई हत हुआ आत्माको हत चिन्तन कर्ता है, वेदोनौ आत्माके यथावत् स्वरूपको,

नहीं जान्ते क्योंकि यह आत्मान हनन करता है न हनन होता है १९ इस जन्तुकी गुहा अर्थात् पंचकोशरूप गुफामें (निहित) स्थित यह आत्मा अणुसेभी अणुतरहै अर्थात् दुर्लक्ष्य है इससे अणुतर कहा परन्तु बडे आकाशादिसे (महीयान् महत्तर है (धातुः प्रसादात्) ईश्वरकी प्रसन्नतासे (अक्रतुः) विषयभोगसंकल्प रहितपुरुष आत्माको देखता है तो आत्माकी महिमाको देखकर शोक रहित होता है और योगशास्त्रके भाष्यमें व्यासजी कहते हैं

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः यो॰पा॰१सू॰२.

चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमादर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च व्यासभाष्ये अर्थ (चितिशक्ति) जीवचेतन अपरिणामी है (अप्रतिसंक्रमा) क्रिया रहित है (दर्शितविषया) सर्वविषयोंका द्रष्टा है शुद्ध और अनन्त व्यापक है इस प्रकार व्यास तथा कणाद ऋषिके मतमें जीव चेतन व्यापक है और जीवका जन्मवे मान्ते हैं इस्से व्यापकका जन्म नहीं होता यह कथन कैसे होगा, क्योंकि व्यापकका जन्म व्यासादिक मान्ते हैं, यदि यह कहो कि " कि हमतो युक्तिही मान्ते हैं जन्म मरण आना जाना परिछिन्नपदार्थमें बनसक्ता है, इस कारण जीवात्माका स्वरूप व्यापक नहीं मान्ते" इसका उत्तर। तब तौ यह विचार कर्तव्य है विभू पदार्थसे भिन्न अणुपरिमाणवान् वा मध्यमपरिमाणवान् होता है आत्मा अणुपरिमाण है अथवा मध्यमपरिमाण है यदि कहो अणुपरिमाण वान् है तौ सारेशरीरमें शीतलजलसंयोगसे शीतस्पर्शकी प्रतीत न होनी चाहिये, क्यों कि आत्मा अणु है, सो एक देशमें स्थित होकर शीतका ज्ञान करसक्ता है, आत्मारहितअंगोमें शीतस्पर्शका भान कैसे होगा (प्रश्न) आत्मा यद्यपि एक देशमें है, तथापि जैसे कस्तूरीकी गंध सर्वत्र विस्तृत होती है तैसेही आत्माका ज्ञानगुण सर्वत्र विस्तृत है, इस्से शीतस्पर्शकी सर्वत्र प्रतीति होसक्तीहै अथवा जैसे सूर्य प्रभावालाद्रव्य है तैसेही आत्माभी प्रभावत् द्रव्य है (उत्तर) यह नियम है कि गुण आपने आश्रयको त्याग कर अन्यत्र गमन नहीं कर सक्ता, क्यों कि गुणमें क्रिया होती नहीं, और कस्तूरीके दृष्टान्तमें भी कस्तूरीके सूक्ष्म अवयव विस्तृत होते हैं, इसी कारण कस्तूरीकर्पूरादिद्रव्यरक्षक तिसको बंदकर किसी डिब्बे आदिमें रखते हैं और जो वोह खुलेरक्खे जाय तौ वे उड जाते हैं, और प्रभा गुण नहीं किन्तु विरल प्रकाश प्रभा है, और घनप्रकाश सूर्य है, ऐसेही आत्माको माननेसे ज्ञानरूपही सिद्ध होगा, सो ज्ञान एकरस है, कहीं सघन और कहीं विरल ऐसा कहना बन्ता नही, यदि अनेकरस मानोगे तौ अनित्यत्व प्रसक्ति होगी, और सर्वथा अणुवादीके मतमें क्रिया तौ जरूर मानन्नी होगी तौ (अचलोयं सनातनः)

इत्यादि गीताके वचनसे विरोध होगा और आत्मा विनाशी क्रियावत्वात् घटव त् इस अनुमानप्रमाणसे विनाशित्व प्रसक्तितौ अवश्य होगी, और मध्यम परिमाण पक्षमें स्पष्ट ही जन्यत्व विनाशित्वादि दोष हैं, आत्मा जन्यः मध्यमपरिमाणवत्वात् आत्मा विनाशी मध्यपरिमाणवत्वात् घटवत् इस कारण अनादि जीवात्माको मान कर मध्यम परिमाण कैसे मानोगे क्यों कि मध्यम परिमाण मान्नेसे जन्यत्वकी प्रस क्ति होगी इस्से विना इच्छासे भी व्यासादि महात्माओंके वचनानुसार आत्माको व्यापक और अज अवश्य मानना पडेगा तौ जन्मशंका ईश्वरवत्‌जीवमें भी बन-सकती है तौ फिर जीवको जन्म कैसे हो सक्ता है जब जीवका जन्म हो तौ ईश्वर काभी अवतार होगा जैसा वेदान्तमें लेख है

चराचरव्यपाश्रयस्तुस्यात्तद्व्यपदेशोभाक्तस्तद्भाव-भावित्वात् शा० अ० २ पा० ३ सू० १६.

उत्पद्यते जीवोम्रियते चेतितस्य जन्म मरणस्य व्यपदेशः प्रत्ययोः भाक्तो गौणः कुत्र तर्हि मुख्य इत्याशंक्याह चराचरव्यपाश्रयस्तु मुख्यः चराचरशरीराश्रयस्तु जन्ममरणप्रत्ययो मुख्यः स्थावरजंगमानिहि भूतानि जायन्ते म्रियन्तेचाऽतस्त द्विषयौ जन्ममरणशब्दौ मुख्यौ संतौ तत्स्थे जीवात्मन्युपचर्य्येते तद्भावभावित्वात् शरीरप्रादुर्भावतिरोभावयोर्हि सतोर्जन्ममरणशब्दौ नासतोः नहिदेहसंबंधादन्यत्र जीवो जातोमृतो वा केनचिल्लक्ष्यत इति सूत्रतात्पर्य्यम्

"एवञ्च जीवस्यैव जन्मप्रातीतिकत्वे परमेश्वरस्य जन्मावतारे श्रुतिस्मृतिप्रतिपा-दिते सति परमेश्वरजन्मप्रातीतिकत्वे स्वीकारेऽजत्वश्रुतिर्वास्तवाजत्वमीश्वरे जीवे वाबोधयतु का हानिरिति निर्विवादतया व्यास भगवदाशयं बुध्वा निरीक्षणीयं सूत्रसंकेतं विना श्रुत्यर्थ निर्णयस्तु वर्षशतेन महता यत्नेनापि न भवतीति बोध्यम्"

भाषार्थ—जीव उत्पन्न हुआ और जीव मरता है ऐसे जन्ममरणकी प्रतीति होती है परन्तु यह अनादिसिद्धजीवमेंजन्ममरणप्रतीति गौण हैं तब मुख्य किसमें है इसवास्ते कहते हैं कि चर और अचर शरीरमें मुख्य है, क्योंकि स्थावरजंगम शरीर उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, इस्से तिन शरीरोंमें जन्म मरणका शरीरस्थ जीवात्मामें उपचार होता है, क्यों कि स्थावरजंगमशरीरके जन्म मरणके साथ आत्मामें जन्ममरणप्रतीतिका अन्वय व्यतिरेकहै, जब स्थावरजंगमशरीर उत्पन्न हो तेहैं तब जीवात्मामें जन्ममरण प्रतीत होते हैं, स्थावर जंगमभूत नहीं उत्पन्न होवैं तब तौ जीवात्मामें जन्ममरण प्रतीत होते नहीं, क्योंकि देहसंबंधसे और स्थानमें जीवके जन्म मरण किसीको प्रतीत होते नाहिं, यह सूत्रका तात्पर्य है तब प्रकरणसे यह नि-श्चय होताहै कि जीवात्माके जन्मको जब प्रतीतिक मानाहै तौ ईश्वरका अवतार

रूप जन्म तिसके प्रतीतिक माननेमें क्या हानिहै और जो अजत्वबोधकश्रुतिहै सो वास्तव अजत्वको ईश्वरात्मामें बोधन करो क्या हानिहै, समसत्तावाले विरोधी पदार्थ एकस्थानमें नहीं रहसकते, विषमसत्तावाले तौ एक अधिकरणमेंभी रहसके है, यह सूत्रका आशय है, इसी कारण दयानंदजी व्यासजीके आशयको न समझकर ईश्वरात्मामें जन्मादि असंभव मानकर जीवात्मामें वास्तव जन्म बनानेके वास्ते जीवको परिछिन्न मान बैठे हैं, परन्तु यह न विचारा कि अनादिका जन्म वास्तवमें मानेसे अनादित्वही भंग होगा. क्योंकि पूर्वसिद्धपदार्थका वास्तव जन्म नहीं होसकता जिस पदार्थका किसीभी रूपसे अभाव हो तिसका जन्म वास्तव होताहै (प्रश्न) जीवका तौ लिंगोपाधि विशिष्टरूप है तिसके धर्माधर्मका फल जब स्थावर जंगम शरीर उत्पन्न हुआ तौ जन्मका भान जीवात्मामें होसकता है और ईश्वरात्मामें धर्माधर्मतौ नहीं है तब धर्माधर्मका फल शरीर भी नहीं होसक्ता जब शरीरका प्रादुर्भाव न हुवा तौ जन्मका व्यवहार कैसे होगा. (उत्तर) यह तुह्मारा कहना सत्यहै धर्माधर्मसे जीव शरीरकी उत्पाति होतीहै परंतु इस स्थानमें यह निर्णीतव्य है जो धर्माधर्म स्वतंत्रही जीव शरीर जन्मके हेतु है वा ईश्वरकी इच्छादि द्वारा शरीरके हेतु है यदि स्वतंत्र होवें तौ ईश्वरका अंगीकार निष्फल होगा और स्वतंत्र फल देनेको समर्थभी नहीं है क्योंकि धर्माधर्म जडहै इस कारण ईश्वरकी इच्छादि द्वाराही फल देतेंह यह मंतव्य है जब ऐसा माना तौ धर्माधर्ममें कोई विचित्र शक्ति माननी चाहिये जो पूर्ण काम ईश्वरमें इच्छा करा देतीहै, इसी कारण परमात्मा जगत्की उत्पत्ति पालन संहार करताहै, जब धर्माधर्मकी शक्तिके प्रभावसे ईश्वरमें इच्छा दिमानें तौ ईश्वरकी इच्छा ऐसी हुई जो ऐसे २ शरीर सर्वको प्रतीत होवें, तब उस इच्छासे जो शरीर साक्षात् शुद्ध सत्व प्रधान प्रकृतिसे हुआ तिसके जन्मसे परमात्मामें जन्मव्यवहार हुआ इसीको परमात्माका अवतार कहते हैं तौ जब तुमने पूर्ण काम परमात्मानें जीवके धर्माधर्मसे इच्छादि द्वारा जगत्की उत्पत्ति पालना संहारका कर्ता ईश्वरात्मामाना तौ अवतारके मान्नेमें दुराग्रह क्यों करतेहो अब अवतार युक्तिसे सिद्ध कर मंत्रभी लिखतेहै

रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूपईयते युक्ताह्यस्यहरयःशतादश ।
ऋ०मं०६ अ०४ सू०४७ मं०१८.

अर्थ–इन्द्रः परमैश्वर्य्यवान्परमेश्वरो मायाभिः स्वाश्रितानंतशक्तिभिः (पुरुरूपः) नृसिंह रामकृष्णादिरूपः (ईयते) गम्यते कस्मैप्रयोजनाय स्वशक्तिभिस्तत्तद्रूप माविष्क्रियते परमेश्वरेणेत्यत आह तदस्यरूपं प्रतिचक्षणाय अस्यस्वस्य भक्तवात्सल्या

दिविशिष्टरूपस्यप्रतिचक्षणाय सर्वेषांपुरतः प्रख्यापनाय ईदृशगुणविशिष्टोऽहमिति सर्वेषां प्रत्यक्षबोधनाय ननुमाययार्चितरूपैः कथंस्वगुणप्रख्यापनमित्यत आह रूपं रूपंप्रतिरूपोबभूव यादृशं यादृशंरूपं प्रादुर्भावयति तत् सदृशएवभवतीति स्वशक्तिर चितस्यरूपस्य स्वानतिरिक्तत्वात् तन्निष्ठभक्तवात्सल्यादिगुणानां स्वनिष्ठत्वादितिभावः ननु कतिविधानीदृशानिरूपाणीत्यतआह युक्ताह्यस्यहरयः शतादशाहि निश्चयेन अस्य परमेश्वरस्य हरयः संसारस्य दुःखस्यासुरैः प्रापितस्यहरणात् नाशनात् युक्ता जगद्रक्षणायानियुक्ता (शता) शतानिनामानं तानिसंति तथा दशनृसिंहादयोद शसन्तीत्यर्थः

भाषार्थ–परमात्मा अपनी शक्तिसे अनंत अवतारादिरूप होकर प्रतीत होताहै अपने प्रभावको प्रत्यक्ष करानेवाले जैसे जैसे रूपको माया प्रादुर्भाव करतीहै तत् सदृश होकर आपभी प्रतीत होताहै और परमात्माके जगत् रक्षक अनंतही रूप जगत्रक्षामें हैं और दशरूप तो अतिप्रसिद्ध हैं.

प्रतद्विष्णुःस्तवतेवीर्येण मृगोनभीमः कुचरोगिरिष्ठाः
यस्योरुषुत्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियंति भुवनानिविश्वा ।
ऋ०मं०१ अ०२१ सू०१५४ मं०२

पद प्रतत् विष्णुः स्तवते वीर्य्येण मृगः न भीमः कुचरः गिरिष्ठाः यस्य ऊरुषु त्रिषुविक्रमेणेषु अधिक्षियंति भुवनानिविश्वा.

अर्थ–मृगोनमृगइवतद्विष्णुः वीर्य्येण पराक्रमेण प्रस्तवते स्तुतिं प्राप्नोति भीमः भयानकरूपधरः नृसिंहः अतएवमृगइवेत्युक्तिः संगच्छते कुंपृथ्वीं नृसिंहादि रूपेण चरतीति कुचरः गिरौकैलासे शिवत्रिनेत्ररूपेण तिष्ठतीतिगिरिष्ठाः यस्यविष्णोः त्रिविक्रमावतारे त्रिपुपादेषुविक्रमणेषु सत्सु विश्वा सर्वाणि चतुर्दश भुवनानि अधिक्षियंति चलंतीचेत्यर्थः

भाषार्थ–मृगवत् नृसिंहरूपधारी परमेश्वर अपने पराक्रमकर स्तुतिको प्राप्त होताहै पृथ्वीमें विचरताहै नृसिंहादिरूपसे और कैलासमें शिवरूपसे निवास करताहुआ त्रिविक्रम अवतारमें तीन पादन्याससे चतुर्दश भुवनोंको कंपायमान करताहै.

त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि त्वंकुमारोउतवाकुमारी
त्वंजीर्णोदंडेनवंचसि त्वंजातोभवसिविश्वतोमुखः ।
अथर्वकां०१० अ०४ मं०२७

अर्थ हे भगवन् आपही भारती भवानी श्रीरूप वा मोहिनिरूप अवतारोंसे स्त्रीरूप हैं तथा परशुरामादि अवतारोंसे पुमान् हैं वामन अवतारसे कुमार हैं वा सनत्कुमारादि रूपसे, और कन्यारूप वैष्णवी दुर्गादि रूपसे कुमारी हैं और आपही वृद्ध ब्राह्मण रूप होकर दंड करकै वंचसि गमन करतेहो आपही कृष्णावतारमें विश्व रूप होके प्रतीत होतेहो

इस मंत्रमें सबही इतिहास पुराण प्रतिपाद्य अवतारोंकी सूचनाकी है इस कारण यह मंत्रही सबका मूल है अब वामनावतार सुनिये सामवेदे छन्द आर्चिके

इदंविष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदम् समूढमस्यापाꣳसुले
३ प्र० १ । १ । ९

(विष्णुः) त्रिविक्रमावतारधारी (इदं) प्रतीयमानं सर्वं जगदुद्दिश्य (विचक्रमे) विभज्य क्रमतेस्म (त्रेधा) त्रिभिःप्रकारैः (पदंनिदधे) स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान् (अस्य) (विष्णोः) पांसुले पांसुरेवा धूलियुक्ते पादस्थाने (समूढं) इदंजगत् सम्यगन्तर्भूतम् (सेयमृग् यास्केनेवं व्याख्याता विष्णुर्विशतेर्वाप्रोतेर्वा)

भाषार्थः अमरेश त्रिविक्रमावतारी वामनजी इस विश्वको उल्लंघन करते हैं तीन पगधरते हैं एक भूमि दूसरा अन्तरिक्ष तीसरा स्वर्गमें इनके चरणमें चतुर्दश भुवन त्रय ब्रह्मांड सम्यक् अन्तर्भूत होताहै

रामावतारमाह सामवेदे उत्तरार्चिके १५ अ० २ खं० १ सू० ३

भद्रोभद्रयासचमानआगात् स्वसारञ्जारोअभ्येतिपश्चात्
सुप्रकेतैर्द्युतिभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्

यदा (भद्रः) भजनीयःश्रीरामः (भद्रया) भजनीयया श्रीसीतया (सचमानः) सहितः (आगात्) आगच्छति देहे प्रादुर्भवति तदा (जारः) रावणः (स्वसारं) ऋषीणां रुधिरेणोत्पन्नत्वाद्भगिनीतुल्यां सीतां (अभ्येति) अभिगच्छति (पश्चात्) अन्तकाले (अग्निः) क्रोधेन प्रज्वलितो रावणः अभितिष्ठम् युद्धे श्रीरामस्य सन्मुखे तिष्ठन् सन् (सुप्रकेतैः) सुप्रज्ञानैः (उशद्भिः) श्वेतैः (वर्णैः) द्युतिभिः कुम्भकर्णादीनां जीवात्मभिःसह (रामम्) श्रीरामरूपं विष्णुं (अस्थात्) विष्णोः सामीप्यतां प्राप्तवान् भाषार्थ भद्रराम भद्रासीताजीके साथ प्रगट हुए तब जार रावणने ऋषियोंके रुधिरसे उत्पन्न होनेके कारण अपनी भगिनी समान जानकीको हरण किया पीछे अन्तकालपर क्रोधसे प्रज्वलित रावणने सन्मुख होकर कुंभकर्ण आदिके जीवात्माओंके साथ श्रीरामकी सामीप्यताको पाया.

कृष्णावतारमाह ऋग्वेदे
कृष्णंतएमरुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकं
यदप्रवीतादधतेहगर्भं सद्यश्चिज्जातोभवसीदुदूतः ।
ऋ०मं०४ सू०७ मं९ अ०१

पद कृष्णं ते एम रुशतःपुरःभाःचरिष्णु अर्चिः वपुषाम् इत् एकम् यत् अप्रवीता दधतेह गर्भम् सद्यः चित् जातः भवसि इत् उदूतः

अर्थ कृष्णंत एम इति, हे भूमन्ते तव रुद्र रूपेण पुरस्तिस्रो रुशतो नाशयतः यद्वा पुरःस्थूल सूक्ष्म कारण देहान् ग्रस्त स्तुर्य्य स्वरूपस्य यत्कृष्णंभाः सत्यानंद चिन्मात्रं रूपं तत् एम प्राप्नुयाम यस्य एक मित् एक मेव अर्चिर्ज्वालावदंशमात्रं समष्टि जीवं वपुषां देहानां अनेकेषु देहेषु चरिष्णुर्भोक्तृरूपेण वर्तते यत्कृष्णंभाः अप्रवीता नास्ति प्रकर्षेणवीतं गमनं संचारो यस्याःसा अप्रवीता निरुद्ध गतिर्निगडे ग्रस्ता देवकी त्यर्थः कृष्णाय देवकीपुत्रायेति छांदोग्ये देवक्या एव कृष्णमातृत्व दर्शनात् सागर्भं स्वगर्भं दधते धारयति दध धारणे इत्यस्य रूपं ह प्रसिद्धं सःत्वंजातः गर्भतो बहिराविर्भूतः सन् सद्य इदुसद्य एव उनिश्चितं दूतः दुनोतीतिदूतः मातुः खेदकरोऽतिवियोगदुःखप्रदो भवसीत्यर्थः एतेन देवकीपतेर्वसुदेवस्य गृहे जन्म धृत मिति सूचितम्

भाषार्थः हे भूमन् आपका जो सत्यानंद चिन्मात्र रूप है और रुद्र रूपसे तीन पुरको नाश करनेवाला वास्थूलसूक्ष्म कारण देहको ग्रसनेवाला रूप तुरीयात्मा तिस कृष्णभा रूपको हम प्राप्त होवें, जिस आपके स्वरूपकी एकही अर्चि अर्थात् ज्वालावत् अंशमात्र समष्टि जीव अनेक देहोंमें चरिष्णु अर्थात् भोक्तृ रूपसे वर्तमान है, और जो कृष्णभाको अप्रवीता अर्थात् निगड ग्रस्त देवकी गर्भ रूपसे धारण करती भई, छा-न्दोग्यमेंभी कृष्णकी माता देवकी सुनी है, हे भूमन् आप प्रसिद्धही गर्भसे प्रादुर्भूत होकर माताके पाससे पृथक् हुये, इस्से श्रीकृष्णचंद्रका देवकीके गर्भमें जन्म और महेश्वरावतार तथा जीवको पूर्व निरूपित चिदंशत्व बोधन किया

(प्रश्न) वेदोंमेंतौ परमेश्वरको अकाय लिखा है जैसे (सपर्य्यगात्) और तुम अवतार प्रतिपादन करते हो यह विरोध कैसे होगया (उत्तर) इसके अर्थ तुमने नहीं विचारे इस्से यह भ्रम पड़ गया सुनो यह मंत्र इस प्रकार है

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्
कविर्मनीषीपरिभूःस्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा
श्वतीभ्यः समाभ्यः । यजु०अ०४० मं०८

पद सपरि अगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम् अपाप विद्धम् कविः मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथा तथ्यतः अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः

अर्थ सो परमेश्वर (पर्य्यगात् अर्थात् आकाशवत् सर्व व्यापी है (शुद्धं शुक्रम्) अर्थात् शुद्ध प्रकाशरूप है भौतिक प्रकाश विलक्षण ज्ञान स्वरूप अथवा अलौकिकदीप्तिमान् परमात्माहै अकायम् सूक्ष्मभूतकार्य लिंगशरीर वर्जितहै " अव्रणम् अस्ना विरम् " स्थूलशरीरमें वर्तमान व्रण और स्नाविर अर्थात् नाडि समूहकर वर्जितहै इन दो विशेषणोंसे भौतिक स्थूल शरीरसे विलक्षण कहा (अपापविद्धम्) अर्थात् धर्माधर्मरहितहै इस विशेषणसे जीवाभिन्न होनेसे प्रसक्त जो जीवोपाधि लिंग शरीरधर्म धर्माधर्मादितीनोका निषेध कियाहै कवि अर्थात् सर्वज्ञहै मनीषी मनका प्रेरकहै परिभूसर्वोपरि वर्तमानहै (पूर्व उक्तअकायादि विशेषणसे भौतिक प्राकृत शरीरका निषेध कियाहै इस अभिप्रायको स्वयंही यह मंत्र प्रगट करताहै (स्वयंभूः) इस विशेषणसे (स्वयमेव ब्रह्मा रुद्र विष्णवादि रूपेण भवति प्रादुर्भवतीति स्वयंभूः) आपही वोह परमात्मा अपनी विचित्र शक्तिसे ब्रह्मादि रूपसे होताहै इस्से स्वयंभूहै यही अर्थ गीतामें स्पष्टहै

अजोपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया भ.गी.अ.४ श्लो.६

श्रीकृष्ण कहते हैं हे अर्जुनमें अज और अव्ययात्मा और सबभूतोंका ईश्वर भी हूं तथापि अपनी प्रकृति स्वाभाविक सामर्थ्यको आश्रयकर (आत्ममायया) अर्थात् अपने संकल्पसे होताहूं इस्से अवतार सिद्धहै, और जब परमात्मा ब्रह्मादि भावको प्राप्त हुआ तब (याथातथ्यतः) अर्थात् यथावत् (अर्थात्) कर्तव्य पदार्थोंको (शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) दीर्घवर्ष उपलक्षित प्रजापति मनु आदि हेतुओंसे (व्यदधात्) विभाग कर्ताहुआ, दयानंदजीने इस मंत्रका अर्थभी मिथ्याही कियाहै वोह प्रसंग विरुद्ध होनेसे प्रमाण नहीं और " चक्रपाणयेस्वाहा " इस मैत्रायणी शाखाके मंत्रसेभी आकार अवतार दोनो सिद्ध है और सुनो. यजुर्वेद अ० ३१मंत्र१९

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानोबहुधाविजायते
तस्य योनिम्परिपश्यन्ति धीरातस्मिन् हतस्थुर्भुवनानिविश्वा १

(प्रजापति) परमेश्वर (गर्भे अन्तः) गर्भकेमध्यमे (चराति) प्राप्तहोताहै (जायमानः) जन्मधारणकरताहुआ (बहुधा) देवतामनुष्य रामकृष्णादिरूपोंसे (विजायते) उत्पन्न होताहै (धीराः) ज्ञानीमहात्मासतो गुणप्रधान पुरुष (तस्य) उस परमात्माके (योनिम्) जन्मकारणको (परिपश्यन्ति) ज्ञानसे सब औरसे देख-

तेहै (अज्ञानियोंको उसका जन्म नहीं विदित होता) (यस्मिन्) जिस परमेश्वरमें ही (हविश्वभूवनानि) सबब्रह्माण्ड (तस्थु) स्थितहै.

समुद्रोसि विश्वव्यचाअजोस्येकपादहिरसिबुध्न्यो वागस्यैन्द्र मसि सदोऽसिऋतस्यद्वारौमामासन्तास मध्वना मध्वपते प्रमा-तिरस्वस्तिमेस्मिन्पथिदेवयानेभूयात् यजु०अ०५ मं०३३

हे भगवन् आप (विश्वव्यचा) विश्वंबहुरूपं व्यनक्तीति विश्वव्यचाः अपनेमें ब-हुरूपोंको प्रगट करनेवाले समुद्रवत् विस्तृतहै, जैसे समुद्र अपनेमें तरंग बुदबुद अ-पनेसे अनन्य स्वभाविक प्रगट करताहै, तद्वत आपभी अपने बहुरूप अवतार प्रगट करते हैं (प्रश्न) यदि अनेक अवतार हुए तौ परमात्माको जन्मवत्व होना चाहिये (उ-त्तर) "अजोसिएकपात्" एकपादरूप हे भगवन् आप यद्यपि मायासहित हैं तथापि त्रिपाद आपका रूप (अज) सर्वथा जन्म प्रतीत शून्य है सोई श्रुत्यन्तरमें कहाभीहै

पादोऽस्यविश्वाभूतानित्रिपादस्यामृतंदिवि

यह ब्रह्माण्ड एक पादमें स्थितहै और त्रिपाद इस ब्रह्मका स्वर्गमें स्थितहै और आप अहिर्बुध्नरूप मध्यमस्थान देवता हैं इसीकारण नि० घं० अ० ४ ख० ५ में अहिर्बुध्न्यानाम मध्यस्थान देवता कहाहै वहां इन्द्रकानाम अहिर्बुध्नहै हेभगवन् आ-पही १ परा २ पश्यन्ती ३ मध्यमा ४ वैखरी वागरूप हैं, और इन्द्रकी सभारूपभी आपही है, हे परमात्मन् (ऋतस्य) धन वा सत्यके द्वारा उपाय मुझकू प्राप्त होवै हे (अध्वपते) देवयानमार्गके अधिष्ठता आप आप्ततम परमात्म रूप (माअध्व-नांप्रतिर) मुझे मार्गको प्राप्तकर उत्तीर्ण करो, हे भगवन् इस देवयानमार्गमें मु-झे कल्याण प्राप्त हो. इत्यादि अवतार बोधक सहस्रोंही मंत्र है, जिसे विद्याहो चारों वेदोमे देखले, इन मंत्रोंसे त्रिपादस्थानमें अजत्व वामायाकृत जन्म होनेसेभी अजत्व सिद्धहोगया (प्रश्न) यदि परमेश्वरका अवतार रूप जन्म मानोगे. तौ अनादिसे सादि अनन्तसे सान्त और व्यापकसे एक देश वृत्ति होनेसे एक देशी होना चाहिये (उत्तर) जब जन्म वा एक शरीर वृत्त होनेसे यह दोषहै तब जीवके जन्म को निर्विवाद होनेसे अनादिसे सादि और अनन्तसे सान्त होना चाहिये और (यआत्मनितिष्ठन्) (यस्यात्मा शरीरम्) इन श्रुतियोंसे परमात्माको जीवरूप शरीरमें वृत्ति होनेसे और (प्रजापतिश्चरतिगर्भे) इस श्रुतिसे प्रत्येक शरीरमें प्रविष्ट होनेसे ईश्वरको एकदेशी होना चाहिये, और व्यापकत्वका भंग होना चाहिये सो सबके शरीरमें प्रविष्ट होनेसे जिस प्रकार तुम परमात्माको व्यापक पूर्ण सर्वत्र मान्तेहो, वैसाही अवतारसेभी रहता है, क्यौंकि वोह सर्वशक्तिमानहै, और यदि निरा-

कारके अर्थ सम्पूर्ण आकारसे रहित कहोगे, तौ ब्रह्मके सत् चित् आनन्दरूप सूक्ष्म आकारकाभी निषेध होनेसे शून्यत्वापत्ति दोष होगा. और विनिगमनाविरहसे निगुर्ण शब्दभी सम्पूर्ण गुणोंका प्रतिषेधकहो जायगा तौ दयानन्दजीके लिखे सिद्धान्त सिद्ध सत्यकामत्वादिभी ब्रह्ममें नहीं सिद्ध होंगे, ध्यान देनेकी बात है जो दिव्य पदार्थ दूसरेके विरोधी गुणोंसे रहित होनेसे निर्गुण कहे जाते हैं, तबतौ विरोधी मलिन आकारसे रहित होनेसे निराकार कहनेमें क्या प्रतिबन्ध है, परन्तु निर्गुण शब्दसे वा निराकार शब्दसे कहो या न कहो तुह्मारे मतमें वोह दिव्य पदार्थ सदा साकार बने रहते है, जब यह तुह्मारे सिद्ध हुआ तौ वोह कौन पदार्थ है यदि ईश्वर भिन्न साकार वस्तु सदा रहने वाली है, तौ साकारको नित्यत्व प्राप्त होगा, तौभी दयानंदजीके मतका भंग होगा, क्योंकि स्वामीजीने साकारवस्तु नित्य मानी नहीं यदिसो पदार्थ ईश्वरके अन्तर्भूत है, तौ ईश्वरको साकारताका निषेध करना असंगत है, इत्यादि सहस्रोंवाक्य हैं जो कुछ महा भारतादिमें अवतार विषय है सो सब वेदादिकौंसेही लिया है तथा प्रश्नोपनिषदमें परमेश्वरने यक्षका अवतार लिया यह प्रत्यक्ष है, जिसे इच्छा हो देखले जौ कार्य मनुष्योंसे संपादन नहीं होता और ब्रह्माजीके वरदानसे कोई बलिष्ठ हो जाता है, और अधर्म करता है तौ उसके शांत करनेको परमात्माका अवतार होता है, जिसकी मृत्यु मनुष्यसे विधानकी गई है उसे मनुष्य न मार सक्ता हो तौ प्रभूस्वयं मनुष्य होतेहैं, इसी प्रकार औरभी सबमें जानलेना जैसे गीतामें लिखाहै

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे ॥ १ ॥

भगवान् कहते हैं महात्मा ओंकी रक्षा करनेको दुष्टोंके नाश करनेको धर्मके स्थापन करनेकोमें युगयुगमें अवतार लेताहूं पुनः वाल्मीकीये

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ॥
शंखचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ १ ॥
तमब्रुवन्सुराःसर्वे०
त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकामया ॥ २ ॥
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥ ३ ॥
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककंटकम् ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहिरावणम् ॥ ४ ॥

देवता ओंकी स्तुति सुनकर विष्णुभगवान आये शंख चक्र गदा पद्म धारण किये पीले वस्त्र साक्षात् जगदीश्वर १ भगवानसे सब देवता बोले हे भगवन् आपको लोकोके हितके वास्ते नियुक्त करते हैं २ कि राजा दशरथके यहां आपआत्माकूं चार प्रकारसे विभाग कर जन्मलो ३ मनुष्यरूप धारणकर लोकके कंटक देवतोंसे अवध्य महापापी रावणकू मनुष्य हो कै मारो ४ (पुनरपि)

अथ विष्णुर्महातेजा आदित्यां समजायत ॥
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥ १ ॥
त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् ॥

विष्णु भगवान महा तेजस्वी अदितिके गर्भसे जन्मले वामन रूप धारण कर राजाबलिके पास आये१ तीनपग पृथ्वीकी याचना करते हुए और पृथ्वी सबलेली इत्यादि वाल्मीकि रामायणमेंभी अवतार विषय स्पष्ट है (प्रश्न) वेदमंत्रोंमे तौ कोई इतिहास नहीं होता इतिहास तौ पुराणादि ग्रंथोंमें हैं (उत्तर) यह उनकी भूल है जो कहते हैं कि वेदमंत्रोंमें इतिहास नहीं होता बहुतसे मंत्र इतिहास मिश्रित निरुक्तमें व्याख्यान किये हैं यथाहि

त्रितःकूपेऽवहितमेतत्सूक्तंप्रतिबभौतत्रब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रगाथामिश्रंभवति नि० अ० ४ पा० १ खं० ६

कूपमे पडे हुए त्रित नामक ऋषिको यह अधो लिखित सूक्त प्रतीत हुआ वहां ब्रह्म वेद वाक्य इतिहास मिश्रित ऋचायुक्त हैं और गाथा मिश्रितहैं

त्रितःकूपेऽवहितोदेवान् हवत ऊतये ऋ.मं. १अ. १५सू.१०५मं.१७

अर्थ कूपमें गिरा हुआ त्रितऋषि देवता ओंको ऊति नाम रक्षाके वास्ते (हवते) आह्वान करता हुआ, यहां यह इतिहास शाट्यायन शाखामें प्रसिद्ध है एकत् द्वित् और त्रित् नामक् ऋषिथे, वेतीनो एक समयपर मरुभूमिमें प्याससे सन्तप्त हुए एक कूपपर पहुंचे तिनतीनोमे सैत्रित जल पान करनेको कूपमें प्रवेश कर जलपी उन दोनोके अर्थभी जल लाया, उन्होंने जल पीलिया पीछे फिर तीनो कूपके ढिग पानी पीनेके वहाने गये, और त्रितको कूपमें ढकेल उसके ऊपर रथ चक्र धर सब उसका मालमता लेके चल दिये तब त्रितने देवता ओंको स्मरण किया और कूपसे निकले यह इतिहास इस मंत्रमें गर्भित है इस्से जो कहते हैं वेदमें इतिहास नहीं हैं वे अल्प श्रुत हैं औरभी सुनो साम वेदमेंभी लिखाहै

३ १२ २२ २ १ २३ १ २ ३ १ २ १ २१ १ २
अपाम्फेनेननमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः विश्वायदजयस्पृधः
छन्दआर्चिके ३१।२।८

"इन्द्रः" त्वम् (अपांफेनेन) वज्रीभूतेन (नमुचेः) असुरस्य (शिरः) उद-वर्तयः) शरीरादुद्गतम वर्तयः अच्छैत्सीरित्यर्थःकदेतिचेत् (यद्) यदा (विश्वाः) सर्वाः (स्पृधः) स्पर्धमानाः आसुरीः सेना (अजयः) जितवानसि इन्द्रो वृत्र हन्ता असुरान् परास्य नमुचिमसुरं नालभत इत्यादिकमध्वर्युब्राह्मणमनुसन्धेयम्

भाषार्थः पहले इन्द्र असुरोंको जीतकर नमुचिअसुरको ग्रहण करनेको न समर्थ हुआ, और युद्धमें उस राक्षसने इन्द्रको ग्रहण किया, और इन्द्रके विनय करने पर यह कहा कि जो तू मुझे सन्ध्या समय सूखे गीले आयुधसे न मारे तो मैं छोड़दूं इन्द्रने इस बातको मान जव छुटकारा पाया और फिर युद्ध किया तौ सन्ध्यासमय इन्द्रने वज्रमें फेन लपेट कर उसे मारडाला यह इतिहास इस मंत्रमें गर्भित है.

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १२ ३र

इन्द्रोदधीचीअस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः जघानवतीर्नव

सामवेदे २ प० २ । ७ । ६

"अप्रतिष्कुतः" परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूलशब्दरहितः (इन्द्रः) आथर्वणस्य (दधीचः) एतत्संज्ञकस्यऋषेः (अस्थभिः) पार्श्वशिरः सम्बन्धिभिरस्थिभिः (नव-तीर्नव) नवसंख्याकानवतीः दशोत्तराअष्टशतसंख्याकाः (८१०) वृत्राणि आवर-काणि असुरजातानि (जघान) हतवान् यहांभी यह शाठ्यायन इतिहास है आथर्वण कुलके दधीच ऋषिने जीवितसमय देखनेहीसे असुरोंको परास्त किया जब वे स्वर्ग को गये तौ पृथ्वी असुरोंसे पूर्ण होगई जब इन्द्र उनके साथ युद्ध करनेको प्रवृत्त हुआ तौ उन्हे निग्रह करनेमें समर्थ नहो ऋषिको ढूंढने लगे, वनवासियोंने कही महा-राज वे तौ ब्रह्मलोकको गये, तब इन्द्र बोला उनका शरीर कहां पातहुआ, और उनका कुछ अंग मिलसक्ता है, ऋषिगण बोले कि उनका आश्वशीर्ष अंग है जिस शिरसे अश्विनीकुमारोंको विद्या सिखाई थी, पर वोह कहां है हम नहीं जान्ते तब इन्द्रने कहा ढूंढो तौ ऋषिगण खोजने लगे और पाया इन्द्रने उस शिरकी हड्डियोंसे (आयुध) बनाय ८१० असुरोंको जीता सोई यह मंत्र कहता है कि "इन्द्रने दधी-चिके हाडसे आयुध बनाय असुरोंको जीता" ऋग्वेदमेंभी यही मंत्र है इसप्रकार औरभी बहुत इतिहास हैं (प्रश्न) इन बातोंसे तौ यह विदित होताहै कि इन इति-हासोंके पश्चात् वेदकी रचना हुई है (उत्तर) वेदमें भूत भविष्य वर्तमान तीनो कालकी वार्ता वर्तमानवत् रहती है, ईश्वरके ज्ञानमें तीनो काल वर्तमानवत् हैं यथा.

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्ववेदात्प्रतिष्ठिते मनु०

अर्थात् भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालके समाचार वेदोंसे जाने जाते हैं (परमे-श्वरका ज्ञान सदा एकरस अखंडित वर्तमान रहताहै भूतभविष्य जीवोंके लिये है)

यह दयानन्दजीनेभी स०प्र०पृ०१९४पं०९ लिखा है फिर इतिहास अवतारादि वेदोंमें हो तौ क्या संदेह है ? ॥ समाप्तंचेदमवतारप्रकरणम् ॥

सर्वशक्तिमानप्रकरणम् ।

स. पृ. १८२ पं. १३ (प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ? (उत्तर) है. परन्तु जैसा तुमने सर्वशक्तिमानका अर्थ जानरक्खा है वैसा नहीं किन्तु सर्वशक्तिमानका यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति पालन प्रलयादि और सब जीवोंके पुण्यपापकी यथायोग्य व्यवस्था करनेमें किंचितभी किसीकी सहायता नहीं लेता, अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्यसे सब काम पूर्ण करता है, फिर पं०१९में लिखा है और जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सक्ताहै तौ तो हम पूछते हैं कि परमेश्वर अपनेको मार अनेक ईश्वर बना स्वयं अविद्वान चोरी आदि पापकर्म कर दुःखीभी हो सक्ताहै.

समीक्षा- ऐसा विदित होताहै कि ईश्वरने स्वामीजीसे कर्ज काढा होगा, और एक तमःसुक लिख दिया होगा, जिसके जरियेसे सत्यार्थप्रकाश बनालिया कि जिस्से सर्वशक्तिमानका अर्थ अपनाही ठीक रक्खा है, और ग्रंथोंका अशुद्ध जबकि ईश्वर उत्पत्ति पालन लय जीवोंके काममें किसी प्रकारकी सहायता नहीं लेता, तौ इसके व्यतिरिक्त तारागणादिकी रचनामें जरूर सहायता लेता होगा, यह स्वामीजीकेही लेखसे खुलसक्ताहै, जैसे कि वेदार्थमें स्वामीजीसेही सलाह लीहोगी तथा आपने भूमिकाभी नई गढी; क्या वेदका अर्थ आपहीको आताथा, और आपने यहभी कोई ईश्वरपर बड़ीही कृपा करी जो सर्वशक्तिमान् नाम तौ रहने दिया, परन्तु अर्थ ऐसा किया है जैसे कोई बंधुएका नाम स्वतंत्र रखदे, वा स्वतंत्रका नाम बंधुआ रखदे स्वामीजी तुमने तौ अपने जान वेदभाष्य भूमिकामें ईश्वरको बांधही लिया है, और सत्यार्थप्रकाशरूपी तमस्सुककी धमकी देतेहो, कि खबरदार अवतारन लेना नहीं तौ नालिश करदी जायगी, यह अवतारही दूर करनेके वास्ते आपने उसकी अनन्त सामर्थ्यमें धव्वा लगाया है, मगर क्या हो सक्ताहै, और यह तौ अजवही बात कही कि "जो चाहै सो करै तौ अपने आपको मारडाले चोरी करै" धन्य दयानंदजी ! इस निर्बोधानंदका क्या ठिकाना है ! क्या जो जो चाहैं सो कर सक्तेहैं वे चोरी करते हैं आत्मघात करते हैं यह दोनो काम करनेको तौ निर्बलभी समर्थ है जब चाहैं प्राण त्यागें जब चाहें चोरी करैं, तौ जितने इस कार्यमें समर्थ है सबही मरजाने चाहिये, सो तौ नहीं होता, किन्तु जो अज्ञानी हैं वोही किसी वस्तुकी इच्छा होनेसे और उसके न मिलनेसे दुःखी हो प्राण खोदेते हैं, पर ज्ञानी नहीं निर्धन चोरी करते हैं, ईश्वरमें पूर्णज्ञान सदाँ रहताहै, वोह क्यों आत्मघात करैगा ? उसकी इच्छा

मात्रसें सब जगत् उत्पन्न होजाताहै, फिर वोह पूर्णज्ञानी कौनसे कारणसे मरे, और नित्यका नाश नहीं होता, आत्माका कोईभी नाश करसक्ताहै? जब ईश्वर अजर अमर है प्रकाशस्वरूप है अकाय है तौ अपनेको कैसे मारै आत्माके लक्षण तौ सुनो-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैनं क्लेदयंत्यापो नशोषयति मारुतः। भ० गी०

न कोई शस्त्र इसको छेदन करसक्ता न अग्नि जला सक्ती न पानी गला सक्ता न वायु सुखा सक्ताहै, जब ऐसा आत्मा है जिसका स्वरूप कुछ जाना नहीं जाता फिर कैसे उसका नाश होसक्ताहै? क्या कोई ईश्वरको आपने मूर्ख जाना जो वोह सर्वशक्तिमान होनेसे अपनेको मार डाले, तौ वोह शब्दही क्यों रक्खा अलग कर दिया होता, इसी विद्यापर वेदभाष्यकी रचना करीथी, सर्वशक्तिमानके अर्थ हैं कि सब प्रकारकी जिसमें ताकत हो, जो चाहे सो करसकै, परन्तु आपसे कदाचित् ईश्वरने वार्ता करीहो, और बतादिया हो कि सर्वशक्तिमानका प्राचीन अर्थ अशुद्ध है, यह अर्थ ठीक है परन्तु दयानंदजी वेद तौ यों कहता है.-

नतंविदाथयइमाजजानान्यद्युष्माकमन्तरंम्बभूव नीहारेण
प्रावृताजल्प्याचासुतृपँउक्थशासंश्चरन्ति यजु०अ० १७मं०३१

पदार्थः (यः) जो ईश्वर (इमा) इस भुवन और सब प्राणियोंको (जजाना) उत्पन्न करताहुआ तथा (युष्माकम्) तुह्मारे सबके (अन्तरं) मध्य (अन्यत्) अन्तर्यामी रूपसे स्थित (बभूव) हुआ (तं) उस ईश्वरकू (यूयं) तुम (नविदाथ) नहीं जान्ते क्योंकि (नीहारेण) नीहार सदृश अज्ञान (च) तथा (जल्प्या) देवता हूं मनुष्य हूं यह मेरा घर है क्षेत्र है इत्यादि असत्य जल्पनासे (प्रवृत्ताः) युक्त और (असुतृपः) केवल प्राणोंके पोषक हो (उक्थशासः) परलोकमें भोगोंको संपादन करनेको यज्ञमें शास्त्रस्तुति करनेको (प्रवर्तन्ते) प्रवृत्त होते हैं.

जिसको जाननेको वेद कहताहै कि तुम नहीं जान्ते दयानंदजी उसको और उसकी सर्वशक्तिको कैसे जानगये? जो योगियोंकोभी अगम्य है! और देखो-

एतावानस्य महिमाऽतोज्यायांश्च पूरुषः
पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि यजु०अ०३१मं०३

(पदार्थः) (अस्य) इस परमेश्वरकी (महिमा) ऐश्वर्य विभूति (एतावान्) इतनीही नहीं (च) किन्तु (पुरुषः) चिदात्मा परमेश्वर (अतः) इस संसारसे (ज्यायान्) अतिशय अधिक है जिस कारण (विश्वा) सब (भूतानि) ब्रह्माण्ड

(अस्य) इस परमात्माका (पादः) चतुर्थांश अर्थात् एक चौथाई हैं (दिवि) वैकुण्ठलोक अर्थात् निज स्थानमें (अस्य) इस (त्रिपादस्य) त्रिपादका स्वरूप (अमृतं) विनाशरहित है.

इससे विदित होताहै कि जो कुछ यह आकाश पाताल सम्पूर्ण तारामंडल सहित है यह सबतो उसकी महिमाकी चौथाई है, जिसके पदार्थोंहीतकका अभीतक लाखों वरससे भेद नहीं जाना जाता, इस्से तिगुनी महिमा उसके निजलोकमें स्थित है फिर उस अनन्त परमात्माकी महिमा और सर्वशक्तिमानी दयानंदजीने कैसे जानली और उस अनन्त ऐश्वर्यवाले परमात्माकी सृष्टिका क्रम आपने कैसे जाना ? जो कह देतेहो कि यह सृष्टिक्रम विरुद्ध है, वोह सबकुछ करसक्ताहै सारा संसार और जो कुछभी है यह सब उसीकी महिमासे उत्पन्न है.

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजोनोव्योमापरोयत् ।
किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नम्भः किमासीद्गहनंगंभीरम् ।
ऋ० मं० १० अ० ११ सू० १२९

(तदानीं) महा प्रलयकालमें (असत्) अपरा माया (न) नहींथी (सत्) जीव (नो) नहीं (आसीत्) था (रजः) रजोगुण (न) नहीं (आसीत्) था (यत्) जो (व्योम) आकाश तमोगुण (अपरः) सतोगुण (नो) नहीं था (कुहकस्य) इन्द्रजाल रूप (शर्मन्) ब्रह्माण्डके चारोंओर जो (आवरीवः) तत्वसमूहका आवरण होताहै (तत्) (किं) ("नाकिमप्यासीत्") वोहभी नहींथा (गहनंगभीरं) गहन गंभीर (अंभः) जल (किं आसीत्) क्याथा अर्थात् नहींथा.

स्वामीजी कान खोलकर सुनो उस समय यह तुह्मारे नित्य माने पदार्थभी नहींथे

नमृत्युरासीदमृतंनतर्हि नरात्र्याअन्हआसीत्प्रकेतः
आनीदवातं स्वधयातदेकंतस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ऋ०२

(तर्हि) तिस समय (मृत्यु) मौत (न) नहीं (आसीत्) थी (अमृतं) जीव (न) नहीं (आसीत्) था (रात्र्याः अन्हः) रात दिनका (प्रकेतः) ज्ञान (न आसीत्) नहीं था (अवातं) प्राणरहित (स्वधया) अपनी परा शक्तिसे (एकं) अभिन्न एक (तत्) ब्रह्मही (आसीत्) था (तस्मात् ह) उस सर्वशक्तिमानसे (अन्यत्) अन्य (किंच) और कुछभी (न) नहीं (आस) था.

अब विचारनेकी बात है कि एक ब्रह्मके सिवाय जब कुछभी न था और फिर अब सबकुछ करके दिखाया तौ वोह सर्वशक्तिमान क्यों नहीं और वोह सब कुछ करता स्वयं अवतारभी धारण करताहै. यथाहि

यइमाविश्वाभुवनानि जुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितानः
सआशिषाद्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरां२॥ऽआविवेश

यजु० अ० १७ मं० १७

पदार्थः-(य) जो (ऋषि) अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संसाररूप होमका कर्ता (नः) हम वेदिक मंत्रोंका (पिता) जनक उत्पन्न करनेंहारा परमेश्वर (इमा) इस (विश्वा) इस सम्पूर्ण संसारको (जुह्वत) प्रलयकालमें संहार करताहुआ (न्यसीदत्) अकेलाही स्थित हुआ (सः) वोही (प्रथमच्छत्) प्रथम एक अद्वितीयरूपमें प्रविष्ठ होता (आशिषा) फिर सृष्टिकी रचनाकी इच्छासे (द्रविणं) जगत्‌रूप धनको (इच्छमानः) इच्छा करताहुआ (अवरान्) मायाविकार व्यष्टि समष्टि देहोंमें (आविवेश) अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हुआ.

अब समझ लीजिये कि वोह क्या क्या करसक्ताहै वोह सबकुछ करनेको समर्थ है और देखिये दयानंदजीने स्वयं सत्यार्थप्रकाशमें लिखा है परन्तु श्रुतिभी बदली हैं और अर्थभी बदला है परन्तु इनके यथार्थ अर्थसे उसकी सर्वशक्तिमत्ता प्रगट होती है कि वोह सबकुछ करसक्ताहै.

स०पृ० १८८ पं० २४

अपाणिपादोजवनोग्रहीतापश्यत्यचक्षुःसशृणोत्यकर्णः ।
सवेत्तिविश्वंनचतस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यंपुरुषंपुराणम् १

परमेश्वरके हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करता पग नहीं परन्तु व्यापक होनेंसे सबसे अधिक वेगवान चक्षुका गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत् देखता श्रोत्र नहीं तथापि सबकी बातें सुन्ता अन्तःकरण नहीं परंतु सब जगत्को जान्ताहै उसको अवधि सहित जाननेंवाला कोईभी नहीं उसीको सनातन सबसे श्रेष्ठ सबमें पूर्ण होनेंसे पुरुष कहते हैं. १

स० पृ० १८९ पं० ७

नतस्यकार्य्यंकरणंचविद्यते नतत्सम श्चाभ्यधिकश्चदृश्यते ।
परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच २

परमात्मासे कोई तद्रूप कार्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं न कोई उसके तुल्य और न अधिक है सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान अनन्त बल और अनन्त क्रिया है वोह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें

सुनीजाती है जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तौ जगतकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सक्ता इस लिये वोह विभू तथापि चेतन होनेसे उसमें क्रियाभी है.

समीक्षा–ऊपरकी श्रुतिमें स्वामीजीने बहुत पाठभेद किया है (सवेत्तिवेद्यं) के स्थानमें 'विश्वं' पद लिखा है और (महान्त) पदके स्थानमें (पुराण) पद (नचतस्यास्ति) इसमें सें अस्ति पदको त्यागकर उपनिषद् वचन लिखकर अर्थ किये हैं यह वचन श्वेताश्वतर उप० अ० ३मं० १९ के हैं अर्थ यह है पाणि तथा पादसे वर्जित है आत्मा औ जवन तथा ग्रहीता अर्थात् ग्रहण करनेंवाला है भाव यह है कि हस्तपाद उपाधि सहित होकर वेगवान तथा ग्रहण करताहै परन्तु स्वरूपमें हस्तपाद उपाधि रहित है इसी रीतिसे वास्तव चक्षुकर्ण रहितहै परन्तु चक्षु कर्ण उपाधिसहित होकर देखता तथा सुन्ता है सो आत्मा वेद्य वस्तुको जान्ताहै तिसके जान्नेवाला दूसरा नहीं स्वयंप्रकाश होनेसे तिस महान् पुरुष सर्व नामरूप प्रपंचसे आगे होनेवालेको वेदवचन कथन करते हैं.

अब स्वामीजीके श्रुतिअर्थमें दृष्टि देना चाहिये "यह जो कहा कि परमेश्वरके हाथ नहीं परन्तु शक्तिरूप हाथसे सबका रचन ग्रहण करताहै" यहां यह पूछना है कि शक्ति परमात्मासे भिन्न है वा अभिन्न? या भिन्न अभिन्नसे विलक्षण विचित्रता वाली अनिर्वचनीय है जो भिन्न कहो तौ अनादिही मान्ना होगा तौ तुह्मारे मानेहुए तीन पदार्थ जो नित्य है जीव ईश्वर प्रकृति जड़रूप (पृ. २०९)में अब एक चौथा पदार्थ शक्तिभी होगी जो सादि मानो तौ सादिशक्तिरूप शरीरसे ईश्वर शरीरी होजाएगा इस्से ईश्वरका शरीर सादि नहीं है यह कथन असंगत होगा और जो अभिन्न ईश्वरसे शक्तिको मानो तौ शक्ति जड़ है और जड़ चेतनका अभेद वास्तवमें बाधित है और भिन्न अभिन्नसे विलक्षण मानोंगे तौ तिस्से भिन्न जड़ प्रकृतिका मान्ना निष्फल है क्यों कि ऐसा अद्भुत शक्तिमान् ईश्वर जड़ प्रकृतिकी सहायता नहीं चाहता वोह तौ मन तथा कामनाद्वारा प्रपंच रचना करदेताहै देखो.

ऋ०मं०१० अ०११ सू०१२९ मंत्र ४.

कामस्तदग्रेसमवर्तताधिमनसोरेतःप्रथमंयदासीत्
सतोबन्धुमसतिनिरविन्दन्हृदिप्रतीष्याकवयोमनीषा १

पद । कामः तत् अग्रे समवर्तत अधिमनसः रेतः प्रथमम् यत् आसीत् सतः बन्धुम् असति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्य कवयः मनीषा.

(मनसोयत्प्रथमंरेतआसीत्तत्अग्रेकामोअधिसमवर्तत) अन्वय.

अर्थ–मूल प्रकृतिसे जो जगत सर्जन इच्छा ईक्षण संकल्पादिका आश्रय प्रथम

मन उत्पन्न हुआ है तिस मनको जो प्रथम (रेतः) कार्य्य होताहुआ सो पूर्वकालमें कामरूप होकर (अधि) अधिकता करके (समवर्तत) होताहुआ इतने मंत्रसे यह जनाया कि जो प्रथम ईक्षण संकल्प विशिष्ट मन होताहुआ पश्चात् उस मनमें काम इच्छा उत्पन्न होतीहुई जैसा तैत्तिरीय श्रुतिमेंभी सिद्ध है 'सोकामयतबहुस्यांप्रजायेयेति' समनोभावापन्न मूलप्रकृति कामना करतीहुई कि मैं बहुतरूप हो प्रजारूपसे अपने स्वरूपको वैसाही स्थितकर प्रतीत हूं अब मंत्रके उत्तरार्द्धसे परमात्मामें जगतस्थिति प्रकार कहते हैं (कवयोमनीषाहृदिप्रतीष्य असतिसतोबन्धुंनिरविन्दन्) जो मेधावी पुरुष हैं वे अपने (हृदि) हृदयकमलमें (प्रतीष्य) विचार करके (असति) पूर्व उक्त अनभिव्यक्त नाम रूप मूल प्रकृतिमें (सतः) सत्यरूप करके प्रतीयमान जगत्का (बन्धुम्) बन्धन हेतु पूर्वउक्त कामको (निरविन्दन्) निश्चय करतेहुए भावार्थ यह है जगतका बन्धनहेतु काम है जो मनसे उत्पन्न हुआहै तौ शक्तिरूप हस्तसे रचना कहना दयानंदजीका वेदविरुद्ध है और इस मंत्रमें तौ ग्रहीता यह पद है अर्थ इसका पूर्वरचित पदार्थका ग्रहण है कुछ रचना शब्दार्थ नहीं इससे इसका रचना अर्थ करना अशुद्ध है इस्से बृहदा० अ० ५ ब्रा० ७ यचक्षु० इत्यादि मंत्रके अनुसारही इसका अर्थ है सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर हस्त पाद चक्षु श्रोत्र मन आदि है वेही सम्पूर्ण परमात्माके शरीरादि हैं और वास्तव दृष्टिसे केवलही स्वरूप है इस्से तिस तिस उपाधि सहित होकर क्रिया करताहै परन्तु वास्तव सर्व क्रियारहित है यह सब श्रुतियोंका अभिप्राय है और व्यापक होनेसे जो दयानन्दने अत्यन्त वेगवान कहाहै सोभी व्यापक वस्तुमें गमन उपाधि विना प्रतीत नहीं होतातौ (जवनः) अत्यन्त वेगवान यह शब्दप्रयोग कैसे होसक्ताहै इस्से सोपाधिकत्व कल्पना विना दूसरा अर्थ बन नहीं सक्ता और यह जो लिखा है "कि तिसको अवधिसहित कोई नहीं जानसक्ता" इस कहनेका भाव यह स्वामीजीने रक्खा हैं कि जो परमेश्वर तौ दूसरे करके जाना जाताहै परन्तु तिसकी अवधि न जाननेकर (नचतस्यास्ति) यह कहना बनसक्ताहै परन्तु यह अर्थ करेंगे तौ परमेश्वरको वेद्यत्व प्रसक्त होगा और वेद्यत्व प्रसक्तिसे जडत्वादि दोष होंगे स्वयंप्रकाशत्वबोधक श्रुतिका बाध होगा इससे इस श्रुतिमें परमात्माको अवेद्त्व बोधन कर सर्वका वेत्ता कहनेंसे स्वप्रकाशही बोधन कराहै इसीप्रकार दूसरी श्रुतिभी कहती है उसे कार्य और करणकी कुछ आवश्यकता नहीं है वोह अपनी इच्छासे जो चाहै सो कर सक्ताहै.

अघनाशनप्रकरणम्

पृ० १८२ पं० ३० क्या स्तुति आदि करनेंसे ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेंवालेका पाप छुटादेगा. (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तौ फिर स्तुति प्रार्थना

क्यों करना (उत्तर) इसका फल अन्यही है स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कर्म स्वभावसे अपने गुणकर्मस्वभावका सुधारना प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना उपासनासे परब्रह्मसे मेल और उसका साक्षात्कार होना पृ०१८३ पं० १८ और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुणकीर्तन करताजाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है पुनः पृ० १८६ पं० १३ ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न ईश्वर उसे स्वीकार करताहै जैसे हे परमेश्वर आपमेरे शत्रूओंका नाश मुझको सबसे बडा मेरी प्रतिष्ठा और मेरे ही आधीन सब होजाय पुनः पं० १९ ऐसी मूर्खताकी प्रार्थना करते करते कोई ऐसीभी प्रार्थना करैगा कि हे परमेश्वर आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये मकानमें झाडू लगाइये वस्त्र धोदीजिये खेतीवाडीभी कीजिये इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वोह महामूर्ख हैं पुनः पृ० १९२ पं० ३ ईश्वर अपने भक्तोंके पाप क्षमा करताहै वा नहीं (उत्तर) नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करैं तौ उसका न्याय नष्ट होजाय क्योंकि क्षमाकी बात सुन्तेही उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाय जैसे राजा अपराधको क्षमा कर देतौ वे उत्साह पूर्वक बडेबडे पापकरैं क्योंकि राजा उनका अपराध क्षमाकरदेगातौ उनको भरोसा होजायगा कि राजासे हाथजोडकर अपराध छुडालेंगे और जो अपराध नहीं करते वेभी अपराध करनेसें न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त होजायगे.

समीक्षा—यहां तौ स्वामीजी सारी उपासना स्तुतिकी चटनी करगयेलो अब ईश्वरकी प्रार्थनाभी मत करो क्योंकि वोह हमें उसका फल देता नहीं पाप क्षमा करता नहीं फिर ईश्वरका अस्तित्व स्वीकारकरनेसे क्या लाभ ? उसका भजन करना वृथा होगा तौ "प्रयोजनंविना मन्दोपिनप्रवर्तते" विनाप्रयोजन मन्द पुरुषभी कोई काम नहीं करते फिर ईश्वरका नामस्मरणभी निरर्थक है तौ सब कर्मोंका फलभी निरर्थक होगा लो कर्मकाण्डभी समाप्त करादिया जब ईश्वरही जो सबसे श्रेष्ठ है स्तुति प्रार्थनासे पाप दूर नहीं करता तौ कौनसा शुभकर्म है जिसके करनेंसे मनुष्य दुःखसे छूटें जब कि श्रेष्ठ कर्म करनेंसे श्रेष्ठ फल बुराकर्म करनेसे अनिष्ट फलकी प्राप्ति होतीहै तौ उस पवित्रात्माका स्मरण उपासना ध्यान करनेवाला पवित्र क्यों नहीं होगा ? (जो यह कहो कि उसके नामसे अपने गुणकर्मोंको सुधारै) तौ जब उसका नाम कुछ गुण रखताहै तभी तौ मनुष्य उसके गुणकर्मसे अपने गुणकर्म सुधार सक्ताहे नहीं तौ किस प्रकार सुधार सक्ताहै यादि स्वयंही सुधारसक्ता तौ उसके नामस्मरणादिकी आवश्यकता क्या थी ? जब उसके नामसे गुण कर्म स्वभाव सुधरते हैं तौ पवित्र क्यों नहीं होसक्ते ? जो पाप दूर नहीं होसक्ते तौ गुण कर्म स्वभावभी नहीं सुधर सक्ते और

ईश्वरमें कर्महीं क्याहै जिसकी सदृश वोह अपने गुणकर्म सुधारें, और गुणकर्मही सुधारे तौ किसी भले आदमीके चरित्र देख अपने कर्म सुधार सक्ताहै, इस्से ईश्वर-की आवश्यकताही नहीं रहती, ईश्वरकी निराकार मान्ते होतो उसके कर्म क्याहोंगे इस्से तौ आप रामचन्द्रको श्रेष्ठ पुरुष मान्ते हो उनके सबही आचार श्रेष्ठथे उन्हींके नाम स्मरण करनेसे मनुष्य अपने चरित्र सुधार सक्तेहैं, फिर ईश्वरकी आवश्यकता क्यों, जब आप कहते हैं कि प्रार्थना करनेसे अहंकार दूर होगा सहायता प्राप्त होगी तौ क्या उसके पाप दूर न हुए, साधारण हाकिम जिसकी सहायता करते हैं उनके दुःख दूर होजाते हैं, और जब ईश्वरने सहायता करी तौ पापकहां बस ईश्वरने सहा-यताकरीतौ भक्तोंके मनोरथ पूर्ण होगए, और पापसे छूट सुखके भागीहुए सुख जबही होताहै जब पाप दूर होते हैं, इस सहायता करनेसे तौ दयानंदजीका लेखही उनके लेखको खंडन करताहै, और उपासनासे ब्रह्मसे मेल हौनाभी आपने क्या सोच कर-लिखाहै जो मेल हुआतौ फिर पृथक् हौना कठिनहै, जोजल गंगाजलमें पडगया हजार यत्नसे वोह फिर अलग नहीं होसक्ता और वोह गंगाजलही होजाताहै इसी प्रकार जब उपासना करनेसे ईश्वरसे मेल होगयातौ उसकी पवित्रतामें क्या संदेह है पापीसे ईश्वरका मेलही नहीं होसक्ताहै, मेल हौने उपरान्त फिर मुक्तिसे नहीं लौट सक्ताहै, और ईश्वरके प्रत्यक्ष होनेके आपने विशेष अर्थ नहीं खोले क्या वोह इन्द्रियोंके सामने होजाताहै, क्योंकि जो आकारवाला होगा वोही इन्द्रियोंके सामने होगा इस्से तो सिद्धहोताहै कि ईश्वर साकार है, निराकार प्रत्यक्ष कैसे होसक्ताहै और यह जो लिखा कि (जो भांडके समान परमेश्वकी स्तुति करता है और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है) यह तौ बडाही उलटा लेखहै क्योंकि इश्वरकी प्रार्थनातौ सकाम इसीसे करीजाती है कि यह कार्य हमसे नहीं हो सक्ता इश्वर तू हमारी सहायता कर, जो अपने चरित्र सुधारनेमें असमर्थ हैं वा और किसीकार्यमें वेही तौ प्रार्थनाकर सहायता चाहतेहैं कि परमेश्वर हमारे चरित्र सुधरें हमारे काम बने ऐसी कृपाकरो जो जिस कामके करनेमें स्वयं समर्थ होताहै वोह कब दूसरेसे सहायता चाहताहै, जो अपने चरित्र सुधारनेमें स्वयंसमर्थहै वोह इश्वरकी उसमें सहायता क्यों चाहेगा पहले तौ लिखा कि गुणकर्म सुधारनेको इश्वरकी प्रार्थना करनी यहांलिखते हैं अपने कर्म सुधारो विनासुधारे स्तुति प्रार्थना व्यर्थहै यह परस्पर विरुद्ध लेख कौन बुद्धिमान् मानसक्ताहै (ऐसीप्रार्थना कभी न करनी मेरे शत्रुओंको मारो मुझेसबसे अधिक करो इत्यादि) और क्या प्रार्थनामें स्वामीजीके यंत्रालयकी वृद्धि मनाई जाय शतशः वेदमंत्र इसी आशयसे पूर्ण हैं हे ईश्वर हमारे पाप दूरकरो, हमारे शत्रुओंको मारो हमको श्रेष्ठ बनाओ, हमारी रक्षा करो क्यायह-

वेदमें मिथ्या प्रलापहै, नहीं तौ कह दीजियेकि किसीने मिला दियाहै बस इतनीही कसरहै आपकी चलती तौ अपने प्रतिकूल मंत्रोंपर जरूर हरताल फेरते परतौभी अर्थ बदलकर अनर्थ करही दिया, और (झाडू लगाइये वस्त्र धोदीजिये) यह क्या स्वामीजीने लिखदीया क्या जिससमय यह पुस्तक लिखरहेथे आपका विस्तर मैला-था या कूडापडाथा, या कपडे मैलेथे, भला यह तौ सोचाहोता कि जिसके भौतिक शरीर नहीं वोह कैसे ऐसे काम कर सकैगा, और अपने मालिक उत्पन्न करता संक-टमोचनसे कोईभी ऐसा कह सक्ताहै,साधारण मालिकके सामने तौ जबावनहीं दिया-जाता और उस बडे महन्तसे यह ढीठता, शायद् ऐसी प्रार्थना तुमनेही की होगी जब आपके कपडेमैले, सामने कूडा पडाहोगा, कि ईश्वर हमारे यह दौनोकामकर दे, जब उसने नहीं किया तौ क्रोध करके लिखदिया कि उसकी प्रार्थना मतकरो कुछ लाभ नहीं, फिर लिखाहै (जो परमेश्वरके भरोसेपर आलसी बने बैठेरहते हैं वे मूर्ख हैं) देखिये इस नास्तिकताकी कि ईश्वरकाभरोसा करना मूर्खताका काम है जब इश्वरका भरोसा करना मूर्खताहै, तौ जिसका भरोसा नहीं उसके गुणगाने से क्या लाभ, और नास्तिकता क्या होतीहै, इसीको अनीश्वर वादी कहते हैं सहस्रोंऋषि मुनि आरण्यमें परमेश्वरके भरोसे जपतप करतेथे, और करते है और वोही परमेश्वर उनकी रक्षा करताहै, क्या स्वामीजी तुह्मारे भंडारसै सीधा जाया करेथा जो भोजनकर ऋषिमुनि तप करतेथे, आपको दैनाबुरालगैथा, जो लिखदि-या कि इश्वरके भरोसे रहना वृथाहै, आप लिखते हैं कि पापक्षमा भक्तोंकेभी नहीं करता यदि करै तौ फिर सब पाप करने लगजाय, सुनिये वोह दुष्टोंके पापक्षमा नहीं करता, भक्तोंके अवश्य क्षमा करताहै, क्योंकि वोह जान्ताहै कि भक्तसे अनजाने यह पाप बनगयाहै, और अब प्रतिज्ञाकरताहै कि आगेको नहीं करूंगा और करैगाभी नहीं उसका पाप परमेश्वर निश्चय क्षमा करैगा, वोह प्रार्थनाही उसका प्रायश्चित्तहै और जो दुष्टहैं मनमें पाप और ऊपरसे बने भक्त वंचक उनका पाप कभी क्षमा नहीं होगा, जो भला आदमी होताहै उसके अनजाने अपराधको राजाभी क्षमा करदेताहै, और जो दुष्टहैं उनके पाप क्षमा नहीं करता, क्योंकि जानताहै छोडदैनेसे अधिक पाप करैंगे जो अन्तःकरणसे शुद्धहैं और प्रेमसे ईश्वरका स्मरण करते हैं उनके पापभी क्षमा होतेहैं, और दुष्टोंको यथावत् दंड देताहै, इसीका नाम न्यायहै जो दुष्टहैं उन्हैं दंड और जो दया योग्यहैं उनपर दयाकरना क्षमाके योग्यहै उन-पर क्षमा करना यह नहीं कि सब धान बाईस पसेरीही तोला जाय, सुनिये शत्रु-निवृति अपनी उन्नति आदिकी प्रार्थनाभी वेदोंमें है ।

सुमित्रियानआपओषधयः सन्तुदुर्मित्रिया
स्तस्मैसन्तुयोस्मान्द्वेष्टियञ्चवयंद्विष्मः यजु. अ.३६ मं.२३–

हे परमेश्वर (आपः) जल (ओषधयः) औषधी (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुमित्ररूपा (सन्तु) हों (यः) जो शत्रु (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करताहै (च) और (वयम्) हम (यम्) जिसशत्रुसे (द्विष्मः) द्वेष करतेहैं (तस्मै) उसकेलिये (दुर्मित्रिया) दुर्मित्ररूपा (सन्तु) हों १

पापक्षमामांगना.

यद्ग्रामेयदरण्येयत्सभायांयदिन्द्रिये यदेनश्चकृमावयमिदन्तद
वयजामहेस्वाहा यजु. अ. ३ मं. ४५

(वयम्) हमने (ग्रामे) गांवमें (यत्) जो (एनः) मनवाणीशरीरसे पर पीडारूप पाप कियाहै (अरण्ये) वनमें (यत्) जो वृक्षछेदन मृगवध आदि पापकियाहै (सभायां) सभामें (यत्) जो अनीतिआदि पापकिया (इन्द्रिये) इन्द्रिय समूहमें (यत्) जो धर्म विरुद्ध भोजन पानमैथुनादि पाप (आचकृम) किया (तत्) उस (इदम्) इस पापको (अवयजामहे) विनाश करताहूं (स्वाहा) यह हविपापनाशक देवताको दिया ॥१॥ इसमें पापक्षमा चाही अब और प्रार्थना सुनिये

तनूपाअग्नेसितन्वम्मेपाह्यायुर्दाअग्नेस्यायुर्मेदेहिवर्च्चोदाअग्ने
सिवर्च्चोमेदेहि अग्ने यन्मेतन्वा ऊनन्तन्म आपृण य०अ०३मं १७

(अग्ने) हे परमेश्वररूप अग्नि तुम (तनूपाः) जाठराग्निरूपसे देहोंके रक्षक (असि) हो (मे) मेरे (तन्वम्) शरीरकी (पाहि) रोगादिकोंसे रक्षाकरो (अग्ने) हे परमेश्वर तुम (आयुर्दा) आयुके दाता (असि) हो (मे) मुझे (आयुः) दीर्घायु (देहि) दीजिये अर्थात् अपमृत्युको दूर किजिये प्रसिद्धहै कि जबतक जाठराग्नि रहतीहै तबतक मनुष्य नहीं मरताहै (अग्ने) हे अग्नि तुम (वर्च्चोदा) तेजके दाता (असि) हो (मे) मुझे (वर्चः) तेज (देहि) दीजिये (अग्ने) हे अग्नि (मे) मेरे (तन्वा) शरीरका (यत्) जो अंग (ऊनम्) ज्ञानके अनुष्ठानमें असमर्थहै (मे) मेरे (तत्) उस अंगको (आपृणः) समर्थ कीजिये ॥२॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः
अमैरमित्रं मर्दय सामवे० खं० २ मं० १

हे (अग्ने) देव (ते) तुभ्यं (नमोगृणन्ति) नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति किमर्थम् (ओजसे) बलायके (कृष्टयः) मनुष्याः यजमानाः कृष्टिरिति मनुष्य नाम निघण्टु त्वंच (अमैः) बलैः (अमित्रं) शत्रुम् (अर्दय) नाशय.

भाषार्थः । हे अग्निदेव मनुष्य यजमान तुझको नमस्कार करते हैं बलवान होनेको और तुम अपनें बलसे हमारे शत्रुओंको नाश करो.

अग्ने रक्षाणो अꣳहसःप्रतिस्म देव रीषतः
तपिष्ठै रजरो दह साम०१प्र०१अ०३म०८खं०

हे (अग्ने) त्वं (नः) अस्मान् (अंहसः) पापात् (रक्षा) पाहि अपिच हे (देव) द्योतमानाग्ने (अजरः) जरारहितस्त्वं (रीषतः) हिंसतः (शत्रून्) (तपिष्ठैः) अतिशयेनतापकैस्तेजोभिः (प्रतिदहस्म) भस्मीकुरु

भाषार्थः— हे अग्निरूप परमेश्वर तुम हमको पापसे रक्षाकरो हे दीप्तयुक्त जरा रहित अग्नि तुम शत्रुओंको मारतेहुए बडे तपानेवाले तेजोंसे शत्रुओंको भस्म करदो

आ नो अग्ने वयो वृधꣳ रयिंपावक शꣳस्यम्
रास्वाचन उपमाते पुरुस्पृहꣳ सुनीतीसुयशस्तरम्
साम० प्र० १ अ० १ खं० ४ मं० १०

(अग्ने) हे परमेश्वर (पावक) शुद्धकरनेवाले पापहर्ता पापदूरकरनेसेही परमेश्वरका नाम पावकहै (वयोवृधं) अन्नके वढानेवाले (शस्यं) स्तुतिवाले (रयिं) धनकूं (नः) हमारेवास्ते दीजिये और लाकर और (उपमाते) हमारे समीप प्रगट करिये हे ईश्वर (नः) हमको (सुनीती) अच्छेमार्गसे (पुरुस्पृहं) बडेश्रेष्ठ (सुयशस्तरम्) अच्छे यश कीर्तिधनको (रास्व) दीजिये और देखिये.

अग्नेनयसुपथाराये अस्मान्विश्वानिदेव वयुनानिविद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनोभूयिष्ठांतेनम उक्तिंविधेम
यजु० अ० ४० मं० १६

इसके अर्थ सत्यार्थ प्रकाश पृ०१८५ पं०२१म स्वामीजीने यों लिखे हैं हे सुखके दाता प्रकाश स्वरूप सबको जाननेहारे परमात्मन् आप हमको श्रेष्ठ मार्गसे संपूर्ण

प्रज्ञानोंकी प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिल पापाचरणरूप मार्गहै उससे पृथक् कीजिये इसीलिये हम लोग नम्रता पूर्वक आपकी स्तुति करतेहैं कि आपहमें पवित्र करैं (यह स्वामीजीका अर्थही इस बातकी सिद्ध करताहै कि ईश्वर पाप दूर करता है इस दयानंदजीके लेखसे स्वयंही उनका लेख खंडित होताहै हम क्या करैंगे वेद-में सब स्तुति सार्थ हैं स्तुति जिस२गुणसे करीजातीहै सो सोगुण और कार्य अवश्य होताहै नहीं तौ निराकारताको जलांजलिदे बैठो क्यों विधि निषेध करतेहौ और निराकारता निर्गुणता स्तुतिको सार्थ मानोगे तौ साकारता साधक स्तुतिने क्या पापकियाहै यदि वेदमें स्तुति निरर्थक मानोगे तौ सार्थक क्या रहैगा और सुनो

एवैवापागपरेसन्तुदूढ्योऽश्वायेषांदुर्युजआयुयुज्रे॥इत्थायेप्रागु परेसन्ति दावने पुरूणि यत्रवयुनानिभोजना ऋ० मं०१० सू ४४

पदार्थः । ईश्वर कहताहै हे मनुष्यो (एवैव) इसीप्रकार (दूढ्यः) स्तुति प्रा-र्थना नहीं करनेवाले दुर्बुद्धि (अपरे) और यज्ञ नहीं करनेवाले (अपाग) नर-क जानेवाले (सन्तु) हों (एषाम्) जिन स्तुति प्रार्थना और यज्ञ न करने-वालोंके (अश्वाः) इन्द्रियरूप घोड़े (दुर्युजः) प्रबल जो साधनेमें न आवैं (आयुयुजे) रथोंमें युक्त होते हैं और (इत्था) इसी प्रकार वे स्वर्गको जाते हैं और उनके सब पाप दूर होजातेहैं (ये उपरे) जो यज्ञकरनेवाले (प्राक) मरणसे पहले (दावने) मुझ ईश्वरकूं हवि देनेकूं (सन्ति) उद्यत होते हैं (यत्र) जिन यज्ञोंके करनेवालोंमें (वयुनानि) प्रज्ञान (भोजना) भोग करने योग्य धन (पुरूणि) बहुतसे मेरे अर्पणके लिये होते हैं ॥

यह परमेश्वरकी आज्ञाहै योगी लोग उसीके भरोसे योग साधते हैं कुछ स्वामी जीकेसी गपोड़: वा धनके इकट्ठा करनेके उद्योगमें नहीं लगे रहतेहैं जब मनुष्य शुद्ध होताहै तब दूसरेको शुद्ध उपदेश देसक्ताहै अब और देखिये प्रार्थना यजुः अ० ३६ मंत्र २३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्पश्येमशरदःशतञ्जीवे मशरदःशत ँ शृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदःशतम दीनाःस्यामशरदःशतम्भूयश्चशरदःशतात् २३

संमाधि मूर्तिव्यापकं परमेश्वरं प्रार्थयति (तत्) (देवहितम्) देवानां हितं प्रियं (चक्षुः) परमेश्वरस्य चक्षुरूपं (शुक्रम्) सूर्यरूपं ब्रह्म श० ४ ३ १ २६ (पुर-

स्तात्) पूर्वस्यांदिशि (उच्चरत्) उच्चरति उदेति तं (शतं) (शरदः) पूर्णायुपर्यंतम् (पश्येम) (शतंशरदः (पूर्णायुपर्यन्तम् (जीवेम) अल्पानां निवृत्ति रस्त्वित्यर्थः (शतं शरदः) पूर्णायु पर्यंतम् भगवच्चरितानि (शृणुयाम) शतं शरदः) पूर्णायुपर्यन्तम् (प्रब्रवाम) भगवदवतारचरितानि कथयाम (शतं शरदः) पूर्णायुपर्यन्तम् (अदीनाः) (स्याम) (शतात् शरदः) पूर्णायुपर्यपि (भूयः) योगशक्त्या बहुकालं जीवेम २३ ॥

भाषार्थः समष्टि मूर्त्तिव्यापक परमेश्वर की प्रार्थना है वह देवताओंका प्रियपरमेश्वरका चक्षु सूर्यरूप ब्रह्म पूर्वदिशामें उदय होताहै उसको हम पूर्णायुपर्यन्त देखैं पूर्णायुपर्यन्त जीते रहैं अर्थात् अकाल मृत्युकी निवृत्ति हो पूर्णायुपर्यन्त भगवत् चरित्रा को सुनै पूर्णायुपर्यन्त परमेश्वरके अवतारचरित्रोंको कथन करें पूर्णायुपर्यन्त अदीन रहूं तथा योग शक्तिसे पूर्णायुसे भी अधिक जियें २३ ॥

इस मंत्रमें परमात्माका गुण कहना सुन्ना आदि वर्णन कियाहै फिर क्या इसमें भरोसा नहीं आया और (सनो वन्धु०) जब वह हमारा वन्धु उत्पन्न करता पालन कर्त्ता हैं तौ हम उसपर क्यों न भरोसा करैं और क्यों न हमको फलवोह देगा और जो किया जाय सो कर्म ईश्वरकी स्तुति स्वामीजी भाँडके समान करना व्यर्थ बतातेहैं स्तुति करना भी कर्महैं और जब कर्महैं तौ अवश्य उसका कुछ फल होगा स्तुति करना कभी व्यर्थ नहीं वेदोंमें शतशः प्रार्थना विद्यमानहैं ॥

स० पृ० १८८ पं० ११ (में स्वयं पाप दूरही नामान्ते हैं यथा)

सर्वाज्ञादि गुणोंके साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेषरूप गन्ध स्पर्शादि गुणोंसे पृथक् मान अति सूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ स्थित होजाना निर्गुण उपासना कहाती है इसका फल जैसे शीतसे आतुर पुरुष का अग्निके पास जानेसे शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुणकर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं इस्से उसकी प्रार्थना उपासना अवश्य करनी चाहिये पुनः पृ० १८७ पं १४ में लिखा है उपासना शब्दका अर्थ समीप होना है अष्टांगयोग से परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो जो काम करना है वह सब करना पुनः पृ०१८७पं०२९नित्य प्रति जप किया करै पुनः पृ० १८८ पं०१ अपने आत्माको परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे ॥

समीक्षा । स्वामीजीकी परस्पर विरुद्धताको कहांतक लिखैं और गिनावैं सत्यार्थ प्रकाश सारा ग्रंथही परस्पर विरुद्धतासे भरा पड़ा है कहीं तौ कुछ लिखा है और

कहीं कुछ लिखा है सर्वज्ञादि गुण सहित उपासनाको जब सगुण माना है और रूप रस गन्ध स्पर्शसे अलगको निर्गुण उपासना कही है तौ इस्से यही सिद्ध होताहै कि सगुण उपासनामें स्पर्श रूप रस गंध होतेहैं और यह गंध स्पर्शादि अवतारमें वन सक्तेहैं स्वामीजीने निर्गुण उपासनामें स्पर्श रूपादिका निषेध किया है सगुणमें तौ सर्वज्ञादि होनेसे रूपादि सबही आगये अतएव परमेश्वर का रूप भी स्वामीजीके क- कथनसेही सिद्ध होगया और उपासनाके अर्थ समीप होनेके लिखेहैं यह भी सगुणमेंही वन सक्ता है क्योंकि उसकी कोई मूर्त्ति बनाकर उसमें अनेक प्रकारके गुणारोपण कर उसके निकट वा समीप वैठकर स्तुति प्रार्थना करना इसीसे समीप हो सक्ता है निर्गुणमें यह बात कैसे वन सक्ती है क्योंकि जब उसमें रूपादि नहीं गुण नहीं तौ उसके समीप कैसे होसक्ता है वह तौ शून्य होगया यदि कहो सर्व व्यापक हो- नेसे वह निर्गुण है तौभी नहीं वनसक्ता क्योंकि सर्वव्यापकता भी एक गुण है और जिसमें गुण हो वह सगुण और जो व्यापक मान्ते हो तौ उपासनासे समीप स्थहो नाकैसा वो हतौ सदां सवही के समीपहै समीप क्या बाहर भीतर वर्त्तमान हैं इस्से दयानंदजी निर्गुण अवस्थामें ईश्वरको शून्यत्त्वसे युक्त करते है जिस्से विदित होता है कि उस अवस्थामें ईश्वर नाम मात्र है और जिसमें सर्वज्ञादि गुण स्पर्श रूपादि कुछ भी नहीं वह प्रत्यक्ष कैसे हो सक्ता है इस्से उपासना सगुणमें वनैगी और मूर्त्ति पूजन भी इस्से सिद्ध होता है ॥

अरंदासोनमीढुषेकराण्यहंदेवायभूर्णयेऽनागाः ॥
अचेतयदचितोदेवोऽअर्य्योगृत्संरायेकवितरोजुनाति ॥

ऋ० मं० ७ अनु० ५ सू० ८६ मंत्र ७ ।

पद । अरम् दासः न मीढुषे कराणि अहम् देवाय भूर्णये अनागाः अचेतयत् अ- चितः देवः अर्य्यः गृत्सम् राये कवितरः जुनाति ॥

इस स्थानमें न शब्दके अर्थ की मंत्रोंमे व्यवस्था करनेवाले निरुक्तको भी समझना चाहिये ॥

प्रतिषेधार्थीयःपुरस्तादुपचारस्तस्ययत्प्रतिषेधति ॥
उपमार्थीयउपरिष्टादुपचारस्तस्ययोपमिमीते ॥

नि अ० १ पा० २ खं० १ ।

यत्प्रतिषेधति तस्यपुरस्तात् प्रतिषेधार्थीयो नशब्द इत्युपचारः येनोपमि मीतेस्तस्योपरिष्टात् उपमार्थी योनशब्द इत्युपचारः यह अन्वय है भावार्थ यहहै कि

जिस अर्थका निषेध करतेहैं तिसवाचकके पदसे यदि पूर्व न कार हो तौ प्रतिषेध अर्थ वालाहोताहै मंत्रमें और जिसकी उपमा दीजातीहै तद्वाचक शब्दसे यदि नकार पश्चात् होतौ उपमा अर्थमें नकार होता है यह नियम बहुधा मंत्रोमेंहीहोताहै ॥

मंत्रार्थः । अनागा अहं भूर्णये मीढुषे देवाय अरं कराणि दासौन दास इव निषिद्धा चरण वर्जितमें दासवत् देवके अर्थ अलंकार करताहूं (भूर्णये मीढुषे) वोदेव बहुत सीं धनकी वृद्धि करनेवाले हैं जैसें स्वामीका सेवक स्रक्चंदन वस्त्रादिसे अलंकार करताहै तद्वत्मैं भी बहुत धनदेनेवाले देवको अलंकार करता हूं इसमंत्रमें दासकी उपमा अहं शब्दार्थ करता को दीगई है, और दास शब्दसे परे नकार है तिससे उपमार्थ में है इसमंत्रमें देवकू अलंकार करना लिखाहै, और विना समीपहुए अलंकार नहीं होसक्ता समीपस्थ होनाउपासनासे युक्त है और निराकारमें अलंकारादि करना असंभव है इस्से प्रतिरूप आधारमेही देवपरमात्माके अलंकारादि हैं और उपासना भी तभी हो सक्ती है (प्रश्न) इसमंत्रमें तौ आचार्यादि देवता मानकर उनकाअलंकार कहाहै कुछ प्रतिमामे अलंकार नहीं कहा (उत्तर) इसका उत्तर यह श्रुति ही देती है (अचेतयदचितो देवोअर्य्य) स्वामीदेव अचेतनो को चेतन करता है अपने जीवरूपसे प्रवेश करके (राये गृत्सं कवितरेजुनाति) इसप्रकार धनकी प्राप्तिके अर्थप्राणके भी प्राण रूपदेवको अत्यन्त बुद्धिमान (जुनाति) आश्रय करता है इस मंत्रमे प्रतिमामें परमेश्वरपूजन को काम्य कर्मता प्रतीत होतीहै, और आचार्य यद्यपि पूजनीय है परन्तु वह अचेतनोको चेतननहीं करसक्ता जीवरूपसे प्रवेशकर इस्से उपासना सगुणमें वन्ती है औरस्वामीजीने इतना फल तौ माना है कि परमेश्वरके समीप होनेसे सबःदुख दूर होजाते और परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावके समान जीवके गुण कर्म स्वभाव होजातेहैं उसकी समान पवित्रहोजाते हैं (और पूर्व लिखाहै कि वह स्तुति प्रार्थनासे पाप क्षमानहीं करता कैसा अंधेरहै) और यहां कहा कि ईश्वरकी बराबर गुण कर्म स्वभाव जीवके होजातेहैं जीव और ईश्वरके जब गुण कर्म स्वभाव एकसे हुए तौ अंतर कैसा जो वस्तु एकसी रंग रूपमें हों उनमें अंतर कैसा "अथोदर मन्तरं कुरुते अथत तस्य भयं भवति द्वितीया द्वै भयंभवाति वृ० उ० जो ब्रह्म और जीवमें थोड़ा भी भेदकरताहै उसको भयप्राप्त होताहै क्योंकि दूसरेसे भयप्राप्त होताहै और इसीसे यजुर्वेदके ४० अ. १७ मं० योसावादित्ये पुरुषः सोसावहम् " जो यह आदित्यमे पुरुषहै मों मैंहूं इत्यादि जीव ईश्वरमे एकता बोधक बहुत श्रुति है फिर पाप दूरहुए विना गुणकर्म स्वभाव समान कैसे होसक्तेहैं, इस्से भी पापदूर हो ना स्वयं सिद्धहोताहै फिर लिखाहै नित्यप्राति जपकरै फिर लिखाहै ईश्वरके भरोसें रहना मूर्खताहै अब यहां लिखा अपने

आत्माको समर्पित करदे, इत्यादि विरुद्धबातोंसे प्रतीत है कि स्वामीजीनें गहरीभंग पीकर सत्यार्थप्रकाश बनायाहै, अब सबका सारांश यहहै कि गीतामें श्रीकृष्णजी कहतेहैं

सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज ॥
अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः ॥ भ० गी०

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि और सब धर्मों को छोड मेरी शरणमें प्राप्त हो तौ में तुझै सबपापोंसे छुडा दूंगा इस्सेही सबकुछ समझलेना चाहिये-इति ॥

जीवपरतंत्रप्रकरणम्

सत्या० पृ. १९२ पं १२ (प्रश्न) जीव स्वतंत्रहें वापरतंत्र (उत्तर) अपने कर्त्तव्य कर्मोंमें स्वतंत्र और ईश्वरके व्यवस्था में परतंत्र है जो स्वतंत्र हो उसको पुण्य पापका फल प्राप्तनहीं हो सक्ता पुनः पं २९ जीवकाशरीरऔर इन्द्रियोंकें गोलक परमेश्वरकेबनायें हें पुनः पृ. १९४ पं १० जीवोंके कर्मकी अपेक्षासे त्रिकालज्ञता ईश्वरमें है जैसास्वतंत्रतासे जीवकरताहै वैसाही सर्वज्ञतासे ईश्वरजान्ताहै, जैसा ईश्वर जान्ताहै वैसाही जीवकरताहै, भूत भविष्य वर्त्तमानके ज्ञानऔर फलदेनेमें ईश्वर स्वतंत्र है और जीव किंचित् वर्त्तमान और कर्म करनेमे स्वतंत्रहै

समीक्षा स्वामीजीकीअलौकिक बुद्धिकाकहांतक ठिकानालगाया जाय यह लेखकि कर्त्तव्य कर्मोंके करने में स्वतंत्र और ईश्वरकी व्यवस्थामें जीव परतंत्रहै फिर लिखा है जो जीवकर्त्ता है वोह ईश्वर सर्वज्ञतासे जान्ता जब कि जीवके कर्मोंके करने की त्रि-कालज्ञता ईश्वर में है, तौ जीवके कर्म स्वतंत्रताके कबहो सक्तेहैं, क्यों कि जोजो वोह कर्म करैगा सो तो ईश्वर सर्वज्ञतासे पहलेहीजानचुकाहै वास्तवमे जीव कर्म करनेमें तथा पाप पुण्यकाफल भोगनेमें सर्वथा परतंत्र अर्थात अपने पूर्वकर्मानुकूल ईश्वराधीनहै, जबकि स्वामीजीकेलेखानुसारजीवजैसा कर्म करैगा ईश्वरनें पहलेही अपनी सर्वज्ञतासे जानरक्खा है तौ जीवकर्म करनें में स्वतंत्र कहां रहा, क्योंकि जैसा ईश्वरने अपनी सर्वज्ञतासे जानाहै उसके विरुद्ध करही नहीं सक्ता, यदि स्वामीजी कहै कि करसक्ताहै तौ ईश्वरका ज्ञान अन्यथा हुआ, सो असम्भवहै इस्से अच्छीतरह सिद्ध होगया कि जीव कर्म करनेमें किसी प्रकार, स्वतंत्र नहीं, किन्तु जैसे ईश्वरने अपने ज्ञानसे जान रक्खा है उसीके आधीन है और जैसा स्वामीजीने पृ० १९२ पं० २५ में लिखा है कि पापफल भोगनेमें परतंत्र है, स्वामीजी यही कहेंगे कि पुण्यका फल भोगनेमें स्वतंत्र और इस्से यही ध्वुनि निकलती है कि पापकर्म तौ परतंत्रतासे भोगने पडेंगे तौ पुण्यफलमें स्व-तंत्र हुआ चाहै, ग्रहण करै वा नहीं, सो इसमें भी जीव स्वतंत्र नहीं हो सक्ता तौ दयानंदजी यही कहेंगे कि पुण्यका फल सुख है और उसका ग्रहण और त्याग जीवके

आधीन है अर्थात् देवदत्तको उसके पुण्यादि अनुकूल धनादिककी प्राप्ति हुई उसके ग्रहण और त्यागमें वोह स्वतंत्र है, में कहताहूं ग्रहण और, त्यागमेंभी जीव स्वतंत्र नहीं क्योंकि ग्रहण और त्याग कर्म है और हम अभी स्वामीजीके इस लेखानुसारकि (जीव जैसा करैगा ईश्वर पहले हीसे जान्ता है) सिद्ध कर चुकेहैं, कि जीव किसीप्रकार कर्म करनेमें स्वतंत्र नहीं फिर जब कि देवदत्तको पुण्यानुकूल ईश्वरनें किसीप्रकारका भोग नियत किया है और स्वामीजीके मतानुसार कि (अपने सामर्थ्यानुकूल कर्मोंके करनेमें स्वतंत्र है) वोह उसको न भोगै अर्थात् त्यागकर देतौ जीव ईश्वरसे प्रबल ठहरा, अथवा स्वामीजीके मतमें कोई शैतानका प्रपितामह है जो ईश्वरके नियमित कार्यको बलात्कार्य जीवसे विरुद्ध करावे ध्यान रहे कि जिसके लिये उसके कर्मानुकूल ईश्वरने जो भोग नियत किया है वोह उसको अवश्य भोगैगा उसके विरुद्ध कदापि किसी प्रकार नहीं हो सक्ता, यदि कहो कि यह बात प्रत्यक्षहै कि जो पदार्थ हमारे पास है जब चाहैं दूसरेको दे सक्तेहैं, वा उसका त्याग कर सक्ते हैं इस्से जीवका पुण्योंके फल भोगनेमें स्वतंत्र होना स्पष्ट है, तो उत्तर यह है कि किसी पदार्थका दूसरेको देना वा त्यागकरना जीवके आधीन नहीं है, किन्तु जिसकालतक जिस पदार्थका परमात्माने जिसकेपास रहना वा भोग नियत किया है, उसकालतक उसकेपासको रहना वा भोगना अवश्य होगा, और जिस कालमें उसके द्वारा दूसरोंको दिया जाना वा त्याग करना नियत किया है, तभी दूसरेको देना वा त्याग करना होगा, प्रत्यक्ष देखा जाता है प्रायः मनुष्य धनवान होतेहैं, परन्तु उस धनको अपने भोजन वस्त्रमेंभी यथोचित व्यय नहीं करते, और अपने पुत्रादिकोंकोभी दुःखी करतेहै इस्से यही जाना जाता है कि ईश्वरनें उनके लिये उस धनका भोगना नियत नहीं किया है केवल रक्षकही किया है, जब कि यह बात है तौ किसी पदार्थका दूसरेको दे दैना वा त्यागकर देना जीवके आधीन कहां है, दूसरेको कोई पदार्थ हम उसीसमय दे सक्ते है जिससमय परमात्माने उसके प्रारब्धमें उस पदार्थकी प्राप्ति नियतकी हो, और त्यागभी हमसे तभी होगा जब कि हमारे प्रारब्धमें उसका त्याग हौना नियत है, और प्रायः पुण्यफल इस प्रकारके है कि उनका किसीको दे दैना वा त्याग करनाही नहीं होसक्ता, जैसा कि उत्तम वंशमें उत्तम होना, शरीरका रोगरहित होना विद्या बल बुद्धि ज्ञान संततिका होना, तथाच सत्यभाषण धर्मानुष्ठान परोकारादि सद्गुणोंसे कीर्तिका होना अपने अनुकूल कार्योंकी उन्नति देख वा सुनकर आनन्दकी प्राप्तिका होना, स्वर्गादिक उत्तम लोकोंका प्राप्त होना, इत्यादि जो पुण्यके फल हैं इन्है न कोई दूसरेको देसक्ताहै नपासकता है, जबतक जिसके भोगमें भोगना है भोगैगा और जिसमय दूसरेको दैना होगा दे देगा, इस्सै सिद्ध है पुण्योंकेफल भोगनेमेंभी जीव स्वतंत्र नहीं किन्तु अपने

कर्मानुकूलईश्वराधीन हीहै और यह तो स्वामीजी स्वीकार करचुके हैं किपापोंकि भोगनेमें जीव पराधीन है फिर यह लिखा किकर्मोंके फलभोगने (पुण्योंके) तथा करनेमें स्वतंत्र है उन्हीके लेखके विरुद्ध है (प्रश्न) जब कि हम कर्म करनेमें परतंत्र हैं तो फिर कर्मोंका फल हमको नहोना चाहिये किन्तु ईश्वरही को होनाचाहिये (उत्तर) विद्यमान शरीरसे जोजो कर्मकिये जाते तथासुख दुःख भोगे जातेहैं वेसव अपनेही पूर्वकर्मोंके अनुकुल होतेहैं जैसे चोरको उसीके कर्मानुकूल राजा बन्दी ग्रहमें रखताहै और उससेचक्की पीसना आदि कर्मभी कराता है इसी प्रकार अस्मदादिकोंके पूर्वकर्मानुकूलही ईश्वर उन कर्मोंको हमसे करताहै और फलोंकों भुगवाताहै, यद्यपि जीव कर्म करनेमे सर्वथा परतंत्रहैं परन्तु जबकि ईश्वर उसीके पूर्वकर्मानुकूल क्रियमाण कर्मको कराताहै (अर्थात्‌जो पहली बुरीवासना चित्तमें है तो वोही बुरी वासना यें उससे बुराकर्म करातीहैं) तो इनका फलभी अवश्य पुनःजीवको होना चाहिये, ईश्वरपर लेशमात्र भी दोषनहीं आता है जैसे किकोई किसीको मारडाले तो उसका मारना स्वतंत्रतासे नहीं हो सक्ता किन्तुउसके कर्मोंनें उसे मारडालने की प्रेरणा कराई और नहीं तो जान बूझकर कौन पैरमें कुल्हाडी मारताहै और मरनेवालाभी कर्मानुसार मरा अथवा जैसा बीज वैसा ही पेड होताहै, तदनुसार फूल फल लगतेहैं इसीप्रकार पूर्वकर्मकी वासनानुरूप सब यह जीव कर्म करताहै, ईश्वरपर दोष नहीं आसक्ता (प्रश्न) यदि जीव अपने पूर्वकर्मानुकूल कर्म करनेमे परतंत्रहै तो उपदेश करना वृथाहै क्योंकि ईश्वरनें जिसके लिये जो कर्मकरना नियत कियाहै वोह अवश्य वोही करैगा इस्से विरुद्ध तो करनहींसक्ता (उत्तर) निसन्देह ईश्वरने जो जिसके लिये उसके पूर्वकर्मानुकूल जोकर्म करना नियत कियाहै वोह अवश्यही करैगा उसके विरुद्ध कदापि कुछ नहीं करसक्ता वस जिसके लिये उपदेश करना नियत कियाहै, वोह उपदेश करताहै और जिसके लिये सुनना नियत कियाहै वोह सुन्ताहै वोहसुनाताहै जिसके लिये स्वीकार करना नियत कियाहै वोह स्वीकार करता है निदान इसीप्रकार प्रत्येक जीव जो जो कर्म करताहै ईश्वराधीन होकर अपने पूर्वकर्मानुकूलही करताहै, किसीकर्म के करनेमें कोईभी किसीप्रकार स्वतंत्र नहीं अवजीवों के परतंत्र होने में वेदादिशास्त्रोंकाप्रमाण दियाजाताहै

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहिधियोयोनःप्रचोदयात्

यहमंत्र चारों वेदोंमें आयाहै संक्षेपार्थ यह है कि उस जगत् प्रकाशक सविता देवताके वरणीय प्रकाशको हम ध्यान करतेहैं जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरणाकरताहै किसी कर्मके करनेमें हम स्वतंत्र नहीं किन्तु अपने कर्मानुकूल सर्वथाईश्वराधीन हैं

शंकराचार्य रामानुजाचार्यप्रभृत्य तथा सायनाचार्य (प्रचोदयात्) पदकाअर्थ (प्रेरयाति)ही करते है परन्तु स्वामीजीनें इसको प्रार्थनापर लगायाहै और (प्रचोदयात्) कृपाकरकै सब बुरे कर्मोंसे अलग करै सदा उत्तम कर्मोंमें में प्रवृत्तकरैयदि स्वामीजीका यह गडबड अर्थ भी मान लैतोभी जीवकी परतंत्रताकहींगई क्योंकि स्वामीजी आप लिखते है किपरमेश्वर हमारी बुद्धियोंको कृपाकरके सब बुरेकामोंसे अलग करै सदा उत्तम कर्मोंमें प्रवृत्तकरै यादि कर्मोके करनेमें जीव स्वतंत्र होते तौ अपनी बुद्धियोंको बुरेकामोंसे हटाने और उत्तमकामोंमेंलगानेकी परमात्मासे प्रार्थना क्यों करते जिस कामको मनुष्य आप नहीं करसक्ता उसीके लिये दूसरेसे प्रार्थना किया करताहै और जिस कामके करनेमें आप समर्थ होताहै उसके लिये कभी किसीसे प्रार्थना नहीं करता अबदेखिये श० का १४ अ६

यःसर्वेषुभूतेषुतिष्ठन्सर्वेभ्योभूतेभ्योऽन्तरेण्य ᳪ सर्वा णिभूतान्यन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥ १॥

यः प्राणेतिष्ठन्प्राणादन्तरोयंप्राणोनवेदयस्यप्राणःशरीरं यः प्राणमन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥ २॥

योवाचितिष्ठन्वाचोन्तरोयंवाङ्नवेदयस्यवाक्शरीरं योवाचमन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥ ३॥

यश्चक्षुषितिष्ठ ᳪ श्चक्षुषोन्तरोयंचक्षुर्नवेदयस्यचक्षुः शरीरंयश्चक्षुरन्तरोयम यत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥ ४॥

यः श्रोत्रेतिष्ठञ्छ्रोत्रादन्तरोय ᳪ श्रोत्रंनवेदयस्यश्रोत्र ᳪ शरीरं यः श्रोत्रमन्तरोयमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ ५॥

योमनसितिष्ठन्मनसोन्तरोयंमनोनवेदयस्यमनःशरीरं योमनोन्तरोयमयत्येषत आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ ६॥

यस्त्वचितिष्ठ ᳪ स्त्वचोऽन्तरोयंत्वङ्नवेदयस्यत्वक्शरीरं यस्त्वचमन्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः॥ ७॥

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयं यआत्मानोऽ न्तरोयमयत्येषतआत्मान्तर्याम्यमृतः

अर्थ यहहै (यह सर्वेषु भूतेषु) अर्थात् जो सब भूतोंमें स्थित होता हुआ सबसे पृथक् है जिसको सब भूत नहीं जान्ते जिसके सब भूतशरीर हैं जो सब भूतोंके अन्त॰

वर्ती होकर उन्हें नियत करता है वोही अमृत स्वरूप परमात्मा तेरा अन्तर्यामी है
इसी प्रकार शेष श्रुतियोंका अर्थ बुद्धिमान (प्राण वाक् चक्षुः श्रोत्र मन त्वक् आत्मा) इनका अर्थ विचार सक्ते हैं इनश्रुतियोंसे यहां तक सिद्ध होगया कि प्राण वाक् चक्षुः श्रोत्र मन त्वक् और आत्मासे जो जो क्रियाहोतीहै वोह सब ईश्वराधीनही होतीहै जीव स्वतंत्रतासे कोईभी क्रिया नहीं करसक्ता पुनः बृहदारण्यउपानिषद्में

यःप्राणेन प्राणिनि सतआत्मा सर्वान्तरोयोऽपानेनापानितिसत आत्मा सर्वान्तरो यो यो व्यानेन व्यानिति सतआत्मासर्वान्तरो य उदानेनोदानिति सत आत्मा सर्वान्तर एषत आत्मा सर्वान्तरः १

इसपर स्वामी शंकराचार्यजी भाष्य करते हैं

यःप्राणेनमुखनासिकासंचारिणाप्राणितिप्राणचेष्टांकरोति येन प्राणः प्रणीयत इत्यर्थः सतेतवकार्यकारणस्यात्माविज्ञानमयः समानमन्य योऽपानेनापानितिव्यानेनव्यानितीतिसर्वाः कार्यकरणसंघातगताः प्राणनादिचेष्टादारुयंत्रस्येवयेनक्रियन्तेनहिचेतनावदनधिष्ठितविलक्षणेनदारुयंत्रंतत्प्राणनादिचेष्टाप्रवर्त्तते

आशय यह है कि जैसे काठकी पुतली आप कुछ भी चेष्टानहीं करसक्तीउस्से जो जो चेष्टा होतीहै किसी चेतनके द्वारा होतीहै इसीप्रकार मनुष्य स्वतंत्रतासे कोई चेष्टा नहीं करसक्ता जो जो चेष्टाकरता है परमात्माधिष्ठितही होकर करताहै पुनः तत्रैव.

सर्वस्यवशीसर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः

परमात्मा सबको वशमें रखनें वालाहै सबका ईशान है सबका अधिपति है कठोपनिषद्में लिखाहै (एकोवशी सर्व भूतान्तरात्मा) सबको वशमें रखनेंवाला सब भूतोंका अन्तरात्माहै और श्वेताश्वतरोपनिषद्में लिखा है

एकोदेवःसर्वभूतेषुगूढःसर्वव्यापीसर्वभूतान्तरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्च.

अर्थात् एक देवता परमेश्वर सबभूतोंमें छुपा हुआहै, वोह सर्वव्यापीहै और सब जीवोंका प्रेरकहै कर्मोंका अध्यक्षहै सर्व भूतोंमें उसका निवास है सर्वद्रष्टा है सबको चेतनादेनेंवालाहै अर्थात् सबकी स्थिति प्रवृत्ति उसीके आधीन है पुनः कौशीतकी उपनिषद्में लिखाहै.

एषह्येवसुकर्मकारयतितंयमेभ्योलोकेभ्यउन्निनी
षतएषउएवासाधुकर्मकारयतितंयमधोनिनीषते

अर्थात् वोही सुकर्म कराताहै उसको जिसको ऊपरलेजानेंकी इच्छा करता है और वोही पापकर्म कराता है उसको जिसको नीचे लेजानेंकी इच्छा करताहै उसके कर्मानुसार और गीतामें लिखाहै कि

ईश्वरः सर्वभूतानांहृद्देशेर्जुनतिष्ठति
भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया भ०गी०

हे अर्जुन ईश्वर सबभूतोंके हृदयमें विराजमान होकर अपनीमायासे उनकूं कर्मनुसार कलकी पुतलीकी तरह घुमाता है पुनः महा भारते.

धात्रातुदिष्टस्यवशेकिलेदंसर्वंजगच्चेष्टतिनस्वतंत्रम्

अर्थात निश्चय ईश्वर नियमित प्रारब्धके वशमें स्थित यह संपूर्ण जगत चेष्टा करताहै स्वतंत्र नहीं है पुनः सभापर्वणि ५१ अ० ५७

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ।
ईश्वरस्यवशेलोकास्तिष्ठंतेनात्मनोयथा ॥ २१ ॥
धातैवखलुभूतानांसुखदुःखेप्रियाप्रिये ।
दधातिसर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन् ॥ २२ ॥
यथादारुमयीयोषानरवीरसमाहिता ।
ईरयत्यंगमंगानितथाराजन्निमाःप्रजाः ॥ २३ ॥
आकाशइवभूतानिव्याप्यसर्वाणिभारत ।
ईश्वरोविदधातीहकल्याणंयच्चपापकम् ॥ २४ ॥
शकुनिस्तंतुबद्धोवानियतोयमनीश्वरः ।
ईश्वरस्यवशेतिष्ठेन्नान्येषानात्मनःप्रभुः ।
मणीसूत्रइवप्रोतोनस्वोतइवगोवृषः ॥ २५ ॥
धातुरादेशमन्वेतितन्मयोहितदर्पणः ।
नात्माधीनोमनुष्योयंकालंभजतिकंचन ॥ २६ ॥
स्रोतसोमध्यमापन्नःकूलाद्वृक्षइवच्युतः ।

अज्ञोजंतुरनीशोयमात्मनःसुखदुःखयोः ।
ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्स्वर्गंनरकमेवच ॥ २७ ॥
यथावायोस्तृणाग्राणिवशंयांतिबलीयसः ।
धातुरेववशंयांतिसर्वभूतानिभारत ॥ २८ ॥

अर्थ इस विषयमें पुरातन इतिहास कहते हैं जिसप्रकार जीवईश्वरके वशमें रहते हैं नकि अपनें २१ निश्चय सबका स्वामी ईश्वरही पूर्वकर्म बीजके अनुसार प्राणियोंको सुखदुःख और प्रिय अप्रियको नियत करता है २२ हे नरवीर जिसप्रकार काष्ठकी पुत्तली सूत्रधारके हाथमें स्थापित की हुई अंग को हिलाती है,उसीप्रकार यह प्रजा ईश्वरसे प्रेरित हस्तपादादि अंगोंको प्रचलित करतीहै २३ हे भरतवंशी वोह ईश्वर आकाशके समान प्राणियोंको व्याप्त करकेउनके शुभाशुभ कर्मोंको इस लोकमें नियत करताहै २४ निश्चय यह असमर्थ जीव तन्तुबद्ध पक्षीकी समान ईश्वरके वशमें स्थित है, न दूसरोंकेमें और आप अपनें आत्माका स्वामी नहीं है मणि सूत्रकी समान पिरोया हुआहै, जैसे बैल नासिकामें सूत्रसे नाथा जाताहै २५ वोह धाताकी अज्ञापर चलता है उसके आधीन और उसके अर्पण है, यह मनुष्य स्वाधीन किसीप्रकार नहीं है, किन्तुकाल नाम ईश्वरके आधीनहै २६ अपनें सुख दुःखका न जान्नेवाला असमर्थ यह जीव ईश्वरसे प्रेरित स्वर्ग अथवा नरकको जाताहै, जैसे नदीके तटसे गिरा और उसके मध्यमें विद्यमान वृक्ष २७ हे भरतवंशी जैसे तृणोंकेअग्र बलवान वायुके वशको प्राप्त होते हैं, इसीप्रकार सब प्राणी ईश्वरके वशको प्राप्त होते हैं २८ पुनः वनपर्वणि

यद्ययंपुरुषः किंचित्कुरुते वै शुभाशुभम् ।
तद्धातृविहितंविद्धि पूर्वकर्मफलोदयम् अ. ३० श्लो २२

यह पुरुष निश्चय जो कुछ शुभाशुभ कर्म को करता है उसको पूर्वकर्मकेफल काउदय ईश्वरसे कियाहुआ जानो २२ पुनः वनपर्वणीअ ३२ श्लो० ८

वार्यमाणोपिपापेभ्यः पापात्मापापमिच्छति
चोद्यमानोपिपापेन शुभात्माशुभमिच्छति

पापात्मा पुरुष पापोंसे रोकाहुआभी पाप कर्म करता है शुभात्मा मनुष्य पापसे प्रेरित करनेंसेभी शुभकर्म करताहै पुनः उद्योगपर्व०

न ह्येवकर्तापुरुषः कर्मणोः शुभपापयोः।
अस्वतंत्रोहिपुरुषः कार्यतेदारुयंत्रवत् ॥ १४ ॥

अर्थात पुरुष शुभाशुभ कर्मोंका करनें वाला नहीं पुरुष अस्वतंत्र है काष्ठके यंत्रों कीसदृशता कर्मोंमें नियुक्त कियाजाताहै उद्योगपर्व अ १५९

एतत्प्रधानंचनकामकारो यथानियुक्तोस्मितथाकरोमि
भूतानिसर्वाणिविधिर्नियुंक्ते विधिर्बलियानितिवित्तसर्वे ४८
शांति आपद्ध० अ ३७

यह बात मुख्य है कि में इच्छाकेअनुसार कर्म करनेंवाला नहीं हूं जिसप्रकार नियुक्त कियागयाहूं उसीप्रकार करताहूं सम्पूर्णभूतोंको ईश्वर नियुक्त करता है परमेश्वर बलवान है तुमसब इसप्रकार जानो इसप्रकार जीवपरतंत्रहै

कृतप्रयत्नापेक्षस्तुविहित प्रतिषिद्धावैयर्थादिभ्यः ४२

जीव अत्यन्त पराधीन है अ०२ पा०३ और ईश्वरमें कुछ दोष नहीं आता यथाहि

सूर्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्न लिप्यतेचाक्षुषैर्बाह्यदोषैः
एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मानलिप्यते लोकदुःखेनबाह्यः
कठवल्ली० २ उ० मं० ११

जैसे सूर्य संपूर्ण लोकोंका चक्षु बाह्यदोष चक्षुमें लिप्तनहीं होता है ऐसेही सर्व भूतान्त रात्मा एकहै परन्तु लोक दुखसे आपनहीं लिप्त होताहै

भयादस्याग्निस्तपतिभयात्तपतिसूर्यः
भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावतिपंचमः ३

जिसके भयसे अग्नि तपतीहै जिसके भयसे सूर्य तपताहै, भयसे इन्द्र और वायु और पांचवीं मृत्यु दौडतीहै, तौ विचारियेकि फिर जीव कैसे स्वतंत्र रहसक्ताहै और यही आशय वेदान्त शास्त्रके अ ० २ पा ० ३ सू ० ४१ । ४२ । ४३ सूत्रमें कहा-है जैसे कि परात्तु तच्छ्रुतेः यहांसे इसका भाष्य देख लीजिये इस कारण जीव परतंत्रहै

जीवलक्षण प्रकरणम्

स ० पृ ० १९३ पं ० १२ ईश्वर और जीव दोनौ चेतन स्वरूप स्वभाव दोनोंका पवित्र अविनाशी और धार्मिकता आदिहै परन्तु परमेश्वरके सृष्टि उत्पत्ति प्रलय स्थिति सबको नियममें रखना,जीवोंके पाप पुण्योंके फल देना, आदि धर्म युक्त कर्महैं जीवके सन्तानोत्पत्ति उनका पालन शिल्प विद्या आदि अच्छे बुरे कर्महैं

समीक्षा यहक्या स्वामी लिखते २ भंग पीगये, महापरस्पर विरोधहैपहलेतौ लिखते हैं कि दौनोंही स्वभावसे पवित्र है, फिर स्वभावसे पवित्र जीव में बुरे कर्म कहां से प्रवेशकर गये और जो स्वभावसे पवित्र जीवमें बुरे कर्म प्रवेशकरगये तौ स्वभावसे पवित्र ईश्वर इस्से कैसे बच सक्ताहै, कहीं आपजीवको पवित्र कहीं पापी बताते हो यह आपकी बात गड बडी कीहै, जीव शुद्ध ही है, आपकूं उसका ज्ञान नहीं हुआ इससे ऐसा लिखा है कि जीवके सन्तानोत्पत्ति कर्महै

स० पृ० १९३ पं० १७

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुखज्ञानान्यात्मनोलिंगमिति न्या०सू० प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराःसुखदुःखेच्छाद्वेषौप्रयत्नश्चात्मनोलिंगानि वैशेषिकसू०

(इच्छा) पदार्थोंकी प्राप्तिकी अभिलाषा (द्वेषः) दुःखादिकी अनिच्छावैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहचान्ना यह तुल्यहै परन्तु वैशेषिकमें (प्राणः) प्राण वायुका बाहर निकालना (अपान) प्राणको बाहरसे भीतरलैना (निमेष) आंखको मींचना (उन्मेष) आंखको खोलाना (मन) निश्चय और अहंकारकरना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियोंका चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न २ क्षुधातृषा हर्षशोकादियुक्त होना ये जीवात्माके गुणहै, परमात्मासे भिन्न हैं, इन्हीसे आत्माकी प्रतीति करनी क्यों कि वोह स्थूल नहीं है, जबतक आत्मा देहमें होता है तभी तक यह गुण देहमें प्रकाशित रहतेहै, और जबशरीर छोडकर चलाजाताहै, तब यह गुण शरीरमें नहीं रहते जिसके होनेंसे जोहों, और न होनेसे नहों वे गुण उसीके होतेहै, जैसे सूर्य औदीपादिकके न होनेसे प्रकाशादिकका नहो ना, और होनेसे होना है वैसेही जीव और परमात्माका ज्ञानगुण द्वारा होताहै

समीक्षा मूलमंत्रसे विना सूत्रोंसे जीवके स्वरूपका निरूपण करनेंसे स्वामीजीकी वोह प्रतिज्ञा भंग होतीहै कि में मंत्र भागको स्वतः प्रमाण मान्ता हूं, कोई जीवके स्वरूपकी श्रुति लिखी होती, और यह सूत्र भी जीवके इच्छादिमान् स्वरूपके साधक नहीं किन्तु देहादि भिन्नआत्माके बोधक है, देहादिसे भिन्न आत्माके अनुमान करानेके वास्ते है, न्याय सूत्रमें आत्मनो लिङ्ग मिति यह जो वाक्य है इसका अर्थ यह है इति आत्मनो लिंगम् ऐसा अन्वय करनेंसे यह अर्थ होता है (इति) इच्छादि पूर्व उक्त आत्माके लिंग अर्थात् देहादि भिन्न आत्माके अनुमानकरानें वाले है, जैसे धूम वह्निका लिंग है, और यह नहीं कहाजाता जो धूमयुक्त है वोह वह्निहै क्यों कि

वह्नि विना धूमकाष्ठ लोह पिंडादिमें भी है, ऐसे ही इच्छादि सब आत्माके अनुमाप कहेगये तब इतनेसे यह नहीं हो सक्ता जो इच्छादिमानहै सो आत्मा है क्योंकि आत्मा सुषुप्ति समाधिमे भी है, और इच्छादि है नहीं इससे इस सूत्रमें इच्छादिगुण वाला आत्मा कहना स्वामीजीकी अविद्याहै, और वैशेषिकमें आत्मा विभुलिखाहै

विभवान्महाकाशस्तथाचात्मा वै० अ० ७ आ १ सू. २२

विभवात् अर्थात् सर्व मूर्त्त संयोग रूपविभुत्व हौनेसे आकाश (महान्) परममहत है (तथा) तैसेही सर्व मूर्तसंयोगित्वरूप विभुत्वहौनेसे आत्माभी परममहान है जब आत्मा विभु है तौ गति कैसी यदि आत्मामें यह गुणहोते तौ मुक्तिनहीं होती गौतमजीमुक्तिमें इन सबका छूटना मान्ते हैं

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदन्तरापाया दपवर्गः तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः गौ० सू० २२

दुःख जन्मकी प्रवृत्ति मिथ्या ज्ञान इनका जो अत्यन्त विमोक्ष अर्थात छुटजाना है उसीको अपवर्गकहते है और भी कहाहै "नप्रवृत्ति प्राति सन्धानायहीनक्लेशस्य" अर्थात् जिसके क्लेश छुट जाते है फिर उसकी प्रवृत्ति नहीं होतीहै फिर यदि यह आत्माके गुण होंतौ इनका अत्यन्त विमोक्ष कैसे हो सक्ता है ओर गौतमजी इनका नाश हौना मान्ते हैं गुणगुणीसे पृथक् नहीं होता यह यदि आत्माकेगुण होते तौ अपवर्गमें भी न छुटते, गौतमजी इनका छुटजानामान्ते है और यदि यह आत्माही केगुण होतौ शरीर छुटनेपरभीअपनेकुटुम्बिओंसे प्रीति, शत्रुओंसे वैरहोना चाहिये, और स्मरण बनार है खाने पीनेकी भी अशरीरमें इच्छा होवै, आंख खोलकर देखै मीचै परन्तु यह तौ कुछ नहीं होता इससे यह आत्माके गुणनही है, किन्तु देहादि भिन्न आत्माके अनुमान करानेवाले है, यह इन्द्रिय मनादिके धर्म हैं, जैसे दीपक बलनेसे घरकी सामग्री दृश्य आने लगती है, दीपनिर्वाण हौनेसे वोह सामग्री उसीकोठेमें रहती है दीपकके संग नहीं जाती, इसी प्रकार जब तक अत्मा इस देहमें प्रकाश करता है तब तक सब इन्द्रिय अपने अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं, पृथक् हौनेसे लोप हो जाती है बालकको द्वेष प्रयत्नादि नहीं होते यह लक्षण अत्माके नहीं किन्तु देह भिन्न आत्माके अनुमान करानेवालेहैं, इसके अर्थ वात्स्यायनभाष्यमें विस्तारसे लिखेहैं उसमें देखलैना यहां हम संक्षेपसे लिखते हैं

प्राणपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकारः सुखदुखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि वै० अ० ३ आ० २ सू० ४

देह मध्यवर्ती वायुके उर्द्ध्वगमनवत् रूप प्राण है, और अधो गमनवत् रूप अपान है, सो यह दोनो प्राणापान वायुचेष्टा चेतनाधीना जडचेष्टात्वात् रथ चेष्टा वत्) इससे आत्मादेहप्राणभिन्न चेतन है यह सिद्ध हुआ, ऐसेही निमेषोन्मेष व्यपारभीनियत है, सोभी चेतनका अनुमापकहै, जीवन पदसे वृद्धिहोना शरीका तथा शरीरमें घावका भरजाना यह दोनोका ग्रहण हैं, सो जीवितशरीरमें देखे जाते हैं वेभी शरीर भिन्न चेतनकेअनुमापक हैं, अनुमान प्रकार यह है (इदं शरीरसात्मकंवृद्ध्यादिमत्वात् यन्नै वंत न्नै वंयथामृत शरीरं) मनोगति अर्थात् मनका इष्टार्थ ग्राही इन्द्रियमें प्रवेश करनासो भी अत्माका अनुमापक है, जिसकी इच्छा वा सावधानता मनको प्रेरणाकरती है सो आत्माहै, अनुमान प्रकार यह है (मनो-गतिः चेतनाधीना जडनिष्ठगतित्वात् रथगतिवत्) जिस पुरुषने कभी नीबूका अचार वानीबूका स्वाद पाया है, पुनः किसीके पास नीबू देखकर उसके मुखमें जो पानी भर आवे है तिसका नाम इन्द्रियान्तरविकारहै, यह इन्द्रियान्तर विकार भी आत्माका अनुमापक है, क्योंकि आगे गौतमजी इसीप्रकार लिखते हैं

इन्द्रियान्तरविकारात् न्याय० अ० ३ आ १ सू० १२

(भाष्य) कस्यचिदम्लफलस्य गृहीतसाहचर्ये रूपे गन्धे वा केनचिदिन्द्रियेण गृह्यमाणे रसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः रसानुस्मृतौ रसगर्द्धिप्रवर्तितो दंतोदक संप्लव भूतो गृह्यते तस्येन्द्रिय चैतन्येऽनुपपत्तिः नान्यदृष्ट मन्यः स्मरति ॥

अर्थकिसी अम्ल फलक रूपमें वा गन्ध में जिस पुरुषको रसके सहचारकाज्ञानहै तिसके रसना इन्द्रियमे रसस्मृतिसे जो रसग्रहणकीइच्छा तिससे प्रवृत्त होती है तिस जल प्रस्रवण रूप विकारकी इन्द्रिय चैतन्यस्वामीजीके मतसे अनुपपत्ति है क्योंकिअन्यदृष्टपदार्थकीअन्यको स्मृति नहीं होती, यहां रस दर्शन तो रसना इन्द्रियसे हुआहै, औररसस्मृति चक्षु वा घ्राणको फलका रूप देख वा गन्धग्रहण करके कैसेहोगी, इससे इन्द्रियोंसे सर्व अर्थका ग्रहण करनेवाला आत्माभिन्नहै यह मन्तव्यहै, और सुखदुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न यह पांचो जैसे अनेकार्थ दर्शी स्थायी आत्माके अनुमापकहै, सो वात्सायनजीने अपने भाष्यमें लिखाहै विशेष इच्छा हो तो वहां देख लो गौतमजीने यह इन्द्रियोंहीके धर्म हैं लिखे हे

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् गौ० १
युगपज्ज्ञानानामुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् गौ० २
स्मृत्यनुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखादिप्रत्य

मिच्छादयश्चमनसोलिंगानि गौतमभाष्य. ३
ज्ञानायौपद्यादेकंमनः ४

भाषार्थ बुद्धिसे ज्ञानकी यथार्थता जानी जाती है, अर्थात् भला बुरा बुद्धिसे ही निर्णय होताहै १ मनमे एक समय दोबातौ का ग्रहण नहींहोताहै २ स्मृतिअनुमान आगमसंशय विचार स्वप्नज्ञानतर्क सुखादिइच्छा यह मनके लिंगहै ३ ज्ञानका विचार मनसे होताहै, क्योंकिजिस धातुसे मन शब्द सिद्धहोता है वोह मन धातुविचार में वर्तेहै, विनामनके मनन नहीं होता ४

ज्ञानलिंगत्वादात्मनोनविरोधः गौ०

अर्थात्आत्माकालिंगज्ञानहै यहां मनुजीने सबका लिंग पृथक् पृथक् करदिया केवल शुद्धज्ञान लिंगआत्माका वर्णन किया परन्तु आत्माका विचार वेदान्त शास्त्रसे होताहै यह शास्त्र पदार्थविद्याके है इसकारणवेदान्तसेही आत्माका निर्णयकरतेहै

नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायंकुतश्चिन्नबभूवकश्चित्
अजोनित्यःशाश्वतोयम्पुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे
कठ० अ० १ वल्ली० २

अर्थात् यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता नमरता सर्वज्ञ है यह किसीसे हुआनही अजहै, नित्यहै, शाश्वत अर्थात् वृद्धिक्षयादिसे रहितहै, शरीरके विनाशहोनेसे विनाश नहीं होता

अशरीरꣳशरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्
महान्तविभुमात्मानंमत्वाधीरोनशोचति २२ कठ०

यह आत्मा शरीररहित है, शरीरोंमें अवस्थित है, जिसकी स्थितिनिश्चयनहींहोती वोंह महान् विभु है, ऐसे अपने आत्माको जानकै धीरपुरुष शोचनहीं करते, विभुमहान् कहनेसे अखंडका वोध होताहै, अर्थात् सबमे स्थितहोनेसे भी अखंडहै विभुहैनेसे

नायमात्माप्रवचनेनलभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतेन

अब विचारि ये जाग्रत तौ मनकी प्रमाणादिवृत्तिहै और केवल विपर्य्ययवृत्तिस्वप्नहै जिसकीवृत्तिहै तिसका आश्रय भी वोही है इससे जीवात्मामें जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति जानाआना मान्ना स्वामीजीकी अज्ञता है वेदान्तसूत्रमें लिखाहै

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् अ०२ पा० ३ सू०२९

देह मध्यवर्ति वायुके ऊर्द्धगमनवत् रूप प्राण है, और अधो गमनवत् रूप अपान है, सो यह दौनो प्राणापान वायुचेष्टा चेतनाधीन जडचेष्टावान् (रथचेष्टा वत्) इससे आत्मादेहप्राणभिन्न चेतन है यह सिद्ध हुआ, ऐसेही निमेषोन्मेष व्यापारभी नियत है, सोभी चेतनका अनुमापकहै, जीवन पदसे वृद्धिहौना शरीरका तथा शरीरमें घावका भरजाना यह दौनौका ग्रहण हैं, सो जीवितशरीरमें देखे जाते हैं वेभी शरीर भिन्न चेतनकेअनुमापक हैं, अनुमान प्रकार यह है (इदं शरीरं सात्मकं वृद्ध्यादिमत्त्वात् यन्नैव तन्नैवं यथा मृतशरीरं) मनोगति अर्थात् मनका इष्टार्थ ग्राही इन्द्रियमें प्रवेश करना सोभी आत्माका अनुमापक है, जिसकी इच्छा वा सावधानता मनको प्रेरणाकरती है सो आत्माहै, अनुमान प्रकार यह है (मनो गतिः चेतनाधीना जडनिष्ठगतित्वात् रथगतिवत्) जिस पुरुषने कभी नीबूका अचार वा नीबूका स्वाद पाया है, पुनः किसीके पास नीबू देखकर उसके मुखमें जो पानी भर आवै है तिसका नाम इन्द्रियान्तरविकारहै, यह इन्द्रियान्तर विकार भी आत्माका अनुमापक है, क्योंकि आगे गौतमजी इसीप्रकार लिखते हैं

इन्द्रियान्तरविकारात् न्याय० अ० ३ पा १ सू० १२

(भाष्य) कस्यचिदम्लफलस्य गृहीतसाहचर्ये रूपे गन्धे वा केनचिदिन्द्रियेण गृह्यमाणे रसनस्येन्द्रियान्तरस्य विकारः रसानुस्मृतौ रसगर्द्धिप्रवर्तितो दंतोदक संप्लवभूतो गृह्यते तस्येन्द्रियचैतन्येऽनुपपत्तिः नान्यदृष्टमन्यः स्मरति ॥

अर्थ–किसी अम्ल फलके रूपमें वा गन्ध में जिस पुरुषको रसके सहचारकाज्ञानहै तिसके रसना इन्द्रियमें रसस्मृतिसे जो रसग्रहणकीइच्छा तिससे प्रवृत्त होती है तिस जल प्रस्रवण रूप विकारकी इन्द्रिय चैतन्य स्वामीजीके मतसे अनुपपत्ति है क्योंकि अन्यदृष्टपदार्थकी अन्यको स्मृति नहीं होती, यहां रस दर्शन तौ रसना इन्द्रियसे हुआहै, और रसस्मृति चक्षु वा घ्राणको फलका रूप देख वा गन्धग्रहण करकै कैसे होगी, इससे इन्द्रियोंसे सर्व अर्थका ग्रहण करनेवाला आत्मा भिन्नहै यह मन्तव्यहै, और सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न यह पांचो जैसे अनेकार्थदर्शी स्थायी आत्माके अनुमापकहै, सो वात्सायनजीने अपने भाष्यमें लिखाहै विशेष इच्छा हो तौ वहां देख लौ गौतमजीने यह इन्द्रियोंहीके धर्म हैं लिखे है

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् गौ० १
युगपज्ज्ञानानामुत्पत्तिर्मनसोलिंगम् गौ० २
स्मृत्यनुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखादिप्रत्य-

येच्छादयश्चमनसोलिंगानि गौतमभाष्य. ३
ज्ञानायौगपद्यादेकंमनः ४

भाषार्थ-बुद्धिसे ज्ञानकी यथार्थता जानी जाती है, अर्थात् भला बुरा बुद्धिसे ही निर्णय होताहै १ मनमे एक समय दोवातौका ग्रहण नहीं होताहै २ स्मृतिअनुमान आगमसंशय विचार स्वप्नज्ञानतर्क, सुखादिइच्छा यह मनके लिंगहै ३ ज्ञानका विचार मनसे होताहै, क्योंकि जिस धातुसे मन शब्द सिद्धहोता है वोह मन धातुविचार में वर्तैहै, विनामनके मनन नहीं होता ४

ज्ञानलिंगत्वादात्मनोनविरोधः गौ०

अर्थात्आत्माकालिंगज्ञानहै यहां मनुजीने सबका लिंग पृथक् पृथक् करदिया केवल शुद्धज्ञान लिंगआत्माका वर्णन किया परन्तु आत्माका विचार वेदान्त शास्त्रसे होताहै यह शास्त्र पदार्थविद्याके है इसकारणवेदान्तसेही आत्माका निर्णयकरतेहै

नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायंकुतश्चिन्नबभूवकश्चित्
अजोनित्यःशाश्वतोयम्पुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे
कठ० अ० १ वल्ली०२

अर्थात् यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता नमरता सर्वज्ञ है यह किसीसे हुआनही अजहै, नित्यहै, शाश्वत अर्थात् वृद्धिक्षयादिसे रहितहै, शरीरके विनाशहौनेसे विनाश नहीं होता

अशरीरꣳशरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्
महान्तंविभुमात्मानंमत्वाधीरोनशोचति २२ कठ०

यह आत्मा शरीर रहित है, शरीरोंमें अवस्थित है, जिसकी स्थितिनिश्चयनहींहोती वोह महान् विभु है ऐसे अपने आत्माको जानके धीरपुरुष शोचनहीं करते, विभुमहान् कहनेसे अखंडका बोध होताहै, अर्थात् सबसे स्थितहौनेसे भी अखंडहै विभुहौनेसे

नायमात्माप्रवचनेनलभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतेन
यमेवैषवृणुते तेनलभ्यस्तस्यैषआत्माविवृणुते तनूꣳस्वाम् २३

यह आत्मा बहुत पढनेही से नहीं प्राप्तहोता न बुद्धिसे न बहुत श्रवणसे क्योंकि (इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परंमनः ॥ मनसश्च पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥ अर्थात् इन्द्रियोंसे परे अर्थहै अर्थोंसे परे मन मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे वोह आत्मा है) "यमेवैष वृणुतेतेन लभ्यः" जिसको यह इच्छा करताहै तिसहीसे

लभ्यहै अर्थात् अपने आप आत्माको यह जो निष्काम सर्वसाधन सम्पन्न केवल आत्माकामी मुमुक्षुहै सो जब ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे आत्मप्राप्तिके अर्थ प्रार्थना करता है, तब तिस आचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके श्रवण मननरूप उपाय करके ही प्राप्त होताहै, तिसको यह आत्मा अपने तनुको प्रकाशता है

आत्मानंरथिनंविद्धिशरीरंरथमेवतु ॥
बुद्धिन्तुसारथिंविद्धिमनःप्रग्रहमेवच ॥ ३॥
इन्द्रियाणिहयानाहुर्विषयास्तेषुगोचरान्
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तंभोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥४॥कठ० अ० १ व० ३ । ४

आत्माको रथका स्वामी जानो (अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट सोपाधि कर्त्ता भोक्ता संसारी जीवात्मा) शरीरको रथजानो, बुद्धिको सारथी क्योंकि शरीर का सबव्यापार बुद्धिपरही चलताहै, और बुद्धि विज्ञान नेत्र सम्पन्न हौनेसे सब इन्द्रियोंको यथा प्रमाण चलावैहै मनको रस्सी जानो क्योंकि मनसे ही इन्द्रियों का रोकना होताहै ३ इन्द्रियोंको अश्वकहते हैं चक्षुरादि और वागादि ज्ञान और कर्मेन्द्रियां यह घोड़े हैं, विषयोंको तिनके मार्ग जानो, अर्थात् शब्दस्पर्श रूप रस गंध इन पांच विषयोंको इन्द्रियां रूपीघोडोंके चलनेके मार्ग जानो, यह इन्द्रियां रूपी घोडे शरीररूपी रथको विषयोंकी ओरही खींचते हैं, इसकारण विषयमार्ग हैं यह जो आत्माहै वास्तवमें अकर्त्ता अभोक्ता परमशान्त अचल एकरस शान्त निर्विकार है, परन्तु (आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्ता) शरीर इन्द्रिय मनयुक्त आत्माको भोक्ता ऐसा कहते हैं अर्थात् तिस आत्माको शरीर इन्द्रिय मन आदि उपाधि सहित हौनेसे आवागमनवान पापपुण्यके फल सुखदुःखादिका भोक्ता भोगनेवाला ऐसा मनन शील विवेकी पुरुष कहते हैं अर्थात् केवल निरुपाधि शुद्ध अचल आत्माको गमनागमन कर्तृत्वभोक्तृत्वादि कुछभीहै नहीं, तथापि बुद्ध्यादि उपाधिके सहित होनेसे बुद्ध्यादिकोंके कर्तृत्वभोक्तृत्वादि धर्म आत्मामें भासतेहैं (बृहदारण्यमें यह मनके धर्म लिखेहैं) परन्तु यह धर्म आत्माके नहीं क्योंकि (ध्यायतीवलेलायतीव) यह बृहदारण्यकके छठे अध्यायमें है यह जो शरीर रूपी रथ निरूपण कियाहै विष्णुपदकी प्राप्ति इसही रथ द्वाराहोती है, परन्तु रथके चलाने की मुख्यसामग्री बुद्धिरूपी सारथीहीहै जिसरथीका सारथी परम विवेकी होता है, सोरथीको अपने रथद्वारा संसारके पार मोक्षाख्य विष्णुके पदको प्राप्त कर देता है, और जिसका सारथी अविवेकी मूर्ख है सो जन्म मरण रूपी संसारहीको प्राप्त होताहै, परन्तु आत्माको कुछ दोषनहीं क्योंकि

सूर्योयथासर्वलोकस्यचक्षुः नलिप्यते लोकदु खेनवाह्यः

एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मानलिप्यतेलोकदुःखेनवाह्यःउपनि०

जिसप्रकारसे सूर्य सबलोकोंका प्रकाशक है और स्वयं लोक दुःखसे लिप्तनहीं होता है इसीप्रकार सबका एक अन्तरात्मा है सो बाह्य दुःखसे लिप्तनहीं होता?

आत्मामें कोई विकार नहीं है बुद्ध्यादिके आवरणसे कर्त्ता भोक्ता मालूम होताहै परंतु स्वामीजीने तौ आत्माके लक्षणही बिगाडदिये जीवके गुण शिल्प विद्या सन्तानोत्पत्ति लिखदिये भला जीव शिल्पी कौनसे शास्त्रसे सिद्धकरा कोई वाक्य तौ लिखा होता

जीवविभुत्वप्रकरणम् ।

स. पृ. ११४ पं. १७ जीव शरीरमें भिन्न विभु है वा परिछिन्न (उत्तर) परिछिन्न जो विभु होता तौ जाग्रत सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग जाना आन कभी नहीं होसक्ता पं० २७ जैसे जीव ईश्वरका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है वैसेही सेव्य सेवक आधाराधेयस्वामी भृत्य राजा प्रजा पिता पुत्रादि में भी सम्बन्ध है ॥

समीक्षा—स्वामीजी यदि वेदान्त शास्त्रको गुरुसे पढते तौ ऐसे भ्रम जालमें न पडते क्योंकि इस लेखसे जीवका जन्म माना है और (अजामेकां) इसके अर्थमें प्रकृति जीव तथा परमात्मा तीनो अजअर्थात् जिनका जन्मनहीं होता इस अपने विरोध युक्त लेखकी भी स्वामीजीको किंचित्मात्र सुध न रही, यही तौ अनभिज्ञताहै परिछिन्न जीवको मान्ना यह जैनमत है, यदि जी परिछिन्न परिमाण है तौ कौनसे शरीरके तुल्य मानो गे यदि पुरुषशरीर तुल्य मानो तौ हस्ती चींटी आदि शरीर में प्रवेशकी व्यवस्था नहीं होगी यदि संकोच विकाश स्वभाव मानोगे तौविकारित्वादि प्रसक्तिसे विनाशी वाजन्म सिद्धहोगा, इससे परिछिन्न अनादिसिद्ध नहीं होसक्ता, और जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिवाला जीव माना, तिसमें विचारना चाहिये कि जाग्रत क्यापदार्थ है "जागृनिद्राक्षये" इस धातुसे निद्राके नाशका नाम जाग्रत और निद्राका नाम सुषुप्ति और मध्य अवस्था का नाम स्वप्न है निद्राका लक्षण पतंजलि जी लिखते हैं

अभावप्रत्ययालंबनावृत्तिर्निद्रा यो० पा० १ सू० १०

अभाव का जो कारण अज्ञान तिसे आलंबन करनेवाली मनकी वृत्तिका नाम निद्र अब विचारी ये जाग्रत तौ मनकी प्रमाणादिवृत्तिहै और केवल विपर्य्यवृत्तिस्वप्नहै जिसकी वृत्तिहै तिसका आश्रय भी वोही है इससे जीवात्मामें जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति जानाआना मान्ना स्वामीजीकी अज्ञता है वेदान्तसूत्रमें लिखाहै

तद्गुणसारत्वात्तुतद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् अ० २पा० ३सू० २९

आत्मा अणु नहीं जन्म सुन्नेसे वोह ब्रह्मही है जीवरूपमे प्रविष्ट सुन्नेसे और तादा त्म्यके कहनेसे ब्रह्मही जीव कहाथा " ब्रह्माभिन्नत्वात् विभुर्जीवः ब्रह्मवत् " फिर यादि ब्रह्मही जीवहै तौ जितना ब्रह्म है उतना जीव होनेके योग्य है फिर ब्रह्म विभुहै तौ जीवभी विभुहै " सवाएष महानज आत्मायोयंविज्ञानमयः प्राणेष्विति " अणुत्वश्रुति औपाधिक अणुत्वपर है प्रधानविभुत्वके विरोधसे भावशैत्यकी असिद्धिसे अध्यस्ताणुत्वपर वो कथञ्चिदर्थवादहै और अणुजीवको सबदेहमें वेदना सिद्ध नहींहै यदिकहो कि त्वचाके सम्बन्धसे हो सोभी नहीं, कांटा लगनेसे भी सबदेहमे वेदना हो त्वचा कांटेका संयोग सब त्वचामें वर्त्तताहै, और त्वचा सब देहमें व्याप्तहै और कांटातो पांवतलेहीमे वेदना देताहै जो कहाथा कि गुणकाभी गुणीसे विश्लेष है गन्धवत् " गन्धेनाश्रयाद्विश्लिष्टः गुणत्वाद्रूपवत " गुणकाभी गुणीदेशहै गुणिके अनाश्रित गुणका गुणत्वहीनहो गन्ध भी गुणत्वसे स्वाश्रयही संचारी है अन्यथा गुणहानिहो इत्यादि शंकर स्वामीके भाष्यमें स्पष्ट है किजीव विभुहै जिसे देखना हो सो वहां देखले. " जीवोऽनित्यः परिछिन्नत्वात् घटादिवत् " इस अनुमानसे अनित्यत्वापत्ति दोषसे परिछिन्नत्वकथन असंगतहै

उपादान प्रकरणम्

स. पृ. १९० पं. १७ परमेश्वर जगतका उपदान कारण नहीं निमित्त कारण है समीक्षा स्वामीजीके इस प्रश्नके उत्तरमें वेदान्त दर्शनके सूत्रलिखते है जिससे विदित हो जायगा कि परमेश्वरजगतका उपादान कारणहै

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टातान्तानुपरोधात् सू०२३

प्रकृति घट रुचकादिके मट्टी और सुवर्ण जैसे कारण है वा निमित्त कुलाल है मकारादि जैसे कारण हैं तैसे ब्रह्मको कैसी कारणताहो यह विचार है, सो ईक्षा पूर्वक कर्तृत्वसुन्नेसे केवल निमित्त कारण है " सईक्षां चक्रे सप्राणमसृजदित्यादि " कुला लादिनिमित्त कारणमें ही ईक्षापूर्वक कर्तृत्व देखाहै, लोकमें अनेककारकपूर्विका क्रियाके फलकी सिद्धि देखी है यही न्याय आदि कर्तामे पहुंचानेके योग्य है जैसे राजा वैवस्वतादिईश्वरोंका केवल निमित्त कारणत्वही है तैसेही परमेश्वरको भी केवल निमित्त कारणत्वही जान्नेके लिये युक्त है यद्यपि ईक्षासे कर्तृत्वनिश्चित है तथापि ब्रह्म प्रकृति नहीं कर्ता होनेसे, जो जिसका कर्ता है वोह उसकीप्रकृति नहीं जैसे घटका कर्ता कुलाल जगतकर्ता से भिन्नोपादान कहै, कार्यसे घटके समान ब्रह्म जगका उपादान नही, ईश्वर होनेसे, राजाके समान जगत् ब्रह्म प्रकृतिकनही ब्रह्मसे विलक्षणहैनेसे, जो इसप्रकारसे है, वोह तैसेही कुलालसे विलक्षण घट समानहै

जग सावयव अचेतन अशुद्ध देखतेहैं कारणभी उसका वैसाही होना चाहिये कार्य कारणका समान रूपदेखनेसे ब्रह्म तौ ऐसानही है (निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनमिति) तौअब ब्रह्म कारण नही बना प्रधान हीठीक रहा ब्रह्मकोकारण बताती श्रुति निमित्तकारणमें हीं सोरहीं उठ बैठीं, प्रधान बोधक स्मृति (इसका उत्तर)

तुमतौ कहचुके अब इसका उत्तर सुनो प्रकृतिश्चब्रह्महीं उपादान वो निमित्त कारण मानो केवल निमित्त कारण नहीं क्योंकि" प्रतिज्ञादृष्टान्ता नुपरोधात् " ऐसी श्रौत प्रतिज्ञा वो दृष्टान्त इनकी रोक न होगी प्रतिज्ञा " उततमा देशमप्राक्ष्यो येना श्रुतं श्रुतम्भवत्यमतंम विज्ञातंविज्ञातमिति " दृष्टान्त एकके जाननेसे अन्य सब जाना जाताहै वह उपादान कारणके जाननेसे सबका जान्ना सम्भवहै, क्योंकि कार्य उपादान से भिन्न नहीं लोकमें निमित्त कारणका कार्यसे भेदहै, जैसे तक्षा खाठसे भिन्नहै दृष्टान्त भी उपादनके विषयमें यथा "सोम्यैकेनमृत्पिंडेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भ णंविकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यमिति तथैकेन लोहमणिना सर्वलोहमयंविज्ञातं स्यादेकेन नखनिकृन्तनेन सर्वङ्कार्ष्णायसंविज्ञातं स्यादिति " हे सौम्य जैसे एक मट्टीके पिंडसे सब मट्टीके बरतन जानलिये जातेहै, केवल उनके नाममे वाणी मात्र काही, भेदहै सब मट्टी है इसीप्रकार एक लोह मणिसे सबलोहा जानलिया जाता है इत्यादि और ऐसे मुण्डकमेभी पढाहै "कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति" हे भगवन् किसके जान्नेसे यह सब जाना जाता है यही प्रतिज्ञा कर "यथा पृथि व्यामोषधयः सम्भवन्ति" जैसे पृथिवमे ओषधी होतीहै यही दृष्टान्त है और "आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदंइदं सर्वं विदितमिति" निश्चय आत्माहीमें देखने सुन्ने जान्नेसे यह सब जाना जाताहै यह प्रतिज्ञा बृहदारण्यकमे है " सयथा दुन्दुभेर्हन्य मानस्यनबाह्यानशब्दान् शक्नुयात् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुंदुभ्याघातस्य वाश ब्दो ग्रहीतः " जैसे नगाडेके बजनेमे उसके शब्दोंको ग्रहण करनेमे कोई समर्थ नहीं होता और दुन्दुभीके ग्रहणमें दुन्दुभीके आघातका शब्द ग्रहण ही होजाता है यही दृष्टान्त है (यतो वाइमानि प्रजानि प्रजायन्त) जिस परत्मामासे यह प्रजाउत्पन्न होती है इस्से भी उपादानहीहै " जनिकर्तुः प्रकृतिरिति " इस विशेष स्मृतिसे जैसे लोकमे मृत् हेमादि उपादान कारण कुलाल हेमकारादि अधिष्ठाताओंको अपेक्षा करके प्रवर्ते है तैसे उपादान सत ब्रह्म कारणको अन्य आधष्ठाता अपेक्षित नहीं है उत्पत्तिके पहले एक अद्वितीयथा इस निश्चयसे अन्य अधिष्ठाताका अभाव भी प्रतिज्ञा वो दृष्टान्त के निरोधसे कहाहुआ जानो॥

अभिध्योपदेशाच्च अ० १ पा० ४ सू० २४

चेतनका कार्यके साथ भेद होना सुना है तिससे अचेतन अणु और प्रधान विश्व निदान नहीं " अभिध्योपदेशश्चात्मनः कर्तृत्वप्रकृतित्वे गमयति " " सो काम यत बहुस्यां प्रजायेयेति" "तदैक्षत बहुस्यां प्रजाये येतिच" अर्थात् परमेश्वर कामना करताहुआ कि में बहुत होजाऊं, इनमे संकल्प पूर्व जो स्वतंत्र प्रवृत्ती है तिसको कर्त्ता जाना जाताहै, यह प्रत्यगात्म वियषसे बहुत होनेके संकल्प का प्रकृति भी जाना जाताहै॥

साक्षाच्चोभयाम्नानात् २५

जन्म और नाश यह दो शब्द ब्रह्महीसे सुने हैं तिससे निमित्त और उपादान ब्रह्मही है अथवा ईक्षासे ब्रह्मको केवल निमित्तही समझाथा, जैसे कुम्हार मिट्टीका द्रष्टा निमित्त कर्त्ता है, जिससे भूतोंका जन्म है इस पंचमी विभक्ति से उपादान का अपादान नाम धरके ब्रह्मको प्रगट उपादान कहा है यथा हि" आकाशा देवसमुत्पद्य न्ते आकाशं प्रत्यस्तं यन्तीति" "सर्वाणि ह वा इमानी भूतानित्यादि अर्थातयह सब उससे ही उत्पन्न होताहै, और यह सब प्राणि उसीमें लय होजाते हैं, इनमें साक्षात् ब्रह्महीसे उत्पत्ति और प्रलय दोनों वेदने कहेहैं,"इतश्च प्रकृति ब्रह्मयत्कारणं साक्षात् ब्रह्मै व कारण मुपादायो भौ प्रभव प्रलया वाम्नायेते" जो जिस्से जन्मताहै वो जिसमें मिलताहै सोहीउसका उपादान प्रसिद्ध है जैसे व्रीहिय वादिक की पृथ्वी, साक्षादाका शादेवेति श्रुति उपादानांतरके अभावको दिखाती

स्वाप्ययात् अ० १ पा० १ सू० ९

ब्रह्महीमें सब का लय कहाहै तिससे भी प्रधान विश्व निदान नहीं है सोजानेमें सब चेतनोका लय होताहै जिसमें सोही चेतन विश्व निदान है

गतिसामान्यात् १०

जैसे नेत्रादि इन्द्रियां रूपादिमें समान गतिसे वर्तेहैं, तैसे सबवेद ब्रह्मकोहीजगत् कारण कहते हैं न कि तार्किकोंके समान भिन्न कारणहैं " यथाग्नेर्ज्वलतः सर्वादिशो विस्फुलिंगा विप्रतिष्ठेरन् एवमेवैतस्मादात्मनः सर्वे प्राणायथा यतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्योदेवादेवेभ्यो लोका इति" " तस्मा द्वाएतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत इति " "आत्मन एवेदं सर्व मिति" "आत्मान एष प्राणो जायत इति" जैसे जलतीहुई अग्निसे चिनगारी निकलती हैं, इसीप्रकार आत्मासे प्राण प्राणोंसे देवता देवताओंसे लोका दि प्रतिष्ठित है, उसी परमात्मासे यह आकाशादि उत्पन्न हुआहै । यह सबकुछ आत्माही है । आत्मासे ही प्राण उत्पन्न हुयेहैं॥

श्रुतत्वाच्च ११

वेदसे उपादान कारण कर्त्ता सब चेतनही सुनाहै यथाहि–

नतस्यकश्चित्पतिरस्तिलोके नचेशितानैवचतस्यलिंगम्॥
सकारणंकरणाधिपाधियो नचास्यकश्चित्जनितानचाधिपः॥
श्वेता० ३०

इस आत्माका लोकमें न कोई पतिहै न शिक्षक है न उसका लिंग है वोही कारण करणहै वो ही ईश है उसका कोई उत्पन्न कर्त्ता वा अधिपति नहीं है अर्थात् सब कुछ वोही है इससे सिद्ध है कि उपादान कारण इस जगत्का परमात्मा है इसका विशेष विवर्ण अगले समुल्लासमें करैगे

महावाक्यप्रकरणम्

स. प्र. पृ. १९४ पं. ३० से पृ. १९५ के अन्ततक.

"प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म" वेदोंके इनमहावाक्योंका अर्थ क्या है (उत्तर) यह वेदवाक्य नहीं हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रंथोके वचनहैं और इनका नाम महावाक्य कही सत्य शास्त्रोंमें नहीं लिखा अर्थात् (अहम्) में (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मिहूं) यहां तात्स्थ्योपाधि है जैसे मंचाः क्रोशन्ति मञ्चान पुकारतेहैं मञ्चान जड हैं उनमें पुकारनेका सामर्थ्य नहीं इसलिये मंचस्थम नुष्य पुकारते हैं इसीप्रकार यहां भी जान्ना पुनः पृ. १९५पं९ जीवका ब्रह्म के साथ तात्स्थ वा तत्सह चरितोपाधि अर्थात् ब्रह्मका सहचारी जीवहै इससे जीव और ब्रह्मका एक नहीं जैसे कोई किसीसे कहै कि मैं और यह एकहैं अर्थात् अविरोधी है वैसेही जो जीव समाधिस्थ परमेश्वरके प्रेमबद्धहोकर निमग्न होताहै, वोह कहसक्ता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एकत्र अवकासस्थ हैं, जो जीव परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावके अनुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करताहै, वोह साधर्मसे ब्रह्मके साथ एक ता कहसक्ताहै (प्रश्न) अच्छा तौ इसका अर्थ कैसा करोगे (उत्तर) तुम तत् शब्दसे क्यालेतेहो "ब्रह्म" "ब्रह्म" पदकी अनुवृत्ति कहांसे लाये

सदेवसौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयंब्रह्म ।

इस पूर्ववाक्य से तुमने छान्दोग्य का दर्शन भी नहीं किया जो वोह देखी होती तौ वहां ब्रह्म शब्द का पाठहीं नही है ऐसा झूठ क्यों कहते किन्तु छान्दोग्य में तौ

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्

ऐसा पाठहै वहां ब्रह्म शब्द नहीं (प्रश्न) तौ आपतच्छब्दसे क्या लेतेहैं (उत्तर)

स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति छां०

वह परमात्मा जान्नेके योग्यहै जो यह अत्यन्त सूक्ष्म और इस सब जगत और जीव का आत्माहै सोही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आपही है हे श्वेतकेतो प्रियपुत्र और पृ. १८६ पं. १ में ॥

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि

उसपरमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है

समीक्षा–इस लेखमें स्वामीजीने दोवार्ता कथन करीं एकतौ इनवाक्योंकी महावाक्य संज्ञा प्रमाणकनहीं दूसरा इनको वेदत्व नहीं सो मंत्रब्राह्मण नाम वेदका है यह तौ आगे इसी समुल्लासमें सिद्धकरैंगे परन्तु अब महावाक्यकी व्यवस्था लिखतेहैं यहां महा वाक्य संज्ञा अन्वर्थ है जैसे तुमने ईश्वरके नाम दयालु न्यायकारी रखलिये हैं उसी-प्रकार यह संज्ञा है "महद्बोधकं महा वाक्यं अथवा महच्च तद्वाक्यं च महावाक्यं" यह अन्वर्थ संज्ञा है भाव यह है कि महत् जो अखण्ड चेतन वस्तु तिसके बोधक होनेसे महावाक्यहैं, और द्वितीय पक्षमें महत् वाक्य हैं इससे महावाक्य हैं पहले पक्षमें तौ महत् शब्दकी महद्बोधक इतने अर्थ में लक्षणा वृत्ति है और दूसरे पक्षमें ब्रह्मबोधकत्वही वाक्योंमें महत्व है क्योंकि ब्रह्म (महत्) देश काल वस्तु परिच्छेद रहित है, ऐसे ब्रह्मके बोधक होनेसे महावाक्य है, भाव यह है कि भेद भ्रम निवारक वाक्यको अद्वैतसिद्धान्तमें अपनी परिभाषासे महावाक्य कहते हैं, जैसे पाणिनी ऋषिके मतसे वृद्धि शब्द परिभाषा से आ ऐ औ का बोध होताहै वैसेही व्यास शंकरस्वामी अद्वैत सिद्धान्ताचार्यों के मतमें महावाक्य शब्द भी भेद भ्रम निवारक वाक्यों में पारिभाषिक है, इससे इन वाक्योंका नाम महा वाक्य तौ सिद्धहोगया अब अहं ब्रह्मास्मि इसकी व्यवस्था सुनिये इसके अर्थ करके आपही अपनी अविद्वत्ता प्रगटकरीहै क्योंकि अपनी उक्तिसे आपही विरुद्ध कथन कराहै (य आत्मनितिष्ठन्) इस श्रुतिमें जीवात्माको आधारता और ब्रह्मको आधेयत । कहीहै और इस वाक्यमें ब्रह्मपदकी ब्रह्मस्थ अर्थ में लक्षणा करनेसे (ब्रह्मणितिष्ठतीति ब्रह्मस्थः) इस व्युत्पत्ति-से पुरुषाधार पंचवत् ब्रह्माधार प्रतीत होताहै, तब एक बृहदारण्यकमें किसीवाक्यमें तौ ब्रह्म आधार और जीव आधेय, और किसी वाक्य में जीव आधार और ब्रह्म आधेय यह प्रतीत होताहै, ऐसे विरुद्ध अर्थके स्वीकार से स्वामीजीकी अविद्या प्रतीत होतीहै जैसे पृष्ठ १९६ पं ३ में लिखाहै

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम्
यआत्मनोऽन्तरोयमयाति एषतआत्मन्तर्याम्यमृतः

(यहबृह दारण्यकका वचन है महर्षियाज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयीसे कहतेहैं कि हे मैत्रेयि! जो परमेश्वर आत्मामें अर्थात् जीवमें स्थितऔर जीवात्मा से भिन्न है जिसको मूढ जीवात्मा नहीं जान्ता कि यह परमात्मा मेरेमें व्यापकहै जिस परमेश्वरका जिवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसेही जीवमें परमेश्वर व्यापक है जीवात्मासे भिन्नरहकर जीवके पाप पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीवोंको देकर नियममें रखता है वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है)

यह दयानंदजीका कथन सर्वथा असंगत है इस लेखसे जीवात्माको आधारता और ईश्वरात्माको आधेयता और अहं ब्रह्मास्मि इसवाक्यमें ब्रह्मपदबोध्य ईश्वरमें आधारता और जीवमें आधेयता सिद्धहोतीहै सो ऐसे असंगत अर्थको स्वामीजीके सिवाय और कौन लिख सकता है और एक महा अज्ञानता यह है कि उद्दालक याज्ञवल्क्यके संवादकी श्रुतिको मैत्रेयी याज्ञवल्क्यके संवादकी वर्णनकी है जिन्हें इतना भी ज्ञान नहीं कि क्या कहरहेहैं और जो जीवको ब्रह्मके निकटस्थ और मुक्तिमें साक्षात्सम्बंधमें रहनेवाला और ब्रह्म सहचारी (अर्थात् ब्रह्मके साथ विचरने वाला) कहा सोतौ सर्वथा झूंठ प्रलापस्वामी जीके मतका विघातकहै क्योंकि यदि जीव निकटस्थ और दूसरे पदार्थ दूरस्थ और मुक्तिमें साक्षात्संबंध और बंधमें परंपरा संबंध और जीवके साथ रहनेवाला है तौ ब्रह्म एक देशीपरिछिन्न क्रियावत् होगा, और जो जीवको ब्रह्मका अविरोधी रूप अथवा ब्रह्मको जीवका अविरोधीरूप कहा तो क्या जीव भिन्न पदार्थ ब्रह्मके विरोधी है, वे क्या ब्रह्मसे लड़ाई लड़ें है और वोह एक अवकाश ब्रह्मसे भिन्न कौन है जिसमें समाधि कालमें ब्रह्म और जीवस्थितहैं सर्वका आधार ब्रह्म यदि किसी दूसरे अवकाशमें रहैगा तौ परिछिन्नत्वादि दोष युक्त होगा इस्से अहंब्रह्मास्मि इसवाक्यका व्याख्यान सर्वथा स्वामीजीकी अज्ञानता प्रकाश करता है और यह जो लिखाहै (जो जीव परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके अनुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करता है वही साधर्म्ययुक्त होताहै ब्रह्मके साथ एकताकहसक्ताहै) इसस्थानमें यह विचारना चाहिये कि वोह गुण कर्म स्वभाव कौनहैं जिनके अनुसार अपने गुण कर्म करने चाहिये यदि सत्यकामत्व सर्वज्ञत्व सर्वशक्तित्व नियंतृत्व धर्मादि फल प्रदत्व यह गुण और सृष्टिपालन। संहार कर्तृत्वादि कर्मकहो तौ इस गुण कर्मक अनुसार अर्थात् तत्सदृश गुण कर्म कहोगे तब तौ यह गुणकर्म स्वा-

मीजीके मतमें मोक्षमें भी नहीं होतें, तो बंध कालमें कहांसे होंगे यदि न्यायकारित्व कर्म और दयालुत्वादि गुण परमेश्वरमें प्रसिद्धहैं तत्सदृश गुणकर्म अपनेमें करना चाहिये यह कहो तौ किस प्रमाणसे परमेश्वरको न्यायकारी दयालु जानाहै यदि जीवोंके सुख दुःखको देखके अनुमान होताहै कि कोई सुख दुःखदाता न्यायकारी दयालु है सो तौ ठीक नहीं क्योंकि मूल प्रमाणसे विना अनुमानाभास होजाता है मीमांसक कर्मवादी सुख दुःख दाता कर्मको कह सक्ताहै इससे शब्द प्रमाणसे न्यायकारी दयालु निश्चय होगा तब तो परमेश्वरके अवतार माने विना न्यायकारी दयालु कभी सिद्ध नहीं होसक्ता सो स्वामीजीने माना नहीं तौ परमेश्वरके गुणकर्म स्वभावानुकूल अपने गुणकर्म स्वभाव करने चाहिये यह कथन असंगत है हां परमेश्वरके अवतारादिमें गुणकर्म स्वभावके अनुसार आपभी अपने करै, पर अवतार तौ माना नहीं अब भेद साधक श्रुति जो स्वामीजीने लिखी उसे समग्र लिखते है जिस्से अभेद निश्चय होताहै

यआत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मानवेदयस्यात्माशरीरम् यआत्मनोन्तरोयमयति एषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टोद्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतोमन्ताऽविज्ञातोविज्ञातानान्योऽतोऽस्तिद्रष्टानान्योतोऽस्तिश्रोतानान्योऽतोस्तिमन्तानान्योऽतोस्तिविज्ञातैषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तम् बृह ० ३० अ० ५ ब्रा ० ७

लोक प्रसिद्ध भेदका प्रथम श्रुति अनुवाद करकै पश्चात् प्रमाणान्तराज्ञात अभेदको प्रतिपादन करती है जो आत्मामें अर्थात् विज्ञानोपाधिक कर्तृत्व भोक्तृत्व रूपसे निर्णीत संसारी जीवमें कारणोपाधिक ईश्वर स्थित होकर तिसविज्ञानोपाधिका कारण होनेसे तिस्से अन्तरहै और जिसको वोह जीव नहीं जान्ता जिसका जीवात्मा शरीरहै और वोह ईश्वरजीवको अन्तर स्थितही प्रेरणा करताहै इतने श्रुति भागसे औपाधिक भेद कहा अब उत्तर श्रुति भागसे अभेद कहतेहैं याज्ञवल्क्य कहते हैं हे उद्दालक जो अन्तर्यामी अमृततत्पदलक्ष्य अदृष्ट द्रष्टा और अश्रुत श्रोता और अमत मन्ता वैसेही अविज्ञात विज्ञाताहै (एष ते आत्मा) यह तेरा स्वरूप है और (एष त आत्मा)इसवाक्यका दयानंदजीने (वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापकहै,) यह अर्थ लिखाहै सो असंगत है क्योंकि पूर्व वाक्यसे इसी अर्थको बोधन कराहै इससे यह महावाक्यहै भेदभ्रमनिवार-

क होनेसे। और हे उद्दालक इस चैतन्य ज्योतिसे भिन्न द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता नहीं इसवाक्यसे जीव और ईश्वर द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाताके भेदका निषेध करा पुनः दृढता करतेहैं (एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः) यह अन्तर्यामी अमृत तेरा स्वरूपहै इससे जो भिन्न वस्तुहै सो (आर्त) विनाशी है, इस वाक्यके अर्थसे यह जनाया (यत्र ब्रह्मभिन्नत्वं तत्र विनाशवत्त्वं) जिसको ब्रह्मभिन्नत्वहै तिसको विनाशवत्त्वहै यदि जीवको ब्रह्मभिन्न मानैगे तो तिसको विनाशवत्त्व होगा तब जीवको अनादि अनंतत्व कल्पना असंगत होगी इस्से जीवको ब्रह्मरूप करकेही अनादि अनंतत्व है। अब तत्त्वमसि वाक्यकी लीला देखिये (सदेव सोम्येति) यह तत्त्वमसि वाक्यका व्याख्यान लिखाहै परन्तु इस स्थानमें जिस अद्वैतवादीके साथ प्रश्नोत्तर हुआ है जाने वो वेदान्ती भी कोई महामूर्ख है जिसे स्वामीजीके बृहदारण्यक बोधकी तरह छान्दोग्यका बोधहै क्योंकि यदि बृहदारण्यकका बोध होता याज्ञवल्क्य उद्दालकके संवादमें मैत्रेयीका संवाद न लिख बैठते और छान्दोग्य श्रुतिमें सत् शब्दको प्रकृतिवाचक न लिखते जैसे स्वामीजी हैं वैसाही कुशाग्रबुद्धि उन्हे पूर्व पक्षी मिलाहै जिसने छान्दोग्यका दर्शन भी नहीं करा ऐसेहीके मतका खंडन करा-होगा यदि शंकराचार्यके मतका खंडन कियाहै तो किसी शंकरमतके ग्रंथका वाक्य लिखता क्योंकि शंकरस्वामीजीके भाष्य प्रसिद्धहैं खंडन तौ क्या दयानंदजी शंकराचार्य्यके भाष्यकी पंक्ति भी नहीं समझसक्ते उपनिषदोंका दर्शन भी नहीं किया

स्वामीजीने जोलिखा कि तच्छब्दसेकिसीकी अनुवृत्तिक्या तच्छब्द अनुवृत्तिके वास्ते है यदि अनुवृत्तिका बोधक होता तौ असंगत होता क्योंकि अनुवृत्ति प्रकरण केवलसे वैसेही होसक्ती किन्तु (सर्वनाम्नामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शित्वम्) सर्वनामसंज्ञकशब्दोंको प्रधान अर्थकी परामर्शित्व अर्थात् ज्ञापकता होती है सो इसप्रकरणमें सत् एक अद्वितीय रूप वस्तु ब्रह्म प्रकरणप्रतिपाद्य होनेसे प्रधानहै तिसका लक्षक तत्पदहै किसी पदकी अनुवृत्तिका बोधक नहीं स्वामीजीकी शंका समाधान वृथाहै क्योंकि प्रथम एकपदसे एकपदकी अनुवृत्ति बोधन करनी फिर दूसरे पदसे अर्थको बोधन करना महागौरवहै और (तत्सत्यं स आत्मा) इस श्रुति वाक्यका अर्थ यह किया (वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आपही है) और (तत्त्वमसि) इस वाक्यका अर्थ स्वामीजीने यह कियाहै उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्तहै इस लेखको असंगत करनेको सम्पूर्ण श्रुति लिखते हैं

अस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनःप्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां स य एषोऽणिमा।

ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो छां० उ० अ० ६

अर्थ हे सौम्य! इस म्रियमाण पुरुषके वागुपलक्षित संपूर्ण इन्द्रियवृत्ति मनमें लीन होजाती हैं और मन किंचित् काल अंतरही संकल्पादिसहित होकर जब पुरुष लंबेलंबे श्वांस लेताहै, तब प्राणमें लीन होताहै प्राण भी किंचित्काल देहमें यथावत् चल कर तेजमेंलीन होताहै तेजभी किंचित् काल रहिताहै तब उस तेजसेही निश्चय करतेहैं जो जीवताहै फिर तेजभी परममूल कारणसे जो सत् ब्रह्महै तिसमें लीन होता है और दयानंदजी कहते है ब्रह्मका पाठनहीं सो सर्वथा विद्याहीनताका बोधकहै क्योंकि ब्रह्मशब्दके पाठ न होनेसे भी सत्का प्रकरण तौ संपूर्ण षष्ठाध्यायहै यदि ब्रह्म सत् नहीं तौ क्या असत् शून्य रूपहै सो तौ असंगतहै किन्तु सद्रूपहै इस्से ब्रह्मकाही प्रकरणहै जो यह पर देवता सद्रूप ब्रह्महै सो (अणिमा) अत्यन्त सूक्ष्महै जिसमें मरण समय जीव लीन हुआहै मरण समयमें सब वागादि उपाधिका ब्रह्ममें लय कथनका भाव यह है ब्रह्मको सर्वकी उपादानता बोधन करना क्योंकि उपादानमेंही कार्यका लयहोताहै दूसरा भी तात्पर्य यहहै वागादिकी उपाधिके लीन हुएसे जीवका स्वरूप केवल ब्रह्महै इस्से ब्रह्मजीवका भेद केवल उपाधिकृतहै क्योंकि उपाधिके अभावकालमें जीवत्वभाव प्रतीत होता नहीं (इदं सर्वं ऐतदात्म्यम्)

(एष सद्रूप आत्मा अन्तरात्मा यस्य सर्वस्य आकाशादि विराट्पिण्डान्तस्य वस्तुमात्रस्य स प्रपंचः एतदात्मा एतदात्मनो भावः सत्तारूपोऽर्थः । इदं सर्वं वस्तुमात्रमैतदात्म्यम् । एतेन प्रपंचस्य ब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्वमपिबोधितम् । यथागन्धवत्त्वमित्यत्र गन्धवच्छब्दोत्तरवृत्तिभावप्रत्ययस्य गन्धसूपार्थबोधकत्वं भावप्रत्ययस्य । तथाच सर्ववस्तुमात्रस्यात्मनः एतदात्मशब्दप्रतिपाद्यस्य ब्रह्मण इदं सर्वमितिपदप्रतिपाद्येन प्रपंचेन सह समानविभक्तिकयोः पदयोरभेदसंसर्गेणान्वये प्रपंचस्य ब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताशून्यत्वमेव निश्चितमिति भावः)

(भावार्थ) सर्व वस्तुका आत्मा वास्तव रूप जो सद्वस्तु ब्रह्महै (तत्सत्यं) सो नाश रहित है और (सआत्मा) सोई जीवहै यहाँ सद्वस्तु ब्रह्मको उद्देश्य करके

आत्मा विधेयहै और तत्त्वमसि यहाँ भी पुनः तच्छब्द बोध्य सद्ब्रह्म को उद्देश्य करके त्वंशब्दबोध्य जीवात्माश्वेतकेतु संबोध्य चेतन विधेयहै इसका पुनः कथन करने का यह भावहै जोकि पूर्व सआत्मा इस वाक्यमें आत्माशब्द जीवात्माका बोधकहै और उत्तरवाक्यमें भी त्वंपदबोध्य आत्माहै अर्थान्तर नहीं इसप्रकार एकता दृढ होती है और केचित् भेदभ्रान्ति युक्त वास्तव भेदवादि यह कहतेहैं (तत्त्वमसि) इस वाक्यमें तस्य त्वं तत्त्वम् इत्यादि समास करके भेदको सिद्ध करतेहैं तिनके भ्रम दूर करने वास्ते स आत्मा यह पृथक् अभेद बोधक वाक्यका उपदेश कराहै क्योंकि इसवाक्यमें समासकी संभावनाहीं नहीं होसक्ती और उद्देश्य विधेय भाव स्थलमें भिन्न पद जन्य उपस्थिति पदार्थोंकी शाब्दबोधमें कारण देखीहै यादि समासकर एक पद होगा तौ विभिन्नपदजन्य पदार्थोपस्थितिके अभावसे उद्देश्य विधेय भावही नहीं होगा और पूर्व वाक्यमें अभेद और उत्तरवाक्यमें भेद यह कथन असंगत होगा और दयानंदजीने (तत्सत्यं सआत्मा) इसका (वही सत्य स्वरूप अपना आत्मा आपहै) यह अर्थ लिखाहै आशय स्वामीजीका यहहै सशब्द आत्मशब्द दोनो ब्रह्मके बोधकहैं यदि इसवाक्यमें अपना आत्मा आपहै यह अर्थही विविक्षितहो तो (य आत्मनि तिष्ठन्) इस श्रुति वाक्यमें भी अपने आत्मामे आपही स्थितहै अपना नियंता आत्मा आपहीहै इस अर्थके करनेसे दयानंदजीका भेदही रसातलको चला जायगा यादि इस श्रुतिमें (आत्मनि) यह पद जीवात्माका बोधकहै तब (सआत्मा) इस श्रुतिमें भी आत्माशब्द जीवात्माका बोधक है जैसे एकमें आधाराधेयभाव असंभव है वैसेही आत्मा आत्मवत्त्वभी एकमें असंभव है और उत्तर वाक्यसे विषमता होगी क्योंकि " तत्त्वमसि " का उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है यह अर्थ करा तब कहना चाहिये कैसे युक्त है यही कहना होगा जो तेरे अन्तर अन्तर्यामी है तौ जीवका आत्मा परमेश्वर हुआ तो अपना आत्मा आप कैसे होसक्ताहै यदि अपना आत्मा आप हुआ तो जीव परमात्मासे अभिन्न सिद्ध होगया स्वयं स्वामीजीके मुखसे. और यह भी सोचना चाहिये कि परमात्मासे कौन वस्तु युक्त नहीं सर्व वस्तु परमात्मासे युक्तहैं यदि निकटस्थ जीवको कहोगे तो परमात्मामें व्यापकत्वका भंग होगा और वाक्यमें युक्त अर्थका बोधक पद कौनहै और यह भी विचार करना जहाँ अत्यन्त भेद होताहै वहाँ समान विभक्तिवाले शब्दोंका प्रयोग होता नहीं जैसे घटः पटः इसशब्दप्रयोग करताको भ्रान्त कहते हैं तैसे यदि जीव परमात्माका अत्यन्त भेदहै तो तत्त्वम् अहंब्रह्म प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म यह शब्द प्रयोग कैसे होंगे और जहां अत्यन्त अभेद होताहै वहां भी समान विभक्तिक शब्द प्रयोग होता नहीं जैसे कटः कलशः यह प्रयोग नहीं होता इसी

प्रकार जब सशब्द तथा आत्माशब्द ब्रह्मकेही बोधक होगये तो (सः) ब्रह्म आत्मा ऐसा शब्द प्रयोग नहीं होना चाहिये पुनरुक्ति दोष इसमें आता है परन्तु जहां औपाधिक भेद और वास्तव अभेद होताहै वहां ऐसा शब्द प्रयोग होताहै जैसे "नीलो घटः" इस वाक्यमें नीलत्वघटत्व धर्मसे भेद है वास्तव नीलरूपवत् व्यक्ति एक वस्तुहै तैसै सआत्मा तत्त्वम् इसस्थानमे भी जीवत्त्वपरमेश्वरत्व उपाधिकाही भेद है वास्तव एक व्यक्ति सत् चित् आनंदहै (प्रश्न) जीवत्व और परमेश्वरत्व उपाधिका नाम कैसे होगा यह दौनो तौ धर्म है (उत्तर) ऐसे समझो श्रुतिमें जब वाक् मन प्राण तेज यह कार्य्य रूप उपाधिके होते जीव कहा और इनके अभावमें कारणात्मा ब्रह्मपर देवता रूपता कहा तब यह निश्चय हुआ जो कार्य्य उपाधितत्संस्कारविशिष्ट सदंश है सो तौ जीव और कारणोपाधिविशिष्ट सदंश परमेश्वर है इतनेसे यह निश्चय हुआ जो उपाधि विशेषण और चित् सत् वस्तु विशेष्य और भाव अर्थमें त्वप्रत्ययका यह स्वभाव है विशेषणीभूत वस्तुका बोधक होताहै जैसे नीलशब्द जब नीलवत् गुणीका बोधकहै तब नीलत्व पद नील गुणमात्र का बोधक होताहै तैसे जीव विशेषण कार्य्य उपाधि जीवत्वहै और परमेश्वर उपाधिकारणत्व संपादक विचित्र शक्ति परमेश्वरत्वहै और वास्तव व्यक्ति सच्चिदानंद वस्तु अखंड है ऐसे अखंडार्थ बोधक हौनेसे इनकी महावाक्यसंज्ञा पारिभाषिकहै और हठ छोड़ यह भी समझना चाहिये कि इसस्थानमें अस्मिपद और असिपद वर्तमान कालके प्रयोगहैं यदि समाधिस्थ होकर वा गुणकर्म परमेश्वरके अनुकूल करके पश्चात् कह सक्ता तौ वर्त्तमान कालके प्रयोग न होते इसकारण यहां ऐसा उपदेश है जैसा कि कर्णको सूर्य भगवानका कुंतीपुत्रत्व उपदेश था भ्रमसिद्ध राधा पुत्रत्वकी निवृत्तिके वास्ते दयानंदजीने जो कहाकि (तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि) उस परमात्मा अन्तर्यामीसे तू युक्त है । यह असंगतहै क्योंकि एक विज्ञानमें सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा उद्दालक ऋषिने जोकि उपदेशके प्रारम्भमें प्रथम करी है उसका भंग होगा और इसप्रकारका अर्थ प्रकरणविरुद्ध है क्योंकि यह प्रकरण अन्तर्यामीका नहीं किन्तु म्रियमाण जीवका जो वास्तव रूप है जहांसे तेज आदि जगत् उत्थान होनेसे जीवत्व भाव होताहै और तिनकी लीनतामें जीवत्वभाव निवृत्त होताहै तिसका प्रकरण है इसप्रकार प्रौढ युक्ति और श्रुति प्रमाणसे अहंब्रह्मास्मि और तत्त्वमसि इन वाक्योंका अर्थ निरूपण होगया तौ "प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म" इत्यादि सर्व महावाक्योंके अर्थका निर्णय होगया और इतनेहीं महावाक्यहैं यह नियम नहीं किन्तु भेद भ्रम निवारक यावतहैं वे महावाक्यहीहैं प्रज्ञान शब्द और आत्मा शब्द अवस्था त्रितय साक्षीका बोधक है और अयं शब्द अखण्ड

चैतन्यमें अपरोक्षताका बोधक है इसप्रकार त्रिविध परिच्छेद वर्जित अखण्ड चैतन्यके बोधक सब महावाक्य होगये और औपाधिक भेद और वास्तव अभेद सिद्ध होगया यदि औपाधिक भेद वास्तव अभेदका बाधक होवै अथवा उपाधिसे टुकड़े होवै तौ आकाशका वास्तव अभेदका बाध और घटादि उपाधिसे आकाशके टुकड़े होजाने चाहिये उस्से उपाधिसे चेतनके टुकड़े और चेतनमें वास्तव भेद कल्पना स्वामीजीका प्रलापहै ॥

पृ० १९६ पं० १६ अनेनात्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि छां० तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तैत्तरी०

अर्थ पं० २२ में यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है परमेश्वर शरीरमें प्रविष्ट हुए जीवोंके साथ अनु प्रविष्टकी समान होकर वेदद्वारा सब नाम रूपादिकी विद्याको प्रगट करताहै और शरीरमें जीवको प्रवेशकरा आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहाहै ॥

समीक्षा स्वामीजी अपनीसी बहुतेरी करतेहैं पर कुछ वसाती नहीं जो जिस मार्गहीमें न चलाहो वोह उस मार्गको क्या जाने देखिये व्याकरण शास्त्र भी यहां भूलगये

अनुर्लक्षणे अ० १ । ४ । ८४ यह अष्टाध्यायीका सूत्रहै

अर्थ लक्षण अर्थमें अनुउपसर्ग कर्मप्रवचनीय संज्ञावाला हो

कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया २ । ३ । ८ पाणिनीय०

अर्थ कर्मप्रवचनीय संज्ञक पदसे जो युक्तहै दूसरा पद तिसमें द्वितीया विभक्ति हो अब इसपर जो भाष्यकार लिखतेहैं सो सुनिये

शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत शाकल्येन सुकृतां संहितामनुनिशम्य देवः प्रावर्षत् महाभाष्य अ० १ पा० ४ आ० ४

अर्थ शाकल्य ऋषिने सुष्ठु कृतकारी जो संहितानाम सीमा तिसको देखकर देव वर्षण करता हुआ पहले उदाहरणका अर्थ दूसरे वचनसे आपही भाष्यकारने किया है क्योंकि भाष्यकारकी यह शैलीहै अपनी कठिन उक्तिका आपही व्याख्यान करते हैं जैसे वेदने संक्षिप्त अर्थ मंत्रोंका ब्राह्मण भागसे व्याख्यान कराहै जो अन्यकृत मानो महा भाष्यके व्याख्यान वाक्य भी किसी दूसरेके होने चाहिये अब सुनिये (तत्सृ०) इस श्रुति वचनमें भी अनु लक्षणअर्थमें है तब यह अर्थ सिद्ध हुआ जगतको रचकर (तदेवानु निशम्य प्राविशत्) तिस जगतको देखकर प्रवेश करताहुआ (लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणं) जिस करके कुछभी लखाजाय सो लक्षणहै जैसे भाष्यके उक्त

उदाहरणमें शाकल्यकृत सीमाका देवसे देखना सो वर्षणके दिखानेमें लक्षणहै और प्रकृत श्रुति रूप उदाहरणमें जो परमेश्वर करके स्थूल सूक्ष्म संघातका अपनेमें देखना है सो प्रवेशका बतानेहाराहै भाव यहहै कि जो उपाधि संगसे मनुष्योहं हिरण्यगर्भोहं विराडहं ऐसी प्रतीति होतीहै सोई प्रवेशका बोधक है तिस प्रतीतिसे प्रवेश कहा जातहै वास्तवमें प्रवेश नहीं जैसे बृहदारण्यक श्रुतिमें जो अहंकारको अपनेमें देखकर अहंनामवाला परमात्मा हुआ अहंकारको जो अपनेमें देखाना यही प्रवेशका लक्षणहै यथाहि-

आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्म नोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्ततोऽहन्नामाभवत् बृ॰ उ॰ अ॰ ३॰ ब्रा॰ ४

अर्थ इदं मनुष्यादिशरीरजातं अग्रे–इस उत्पत्तिसे पूर्व पुरुषाकार आत्मरूपही होते भये सो पुरुषाकार आत्मा अनुवीक्ष्य–देखकर अर्थात् आत्मासे पृथक् वस्तुको न देखकर अहं अस्मि ऐसा सबसे प्रथम उच्चारण करताहुआ उच्चारण मात्रसेही अहंनामवाला होगया इसी प्रकार जो अपनेमें हिरण्यगर्भादि पिपीलिकातक देहोंका स्फुरण होकर प्रतीति होनाहै सोई अनुप्रवेशहै और अनुशब्दका अर्थ जहां पश्चात् होताहै वहां प्रवेश और अनुप्रवेश दोनो मुख्य होते हैं जैसे " राजा प्रासादे प्रविशति अमात्योनुप्रविशति " राजा मंदिरमें प्रवेश करता है पीछे अमात्य प्रवेश करताहै दयानंदजीके मतमें जब जीवने प्रवेश करा तब परमेश्वर तौ व्यापक होनेसे प्रथमही प्रविष्टहै और यह जो कहा (जीवको प्रवेश कराकर आप जीवके भीतर अनुप्रविष्ट होरहाहै सो भी असंगतहै अनुप्रविष्टहीरहाहै क्या प्रथम प्रविष्ट न था सो तौ पहले भी जीवमें प्रविष्ट था पीछे प्रवेश करनाही कैसे कहसक्तेहैं देखो जैसे शरीरके गृहमें प्रवेश होनेसे शरीरान्तर्गत अन्न जलादि वा आकाशादि वा मनोबुद्धिआदिक (अनुप्रविष्ट) पश्चात् प्रविष्टहैं वा साथही प्रविष्टहैं बस जब साथही प्रविष्ट हुए तौ जीवान्तरवर्त्ती ईश्वरभी अनुप्रविष्ट नहीं किन्तु सह प्रविष्टहै व युगपत् प्रविष्टहै ऐसा कहना चाहिये अनुप्रविष्ट कहना नहीं बनता और यह भी भूल मत करना जो जन्मादिवत् प्रवेश भी जीवमें आरोपितहै (देहस्थत्वेनोपलब्धिः प्रवेशः) देहमें स्थित रूपसे प्रतीतिही प्रवेशहै जो लक्षण अर्थमें अनुको इस श्रुतिमें नहीं मानेंगे किन्तु पश्चात्अर्थमें मानेंगे तौ प्रवेश और अनुप्रवेश दौनौ मुख्य होने चाहिये तैसे तदेव इसके स्थानमें तस्मिन्नेव इसप्रकार सप्तमीविभक्ति होनी चाहिये जैसा " राजा प्रासादे प्राविशत् अमात्योऽनुप्राविशत् "

ऐसा प्रयोग होता सो श्रुतिमें नहीं करा इसकारण इसका अर्थ स्वामीजीका किया हुआ मिथ्या है यहां व्याकरण शास्त्रकूं भी लपेट धरा .

स० प्र० पृ० १८७ पं० १०

जीवेशौ च विशुद्धो चिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः॥अविद्यातच्चितो र्योगः षडस्माकमनादयः ॥ कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ॥ कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥

यह संक्षेप शारीरक और शारीरकभाष्यमें कारिकाहैं

समीक्षा धन्यहै स्वामीजीकी सत्यता और विद्याको जो महाझूंठ लिखते नहीं लजाते विदित होताहै कि कभी संक्षेपशारीरक और शारीरकका दर्शन भी नहीं किया उक्त दौनौ ग्रंथोंमें यह कारिकाही नहीं हैं प्रथम वचन तौ वार्त्तिककार सुरेश्वराचार्यका है प्रमाण रूप ग्रंथोंमें बहुधा लिखा जाताहै द्वितीय वचन आथर्वणोपनिषदकाहै जो प्रमाणविधि बहुत ग्रंथोंमें लिखी जाती है परन्तु उक्त दोनो ग्रंथोंमें प्रमाण विधि या उपन्यास कुछ भी नहीं करा इस्से यह स्वामीजीका प्रमाद है वेदान्तका दर्शन स्वप्नमें भी नहीं किया

स०प्र०पृ० १९९ पं० २१ ब्रह्मके सत् चित् आनन्द और जीवके अस्तिभाति प्रियरूपसे एकता होतीहै फिर क्यों खंडन करते हो (उत्तर) किंचित् साधर्म्य मिलनेसे एकता नहीं होसक्ती जैसे पृथ्वी जड़ दृश्यहै वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्यहै इतनेसे एकता नहीं होसक्ती इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध रूक्षता काठिन्य आदिगुण पृथ्वी और रसद्रवत्वको मलत्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्निके हौनेसे एकता नहीं जैसे मनुष्य और कीड़ी आंखसे देखते मुखसे खाते पगसे चलते हैं तथापि मनुष्यकी आकृति दो पग और कीड़ीकी आकृति अनेक पग आदि भिन्न होनेसे एकता नहीं होती वैसे परमेश्वरके अनन्त ज्ञान आनन्द बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीवसे और जीवके अल्पज्ञान अल्प बल अल्पस्वरूप सबभ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्मसे भिन्न होनेसे जीव और ब्रह्म परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्वरूप भी परमेश्वर अति सूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होनेसे भिन्नहै

समीक्षा स्वामीजीका यह लेख भी चैतन्यरूप सत्यानन्द आत्मामें भेदका साधक नहीं किन्तु विज्ञानमयकोश और आनन्दमय कोशके भेदका साधकहै क्योंकि इन्हीं दौनोमें किंचित् स्थूलता और सूक्ष्मता बाह्यता अन्तरता बनसकतीहै और

पृथिवीको गन्ध, रूक्षता, काठिन्य रूपसे जलसे भेद कहा है तिसमें यह पूछनाहै की पृथ्वीका जलसे अत्यन्त भेद है वा औपाधिक भेद है यदि अत्यन्त भेद है तौ जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति नहीं होगी जैसे रेतसे अत्यन्त भिन्न तेलकी उत्पत्ति नहीं होती इसीप्रकार जलसे पृथ्वीकी उत्पत्तिके असंभव हौनेसे (अद्भ्यः पृथिवी) यह श्रुति व्यर्थ । होगी दयानंदजीके मतमें इसकारण जल और पृथिवीका औपाधिक किंचित् भेद है जैसे दुग्धसे दधिका और अग्निको दाहकत्वादि धर्मयुक्त होने जलादिसे भिन्नकहा सोभी अशुद्ध है क्योंकि (अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी) अग्निसे जल उत्पन्नहुआ जलसे पृथिवी तौ यह श्रुतिभी व्यर्थहोजायगी और अनन्त पृथिवी कार्य्य औषाधिमें दाहकत्वादि धर्महैं तिनको पृथिवीत्व नहींहोना चाहिये और मनुष्यकीड़ीकाभी भेद किंचित् विकारसे है वास्तव भेद नहीं यदि वास्तव भेद होतौ 'कुष्ठी मनुष्यो नन' ऐसीप्रतीत न हौनी चाहिये इसकारण सर्वथा स्वामीजीका वेदान्तसे अनभिज्ञपनां सूचित होताहै वेदसिद्धान्तमें परमाण्वादि अस्वीकृतहै

स०पृ० २०० पं०३

अथोदरमन्तरं कुरुतेअथतस्यभयं भवति द्वितीयाद्वैभयं भवति

पंक्ति ७ में अर्थ लिखाहै कि जो जीव परमेश्वरका निषेध वा किसीएक देशकालमें परिच्छिन्न परमात्माको माने वा उसकी आज्ञागुणकर्म स्वभावसे विरुद्ध होवै अथवा किसी दूसरे मनुष्यसे वैर करैं उसको भय प्राप्त होताहै

समीक्षा जबकि स्वामीजीने गुरुमुखसे वेदान्त पठन नहीं कियातो उसके ऊपर लिखना व्यर्थहीहै भला इसमें जीव परमेश्वरका निषेध देशकाल परिछिन्नगुण कर्म स्वभाव यह कहांसे लिखदिये यह अर्थ सबही भ्रष्टहै इसका अर्थ यहीहै कि जो आत्मासे पृथक् देखताहै उसीको भय होताहै क्योंकि

अभयं वैजनकप्राप्तोसितदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मीति तस्मात् सर्वमभवं तत्रको मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत इति

जब आत्माको जाना तबही जनकजीको अभय प्राप्तिहुई "ब्रह्मास्मीति" मैंहीं हूं यह सब वोहीहै जो सर्वत्र एक देखताहै उसको कुछ भय नहीहोता अभयहै "आत्माएवेदं सर्वं" यह सब आत्माहीहै वेदान्तशास्त्रमें

शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् ३० प्र०अ० पा० १

जैसे तत्त्वमसि इस वाक्यको देखकर वामदेव ऋषिने कहाहैकि मैंही मनु सूर्य और

कक्षीवान हुआथा तैसाही इन्द्रने कहाहै कि में ज्ञानरूपहूं तू इसीकी उपासनाकर (अहंमनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवानित्यादि ऋ०मं०४अ०३१सू०२६मं०१)

इस प्रकार यदि कोई इसकालमेंभी जीवात्माको ब्रह्म जान्ताहै जलतरंगवत् इन दौनोके अभेदको जान्ताहै वोही ब्रह्मभावको प्राप्तहो अभय होताहै

स०पृ०२०१ पं०२२ (प्र०) ईश्वरमें इच्छा है वा नहीं (उत्तरपं० २५) ईश्वरमें इच्छाका तौ संभव नहीं किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकारकी विद्याका दर्शन और सब सृष्टिका करना कहताहै

समीक्षा अच्छे प्रश्नोत्तर कियेहै जैसे गुरु वैसे चेले ईश्वरमें कामना क्यों नहीं यदि कामना नहीं तौ यह सृष्टि कहांसे आगई यदि विना इच्छाके स्वबही जगत्की रचना होगई तौ ईश्वरकी आवश्यकता क्याहै (बौद्धमतही होजाय) इस लिये ईश्वरमें इच्छाहै

आनन्दमय प्रकरणसे सुनाहै कि एकने बहुतकी इच्छाकी "सोकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति" वोह परमात्मा कामना करताहुआ कि में बहुतरूपहोकर प्रती होऊं तैत्त० "एकंरूपंबहुधायः करोति" जो एकरूपको बहुतकर लेताहै जिसे विशेष देखनाहो वेदान्तदर्शनमें देखले.

वेदप्राप्तिप्रकरणम्

स०पृ०२०२ पं० १७ (वेद) जीवोंको अन्तर्यामीरूपसे उपदेश कियाहै पंक्ति २२ से किनके आत्मामें कब वेदोंका प्रकाश किया (उत्तर)

अग्नेर्वाऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः शत० ॥

इन इन ऋषियोंके आत्मामें एक २ वेदका प्रकाश किया (प्रश्न)

योवै ब्रह्माणंविदधाति पूर्वंयोवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै

यह उपनिषद्का वचनहै इस वचनसे ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका उपदेश किया है फिर अग्निआदि ऋषियोंके आत्मामें क्यों कहा (उत्तर) ब्रह्माके आत्मामें अग्नि आदिके द्वारास्थापितकराया देखो मनुमें क्या लिखाहै

अग्निवायुरविभ्यस्तुत्रयं ब्रह्मसनातनम् ॥
दुदोहयज्ञसिद्ध्यर्थंऋग्यजुःसामलक्षणम् ॥ मनु ॥

जिसपरमात्माने आदि सृष्टिमें मनुष्योंको उत्पन्नकरके अग्निआदि चारों महर्षियों केद्वारा चारों वेद ब्रह्माको प्राप्त कराये और उस ब्रह्माने अग्नि वायु आदित्य और अंगिरासे ऋक्यजुः साम और अथर्वका ग्रहण किया क्योंकि वोही सबसे अधिक पवित्रात्माथे पृ०२०४ पं० ५ जो परमात्मा उन आदि सृष्टिके ऋषियोंको वेद विद्या न पढाता और वे न पढते तौ सब लोग अविद्वान् रहजाते (पुनः पं०२२) धर्मात्मा योगी महर्षि जब जब जिसके अर्थ जाननेकी इच्छाकरके ध्यानाअस्थित हो परमेश्वर के स्वरूपमें समाधिस्थहुए तब २ परमात्माने अभीष्टमंत्रोंके अर्थ जनाये जब बहुतों की आत्मामें वेदार्थप्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियोंने वोह अर्थ और ऋषि मुनियोंने इतिहासपूर्वक ग्रंथ बनाये उनकानाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रंथ होनेसे ब्राह्मणनाम हुआ

समीक्षा स्वामीजीने तौ अपना मतही नवीन कल्पित कियाहै जबतक सब बातें सनातन धर्मसे उलटी न लिखते तब तक उनकी ख्याति कैसे होती जैसे कि पवन हमलोगोंसे उलटीही रीति करतेहैं हम जिसे रक्षाकरैं (गौ) वे उसेमारैं हम सीधेपरदे का अंग रक्षा पहरें वे बांयेका हम चौकादें वे भ्रष्टाचारकरैं इत्यादि विपरीत ही करते है इसीप्रकार स्वामीजी हम कहैं मूर्तिपूजन श्राद्ध अवतार पतिव्रत वेदमतहै वे कहैं यह सब झूठहै और नियोग (व्यभिचार) ठीकहै हम कहै वेद ब्रह्मापर आये वे कहैं नहीं चार ऋषियोंपर आये यहां यह विचार कर्तव्य है कि सृष्टिकी आदिमें कौन ऋषि उत्पन्नहुए स्वामीजीने तीन ऋषियोंका सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होना लिखा पर कोई प्रमाण नहीं दिया इसकारण उनका कहना मिथ्याहै सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए यह वेदमें लिखाहै यथाहि

ब्रह्मज्येष्ठासंभृतावीर्याणि ब्रह्माग्रेज्येष्ठंदिवमाततान॥
भूतानांब्रह्माप्रथमोहजज्ञेतेनार्हतिब्रह्मणास्पर्धितुंकः अथर्ववेदे.

भूतानां ब्रह्म प्रथमोहजज्ञे सब प्राणियोंमें ब्रह्माजी प्रथम उत्पन्न हुए दयानंदजीको तथा उनके चेलोंको आंख खोलकर देखना चाहिये कि यह मंत्रभागकीही श्रुतिहै कि ब्रह्मानेही सब कुछ किया वोही सबसे बड़ेहैं और (हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे) कि हिरण्यगर्भ ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्नहुए मनु भी यही लिखतेहैं कि ब्रह्माजी सबसे पूर्व उत्पन्नहुए

तस्मिन्जज्ञेस्वयंब्रह्मासर्वलोकपितामहः॥

उस अंडरूपब्रह्माण्डसे सबसे प्रथम ब्रह्माजीउत्पन्नहुए मुंडक उपनिषदमेंभीयहीलिखाहै

ब्रह्मादेवानांप्रथमसंबभूवविश्वस्यकर्ताभुवनस्यगोप्ता

ब्रह्माजी सब देवताओंसे प्रथम उत्पन्न हुए जो संसारके रक्षक और विश्वके बनानेवाले हैं पुनःश्वेता०में लिखाहै

यो देवानांप्रभवश्चोद्भवश्चविश्वाधिपोरुद्रोमहर्षिः
हिरण्यगर्भंजनयामासपूर्वंसनोबुद्ध्याशुभयासंयुनक्तु

जो परमात्मा इन्द्रादिक देवताओंकें प्रभवका कारणहै और विश्वकास्वामी और पापियोंका रुवानेवाला और सर्वज्ञहै जिसने पूर्व अर्थात् सृष्टिकी आदिमें श्रीब्रह्माजी को उत्पन्न किया वोह परमेश्वर हमको शुभ बुद्धिके साथ संयुक्त करै और कपिल देवजीने भी सांख्य शास्त्रके तीसरे अध्यायमें ब्रह्माजीका सृष्टिकी आदिमें होना मानाहै

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंतत्कृतेसृष्टिराविवेकात् कपि०सू०

यहां (ब्रह्मासेलेकर) इस शब्दसेही ब्रह्माका सृष्टिकी आदिमै होना सिद्ध है पाराशरजीनेभी निज सूत्रोंमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति पूर्वही मानीहै

सकलजगतामनादिरादिभूत ऋग्यजुःसामादिमयी भगवद्विष्णुमय
स्यब्रह्मणोमूर्तिरूपंहिरण्यगर्भोब्रह्माण्डतोभगवान् ब्रह्माप्रागबभूव

सारे जगत्का कारण हिरण्यगर्भ ब्रह्माण्डसे पहले उत्पन्न हुआ जैसे कि ऊपर लिखे ग्रंथोंसे ब्रह्माजीका सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न होना स्पष्ट लिखा है इसी प्रकार यदि स्वामीजी किसी श्रुतिसे अग्न्यादि ऋषियोंका सब देवताओंसे प्रथम उत्पन्न होना और ब्रह्माजीको वेदोंका पढाना सिद्ध करते तौ उनकी यह बात स्वीकार करने योग्य होती अन्यथा नहीं अब वोह दिखाते हैं जो ब्रह्माजीपरही प्रथम वेद प्रगट हुए

योवैब्रह्माणंविदधातिपूर्वंयोवैवेदांश्चप्रहिणोतितस्मै
तंहदेवमात्मबुद्धिप्रकाशंमुमुक्षुर्वैशरणमहंप्रपद्ये श्वेता०

अर्थ यह है कि जिस परमात्माने (पूर्व) अर्थात् सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और जिस परमात्माने ब्रह्माजीही के लिये वेदोंको दिया उस प्रकाशस्वरूप आत्मज्ञानके प्रकाश करनेवाले परमात्माकी मैं मुमुक्षु शरण होताहूं देखो इस श्रुतिमें (पूर्व) शब्द है जिस्से विदित है कि परमात्माने सृष्टिकी आदिमें

ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया और शतपथकी श्रुतिमें ऐसा कोई शब्द नहीं जिस्से सृष्टिकी आदिमें अग्न्यादिके जन्मका बोधकहो और इस श्रुतिमें (वै) शब्दहै जिसका अर्थ अवयव योगव्यवच्छेद अर्थात् सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजीकेही लिये वेदोंका उपदेश किया दूसरेको नहीं क्योंकि अवयव योग व्यवछेद दूसरेके योगके पृथक् करनेको अर्थात् दूर करनेको कहते है इस्से यही विज्ञान होता है कि सृष्टिकी आदिमें परमात्माने केवल एक ब्रह्माजीकेही हृदयमें वेदोंका प्रकाश किया (वै) शब्दका अन्वय तत् शब्दके साथ होगा जो कि ब्रह्माका वाचक है और जो वै शब्दका अन्वय यत् शब्दके साथ करैं जो परमात्माका वाचक है तौ यह अर्थ होगा कि ब्रह्माजीको वेदोंका उपदेश परमात्माहीने किया है अब बुद्धिमान विचार करें कि ऐसा कोई शब्द शतपथकी श्रुतिमें निकलता है इस कारण स्वामीजीका कथन सर्वथा अशुद्धहै फिर ऋग्वेद मंडल १० सू. ९१ मंत्र १४ में लिखाहै

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणोवशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ॥ कीलालपे सोमं पृष्ठायवेधसेहृदा मतिं जनये चारुमग्नये ऋ०

यहां (वेधसेहृदामतिंजनये) इसका अर्थ यही है कि परमात्मा ब्रह्माजीके हृदयमें वेदोंका प्रकाश करता हुआ

फिर स्वामीजीने अग्न्यादिकों को महर्षि कहाहै यह सर्व शास्त्रबाह्य है किसी ग्रंथमें इनको महर्षि ऋषि नहीं लिखा परन्तु वेदादि शास्त्रोंमें इन नामके देवता लिखेहैं

अग्निर्देवता वातोदेवता सूर्योदेवता चन्द्रमादेवतेत्यादि यजु. अ. १४ मं. २०

अर्थ स्पष्ट है स्वामीजी और उनके पंथी पक्षपात छोड़कर विचार करैं कि स्वामीजीका यह कथन कि अग्न्यादिकने ब्रह्माजीको वेद पढाये श्वेताश्वतरकी श्रुतिसे लेश मात्रभी नहीं पायाजाता यह उनकी कपोलकल्पनाहै अब यह तौ सिद्धान्त हो चुका कि वेद ब्रह्माजीपर प्रगट हुए और सृष्टिकी आदिमें ब्रह्माजी उत्पन्न हुए अब (अग्नेर्वै) इस श्रुतिका अर्थ दिखलातेहैं इस श्रुतिके देखनेसे विदित होता है कि शतपथ कभी स्वामीजीके दृष्टि गोचर भी नहीं हुआ अथवा देखा हो तौ भूल गये क्यों कि सत्यार्थप्रकाशमें इस श्रुतिको कई जगह अशुद्ध लिखा है प्रथम अग्नि शब्दके आगे वै बढायाहै और ऋग्वेदके आगे जायते यह बढायाहै यजुर्वेदके आगे

सूर्यात् यह पदनहींहै किन्तु आदित्यात् यह पाठ है स्वामीजीने भ्रमसे श्रुतिका पाठ अस्तव्यस्त लिखा है पूर्ण पाठ इस प्रकार है

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयोवेदाअजायंताग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेद आदित्यात् सामवेदः शत०का० ११ अ० ६

जब कि स्वामीजीकी प्रमाणदी हुई श्रुतिका पाठही अशुद्धहै तो उनके अर्थ निर्णयकी क्या आशाहै? इस श्रुतिका अर्थ यह है कि अग्नि वायु आदित्य इन तीन तपस्वियोंसे तीनो वेद ऋग्यजुः साम प्रकाश हुए अर्थात् वेद त्रयविहित कर्मोंका प्रचार हुआ क्योंकि इस श्रुतिमें (अजायत) क्रिया है और वोह (जनि) धातुसे बनीहै जो प्रादुर्भावके अर्थमें प्रसिद्ध है और प्रादुर्भाव प्रकाश होनेको कहते हैं जिसे भाषान्तरमें (जाहिर होना) कहतेहैं तात्पर्य यह है कि इन तीनों देवताओंने जगत्में तीनो वेदोंका प्रचार किया ब्रह्माजीसे इन्ही तीनोने वेदोंको पढकर विहित यज्ञादि कर्मोंका अनुष्ठान किया और औरोंसे कराया सृष्टिकी आदिमें परमात्माने ब्रह्माजीकोही वेद दिये अग्न्यादिकोंने तपकर प्रकाश किये अब मनुके श्लोकका अर्थ देखिये

(अग्निरिति) ब्रह्माजीने ऋक्, यजु, साम यह नित्य तीन वेद यज्ञकी सिद्धिके लिये अर्थात् यज्ञ करने और करानेके हेतु अग्नि, वायु, रवि नामक देवतोंके अर्थ क्रम पूर्वक दिये क्योंकि वेदत्रयके विना यज्ञका सम्पादन होना असंभवहै (अग्निवायुरविभ्यः) यहां चतुर्थी विभक्तिहै पंचमी नहीं और " दुदोह " क्रिया " ददौ " के अर्थमें है क्योंकि (धातूनामनेकार्थत्वात्) अर्थात् धातुओंके अनेक अर्थ होते हैं और महाभाष्य अ० ६ पा० १ आ० १ में यह लिखा है कि (अनेकार्था अपि धातवो भवन्ति) अभिप्राय दोनोंका समान है इस कारण इस श्लोकका यही अर्थहै कि ब्रह्माजीने अग्नि आदिकोंको वेद दिये और उन्होंने प्रकाशित किये मनुजीके श्लोकोंके क्रमानुसार अग्नि आदिकोंका पूर्व उत्पन्न होना नहीं बन्ता यथाहि

तदण्डमभवद्धैमंसहस्रांशुसमप्रभम्
तस्मिञ्जज्ञेस्वयंब्रह्मासर्वलोकपितामहः अ० १ श्लो० ९

वोह जो बीज सुवर्णके सदृश पवित्र और सूर्यके समान प्रकाशित ईश्वरकी इच्छासे अंडेके आकार होगया उसमें आप ब्रह्माजी सब लोकके पितामह उत्पन्न हुए जब ईश्वरने ब्रह्माजी सबसे प्रथम उत्पन्न किये तो अग्नि आदि सृष्टिके अन्तर्गत हुए इनसे ब्रह्माका वेद पढ़ना असंगत है और देखिये

सर्वेषांतुसनामानिकर्माणिचपृथक्पृथक् ॥
वेदशब्देभ्यएवादौपृथक्संस्थाश्चनिर्ममे अ० १ श्लो० २१

ब्रह्माजीने सृष्टिकी आदिमें सबके नाम और सबके कर्म वेद शब्दोंसे जान कर भिन्न २ बनाये गौ जातिका नाम गौ, अश्व जातिका नाम अश्व, मनुष्य जातिका नाम मनुष्य रक्खा जब सबके नाम और कर्म वेद शब्दोंसे जानकर बनाये तौ निश्चय है कि अग्निका अग्नि और वायुका वायु आदित्यका आदित्यनाम वेद-सेही ब्रह्माजीने रक्खाहो वोह कौनसा वेदथा कि सब सृष्टिकी आदिमें अग्निकी अग्नि संज्ञा वायुकी वायु आदित्यकी आदित्य संज्ञा होनेसे पहले ब्रह्माजीके पास था जिस्से उन्होंने सबके नाम रक्खे इस्से यही विदित है कि सृष्टिके प्रथम ब्रह्माजीपरही वेद आये यदि इन तीनोपरही वेद आते तो वही सबके नामकी व्यवस्था वेदानुसार करते ॥

कर्मात्मनांचदेवानांसोऽसृजत्प्राणिनांप्रभुः
साध्यानांचगणंसूक्ष्मंयज्ञंचैवसनातनम् अ० १ श्लो० २२

उस प्राणियोंके प्रभु ब्रह्माजीने कर्म है स्वभाव जिनका ऐसे देवताओंका समूह साध्योंका समूह और सनातन यज्ञको उत्पन्न किया इस श्लोकमें प्रभु शब्द ब्रह्मा-जीका विशेषण है अर्थ उसका जनक अर्थात् पिताहै क्योंकि निरुक्ति उसकी यह है कि प्रकर्षेण भवत्यस्मादिति अर्थात् जिस्से जन्म हो वही प्रभुहै इस्से यही विदित होताहै कि अग्नि आदिकी गणनाभी इसी देवगणमें है इस्से बाहर नहीं है इसके आगे (अग्निवायुरविभ्यस्तु) यह २३ वां श्लोकहै ब्रह्माजीने इन तीनों देवता ओंको देवगणकी सृष्टिके संग उत्पन्न किया और वेदानुकूल उनके नाम रक्खे जब कि इनकी उत्पत्ति और नाम रखनेहीके पहले ब्रह्माजीके पास वेद विद्यमान थे तो क्योंकर हो सक्ता है कि अग्नि वायुने ब्रह्माजीको वेद पढाये अब अंगिरासे वेद पढनेकी वार्ता सुनिये ॥

स ब्रह्मविद्यांसर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वायज्येष्ठपुत्रायप्राह १
अथर्वणेयांप्रवदेतब्रह्माथर्वातांपुरोवाचाङ्गिरेब्रह्मविद्यांसभरद्वा
जायसत्यवाहायप्राहभारद्वाजोंगिरसे परावराम्

ब्रह्माजीने वोह वेद विद्या जिसके सब विद्या आश्रय हैं अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्व ऋषिको पढाई अथर्वने वोह ब्रह्मविद्या अंगीर ऋषिको पढाई अंगीर ऋषिने भार-

द्वाज गोत्रीसत्यवाहको पढाई उसने वोह परावर विद्या अंगिराको पढाई धन्य है स्वामीजीके निर्णयपर श्रुतिमें तौ अंगिराको शिष्य परम्पराकरके ब्रह्माजीका चतुर्थ शिष्यगिना है और स्वामीजी कहते हैं कि अंगिराने ब्रह्माजीको अथर्ववेद पढाया जानै इस कथनसे स्वामीजीने अपना क्या लाभ समझा है फिर एक बड़ा आश्चर्य यह है कि परमात्माने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिराको एक २ वेदका उपदेश किया और उनके द्वारा ब्रह्माजीको चारोंवेदोंकी प्राप्ति कराई यदि परमात्माने अ-ग्न्यादिकोंमेंसे किसी एकको चारोंवेदोंका अधिकारी नहीं समझा और ब्रह्माजीको चारोंवेदोंका अधिकारी जाना तौ ब्रह्माजीको स्वतः चारों वेदोंका उपदेश क्यों न किया निदान स्वामीजीके व्याख्यानसेभी यही प्रगट हुआ कि अग्न्यादिकोंकी अपेक्षा ब्रह्माजी पूर्णविद्वान हैं इसी कारण श्वेताश्वतरमें आया है कि–

तद्वेदगुह्योपनिषत् सुगूढंतद्ब्रह्मावेदते ब्रह्मयोनिं

जो परमात्मा वेद गुह्योपनिषदमें संवृतहै और ब्रह्माजीका उत्पन्न करनेवाला है उसको ब्रह्माजीही जान्ते हैं जैसे कि ब्रह्माजीका ब्रह्मज्ञान उपनिषद्से प्रगटहै वैसे अग्नि प्रभृतिके ब्रह्मज्ञानमें कोई प्रमाण नहीं ब्रह्मज्ञान तौ एक और है अग्नि तो देव-ताओंमें भाग प्राप्तिके लिये प्रार्थना करता है

अग्निर्वाअकामयत अन्नादोदेवानांस्याम

अग्नि यहां प्रार्थना करताहै और पराशर सूत्रमें आदित्यको ब्रह्माजीके पुत्रका धे-वता वर्णन किया है

ब्रह्मणश्चदक्षिणांगुष्ठजन्मादक्षः प्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वानिति ० पा०

अर्थात् ब्रह्माजीके दक्षिणांगुष्ठसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए और दक्षप्रजापतिसे अदितिनामकी कन्या उत्पन्न हुई उस्से विवस्वान् अर्थात् आदित्य उत्पन्न हुआ यहांसे प्रगट है कि आदित्य ब्रह्माजीके पुत्रका धेवताहै और मनुजीके १ अध्यायके ३२ श्लोकका यह आशयहै कि ब्रह्माने एक स्त्री और एक पुरुष उत्पन्न किया उनसे वि-राट् विराट्से मनु और मनुसे अंगिरा उत्पन्न हुआ तो अंगिरा ब्रह्माजीकी चौथी पी-ढीमें हुआ अंगिरा आदित्यके जन्मसे बहुत पहले चारों वेद ब्रह्माजीके पास विद्यमा-नथे उन्होंने वेदके शब्दोंसे अंगिरा और आदित्यके पिता पितामहादिकोंके नाम रक्खे।फिर यह क्योंकर हो सक्ताहै कि अंगिरा और आदित्यने ब्रह्माजीको साम और

अथर्ववेद पढाथा. यदि ईश्वर प्रथम इन्हीको वेदका उपदेश करता तो वही सबके नाम और कर्म और लौकिक व्यवस्था वेदानुसार निर्माण करते न कि ब्रह्माजी और अथर्ववेदको बृहदारण्यादि उपनिषदोंमें जो आंगिरस कहाहै उसका कारण यहहै कि अंगिरा ऋषिने मुंडोपनिषद्के वचनानुसार ब्रह्माजीके बेटेके शिष्यके शिष्यने इस वेदको पढकर अथर्वको ऐसा हस्तामलक किया कि उसीके नामसे सम्बद्ध होगया यदि स्वामीजीके कथनानुकूल अथर्ववेदका नाम इसलिये आंगिरसहोता कि अंगिराके हृदयमें ईश्वरने उसका प्रकाश किया तौ स्वामीजीके मतानुसार ऋग्वेद अग्नि के नाम यजुर्वायुके नामके साथ सम्बद्ध होता परन्तु कहीं इसका चिह्नभी नहीं पाया जाता इसलिये इस विषयमें जो कुछ स्वामीजीने लिखाहै वोह निर्मूल है फिर स्वामीजीने यह जो लिखाहै (कि अबभी जो कोई चारों वेदोंको पढताहै वोही यज्ञमें ब्रह्मासनको प्राप्त और उसीका नाम ब्रह्माभी होताहै) इस्सेभी यही विदित होताहै कि चारों वेदोंका ब्रह्माजीके साथ संबन्ध विशेषहै दूसरेके साथ वैसा नहीं है और वोह यहीहै कि आदि सृष्टिमें ब्रह्मजीकोही वेदोंका उपदेश दियाहै इसीकारण अबभी वेदाभ्यासयुक्त पुरुष ब्रह्माका प्रतिनिधि गिना जाता है यज्ञमें यदि स्वामीजीकी नाई होता तौ वेदके जाननेवाले यज्ञमें अग्न्यादिकौंके प्रतिनिधि होते यदि स्वामीजी और उनके शिष्य वेद शास्त्रको यथार्थ विचार करते तौ ऐसे धोखेमें न पडते और (सपूर्वेषामपिगुरुः) इस योगसूत्रमें अग्न्यादिकोंका कुछभी वर्णन नहीं है किन्तु पूर्वेषां से व्यासजीनेभी योग भाष्यमें ब्रह्मासे आदि ले ऋषियोंका वोह गुरू है यही वर्णन किया है इस्से स्वामीजीका कथन असत्य है । अब मंत्र ब्राह्मण दोनोका नाम वेद है इस विषयमें लिखा जायगा

मंत्रब्राह्मणप्रकरणम्

स.प्र० पृ० २०८ पं० ६

संहिता पुस्तकके आरम्भ अध्यायकी समाप्तिमें वेद यह सनातनसे शब्द लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तकके आरम्भ वा अध्यायकी समाप्तिमें कहीं नहीं लिखा और निरुक्तमें

इत्यपिनिगमोभवति इति ब्राह्मणम्
छन्दोब्राह्मणानिचतद्विषयाणि

यह पाणिनीय सूत्र हैं इस्सेभी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मंत्रभाग और

ब्राह्मण व्याख्या भाग हैं इसमें जो विशेष देखना चाहें वे ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकामें देखलें अनेक प्रमाणोंसे विरोध होनेसे.

मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् का०सू०

यह कात्यायनका वचन नहीं होसक्ता जो ऐसा माने तो वेद सनातन कभी नहीं होसक्ते क्योंकि ब्राह्मण ग्रंथोंमें ऋषि मुनि राजादिकोंके इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसकाहो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है किसी मनुष्यकी संज्ञा वेदमें नहीं है स. पृ. २०६ पं. १७ जो किसीसे कोई पूछै तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद है जो कुछ वेदोंमें कहाहै हम उसको मान्ते हैं॥

समीक्षा-स्वामीजीने यहां भी अपनीही धुनि निकाली भला मंत्र और ब्राह्मणको आप वेद नहीं मान्ते और कहते हो कि अनेक प्रमाणोंसे विरोध होनेसे यह कात्यायन वचन नहीं होसक्ता अब हम यही प्रमाण दिखावैंगे कि सबही आचार्योंने यह बात मानी है कि मंत्र और ब्राह्मण मिलकर वेद कहाता है प्रथम तो आपहीने उपनिषदोंकोभी वेद माना है स. पृ. ११ पं. २ देखिये वेदोंमें ऐसे २ प्रकरणोंमें ओम् आदि परमेश्वरके नाम हैं ओमित्येतदक्षरमिद ९उपासीत् छान्दोग्य० ओमित्येतदक्षरमिद ९सर्वमित्यादि मांडूक्य. यहां उपनिषदोंके प्रमाण दिये और सब वेदके नाममे उच्चारण किये पुनः पृष्ठ १८० पं. १० श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य सांख्यसू० इसके अर्थमें स्वामीजी लिखते हैं उपनिषद्भी प्रधानहीको जगत्का उपादान कारण कहता है यहां देखिये श्रुतिशब्द उपनिषदोंतकका नाम सिद्ध होता है और यदि वेद शब्दसे व्यवह्वार्य्य वाक्यकलापके दूसरे पदोंसे अर्थ करनेको व्याख्यान कहते हैं तो स्वामीजी इसे क्या कहैंगे ॥

प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वारूपाणिपरिताबभूव
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोअस्तुवयंस्यामपतयोरयीणाम्
यजु. अ. २३ मं. ६५

और—प्रजापतेनत्वदेतान्यन्योविश्वाजातानिपरिताबभूव
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नो अस्तु वयंस्यामपतयोरयीणाम् ऋ०
और—नवोनवोभवसिजायमानोऽह्नांकेतुरुषसामेष्यग्रम्
भागंदेवेभ्योविदधास्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुः अथर्व०

नवोनवोभवतिजायमानोऽन्हांकेतुरुषसामेत्यग्रम्
भागन्देवेभ्योविदधात्यायन्प्रचन्द्रमास्तिरतेदीर्घमायुः ऋक्०

इनमें पहले मंत्रमें (विश्वारूपाणि) ऐसा पद है और दूसरेमें (विश्वाजातानि) ऐसा पद है तीसरेमें (भवसिजायमान उषसामेत्यग्रम् विदधात्यायन्) ऐसे विलक्षण पद हैं तौ इन भिन्न २ मंत्रोंमें वेद पदोंके पदान्तरसे अर्थ कथनरूप स्वामीजीका पूर्वोक्त (ऋग्वेदभा० भूमिका) वेद व्याख्यानत्व तौ स्पष्टतासे प्रतिपन्न होता है तौ फिर वेद भी व्याख्यान कहलावैगा ॥

(प्रश्न) भरद्वाज अंगिरा वशिष्ठादि ऋषियोंके संवाद देखनेसे ऋषिप्रणीतत्व ब्राह्मण है (उत्तर) अच्छे भ्रममें पडेहो वेदोंका वेदत्व तौ इतनाही है कि भूत भविष्य वर्तमान सन्निकृष्ट विप्रकृष्ट सर्ववस्तु साधारणसे सबोंको जान्ते हैं और दूसरोंको जनाते हैं (लौकिकानामर्थपूर्वकत्वात्) ऐसा कात्यायन ऋषिने प्रातिशाख्यमें कहाहै इसका अर्थ यह है कि लौकिकानां अर्थात् " गामानयशुक्लांदंडेन " इत्यादि लौकिक वाक्योंका प्रयोग अर्थपूर्वक होता है अर्थात् प्रयोग करनेवाले लोग उन उन वक्तव्य अर्थोंका लाभ करके वा अनुसंधान करके लौकिक वाक्योंका प्रयोग करते हैं और वैदिक नित्य वाक्योंका अर्थपूर्वक प्रयोग नहीं घटसक्ता क्यों कि वैदिक वाक्योंके अर्थ सृष्टिप्रलयादिक नित्य नहीं है इस्से वस्तुसत्ताकी अपेक्षा न करके लोकवृत्तको जनातेहुए वेद यदि याज्ञवल्क्यादि जनकादिके संवादका कथनभी करैं तौ क्या हानि होती है अन्यथा तौ " सूर्याचन्द्रमसौधाता यथा पूर्वमकल्पयत् " अर्थात् सूर्यचन्द्र परमेश्वरनें जैसे पहले बनायेथे ऐसेही इस सृष्टिमें इत्यादि इस संहिताभागकीभी अवेदत्वापत्ति हो जायगी जैसे जनकादि संवादोंके ब्राह्मण ग्रंथोंमें देखनेसे जनकादिकके उत्पत्ति कालके पश्चात् कालमें उत्पन्न होना ब्राह्मण भागमें उत्प्रेक्षित करतेहो वैसे (सूर्य्याचन्द्रमसौ०) और (त्रितंकूपे०) इस पूर्व लिखित श्रुतिकोभी सूर्यचंद्रकी सृष्टि कहने और त्रितऋषिके उत्पत्ति कालके पश्चात् कालमें मंत्रकाभी उत्पन्न होना प्रतीत होनेके कारण अनित्यत्वापत्ति हो जायगी तब तौ वही हुई कि आप ब्याजको मरतेथे मूलभी गँवाबैठे इस आपत्तिके निवारणार्थ आपको यही कहना पड़ेगा कि सूर्यचन्द्रादिककी उत्पत्तिको कहनेवालेभी वेद कुछ सूर्यादिकी सृष्टिके पश्चात् कालमें उत्पन्न नहीं हुए हैं क्योंकि वेद वाक्यका प्रयोग अर्थपूर्वक नहीं होता तौ फिर ब्राह्मण भागने क्या बिगाडा है जो इस्से आप चिढ़ते हो ब्राह्मण वेदद्वेष अच्छा नहीं अब आगे देखिये कि मीमांसाके प्रथमअध्याय १ पादका ३२ सूत्र मंत्रके लक्षणमें इस प्रकार है ॥

तच्चोदकेषुमंत्राख्या ३२
शेषेब्राह्मणशब्दः ३३

यहां ऐसा आचार्यशेषे ब्राह्मणशब्दः इस द्वितीय सूक्तोक्तिसे (शेषे) मंत्रभागसे अवशिष्ट मंत्रैकदेशमें (ब्राह्मणशब्दः) ब्राह्मण शब्दसे व्यवहार होता है ऐसा कहते हैं इस कथनसे यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि वेदका मंत्र और ब्राह्मण दो भेद हैं यदि आचार्य ब्राह्मणको वेदका एक भाग नहीं मान्ते तो शेषे ब्राह्मणशब्दः ऐसा कैसे कहते प्रकृतिस्थ जन रामायण महाभारतका शेषहै ऐसा कोई नहीं कहैगा तब शेष शब्दके कथनसे ब्राह्मणको वेदत्व अवश्य अभिमत है ऐसा प्रतीत होता है अतएव ब्राह्मण निर्वचनाधिकरणमें आचार्य शबरस्वामी ऐसी व्याख्या करते हैं (प्र०) ब्राह्मणका क्या लक्षण है ? (उत्तर) मंत्र और ब्राह्मण दो भाग वेद है उसमें मंत्र भागके लक्षण कहनेहीसे परिशेषतः ब्राह्मणका लक्षण सिद्ध होगया फिर कहनेकी क्या आवश्यकता है और यही समझकर भगवान् जैमिनिनैभी पूर्व लिखित दो सूत्रों से मंत्र ब्राह्मणात्मक समस्त वेदका लक्षण कहकर वेदके एकदेश ऋकूका

तेषामृग्यत्रार्थवशेषादव्यवस्था ३५
गीतिषुसामाख्या ३६
शेषेयजुःशब्दः ३७
ऋक् यजुसामका लक्षणकहाहै और यजुषकेभी एक देशका निगदोवाचतुर्थस्याद्धर्मविशेषात् ३८

इस सूत्रसे यजुर्विशेष निगदकाभी लक्षण कहा है यदि आचार्य ब्राह्मणको वेद नहीं मान्ते तब तो (तच्चोदकेषु मंत्राख्या) इस्से मंत्र लक्षण कहनेके उपरान्तही ऋगादिकाभी लक्षण कहते पर यहतो मंत्र लक्षणके अनन्तर (शेषे ब्राह्मणशब्दः) इस सूत्रसे ब्राह्मणका लक्षण कहते हैं इस्से जैमिनि मंत्र और ब्राह्मण दोनो हीको वेद मान्ते हैं अवलोकिये श्रीकणादाचार्य ६ अध्यायकी आदिमें लिखते हैं कि

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे क०

अर्थ यह हैकि (वेदे) वेद नामक वाक्य कलापमें (वाक्यकृतिः) वाक्यरचना (बुद्धिपूर्वा) वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थज्ञान तत्पूर्वक है अर्थात् वेदमें जो जो

वाक्य लिखे हैं उन वाक्योंके अभिप्रेत अर्थोंको यथार्थ जान करके वक्ताने प्रयोग किया है वाक्य रचना का यह नियमही है कि जबतक जिस अर्थको नहीं जान्ते तब तक उस अर्थके वाक्यकी रचना नहीं करसक्ते (यथा नृपतिः सेव्यः) " कांची नगरीमें त्रिभुवनतिलक राजा हुआ है " इत्यादि अस्मदादिक की रचना ज्ञान पूर्वक होती है इस्से विधि निषेध वाक्य अनापत्त्या अपनी उपपत्तिके लिये वक्ताका यथार्थ जो वाक्यार्थ ज्ञान तत्पूर्वकत्वका अनुमान करता है हम लोगोंका जो ज्ञान तत्पूर्वकत्वेन अन्यथासिद्धि तौ नहीं होसक्ती " क्योंकि स्वर्गकामो यजेत " स्वर्ग-की कामना होतो यज्ञ करै उसीसे हमारा अभीष्ट साधनहोसकैगा और इसको करना चाहिये इत्यादि ज्ञान हम लोगोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् यज्ञ करनेसे स्वर्ग होताहै ऐसी बात हमलोगोंकी क्षुद्र बुद्धिमें नहीं बैठ सक्ती अतः ऐसा ज्ञानवान् कोई स्वतंत्र पुरुष अवश्य पूर्वमें था जो कि इस विधि निषेधका रचनेवाला है और ऐसा स्वतंत्र एक वेद पुरुषही है इस्से संहिता आदिका भ्रम प्रमादादि दोषसे शून्य जो स्वतंत्र पुरुष वोही रचनेवाला है यह सिद्ध हुआ और प्रकारान्तरसेभी वेद वाक्योंका बुद्धि पूर्वकत्व वही कहते हैं कि " ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिर्लिङ्गम् " अर्थात् ब्राह्मण ना-मक वेद भागमें नाम करण (सिद्धि) अर्थात् बुद्धिपूर्वकत्वका अनुमापकहै जैसे लोकमें चैत्रमैत्र आदि नाम रखनेवालोंकी बुद्धिका आक्षेप करता है ब्राह्मणमें 'उ-द्भिदायजेत' 'बलिभिदायजेत' 'अभिजितायजेत' 'विश्वजिता यजेत' इत्यादि नाम करण है इनमें 'उद्भिदा' इत्यादि नाम किसी स्वतंत्र पुरुषकी बुद्धिका आ-क्षेप करता है अर्थात् अलौकिक अर्थ तौ हम लोगोंकी बुद्धिगोचर हुआ नहीं है कि 'उद्भिद' इत्यादि नाम जो हम लोगरखसकैं इस्से ऐसे नामहीसे किसी एक स्वतंत्र पुरुषका बोध होता है और वैसा एक वेद पुरुष भगवान है और ऐसेही " बुद्धिपूर्वादददाति " यहांभी "स्वर्गकामोगांदद्यात्" अर्थात् स्वर्गकी इच्छासे गोदान करना ऐसा कहनेसे वक्ताका यथार्थ ज्ञान जान पडता है गोदान करनेसे स्वर्ग होता है ऐसानिःसंशयज्ञान हम लोगोंको प्रत्यक्ष नहीं है इस्से यहांभी वैसाही ज्ञानवान स्वतंत्र पुरुष सिद्ध होता है ऐसेही

तथा प्रतिग्रहः क० सू०

इस चौथे कणादसूत्रकाभी ऐसाही अर्थ जानना चाहिये पृथ्वीदान लैनेसे स्वर्ग होता है और कृष्ण चर्मादि दान लेनेसे नरक होता है ऐसा हम नहीं निश्चय करसक्ते इत्यादि रीतिसे वेदोंके आप्तोक्तत्व साधनद्वारा उनका प्रामाण्य साधन करतेहुए कणादाचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनोको वेद स्पष्ट मान्ते हैं यदि केवल मंत्र भागहीको

वेद मान्ते तो पूर्वोक्त सूत्रोंमें दोनोंके उदाहरण दानपूर्वक लेख नहीं करते इस्से कणादाचार्यभी ब्राह्मण भागको वेद मान्ते हैं इस्से स्वामीजीका वोह कहना कि कात्यायनके विना और किसीने मंत्र ब्राह्मणको वेद नहीं कहा असत्य प्रतीत हो गया अब ब्राह्मणके वेद होनेमें और प्रमाण सुनिये कि गौतमजी वेद प्रमाण निरूपणावसर स्थूणानिखनन्यायसे वेदके प्रमाणहीको दृढ करानेके लिये आशंकाकी है

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः न्याय०

अर्थात् (तदप्रामाण्यम्) उस वेदका प्रमाण नहीं हो सक्ता क्योंकि (-अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः) उसके वाक्योंमें असत् पूर्वापरविरोध दोवार कहना इत्यादि दोषहैं असत्यका उदाहरण यथा " पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत " जिसे पुत्रकी इच्छाहो पुत्रेष्टी यज्ञ करै परन्तु कहीं पुत्रेष्टी करनेसेभी पुत्र नहीं होता जब कि इस प्रत्यक्ष वाक्यका प्रमाण नहीं तो " अग्नि होत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः " स्वर्गकी कामनासे अग्निहोत्र करै ऐसा जो वेदमें अदृष्टार्थ वाक्य है उसके (प्रामाण्यं) सत्यतामें कैसे विश्वास होवै यहां (तदप्रामाण्यम्) इस सूत्रमें तत्पदसे वेदहीका परामर्श है इस रीतिसे वेद अप्रमाणकी आशंका करकै (अग्निहोत्रं) इस ब्राह्मणवाक्यका अप्रमाण गौतमजी दिखलाते हैं यदि ब्राह्मणको वेद न मान्ते होते तो वेदके अप्रमाण दिखलानेके समय ब्राह्मणका अप्रमाण दिखाना तो कान छूनेके समय कंधेलचकनिके समान अति हास्यकारक होता इस कारण गौतमजी ब्राह्मणको वेद अवश्य मान्ते हैं क्यों कि दृष्टान्त उन्होंने मंत्र और ब्राह्मण दोनोंहीके दिये हैं सो भाष्यकारने खोलकै लिख दिये हैं आगे इस शंकाका समाधान किया है और देखिये

वाक्यविभागस्यचार्तग्रहणात् अ० २ सू० ६०
बुद्ध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ६१ न्या०

इस पर वात्स्यायनजी लिखते हैं " त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि युक्तानि विधिवचनानि अर्थवादवचनानि अनुवादवचनानीति तत्र विधिर्नियामकः यद्वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः विधिस्तु विनियोगो ऽनुज्ञा वा यथा अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ॥"

यहां ब्राह्मण वाक्योंके विभागावसरमें वात्स्यायनजीके " अग्निहोत्रं " इस वाक्यके लिखनेसे इनकी व्याख्या प्रणालीसे (अग्नि) इस ब्राह्मण वाक्य सूत्रस्थ (तत्) पदसे संग्रह करना अवश्य गौतमजीको अभिमत है इस रीतिसे ब्राह्मणको वेद सभी ऋषि मान्ते हैं ॥

जैसे सृष्टिकी उत्पत्ति आदिक्रम वेदोंमें वारंवार कहा है पर उनसे वेद पौरुषेय नहीं होसक्ते इसीप्रकार लौकिक इतिहासोंकोभी समझिये वेद सभी विद्याओं-का मूल है इस्से लौकिक जनोकी सुगमताके लिये भगवान् परमेश्वरने याज्ञ बल्क्य उशना अंगिरा जनक इत्यादिके नामोल्लेख पूर्वक ब्रह्मविद्यादि विद्याओंका उपदेश किया है जैसे कि सृष्टिको कहनेवाला वेद सृष्टिके पीछे बना है (यह नहीं) किन्तु सृष्टिही अनादि प्रवाह सिद्ध वेदोंके पश्चात् हुई है इस्से सृष्टिको वर्णन करने वालेभी वेद कुछ सृष्टिके अनन्तर बने नहीं कहलाते ऐसेही ब्राह्मणमें लौकिक इति हास वर्णन करनेपर भी ऐतिहासिक अर्थोकी उत्पत्तिके पश्चात् कालमें उत्पन्न वा वने ब्राह्मण नहीं कहलासक्ते और " तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च " इस अथर्ववेदमें इतिहास पुराणके आनेसे क्या वेद इतिहास पुराणके पीछे बनाहै कभी नहीं इसप्रकार वेदमें इतिहास होनेसेभी सादित्व नहीं आता और व्याख्यान वा भाष्य करता अलग अलगहों यह कोई नियम नहीं है क्योंकि शंकर भाष्यमें " प-श्वादिभिश्चाविशेषात् " इस अपने भाष्यकी आपही व्याख्या शंकराचार्यजीने की है और पातंजल भाष्यमें भी " अथ शब्दानुशासनम् " इसका "अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः " इत्यादि व्याख्यान स्वयं भाष्यकारने किया है फिर जब भाष्य-का व्याख्यान भाष्य कहलाता है तो वेदके व्याख्यान कोभी वेद कहलाने में क्या संदेह है (प्रश्न)

द्वितीया ब्राह्मणे २।३।६० अष्टा०
चतुर्थ्यर्थे बहुलंछन्दसि २।३।६२
पुराणप्रोक्तेषुब्राह्मणकल्पेषु ४।३।१०५
छन्दोब्राह्मणानिचतद्विषयाणि ४।२।६२

यहां पाणिनि आचार्य वेद और ब्राह्मणको पृथक् २ कहते हैं पुराण अर्थात् प्राचीन ब्रह्माआदि ऋषियोंसे प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प वेद व्याख्यान हैं इस्से इन-की पुराणेतिहास संज्ञा की गई है यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दोनोकी वेद संज्ञा सूत्रकारको अभिमत होती तो (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्रमें छन्द ग्रहण न करते " द्वितीया ब्राह्मणे " इस सूत्रमें " ब्राह्मणे " इसपदकी अनुवृत्ति प्रकर-णतः प्राप्त है इस्से जान्ते हैं कि ब्राह्मण ग्रंथकी वेद संज्ञा नहीं और यदि छन्द पदसे ब्राह्मणकाभी ग्रंथ पाणिनिको अभिमतहोता तो "छन्दोब्रा०" इससूत्रमें ब्राह्म णग्रहण क्यों करते केवल छन्दसि कहदेते क्योंकि ब्राह्मणभी छन्दहीहै "उत्तर " वाह

व्याकरणमें भी आपकी बहुत पहुंचहै यहकहना सर्वथाआपका अनुचितहै देखिये द्विती या ब्राह्मणे इस सूत्रसे ब्राह्मणविषयक प्रयोगमें अव पूर्वक ह और पण धातुके समानेर्थक दिवधातुके कर्ममें द्वितीया विभक्ति होतीहै यथा " गामस्यतदहः सभायांदी व्येयुः" यहांशतस्यदीव्यति इत्यादि मेंकीनाई "दिवस्तदर्थस्य" ।२।३।५८। इस सूत्रसे गोरस्य ऐसी षष्ठी प्राप्तथी सो वहां"गामस्य" ऐसी द्वितीया की जाती है यहां ब्राह्मणरूप वेदैकदेशहीमें द्वितीया इष्ट है नकि मन्त्र ब्राह्मणात्मक श्रुति छन्दः आ-म्नाय निगम वेद इत्यादि पदसे व्यवहार्य्य समस्त वेद मात्रमें और (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) २।३।६२ इसउत्तर सूत्रसे मंत्र ब्राह्मणरूप छन्दोमात्रके विष-यमें चतुर्थीके अर्थमें षष्ठीका विधान किया जाता है " पुरुषमृगश्चंद्रमसः " " पु-रुषमृगश्चन्द्रमसे " इत्यादि इस सूत्रसे छन्दसि इसपदसे मंत्र ब्राह्मणरूप समस्त वेद मात्रका संग्रह पाणिनि आचार्य्यको अभिमत है, अतएव इसके उदाहरणमें (या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वोजायते तिस्रोरात्रिरिति तस्या इति प्राप्ते, यां मलव द्वासः संभवन्ति यस्ततो जायते सोभिशस्तो। यामरण्ये तस्यै स्तेनो यां पराचीं तस्यै हीत मुख्य प्रगल्भो यास्नाति तस्या अप्सु मारुको याऽभ्यङ्क्ते तस्यै दुश्चर्मा या प्रलिखते तस्यै खलतिरपस्मारी याङ्क्ते तस्यै काणो यादतो धावते तस्यै श्यावदन् यानखानि निकृन्तते तस्यै कुनखी या कृणत्ति तस्यै क्लीबो यारज्जुं सृजाति तस्या उद्बंधुको या पर्णेन पिबति तस्या उन्मादुको जायते अहल्यायै जार मनाय्यै तन्तुः) इत्यादि बहुतसे ब्राह्मणोंही को भाष्यकारने दिया है यदि इस सूत्रमें छन्दो ग्रहण न रहै गा तौ पूर्व सूत्रसे 'ब्राह्मणे' इसपदकी अनुवृत्ति लानेपर भी केवल ब्राह्मणहीमें षष्ठी होगी वेदमात्रसे नहीं इसकारण इससूत्रमें (छन्दसि) ग्रहणका विशिष्ट फलहई हैं और ब्राह्मणकी भी छन्दोरूपतामें भाष्यकार सम्मति देते ही हैं फिर इससूत्रमें छन्दो ग्रहणको व्यर्थ कहते हुए आपनिरे स्वच्छन्द नहीं हैं तौ और कौन है और नहीं तौ (मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशा ण्विन् ३।२।७१ अवेयजः ३।२।७२ विजुपेश्छन्दसि ३।२।७३) ऐसे क्रमिक सूत्रमें पाठसे अन्तिम सूत्रमें "छन्दसि" ऐसा कहनेसे मंत्रभागमेंभी छन्दोरूपता न सिद्ध होने पावेगी देखिये जैसे (ब्राह्मणे) ऐसा कहकर (छन्दसि) ऐसा कहनेसे ब्राह्मणका छन्द पदमें व्यवहार पाणिनीको अभिमत नही है ऐसी उत्प्रेक्षा आप करते हैं तैसेही पूर्व सूत्रमें मंत्र ऐसा कहकर (विजुपेश्छन्दसि) ऐसा कहनेवाले पाणिनीको मंत्र भागमेंभी छन्द पदसे व्यवहार अभिमत नहीं है ऐसा कहना पड़ैगा। तब तौ ब्राह्मणद्वेषी आपके शिरपरभी महा अनिष्ट आपड़ैगा औरभी "अम्नरूधरवरित्युभयथाछन्दसि ८।२।७०)

इस सूत्रमें पाणिनि (छन्दसि) ऐसा कहकर " भुवश्च महाव्याहृतेः ८।२।७१ " इस उत्तर सूत्रमें महाव्याहृतेः ऐसा कहते हैं इस्से महाव्याहृतिकीभी छन्दो भावच्युति अवश्यहो जायगी क्योंकि " ब्राह्मणे " ऐसा कहकर " छन्दसि " ऐसा कहनाही ब्राह्मणका छन्दोभावका अभाव साधन करैगा और " छन्दसि " ऐसा कहकर " महाव्याहृतेः " ऐसा विशिष्ट व्याहृतिका कहना महाव्याहृतिका छन्दो भावका नाशक न होगा ऐसी आंखमें धूलतौ आप नहीं डालसक्के इस हेतुसे पाणिनि आचार्य प्रयोगसाधुत्वके अपसंग और अति प्रसंग निवारण करनेकी इच्छासे कहीं सामान्यसे (छन्दसि) ऐसा कहकर विशेषसे " महाव्याहृतेः " ऐसा कहते हैं और कहींतौ विशेषसे " ब्राह्मणे " " मन्त्रे " ऐसा कहकर सामान्यसे " छन्दसि " ऐसा कहते हैं इस्से यदि यहां छन्द और ब्राह्मण दौनोकी वेदसंज्ञा सूत्रकारको इष्ट न होती तौ (चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि) इस सूत्रमें छन्दोग्रहण वो क्योंकरते क्योंकि (द्वितीया ब्राह्मणे) इससूत्रसे ब्राह्मणे इस पदकी अनुवृत्ति प्रकरणतःसिद्धथी इस्से जान्ते हैं कि मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है और आपका कहना सब मिथ्याहै और (छन्दोब्राह्मणानीति) ब्राह्मणों और मन्त्रोंका छन्दोभाव समान हौनेसे पृथक् ब्राह्मण व्यर्थ है ऐसा प्रासथा तथापि ब्राह्मण ग्रहण यहा " अधिकमधिकार्थम् " इस न्यायसे ब्राह्मण विशेषके परिग्रहार्थ है इस्से (याज्ञवल्क्येन प्रोक्तानि ब्राह्मणानि याज्ञवल्क्यानि सौलभानि) इस प्रयोगसे पूर्वोक्त नियम नहीं हुआ व्याकरण भाष्यकारभी (याज्ञवल्क्यादिभ्यः प्रतिषेधोवक्तव्यः) ऐसा कहते हुए इस सूत्रमें ब्राह्मण ग्रहणका प्रयोजन यही सूचित कराये हैं और " पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु ४ । ३ । १०५ " इस सूत्रमें ब्राह्मणका पुराण प्रोक्त ऐसा विशेषण कहते हुए पाणिनिको यही अर्थ अभिमत है अन्यथा यदि ब्राह्मण विशेषके परिग्रहकरनेकी इच्छा न होती तौ (पुराणप्रोक्तेषु०) इसके कहनेसे आचार्यकी प्रवृत्ति व्यर्थ होजाती आहैं स्वामीजी आप कुछ समझें परन्तु भाष्यके श्रम करनेवाले विद्वानोंको यहवात कुछ परोक्ष नहीं है इस हेतु हम इसमें कुछ और नहीं कहा चाहते और मंत्र भागकी नाई ब्राह्मण भागकाभी प्रामाण्य वारंवार सिद्धकर आये हैं अतएव पुराण प्रामाण्य व्यवस्थापनके प्रसंगसे (प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहास पुराणानां प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते) ऐसा वात्स्यायनमहर्षिने कहा है यदि ब्राह्मणोंका स्वतः प्रामाण्य न होतौ दूसरेकी प्रामाण्यबोधकता कैसे उनमें संभवित होसक्ती है क्योंकि ब्राह्मणभाग स्वयं जबतक प्रमाणपदवीपर व्यवस्थित नहोलेगा तबतक इतिहास पुराणके प्रामाण्यका व्यवस्थापन करनेमें कैसे समर्थ होसकैगा यह कहावत प्रसिद्ध है कि (स्वयमसिद्धः कथंपरान् साधयिष्यति) इससे श्रुति वेद शब्द आ-

म्नाय निगम इत्यादि पद मंत्र भागसे लेकर उपनिषद पर्यन्त वेदोंका बोधक है यह शास्त्र मार्मिक विद्वानोंका परामर्श है अतएव (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः) श्रुतिको वेद कहते हैं धर्मशास्त्रकू स्मृति कहते हैं ऐसा आस्तिक जनों-के जीवनौषध भगवान मनुजीने भी माना है अतएव वेदान्तचतुरध्यायीमें भगवान व्यासमुनि उपनिषदोंके कहनेके इच्छुक होकर

श्रुतेस्तुशब्दमूलत्वात् अ० २ पा० १ सू० २७
पदात्तुतच्छ्रुतेः अ० २ पा० ३ सू० ४१
भेदश्रुतेः अ० ३ पा० ४ सू० १८
सूचकश्चहिश्रुतिराचक्षतेतद्विदः अ० ३ पा० २ सू० ४
तदभावोनाडीषुतच्छ्रुतेः अ० ३ पा० २ सू० ६४
वैद्युतेनैवततस्तच्छ्रुतेः अ० ४ पा० ३ सू० ६

इत्यादि सूत्रोंमें वारंवार श्रुतिपद शब्दपदका उपादान करते है श्रुतिसे उपनिषदोंकोही ग्रहण किया है और श्रीकणादाचार्यनेभी दशाध्यायीके अन्तमें (तद्वच नादाम्नायस्य प्रामाण्यम्) ऐसा आम्नाय पदसे वेदके प्रामाण्यका उपसंहार किया है यहां आम्नाय पद संहितासे लेकर उपनिषद पर्य्यन्त समस्त वेदका बोधक है क्योंकि इसके समान तन्त्रगोतमीय न्यायदर्शनके (मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यात्त त्प्रामाण्यात्) इससूत्रमें तत्पदसे उपादेय उपनिषदोंके संहित वाक्य कलापहीके प्रामाण्यका अवधारण किया है और वहीके तत्पदकी मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद मात्रकी बोधकता पूर्वमें निश्चित करहीचुके है और मन्वादि स्मृतियां इसी अर्थके अनुकूल है देखिये

एताश्चान्याश्चसेवेतदीक्षाविप्रोवनेवसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धयेश्रुतीः अ० ६ श्लो० २९

दीक्षा युक्त ब्राह्मण वनमें वास करता हुआ आत्मज्ञानके अनेक उपनिषदोंकी श्रुति विचारे यहां (औपनिषदीः श्रुतीः) ऐसा कहनेसे उपनिषदौका श्रुति पद वाच्यत्व स्पष्ट सिद्ध होता है और श्रुति शब्द वेदका आम्नाय पदका पर्य्याय शब्द है जैसे कि मनुजीने कहा है (श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः) इत्यादि पूर्व लिख आये है जब मनुजीने उपनिषदोंको श्रुति माना और व्यवहारभी वैसाही

किया तव ब्राह्मणोंका वेद भाव अवश्य हुआ क्योंकि ब्राह्मणोंहीके शेषभूततौ उपनिषद् है इसी कारण वेदान्त नामसे विख्यात है अतः यह कात्यायन वाक्यकि " मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् " कि मंत्र ब्राह्मण दौनोका वेद नाम है यह अपेल सिद्धान्त है नहीं तौ दिखाया होता यह वाक्यकि वेद ब्राह्मण नहीं है और ब्राह्मणके आदि अन्तमें वेद ऐसा जो नहीं लिखा यह केवल भाग जनानेकी इच्छासे नहीं लिखा जिस्से यह विदित होता रहे कि यह मंत्रभाग है यह ब्राह्मण यदि दौनो हीको एक पद दिया जाता तौ मंत्र ब्राह्मण ऐसे मिश्रित हो जाते जिस्से यह निर्धारण करना कठिन होजाताकि यह श्रुति मंत्रकी है या ब्राह्मणकी कुछ ब्राह्मण भागके अन्तमें पुराण शब्द तौ लिखाही नहीं है लिखा तौ यही है कि ब्राह्मण सो यह भाग निर्धारण करनेको लिखा है. इस्से मंत्र ब्राह्मणका नाम वेद है यह सिद्धान्त निश्चित है और जब आपही मंत्रभाग ब्राह्मण भाग कहते हैं तौ भाग मात्रा तुह्मारेही वचनसे सिद्ध है इस खंडनमें वेद भाष्यभूमिकाकाभी खंडनआ गया है.

फिर आपने यहभी एक तमासेकी बात लिखदी है कि जो कोई पूछै कि तुह्मारा क्या मत है तौ कहना कि वेदमत यदि आपका वेदका मत है तौ आपने तौ वेदमे रेल तार कमेटी वर्णसंकरता सब एक जाति हो जाओ एक स्त्री ग्यारहतक पति करले इत्यादि बहुतसी बातें लिखीहै तौ आपके मतवाले क्या करैं आपके मतमें ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता जैसा करना वैसा भरना फिर ईश्वरका स्मरण क्यों करना फिर जिस मतमें ईश्वरहीसे प्रेम नहीं वोह मतही क्या है वेदके नामसे लोगोंको जालमें फसाना है जैसे पीतलके ऊपर मुलम्बा करकै सोना बनाकै कोई भोले भालोंको ठग लेता है ऐसी यह स्वामीजीकी चाल है आपके वेदार्थको दूरहीसे नमस्कार है वेदका तौ नाम है अर्थ तौ मनमानेघरमेंही किये हैं जो कि निघंट निरुक्त प्राचीन भाष्यादिसे संपूर्णतः विरुद्ध हैं इस कारण आपका वेदार्थठीक नहीं और उन अर्थोंके अनुसार वैसा मत ठीक नहीं उसके अनुसार नियोग मत आदि सिद्ध होते हैं

इति श्रीमद्दयानन्दतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतसप्तमसमुल्लासस्यखंडनंसमाप्तम्. सम्पूर्णम् ३०।७।९०

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

श्रीगणेशायनमः।

अथ सत्यार्थ प्रकाशान्तर्गत अष्टम समु-ल्लासस्य खंडनप्रारम्भः।

वेदान्तप्रकरणम्–सृष्टिउत्पत्तिका प्रकरण।

स.पृ. २०७ पं० १२

पुरुषएवेदꣳसर्वंयद्भूतंयच्चभाव्यम्

उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनातिरोहति यजु० अ० ३१ मं. २

इसका अर्थ पृ. २०८ पं. ४ हे मनुष्यो जो सबमें पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीवका स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीवसे अतिरिक्त है वोही पुरुष सब भूत और भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगतका बनानेवाला है

समीक्षा स्वामीजीके अर्थोंकी कैसी विचित्र महिमा है इस मंत्रमें जीव प्रकृति और ईश्वरका वर्णनकर बैठे है वेदान्त विषयमें आता तो कुछभी नहीं परन्तु ढाई चावलकी खिचड़ी पकाये विनारहाभी नहीं जाता देखिये इसका यह अर्थ है

(इदम्) यह (यत्) जो (भूतम्) अतीत ब्रह्मसंकल्प जगत् है (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) भविष्य संकल्प जगत् है (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) बीज वा अन्न परिणाम वीर्यसे (अतिरोहति) वृक्ष नर पशु आदि रूपसे प्रगट होता है (सर्वम्) वोह सब (अमृतत्वस्य) मोक्षका (ईशानः) स्वामी (पुरुषः) नारायण (एव) ही है इसका अन्य न होनेसे ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे सब जगत ब्रह्मरूपही है इससे ब्रह्म अनन्त है स्वामीजी ब्रह्मको अन्योन्याभावप्रतियोगी मान्ते हैं क्यों कि जीव जगतजड़ प्रकृतिमें ब्रह्मका भेद मान्ते हैं तो यही ऊपरकी श्रुतिसे विरोध पड़ेगा और (ब्रह्मविकारो भवितुमर्हति अन्योन्याभावप्रतियोगित्वात् पृथिव्यादिवत्) इस अनुमानसे ब्रह्ममें विकारत्व प्रसक्ति होगी.

स. पृ. २०८ पं. ७

यतोवाइमानिभूतानिजायन्ते येनजातानिजीवन्ति

यत्प्रयंत्यभिसंविशन्तितद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म तैत्तरी०

पृ. २०८ में इसका अर्थ लिखा है जिस परमात्माकी रचनासे यह सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिस्से जीव और जिस्से प्रलयको प्राप्त होते हैं वोह ब्रह्म है उसके जान्नेकी इच्छा करो

समीक्षा. यह क्या स्वामीजी इतनाही पद लिखकर गड़प गये (जिस्से जीव) इस्से तो प्रत्यक्ष है कि जिस परमेश्वरसे जीव उत्पन्न होते हैं और आप आगे इनको नित्य मान्ते है नित्यभी मान्ना और जन्मभी कहना यह वैदिकविरोध रसातलमें अर्थ करताकू क्यों न ले जायगा सूधा अर्थ है कि जिस्से यह प्राणी उत्पन्न होते और उसीसे जीते और अन्तमें उसीमें प्रवेश करते हैं उसेही ब्रह्म जानो अब प्रकृति जीव नित्य और पृथक् नरहे

पृ. २०८ पं. १८

द्वासुपर्णासयुजासखायासमानंवृक्षंपरिषस्वजाते
तयोरन्यःपिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योअभिचाकशीति
ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०
शाश्वतीभ्यःसमाभ्यः य० अ० ४० मं० ८

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दौनौ (सुपर्ण) चेतनता और पालनादि गुणोंसे सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भावसे संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि है और (समानं) वैसेही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलयमें छिन्न भिन्न होजाता है वोह तीसरा अनादि पदार्थ इनतीनोंके गुणकर्म स्वभावभी अनादि हैं इन जीव ब्रह्ममेंसे एक जो जीव है वोह इस वृक्षरूप संसारमें पाप पुण्यरूप फलोंको " स्वाद्वत्ति " अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मोंके फलोंको (अनश्नन्) नभोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमानहो रहाहै जीवसे ईश्वर ईश्वरसे जीव और दोनोंमें प्रकृति भिन्नस्वरूप तीनो अनादि है (शाश्वती) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजाके लिये वेदद्वारा परमात्माने सब विद्याओंका बोध किया है

समीक्षा जैसे किसीके हाथ हलदीकी गिरह लग गई और वोह पसारी बन बैठा ठीक यही दृष्टान्त स्वामीजीपरहै बस उनके शिष्योंकू और उन्हे द्वैतप्रकरणको यह श्रुति सजीवन मूल है परन्तु उनकी बुद्धि तौ अज्ञानतिमिरसे आच्छादित है उन्हे सूझे कहांसे वास्तव इसका अर्थ यहहैं जो प्रकाश करते हैं

प्रथम तौ इस मंत्रमें यह प्रश्न है कि यह मंत्र चेतनमें भेद सिद्ध करता है या भोक्ता अभोक्ता रूप पक्षियोंके भेदको सिद्ध करता है जो चेतनमें भेद साधक कहो तौ इसमंत्रमें ऐसा कोई पद नहीं जो चेतनमें भेद साधन करै इसकारण चेतनमें

भेद नहीं किन्तु दो सुपर्णोंका बोधन करता है सोभी सुपर्ण वेद प्रतिपाद्य होने चाहिये मंत्रका अर्थ दोसुपर्ण हैं (सयुजा) परस्पर सम्बन्धवाले (सखाया) समान प्रीतिवाले अर्थात् जिनका प्रतीत होना तुल्य है वे दोनो (समान) एक (वृक्षं) वृक्षको (परिषस्वजाते) आश्रय कर रहे हैं (तयोः) तिन दोनोंमें (अन्यः) एक (पिप्पलं) (स्वाद्वत्ति) वृक्षफलको भोक्ता है और दूसरा (अनश्नन्) नभोक्ता हुआ (अभिचाकशीति) प्रकाश करता है वोही प्रकाश करनेवाला सुपर्ण मंत्रप्रतिपाद्य है यथाहि

एकःसुपर्णःससमुद्रमाविवेशसइदंविश्वंभुवनंविचष्टे तंपाकेनमनसापश्यमन्तितस्तंमातारेह्ळिसउरेह्ळिमातरम् ऋ० मं० १० सू० ११४ मंत्र ४०

अर्थ (एकः) एक (सुपर्णः) प्राणवायु उपाधिक सुपर्णवत् सुपर्ण है (सः) सो(समुद्रम्) समुद्रवत् विस्तृत अन्तरिक्षको (आविवेश) प्रवेश करता है (सः) सोई प्राणोपाधिक परमात्मा (इदम्) इस (विश्वं भुवनम्) सर्वलोकको (विचष्टे) पश्यति प्रकाश करता है (तम्) तिस प्राणदेवको (पाकेन मनसा) परिपक्व मन करके में उपासक (अन्तितः) अपने हृदयकमलमें (अपश्यम्) देखता हुआ किस प्रकारसे जो (तम्) तिसप्राणदेवको अध्ययनकालमें (माता) मा कहेसो (रेह्ळि) अपने आपमें लीनकर लेती है और तूर्ष्णींभावकालमें वा स्वापकालमें वोह प्राणदेव (मातरम्) वाक्को अपने आपमें लीनकर लेता है एकतौ सुपर्ण इस मंत्रसे प्राणोपाधिक ईश्वर चेतन प्रतिपाद्य है यहां जो लीनता कही है सो केवल उपाधि धर्म्मका व्यवहार है विशिष्टमें करा है और जो प्राण उपाधिक ईश्वर प्रतिपाद्य इसमंत्रमें नहोता तौ सर्व जगत् प्रकाशकता कैसे कहते वेद निघण्टुके अ० ३। खं० ११ में (विचष्टे) पश्यतिकर्मा कही है इससे केवल जड़ प्राण इसमंत्रमें प्रतिपाद्य नहीं और केवल चेतनभी प्रतिपाद्य नहीं क्योंकि वाक्में लीनता कही है इस्से प्राणोपाधिक चित् प्रतिपाद्य है यह सुपर्ण तौ केवल प्रकाशक अभोक्तारूपसे मंत्रप्रतिपाद्य है और भोक्तारूप बुद्ध्युपाधिक जीव चित् है तथाहि

तद्यथास्मिन्नाकाशेश्येनोवासुपर्णोवाविपरिपत्यश्रान्तःसꣳहत्यपक्षौ सल्लयायैवध्रियतएवमेवायंपुरुषएतस्माअन्तायधावतियत्रसुप्तोन कञ्चनकामंकामयतेनकञ्चनस्वप्नंपश्यति बृ० उ० अ० ६ ब्रा० ३

भावार्थ जैसे इस प्रसिद्ध आकाशमें श्येन बड़े शरीरवाला वा सुपर्ण अल्प शरीर- वाला बाज है सो अधिक भ्रमण करनेसे श्रमको प्राप्त होकर पक्षोंको (संहत्य) वि- स्तार करके (सल्लयं) अपने नीड़को (ध्रियते) अनवस्थित हो गमन करता है तैसे यह (पुरुष) जीव बुद्ध्युपाधिक (अन्त) अन्तरस्थान जो हृदयकमल है तहांको दौड़ता है जहां सोता हुआ कुछभी (काम) विषयको (नकामयते) नहीं चाहता और कुछ स्वप्नभी नहीं देखता इस श्रुतिमें सुपर्ण दृष्टान्तसे जो बुद्ध्युपाधिक जीव सुपर्णवत् जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिमें गमन करनेवाला द्वितीय सुपर्ण कर्मफलभो- क्ता प्रतिपादन करा है सो यह दो सुपर्ण वाक्यान्तरप्रतिपाद्यही द्वासुपर्णा इत्यादि मंत्रसें कहे हैं तिन दोनोंका प्राणबुद्धि उपाधि भेदसे भेद वेदान्तियोंके सिद्धान्तमें स्वीकृतही है चेतन ब्रह्म सर्वात्मरूपसे (सोसावहम्) इस मंत्रमें प्रतिपादन कराहै तिसके भेदका साधन कौन है अर्थात् तिसके भेदका साधक कोई मंत्र नहीं यह भेद केवल मोह और उपाधिसे प्रतीत होता है वास्तवमें जीव कुछ और नहीं है वोही आत्मा जीवरूपसे मोहके होनेसें प्रतीत होता है यह मंत्रही कहता है

समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोअनीशयाशोचतिमुह्यमानः
जुष्टंयदापश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमितिवीतशोकःअथर्व०

अर्थ एकही इस शरीरमें पूर्ण पुरुष परमात्मा निगूढ है यह स्वयं ईश्वरही अनीश बुद्धिसे मोहकू प्राप्त होकर शोचता है संसारमें मैं कर्ताहूं सुखी दुःखीहूं ऐसा जन्म मर- णादि अनुभव करता है और जबनित्य तृप्त शोकरहित (ईशम्) अपने ईश्वरीयरूप अनन्यतासे देखता है अर्थात् साक्षात्कार करता है तब शोकरहित हो जाता है देहसे पृथक् अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे तीन तापसे रहित होकर समस्त उपाधिरहित होकर इसकी महिमा अर्थात् सर्वात्म्य सर्वज्ञादिपनकू प्राप्त होता है यहां महिमाका यही अर्थ है अपने परमेश्वर रूपको प्राप्त होता है इस कारण वास्तवमें वोह एकही है मोहसे भेद तथा दो प्रतीत होते हैं और शाश्वतीभ्यः समाभ्यः इसका अर्थ पूर्व- कर चुके हैं

सत्या० पृ० २०१ पं० ४

अजामेकांलोहितशुक्लकृष्णांबह्वीःप्रजाःसृजमानांस्वरूपाः
अजोह्येकोजुषमाणोनुशेतेजहात्येनांभुक्तभोगामजोन्यः ॥

प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता

और न कभी यह जन्म लेते अर्थात् यह तीन सब जगतके कारण हैं इनका कारण कोई नहीं इस अनादि प्रकृतिका भोग अनादि जीव करता हुआ फसता है और उसमें परमात्मा न फंसता है और न उसका भोग करता है

समीक्षा दयानंदजीने सत्या० पृ० ६८ में दश उपनिषद प्रमाण माने हैं यह वचन श्वेताश्वतर उपनिषदका है जो उनके प्रमाण किये उपनिषदोंमें नहीं है अपने अर्थसिद्धिको और उपनिषदभी माने हैं दूसरेके प्रमाणमें कह देते हैं हम यह नहीं मान्ते भला इसमें वेदमंत्रका प्रमाण क्यों न लिखा यहां तौ लिखा कि प्रकृति जीव परमात्माका जन्म नहीं होता इससे निश्चय होता है कि एक अजशब्द जीववाचक है और द्वितीय अजशब्द ईश्वरवाचक है यह स्वामीजीने समझा होगा परन्तु यदि यहां ईश्वरका ग्रहण करोगे तौ (जहात्येनांभुक्तभोगामजोन्यः) इस श्रुति भागकी असंगति होगी क्यों कि (भुक्तो भोगो यया सा भुक्तभोगा तां भुक्तभोगां एनां प्रकृतिं जहाति) भोग लिया है भोग पूर्व कालमें जिस्से तिस प्रकृतिको त्याग देता है ऐसा अर्थ होनेसे परमेश्वरमें सुख दुःख साक्षात्काररूप भोग मान्ना असंगत है इस कारण इसमें अनुत्पन्न साक्षात्कार और उत्पन्न साक्षात्कार जीवोंका ग्रहण है स्वामीजी यहां जीवको जन्मरहित कहते हैं और पृ. १८३ जो विभु हो तौ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति मरण जन्म संयोग वियोग आना जाना कभी नहीं होसक्ता यह लिखते हैं यहां उसका परिछिन्न मानकर जन्म मान्ते हैं इनकी अनभिज्ञताका ठिकाना है अब इस श्रुतिका यथार्थ अर्थ लिखते हैं

अजावत् अजारूप जो एक लोहित शुक्लकृष्णरूपवाली प्रकृति है अर्थात् रक्त शुक्ल कृष्णरूपवाली तेज जल पृथिवीरूप सद्रूप ब्रह्म कार्यभूत त्रयरूप प्रकृति अपने समान रूपवत् बहुतसी प्रजाको उत्पन्न करतीको अनुत्पन्न साक्षात्कार एक अज अर्थात् जीव सेवनकरताहुआ तिसके पश्चात् गमन करता है अर्थात् अपने करणग्रामसे प्रकृति भोगता है और भुक्तभोग इस प्रकृतिको उत्पन्न साक्षात्कार जीव दूसरा त्याग देता है अब यहां यह विचार कर्तव्य है जो रक्त शुक्ल कृष्णरूप वाली प्रकृति है सो अनादि अर्थात् अजन्य है यह किसकी बुद्धिमें आसक्ता है (विमता प्रकृतिजन्यारूपवत्त्वात् घटवत्) इस अनुमानसे सादिसिद्ध होती है इस कारण इसश्रुति वचनसे अनादि प्रकृति नहीं सिद्ध हो सक्ती और इस्से पूर्व वाक्य देखनेसे ब्रह्म तादात्म्यापन्न भिन्नाभिन्न विलक्षण प्रकृति सिद्ध होती है यथाहि

तेध्यानुयोगानुगताअपश्यन्देवात्मशक्तिंस्वगुणैर्निगूढाम्।
श्वे० अ० १ मं० ३

ये ब्रह्मवादी ब्राह्मण योगाभ्यास करके परमात्मामें अनुगत अर्थात् प्रविष्ट होकर देवपरमात्माकी आत्म्यरूप शक्ति तादात्म्यसंबंधसे वर्तमान अपने कार्य्योंसे आच्छादितको योगज प्रत्यक्षसे देखते हुए इस कहनेसे भिन्न २ विलक्षण अचिन्त्य शक्ति सिद्ध हो गई । इस श्रुतिमें कल्पना करके अजात्व है अजावत् अजा है जैसे लोकमें कोई अजा नामछागी लोहित कृष्ण शुक्लरूपवाली अपने तुल्य प्रजा उत्पन्न करे तिसके पीछे कोई अज गमन करता है कोई अजछाग भुक्तभोगको त्याग देता है तैसेही यह प्रकृति है और इसी प्रकारकी अजात्व कल्पना व्यासजी अपने सूत्रमें लिखते हैं

कल्पनोपदेशाच्चमध्वादिवदविरोधः शा०अ०१पा०४सू १०

अजावत् अजा ऐसी कल्पनाका उपदेश अजा मंत्रमें होनेसे अविरोध है जैसे प्रकरणान्तरमें अमधु आदित्यको देव मधु कहा है और अधेनुवाक्को धेनु कहा है केवल कल्पना करके देवताओंका मोदन हेतु होनेसे मधु और सर्व कामना पूरकहोनेसे धेनु आदित्य और वाकको कहा है

और जब कि सब कुछ ईश्वरहीने उत्पन्न किया है तो प्रकृति नित्य कैसे

तस्माद्वाएतस्मादात्मन आकाशःसंभूतःआकाशाद्वायुः वायोरग्निःअग्नेरापःअद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योन्नम्अन्नाद्रेतःरेतसः पुरुषः सवाएषपुरुषो न्नरसमयः तैत्त० १

इदं सर्वमसृजत् यदिदंकिंचेति तैत्तरी० २

आत्मावा इदमेकएवाग्रआसीन्नान्यत्किंचन ३ तैत्तरी०

अर्थ उस आत्मासे आकाश आकाशसे वायु वायुसे अग्नि अग्निसे जल जलसे पृथ्वी पृथिवीसे औषधी औषधीसे अन्न अन्नसे वीर्य वीर्यसे पुरुष इस कारण अन्नरसमय यह पुरुष अन्नरसमय है १

जो कुछभी यह है सब परमेश्वरने बनाया है २

प्रथम एक आत्माहीथा अन्य कुछ नहीं ३

और (नासदासीन्नो सदासीत्) इत्यादि वेदमंत्र जो पीछे लिख आये हैं किप्रलय कालमें सत् रज तम प्रकृति आदि कुछभी नहींथा इस कारण प्रकृतिको नित्य मान्ना ठीक नहीं

स० पृ० २०९ पं० १२

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाप्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहं कारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियंपंचतन्मात्रेभ्यः स्थूलानि भूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः सांख्य०

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाडय अर्थात् जड़ता तीनवस्तु मिलकर जो एक संघात है उसका नाम प्रकृति है उस्से महत्तत्व बुद्धि उस्से अहंकार उस्से पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इंद्रिया तथा ग्यारहवां मन पांच तन्मात्राओंसे पृथिव्यादि पांच भूत ये चौवीस और पच्चीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है

समीक्षा स्वामीजी जो सूत्रार्थ विगाडते हैं कि पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर क्या कपिल देवजी पर गिन्ती नहीं आतीथी जो जीव पच्चीस और परमेश्वर २६ वां प्रगट न लिखकर पच्चीसहीमें समाप्त कर दिया स्वामीजीके जीव ईश्वर दो अर्थ ठीक नहीं यहां पुरुष शब्दसे एकही चेतन आत्मा ग्रहण किया है

स० पृ० २०९ पं० २२ से पृ० २११ पं० १ तक

(प्र०) सदेव सोम्येदमग्रआसीत् १ असद्वाइदमग्रआसीत् २ आत्मावाइदमग्र आसीत् ब्रह्मवाइदमग्रआसीत् ४

ये उपनिषद् वचन हैं हे श्वेतकेतो यह जगत् सृष्टिके पूर्व सत १ असत् २ आत्मा ३ और ब्रह्मरूप था पश्चात्

तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेयेति १ सोकामयत बहुःस्यांप्रजायेयेति २

यह तैत्तरीयोपनिषदका वचन है वही परमात्मा अपनी इच्छासे बहुरूप हो गया है १।२

सर्वंखल्विदंब्रह्मनेहनानास्तिकिञ्चन

यहभी उपनिषदका वचन है जो यह जगत है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नानाप्रकारके पदार्थ कुछभी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप है (उत्तर) क्यों इन वचनोका अनर्थ करते हो क्यों कि उन उपनिषदोंमें

अन्नेनसोम्यशुंगेनापोमूलमिच्छ अद्भिस्सोम्यशुंगेनतेजो

मूलमिच्छतेजसासोम्यशुंगेन सन्मूलमिच्छ सन्मूलाःसोम्ये माःप्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः

छान्दोग्यउपनि० हे श्वेतकेतो अन्नरूप पृथिवी कार्यसे जलरूप मूल कारणको तू जान कार्यरूप जलसे तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्यसे सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगतका मूलघर और स्थितिका स्थान है यह सब जगत सृष्टिके पूर्व असत्के सदृश और जीवात्मा ब्रह्म और प्रकृतिमें लीन होकर वर्तमानथा अभावनथा और जो " सर्वं खलु " यह वचन ऐसा है जैसा कि कहीकी ईंट कहींका रोडा भानमतीने कुवबा जोडा ऐसी लीलाका है क्यों कि

सर्वं खल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीत

छान्दोग्य

और

नेहनानास्तिकिंचन

यह कठवल्लीका वचन है जैसे शरीरके अंग जबतक शरीरके साथ रहते हैं तब तक कामके और अलग होनेसे निकम्मे हो जाते हैं वैसेही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरणसे अलगकरने वा किसी अन्यके साथ जोडनेसे अनर्थक होजातेहैं (यह बात स्वामीजीपरही लगती है आपने ऐसा बहुतही जगह किया है) सुनो इसका अर्थ यह है हे जीव तू ब्रह्मकी उपासना कर जिस ब्रह्मसे जगतकी उत्पत्ति स्थिति और जीवन होता है जिसके बनाने और धारणसे यह सब जगत विद्यमान हुआ है वा ब्रह्मसे सहचरीत है उसको छोड़ दूसरेकी उपासना न करनी इस चेतन मात्र अखण्डैकरस ब्रह्मरूपमें नानावस्तुओंका मेल नहीं है किंतु यह सब पृथक् स्वरूपमें परमेश्वरके आधारमें स्थित है

समीक्षा स्वामीजीकी कैसी बाजीगरकेसी लीला है आपही प्रश्न करता हैं और आपही उत्तरदाता हैं स्वयंही कहींकी ईंट कहींका रोडा लेकर उपनिषदकी श्रुति लिखी हैं जैसा (सर्वं) में (नेहनाना) यह श्रुति मिलादी भला यह प्रश्न किसनै स्वामीजी सो किये थे यह मिथ्या कल्पना इनके घरकी है (नेहनाना) इसके अर्थ जो (इस चेतन मात्र) इत्यादि पूर्व लिखित किये हैं इस अक्षरार्थमें दृष्टि दीजिये तौ यह अर्थ होता है कि (इह नाना किंचन नास्ति) अर्थात् इस ब्रह्ममें कुछभी पृथग्भूत वस्तु नहीं है जैसे लोकमेभी कहते हैं (इह मृदि घटादिकं किंचन नाना

नास्ति अर्थात् पृथक्भूतं नास्ति किन्तु मृदेव घटादिरूपेण प्रतीयते) इन घडोंमें मिट्टीके सिवाय कुछ नहीं है किन्तु यह मिट्टीही घडोंके रूपसे प्रतीत होती है स्वामीजीने जो इसका लम्बा चौंडा अर्थ किया है वोह कौनसे पदोंका अर्थ है (और परमेश्वरके आधारमें स्थित है) तौ क्या कोई परमेश्वरकाभी आधार दूसरा है सबका आधार तौ परमात्मा आप है उसमेंभी आप पृथक्वस्तुओंका आधार लगाते हैं और उसमें नानावस्तुओंका मेल नहीं यह कहनाभी आपका असंगत है क्यों कि पंचभूतोंके मेल विना कोईभी कार्य्य सिद्ध होता नहीं इसीकारण त्रिवृत्करण पंचीकरण होकर सर्व कार्य सिद्ध होते हैं अब यह समग्र श्रुति लिखते हैं जिससे स्वामीजीका खंडन स्वतः हो जायगा.

मनसैवेदमाप्तव्यंनेहनानास्तिकिंचन
मृत्योःसमृत्युंगच्छतियइहनानेवपश्यतिकठ०उ०वल्ली ४मं०११

अर्थ ज्ञानयुक्त मनसे ही अखण्ड एकरस ब्रह्म प्राप्त होसक्ता है इस ब्रह्ममें कुछभी पृथग्भूत वस्तु नहीं है जो सर्वाधिष्ठान सर्व प्रपंचका सारांश ब्रह्म है तिसमे नानाकी नाईं पृथग्भूत वस्तु तुल्य कुछभी ब्रह्म भिन्न आत्माको वा प्रपंचको देखता है सो मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है भाव यह है भेददर्शी ब्रह्मके ज्ञान न होंनेसे वारंवार जन्म मरणको प्राप्त होते हैं इस्से स्वामीजीका भेदपक्ष उड़गया अब (सर्वंखलु) इसका जो स्वामीजीने अर्थ लिखा है सोभी भ्रष्ट है क्योंकि .

(इदं सर्वं ब्रह्म) यह संपूर्ण ब्रह्म है इदं शब्द प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध वस्तुका बोधक है जैसे कोई कहै यह संपूर्ण कटक कुंडलादिक सुवर्ण हैं सो यहां सुवर्ण कटकादिका उपादानोपादेय भाव है (शंका) इसका यह अर्थ नहीं किन्तु यह संपूर्ण ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्ममें स्थित है) इसी शंकाकी निवृत्तिके वास्ते (तज्जलान्) यह विशेषण है अर्थ यह है तिस ब्रह्मसे ही उत्पन्न होकर तिसहीमें लीन होता और उसीमें चेष्टा करता है जिसमें कार्यकालय होता है सोई उपादान कारण होता है जैसे किसी निमित्तसे मेघका जल ओले होकर फिर ओले जलहीमें लीन होजाते हैं और जलरूप होतेहैं ऐसेही कटकादि सुवर्णमें लीन होकर सुवर्णही होजाते हैं कटक ओले आदिका आदि मध्य अन्तमें सुवर्ण वा जलही तत्व है इसीप्रकार जब संसारका तज्जलान् यह विशेषण कहा तौ ब्रह्म जगत्का उपादान कारण निश्चय होगया बस यह जगत् ब्रह्ममें ऐसे स्थित है जैसे सुवर्णमें कटक जलमें ओला इसी कारण ब्रह्म और जगतके अभेद साधक (सर्वंब्रह्म) यह सामानाधिकरण्यभी श्रु-

तिमें संगत होता है जब ऐसा सर्वात्मा ब्रह्म है तौ ऐसीही उसकी उपासना करनी योग्य है जब ब्रह्म जगतका उपादान कारण है तब ब्रह्मभिन्न प्रकृति मानना और ब्रह्मसे सहचरित है यह मान्ना असंगत है अब यह सब श्रुति लिखते हैं जिससे उपादान कारण और इसका अर्थ विदित हो जायगा.

सर्वंखल्विदंब्रह्मतज्जलानितिशान्तउपासीतखलुक्रतुमयः पुरुषोयथाक्रतुरस्मिंल्लोकेपुरुषोभवतितथेतःप्रेत्यभवति सक्रतुंकुर्वीत ॥ १ ॥

मनोमयःप्राणशरीरोभारूपःसत्यसङ्कल्पआकाशात्मासर्वक-र्म्मासर्वकामःसर्वगन्धःसर्वरसःसर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः२ एपमआत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वासर्षपाद्वाश्यामा काद्वाश्यामाकतण्डुलाद्वाएषनआत्मान्तर्हृदयेज्यायान्दिवो-ज्यायानेभ्योलोकेभ्यः ॥ ३ ॥

सर्वकर्मासर्वकामःसर्वान्धःसर्वरसःसर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यना-दरएषमआत्मान्तर्हृदयएतद्ब्रह्मैतमितःप्रेत्याभिसंभवितास्मी तियस्यस्यादद्धानाविचिकित्साऽस्तीतिहस्माहशाण्डिल्यः ॥ ॥ ४ ॥ छान्दो॰ प्रपा॰ ३

अर्थ । वोह उपासना कैसे करनी चाहिये सो लिखते हैं " सक्रतुं कुर्वीत " सो उपासक क्रतु अर्थात् निश्चय रूप संकल्प करके ब्रह्मकी उपासना करै जिस हेतुसे कि क्रतुमय पुरुष है अर्थात् संकल्प प्रधान पुरुष होता है जैसे संकल्पवाला पुरुष इस लोकमें होता है वैसेही भावनानुसार प्राण विये गये उत्तर कालमें होता है ? जिसका शरीर मनोमय अर्थात् प्रधान मन उपाधि विशिष्ट (प्राणशरीरः) ज्ञान और क्रिया शक्ति विशिष्ट है ऐसा ब्रह्म उपास्य है (भारूप) प्रकाश स्वरूप और सत्य संकल्प है इस विशेषणसे संसारी जीवकी व्यावृत्ति बोधन करी आकाशवत् व्यापक और सर्वकर्मा अर्थात् जिसका सम्पूर्ण विश्व कार्य है दोषरहित और सर्वकामनायुक्त सुखसे सर्व गंधयुक्त और दिव्य सर्व रसयुक्त (सर्वम् इदम् अभिआत्तः) इस सर्वके चारोंओरसे व्याप्तहो रहा है (अवाकी अनादरः) वाग्

उपलक्षित सब इन्द्रिय वर्जित अर्थात् आप्तकाम है २ (एषम आत्मा) यह मेरा स्वरूप भूत आत्मा है यह ध्यानका आकार है आशय यह है अपनेमें ईश्वरात्माका आरोप करके उपासना करै इसे अहंग्रह उपासना कहते हैं जो ऐसी उपासनासे साक्षात्कार होजाय तौ शीघ्र मुक्ति होजाती है मन उपाधिक उपास्यका वर्णन करते हैं (हृदयमें अन्तरं अत्यन्त सूक्ष्म है और धान यव श्यामाक और श्यामक तंडुल इनसबसे सूक्ष्म है) परिच्छिन्नपरिमाण पदार्थोंसभी सूक्ष्मतर कहनेसे अणु परिमाणत्व शंकाभी हत होगई यह मेरा आत्मा पृथिवी अन्तरिक्ष सर्व लोकसे अधिकतर है ऐसे पूर्व मनोमयत्वादि गुणविशिष्ट ईश्वर ध्येय है सो इसका तीसरे अध्यायमें उपदेश कर ज्ञेय वस्तुका षष्ठ सप्तमसें उपदेश करेंगे ३ इस उपासनामें सर्वकर्मा इत्यादि गुण युक्तही उपास्य है इसीकारण श्रुतिमें सर्व कर्मादिक पदपुनः आये हैं (एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भवितास्मीति) यह उपास्य देव ब्रह्म है इसको इस शरीरसे प्राणको त्यागकर प्राप्त होऊंगा. (यस्यस्यादद्धा) जिस उपासकको यह दृढ निश्चय है सो उपासनेके फलको प्राप्त होगा यह शाण्डिल्य ऋषिने कहा है पुनरुक्ति विद्या समाप्तिके वास्ते बोधन करी है अब इसे सज्जन पुरुष विचारेंगे कि इस श्रुतिमें सर्वप्रपंचका उपादान कारण ब्रह्म सर्वात्मा सर्व कर्मत्वादिविशिष्ट निश्चय होता है ऐसे स्वामीजीके असंगत लेखको कहातक गिनावें अब और सुनिये.

सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितियम् तद्धैकआहुरसदेवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सदजायत. १ कुतस्तुखलुसोम्यैवं स्यादितिहोवाचकथमसतःसज्जायेतेतिसत्त्वेवसोम्येदमग्रआसीत् । एकमेवाद्वितीयम् २ तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेयेतितत्तेजोऽसृजत छां॰ उप॰ अ॰ ६

अर्थ उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं हे सोम्य यह प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्धवस्तु मात्र सृष्टिसे पूर्व कालमें सद्रूपही होता हुआ अर्थात् सत्रूप वस्तुके साथ तादात्म्यापन्न होता हुआ जैसे वृक्ष उत्पत्तिसे प्रथम बीज भावापन्न था वैसेही सद्वस्तु जो सर्वकाबीज है तद्रूपही यह प्रथम था सो सद्वस्तु क्या है (एकमेव) अर्थात् कार्य्यभावापन्नवस्त्वन्तररहित है निश्चय (अद्वितीय) निमित्तकारणान्तर वर्जित है कोई ऐसा कहते है कि यह नामरूप प्रपंच प्रथम (असत्) अभावमात्रथा (एकमेव) कार्यवस्त्वन्तरवर्जितनिमित्तादिरहितथा तिस असतसे यह सतनाम रूप वस्तु हुआ है उनका कहना ठीक नहीं हे सोम्य यह कैसे हो सक्ता है (असतः)

अभावमात्रसे सतही इस कारणसे सतही कार्यभावापन्न वस्त्वन्तरवर्जित निमित्त कारणान्तर वस्तु रहित होता हुआ सो सत्वस्तुका आलोचन करता हुआ भावी जगतको अपनेमें देखा और इच्छाकरी में वहुत सा होकर प्रतीत होऊं प्रजा रूपको धारण करूं सो तेजको सर्जन करता हुआ इसी प्रकारके भावको (ऋ. मं. ६ सू. ४७ मं. १८ रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव) में कहा है इस लेखसेही परमेश्वर जगतका उपादान कारण है यह सिद्ध हो गया अब यहां यहभी विचार है जब सत्में देखना अथवा वहुत होनेकी कामना हुई तौ चेतनत्व सिद्ध होगया इससे इस श्रुतिमें सत् शब्दको जड़ प्रकृतिका बोधक मान्ना स्वामीजीकी वेदान्तानभिज्ञता प्रगट करता है अब दूसरी श्रुतिमें जो अज्ञानता प्रगट करी है उसे दिखलाते हैं

तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितंसोम्यविजानीहिनेदममूलंभविष्यतीति तस्यक्वमूलंस्यादन्यत्रान्नादेवमेवखलुसोम्यान्नेनशुङ्गेनापोमूलमन्विच्छाद्भिः सोम्यशुङ्गेनतेजोमूलमन्विच्छतेजसासोम्यशुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः छां० ३५ प्रपा० ६

अर्थ-जब अन्न रसादिकार्य्य देह प्रसिद्ध हुआ तब यह जो शुङ्ग देह है सो उत्पतित, उत्पन्न है जैसे वटवीजसे वटका वृक्ष उत्पन्न होता है तैसे यह देहभी मूलशून्य नहीं ऐसे तू जान सो इस देहका अन्नसे विना कौन मूल है किन्तु अन्नही मूल है इसीप्रकार हे प्रिय श्वेतकेतो अन्नरूप विकारसे जल और जलसे तेज जान तेजसे सत् मूल जान इस प्रकार सत् मूल कारणवाली संपूर्ण प्रजा है और सत्वस्तुही आयतन अर्थात् स्थितिस्थान है और सतही प्रतिष्ठा अर्थात् लयाधार है। स्वामीजीने खलु पर्य्यन्त श्रुतिभागको त्यागके अर्थ शेषश्रुतिका भ्रष्ट कर दिया है सो पूर्व लिख चुके हैं स्वामीजीने सत् शब्दको प्रकृतिवाचक मानकर सर्व जगत्का मूल कारण प्रकृतिको माना है इस स्थानमें सत्रूप और नित्य प्रकृति यदि चेतनरूप है तौ ब्रह्मरूपही प्रकृति सिद्ध होगी यदि जड प्रकृति ब्रह्मभिन्न अभिमत है तब तौ स्वामीजीका महामोह है क्यों कि जड़ प्रकृतिमें ईक्षण और बहुभवन संकल्प कैसे होगा इसीकारण प्रकृतिको जगत्कारणत्वका व्यासजी अपने सूत्रमें निषेध करते हैं

ईक्षतेर्नाशब्दम् शा० अ० १ पा० १ सू० ५
ईक्षतेः न अशब्दम्

अर्थ–तत्तु समन्वयात् इस चौथे व्याससूत्रमें प्रतिपादित सर्व उपनिषद्वचन तात्पर्य्य विषय ब्रह्मसे भिन्न जड प्रकृति परमाणु आदि जगतके कारण नहीं क्योंकि अशब्द अर्थात् वेदसे अप्रतिपाद्यहोनेसे और वेद अप्रतिपाद्यमें हेतु (ईक्षतेः) यह दिया है अर्थात् ईक्षणवालेको कर्तृत्व श्रवण कराजाता है सो ईक्षण चेतनका धर्म है जडका नहीं इस्से जड़प्रकृतिको यदि सत् शब्द बोध्य मानेंगे तो सत्शब्द वाच्य वस्तुमें ईक्षण तथा बहुत होनेकी कामनाका बाध होगा इसकारण छान्दोग्यके ६ अध्यायमें सत्शब्दसे ब्रह्महीका ग्रहण किया है सोई जगतकी उत्पत्तिस्थितिलयाधार है तिस्से भिन्न जडप्रकृति नहीं अब दूसरी श्रुतिभी देखिये जिस्से ब्रह्म भिन्न प्रकृतिकी उपादान कारणता सिद्धान्तका खंडन होता है–

सोऽकामयत । बहुस्यांप्रजायेयेति । सतपोऽतप्यत । सतपस्तप्त्वा । इदꣳसर्वमसृजत।यदिदंकिंच । तत्सृष्ट्वा।तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य।सच्चत्यच्चाभवत् । निरुक्तश्चानिरुक्तश्च। निलयनश्चानिलयनश्च।विज्ञातश्चाविज्ञातश्च। सत्यश्चानृतश्चसत्यमभवत् । यदिदंकिञ्च तत्सत्यमित्याचक्षते।तदप्येषश्लोको भवति । असद्वाइदमग्रआसीत् । ततोवैसदजायत । तदात्मानस्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति ॥

अर्थ–सो पूर्व प्रकरण प्रतिपाद्य आकाशादि भूत कारण स्वरूप आत्मा कामना करता हुआ बहुत रूप होकर प्रतीत होऊं और प्रजा रूपको धारण करूं (तपोऽतप्यत) आलोचन करता हुआ आलोचन करके सब नामरूप प्रपंचको रचता हुआ जो कुछभी वस्तु है। पीछे तिस सब वस्तुको बनाकर सो आपही तिस सब वस्तुमें जीवरूपकर प्रविष्ट हुआ तिसमें प्रविष्ट होकर (सत्) पृथिव्यादिभूत (त्यत्) वायु आकाशरूप हुआ (निरुक्तंचानिरुक्तञ्च) निर्वचन योग्य और निर्वचनायोग्य (निलयनश्चानिलयनश्च) लयाधार और लयानाधार (विज्ञातश्चाविज्ञातश्च) प्रत्यक्षादि विषय और प्रत्यक्षादिका अविषय (सत्यंचानृतंच) व्यावहारिक सत्य और प्रतिभासक (सत्यमभवत्) यह संपूर्ण पृथिव्यादि प्रातिभासिक वस्तु पर्य्यन्त सर्व वस्तु सत्य रूप परमात्माही हुआ अपनी अचिन्त्य शक्तिकर जो कुछ वस्तुमात्र है तिसको सत्य कथन करते हैं आशय यह है कि सत्यका कार्य होनेसे सत्य कहलाता है इसमें वक्ष्यमाण यह श्लोकभी प्रमाण है। यह सर्व वस्तु (असत्) अनभिव्यक्त नाम

रूप केवल कारण तादात्म्यापन्न था अब तिससे सद्रूप होकर प्रतीत हुई सो आत्मा अपने आपको जगतरूप अपनी अपूर्व शक्तिसें करताहुआ जैसे कोई योगसि-द्धियुक्त योगीजन अपनी शक्ति अनंन शरीर धारण करता है वैसे परमात्मा महा योगीश्वर महाशक्ति सम्पन्नने अपने आत्माको ही जगद्रूप करा इसीकारण जगतको (सुकृत) अर्थात् स्वयंकृत कहते हैं

स० पृ० २११ पं० २५ (प्रश्न) नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वरहीको जगतका अभिन्न निमित्तोपादान कारण मान्ते हैं

यथोर्णनाभिःसृजतेगृह्णतेच
आदावन्तेचयन्नास्तिवर्तमानेपितत्तथा मांण्डू० कारिका

(इसका उत्तर पृ० २१२ पं० ५ में) जो तुह्मारे कहने अनुसार सब जगतका उपादान कारण ब्रह्म हो जावै तौ वोह परिणामी अवस्थान्तर युक्त विकारी होजावै और उपादान कारणके गुण कर्म स्वभाव कार्यमें आते हैं

कारणगुणपूर्वकःकार्य्यगुणोदृष्टः वैशेषिक सू०

उपादान कारणके सदृश कार्यमें गुण होते हैं तौ ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप जगत्का-र्यरूपसे असत् जड और आनंद रहित ब्रह्म अज और जगत उत्पन्न हुआ है ब्रह्म अदृश्य और जगत दृश्य है ब्रह्म अखण्ड और जगत खण्डरूप है जो ब्रह्मसे पृथि-व्यादि कार्य उत्पन्न होवै तौ पृथिव्यादिमें कार्यके जडादि गुण ब्रह्ममेंभी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय और जैसा परमेश्वर चे-तन है वैसे पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होनाचाहिये और जो मकरीका दृष्टान्त दिया वोह तुह्मारे मतका साधक नहीं बाधक है क्योंकि वोह जड़रूप शरीर तन्तुका उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है और यहभी परमात्माकी अद्भुत रचनाका प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तुके शरीरसे जीव तन्तु नहीं निकाल सक्ता वैसेही ब्रह्मने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारणसे स्थूल जगत्को बनाकर बाहर स्थूल रूपकर आप उसीमें व्यापक होके आनंदमय हो रहा है और पृष्ठ २१२ पं० १४ में लिखा है यह कारिका भ्रम मूलक है क्योंकि प्रलयमें जगत् प्रसिद्ध नहींथा और सृष्टिके अन्त अर्थात् प्रलयके आरम्भसे जबतक दूसरी वार सृष्टि न होगी तबतकभी जगत्का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है क्योंकि

तमआसीत्तमसागूढमग्रे

ऋग्वेदकावचनहै

आसीदिदंतमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयंप्रसुप्तमिवसर्वतः २

यह सब जगत् सृष्टिके पहले प्रलयमें अंधकारसे आवृत आच्छादितथा और प्रलयारम्भके पश्चात्भी वैसाही होता है उस समय न किसीके जान्ने न तर्कमें लाने और न प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त इन्द्रियोंसे जान्ने योग्य था और नहोगा किन्तु वर्तमान मेंजाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नोंसे युक्त जानने योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है पुनः उसकारिका करके वर्तमानमें भी जंगत्का अभाव लिखा है सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणोंसे जान्ता और प्राप्त होता है वोह अन्यथा कभी नहीं होसक्ता.

समीक्षा यद्यपि हम उपादान कारण आदिकी व्यवस्था पूर्व अच्छी प्रकार कथन करचुके हैं परन्तु स्वामीजीने इस प्रकरणको वार २ लिखा है इससे हम कुछ इसके उत्तरमें व्यासजीके सूत्र लिखते हैं

दृश्यतेतु अ० २ पा० १ सू० ६

यहाँ तुशब्द पूर्व पक्षकी निवृत्तिके वास्ते है (एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः) इसमें चेतनसे जड़का जन्म सुना है बस स्वामीजीका वोह कथन कारणके सदृश कार्य होता है खंडित होगया (विज्ञानघन एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायेति) इससे जड़से चेतनका जन्म है लोकमें भी चेतनोंसे विलक्षण केश नखादिका जन्म और अचेतन गोमयादिसे चेतन वृश्चिकादिका जन्म देखते हैं ननु अचेतनही देह अचेतन केशादिका कारण वो अचेतन वृश्चिकादि देह अचेतन गोमयादिका कार्य है इसमें कुछभी अचेतन चेतनका अयतन भावको पहुँचा वो कुछ नहीं यही वैलक्षण्य है यह बड़ा परिणामिक स्वभावका विप्रकर्ष है पुरुषादिकोंका वो केशादिकोंका क्योंकि स्वरूपभेदसे तैसे गोमयादिका वो वृश्चिकादिका है अत्यन्त सारूप्यमें प्रकृति विकृति भान नहीं होसक्ता है जो पार्थिवादि स्वभाव पुरुषादिका केशादिमें वो गोमयादि वृश्चिकादिमें अनुवर्ते हैं तौ ब्रह्मका भी सत्ता लक्षण स्वभाव आकाशादिमें भी देखते हैं फिर ब्रह्मवादीसे यह नहीं कहसक्ते हो कि जो चेतनसे युक्त नहीं है सो अब्रह्म प्रकृतिक देखा है वोहतौ सब वस्तुको ब्रह्मप्रकृतिक मान्ता है निष्पन्न ब्रह्ममें रूपादिके अभावसे प्रत्यक्षादि प्रमाण वो लिंगादिके अभावसे अनुमानादिका असंभव है ब्रह्मही धर्मके समान केवल वेदहीसे जाना जाता है (नैषातर्केणमतिरा-

पनेया) तर्ककी मतिसे यह प्राप्त नहीं होसक्ता वोही तर्क प्रमाण है जो श्रुतिसे मिली है चेतन शुद्ध शब्दादि हीन ब्रह्म उलटा कार्य है शब्दादिवत् और जो केवल तर्कसेही निर्णय करता है उसका निर्णय ठीक नहीं व्यासजी सूत्र लिखते हैं

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमितिचेदेवमप्यविमोक्षप्रसंगः ११

वेद बोधक अर्थमें केवल तर्कसेही नहीं झगड़ना चाहिये क्योंकि वेतर्कना पुरुष की बुद्धिसे रचीगई हैं इसकारण सर्वथा प्रमाण नहीं क्योंकि उत्प्रेक्षानिरंकुश अर्थात् किसीने तर्क बलसे उत्प्रेक्षा करी दूसरेने उसको तर्काभास कहा है फिर अन्यने उसको भी तर्काभास कहा इस्से तर्क ध्रुव मानने योग्य नहीं है यद्यपि कहीं तर्क प्रतिष्ठित हो तथापि जगत्कारणके विषयमें तर्क स्वतंत्र नहीं है यह अति गंभीर परमानन्दमुक्तिनिबंधवेदके विनाअन्य प्रमाणोंसे जानेको शक्य नहीं है यहअर्थ रूपादिके अभावसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषय वो लिंगादिके अभावसे अनुमानादिकोंकाभी गोचर नहींहै

स्वामीजी इस सूत्र में वेदप्रमाण लिखते यह सूत्र यहां चारितार्थ नहींहै

यथाचप्राणादि व्याससूत्र० २०

जैसे लोकमें जबतक प्राण पवन हृदयमें रहता है तबतक उस्से जीवनमात्रही सिद्ध है अन्य प्रमाण भेदोंसे प्रसारणादि कार्यभी सिद्ध होते हैं परन्तु वे सब प्राणादि भेद पवन स्वभावही हैं नकि पवनसे भिन्न हैं ऐसेही विश्वरूप कार्य कारण ब्रह्मसे भिन्न नहीं है तिस्से सब विश्व ब्रह्मका कार्य और ब्रह्मसे अनन्य है यह श्रौत प्रतिज्ञा सिद्ध हुई है " येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति " जबकि कार्य कारण सब ब्रह्मही है तौ दृश्य अदृश्य खंड अखंड जड़ चेतनके आदिका सम्बन्ध कैसा उस्से कुछ पृथक् हो तौ कल्पना कीजासक्ती है इस्से स्वामीजीका कथन भ्रान्तियुक्त है अब आगे ऊर्णनाभिका प्रसंगभी देखिये.

देवादिवदपि लोके २५

जैसे लोकमें देव पितर ऋषि बडे बडे बडे प्रतापी चेतनविना सामग्रीके ऐश्वर्ययोग द्वारा संकल्प ध्यानहीसे जो पूर्व नहीं थे देह घर रथादि उनको रचते देखते हैं यही मंत्र वो अर्थवाद वृद्धव्यवहारोंसे प्रगट है फिर मकरीभी आपही डोरोंको सृजती है बकुलीभी शुक्रके विना मेघके गर्जनसेही गर्भको धारण करती है पद्मिनीभी ग-

मनके साधन विना एक तालसे दूसरे तालमें जमती है ऐसेही चेतनभी ब्रह्म बाह्य सामग्रीके विना आपही जग सृजता है ब्रह्मतौ सबसे विलक्षण है वोह बाह्यसाधन नहीं चाहता अपनेसे आपही जगत बनाता है और आपही लयकर लेता है क्यों-कि ब्रह्म देवताओंसेभी विलक्षण है इसीमें ऊर्णनाभिका दृष्टान्त है उसे बाह्य-वस्तुकी अपेक्षा नहीं होती अपनेसेही तन्तुआदि निकालती है और इसीप्रकार ईश्वरभी अपनेसेही सब वस्तु निकाल कर जगत बनाता है उसे कुह्मारकी नाईं बाह्यवस्तुओंकी अपेक्षा नहीं होती

कारिकापरभी आपका मिथ्याही आक्षेप है क्योंकि कारिकाका आशय यह है कि जब आदि अन्तमेंही ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है तौ वर्तमानमें कब हो सक्ती है अर्थात् आदि अन्त मध्यमें ब्रह्मसे व्यतिरिक्त कोई वस्तु नहीं सब वोही है (जगत्) इसका अर्थ विनाजाने महात्माजीने गड़बड़का लिख दिया है फिर (आसीदिदं) इसमेंभी झूंठही लिख दिया है (कि प्रसिद्ध चिन्होसे जान्ने योग्य होता है) अर्थ तौ इसका यह है कि यह जगत प्रलयमें अंधकाररूप प्रत्यक्ष अ-नुमान शब्द ये तीन प्रमाण हैं इनसेभी जान्नेके अयोग्य क्योंकि देख नहीं पड़ताथा तथा लक्षणसे रहित अपने कार्यमें असमर्थकी नाईं रहा यह मनुजीका श्लोक है और प्रथमही वेद मंत्र लिख चुके हैं कि महाप्रलयमें ब्रह्मके विना और कुछ नहीं था फिर प्रकृति आदि कहां २ थे देखो (नासीत्) आदि मंत्र जो महाप्रलय-के वर्णनमें पीछे लिख आये हैं.

स० पृ० २१४ पं० ६ सर्वशक्तिमानका अर्थ इतनाही है कि परमात्मा विना किसीकी सहायताके अपने सब कार्य पूर्ण करसक्ता है.

समीक्षा स्वामीजीकी विद्याबुद्धि बालकौंकिसी है कहीं लिखते हैं कि विना प्रकृ-तिके वोह कुछ नहीं कर सक्ता कहीं लिखाकि विना सहाय कार्य करसक्ता है सर्व शक्तिमत्तातौ ईश्वरकी उड़ गई

पृ० २१४ पं० १८ जब वो प्रकृतिसेभी सूक्ष्म और उसमें व्यापक है तभी उनको पकड़कर जगदाकार बना देता है.

समीक्षा प्रकृतिभी भागी जाती होगी ईश्वर उसके पीछे दौड़ता होगा वोह पकड़-ता होगा प्रकृति नाहीं करती होगी पर ईश्वर जगदाकार बनाही देता है धन्य !

स० पृ० २१४ पं० २६ कारणके विना ईश्वर कार्यको नही करसक्ता (उत्तर) नहीं

स० स्वामीजी पूर्व तौ लिखि आयेहो कि (न तस्य कार्यं करणं च विद्यते) कि

उसे कार्य करणादिकी कुछ अपेक्षा नहीं अब यहां यह गड़बड़ी मोह सब कुछ करनेमें सामर्थ्य है

स० पृ० २१५ पं० २३ सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मत्वात् २१६ पं० २५ श्लोकार्धेनप्रवक्ष्यामियदुक्तंग्रंथकोटिभिः ॥ ब्रह्मसत्यंजगन्मिथ्याजीवोब्रह्मैवनापरः

पांचवां नास्तिक कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाशवाले हैं इसलिये सब अनित्यहैं, नवीन वेदान्ति लोग पांचवें नास्तिककी कोटीमेंहैं क्योंकि वे ऐसा कहते है कि करोडों ग्रंथोंका यह सिद्धान्तहै ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्मसे भिन्न नहीं.

समीक्षा जिसके नेत्रोंमें जैसी रंगतकी ऐनक लगी होती है उसे जगत वैसाही दीखता है नास्तिकशिरोमणि तौ आपहैं जो ईश्वर आपका कुछ करही नहीं सक्ता औरोंको नास्तिक वतातेहैं जबकी सब कुछ ब्रह्म हैं तौ जीव कहांसे है और जगत् क्या है कुछ नहीं इसी प्रकार स्वामीजीकी अनेक गडबडीहैं बस सिद्धान्त यही है कि जैसे घटाकाश घटके टूटनेसे आकाशमें मिलताहै इसी प्रकार कर्मबंधन टूटनेसे यह शुद्ध आत्मा सर्व सामर्थ्य युक्त होताहै यहां और जो स्वामीजीने (नित्यायाः) और (नासतो विद्यते) इत्यादि जा वाक्य लिखेहैं उन सबका उत्तर पूर्वप्रसंगमें आगयाहै इस प्रकारसे बुद्धिमान महाशय जानलेंगे यह उपादानकारणआदिका विषयपूर्ण हुआ यह सब वेदान्त प्रकरणके अन्तर्गत है.

आदिसृष्टिस्थानप्रकरणम्

स०पृ०२२३ पं०७ सृष्टिकी आदिमें एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वाक्य (उत्तर) अनेक क्योंकि जिनजीवोंके कर्म ऐश्वरी सृष्टिमें उत्पन्न होनेके थे उनका जन्म ईश्वर सृष्टिकी आदिमें देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये" ततो मनुष्या अजायन्त यह यजुर्वेदमें लिखाहै इससे निश्चयहै कि आदिमें अनेक सैंकडो सहस्रों मनुष्य उत्पन्न किये.

समीक्षा स्वामीजीने असत्य बोलनेका बिडा उठा लियाहै यजुर्वेदमें कहीं यह वाक्य नहीं कि "ततो मनुष्या अजायन्त" और दूसरे पदमें लौट फेर कियाहै "मनुष्या ऋषयश्च ये" इसमें साध्याऋषयश्चये सोभी उत्पन्न होनेमेयह ९ उत्पत्ति विषयमें नहींहै यह मंत्र इस प्रकारसे है.

तंयज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः ॥
तेनदेवाअयजन्तसाध्याऋषयश्चये यजु०अ०३१मं०८

(ये) जो (साध्याः देवाः च ऋषयः) साध्य देवता और ऋषिहैं उन्हौने (अग्रतः) सृष्टिके पूर्व (जातम्) उत्पन्नहुए (तम्) उस (यज्ञम्) यज्ञसाधनभूत (पुरुषम्) विराट् पुरुषको (बर्हिषि) आत्मामें (प्रौक्षन्) प्रोक्षणकिया (तेन) उसी पुरुषद्वारा (अजयन्त) यज्ञ किया ९

अब न्यायदृष्टिसे विचारिये कि दयानंदजीने वेदके नामसेभी कैसी २ झूंठी गपैं उठाईथी सृष्टिके प्रथम ब्रह्माजी उत्पन्न हुए सो पूर्व वर्णन कर आयेहैं अब और लीला देखिये सृष्टिकी आदिमे बहुत मनुष्य नहींहुए स०प्र०पृ० २२४ पं० २ मनुष्योंकी आदिसृष्टि किसस्थलमें हुई (उत्तर) त्रिविष्टप् अर्थात् जिसको तिब्बत कहतेहैं.

यहां तो स्वामीजी आर्य्यावर्तका सत्यानाशही करचुके लीजिये तिब्बतमें प्रथम सृष्टिकी उत्पत्तिहुई स्वामी तौ सबबातौंमे वेदका प्रमाण देतेथे इस प्रकरणमें कोई प्रमाण क्यों नहीं दिया अंग्रेज कहतेहैं कि ईरानसे आर्य्य आये आप उनसेभी आगे बढगये जो तिब्बतमें उससेभी आगेके देशमें उत्पत्ति लिखदी और जैसाकि आप पृ० २२४ पं० १० में लिखते हैं जब आर्य और दस्युओंमें अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जोअसुर उनमें सदालडाई बखेडा हुवा किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इसभूमिखण्डको जानकर यहीं आकर बसे इसीसे इस देशका नाम आर्य्यावर्त्त हुआ पुनः पं० २९ में इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्यौंके पूर्व इस देशमें बसतेथे क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टिकी आदिमें कुछ कालके पश्चात् तिब्बतसे सूधे इसी देशमें आकर वसेथे और ईरानसे आनेकी बात झूंठ है अब स्वामीजीसे यह प्रश्न है कि आपने कौनसे वेदानुसार यह तिब्बतसे आना लिखा है और त्रिविष्टपको तिब्बत लिखा यह कौनसे कोशमेंसे निकाला है मैंजान्ताहू कोईभी ऐसा ग्रंथ नहीं हैं पूर्वकाल वा नवीन कालका हमारे मतका जिसमें यह बात लिखी होकि तिब्बतसे आये स्वामीजो तौ अंग्रेजोंके अनुयायीही ठहरे इन्होने ईरान लिखा इन्होने तिब्बत लिखकर पहले नम्बर का सार्टिफिकट हासिल किया और इस्से स्वामीजी वृद्धोंकीभी मूर्खता प्रगट होती है कि तिब्बत जिसे त्रिविष्टप अर्थात् स्वर्गकी सदृश कहिये उस्से आर्य्यावर्तको श्रेष्ठ जान्ना और निवासके योग जाना और जब कि आर्य्यावर्त सब भूगोलमें श्रेष्ठहै तौ परमेश्वर प्रथम सृष्टिकी उत्पत्ति इसीदेशमें करता क्यों कि वे पहले उत्पन्न हुए पुरुष धर्मात्मा थे

और यह एककैसे आश्चर्यकी बातहै कि उत्पत्ति होतेही लडाई हुई और विजयी आर्यही हारे और आर्योद्देश्यरत्नमाला पृ. ११में लिखाहै दयानंदजीने ही कि आर्य उसको कहतेहैं जो श्रेष्ठस्वभाव धर्मात्मापरोपकारी सत्यविद्यादिगुणयुक्त और आर्य्यावर्तदेशमें सब दिनसे रहनेवाले हों यह पुस्तकभी स्वामीजीकी ही बनाई है इससे दो बातें प्रगट होती है एक तो स्वामीजीको अपने लेखका स्मरण नरहा दूसरे यह कि-सृष्टिकी आदिमें दयानंदसरस्वतीके जितने लोग हुए हैं उनमेंसे कोई आर्य न था क्योंकि वे सब दिनसे आर्यावर्तमें नहीं रहते थे. किन्तु तिब्बतके रहनेवाले थे इस देशको उत्तम जान यहां आ बसे सिद्धान्त यह है कि जो कुछ वेदशास्त्रने आर्य्यावर्तकी महिमा लिखी है दयानंदजीने उसपर धूल डालदी यह कैसे आश्चर्यकी बात है यह कैसे साबित हुआ कि त्रिविष्टपका नाम तिब्बत है जब त्रिविष्टपसे तिब्बतकी निस्बत ठीक होगी तो ईरानसे आर्य यह यूरूपवासियोंका कथन क्यों प्रमाण योग्य नहीं और यह कौनसे ग्रंथमें लिखा है कि तिब्बतमें उत्पत्ति हुई पहले सत्यार्थप्रकाशपरभी धूल डालदी जो लिखाथा कि आर्य सदांसे यहांके रहनेवाले थे और यदि आर्योंके आनेसे इस देशका नाम आर्यावर्त पड़गया तो यह जिस देशमें रहते थे उसका त्रिविष्टप तिब्बत क्यों उसका नामभी आर्य्यावर्तही होता और यदि तिब्बतसे वे लोग यहां आते तो तिब्बति कहे जाते जैसे कि कहीं कोई किसी देशका जाता है तो उसको उस देशके नामसे पुकारते हैं जैसा गुजराती काबुली यूरूपियन जिस द्वीपमें यूरूपियन वा और कोई जाति जाकर वास करती है तो वोह उनकी जातिके नामवाला नहीं होता किन्तु उसके नामका उनमें सम्बन्ध आजाता है फिर जब इस देशको कोई नहीं जान्ताथा तो (तुह्मारे बजुर्ग तिब्बतियोंने कैसे जाना) क्या कोई रेलका मार्ग बनाथा या ज्योतिष पढेथे फलितको तुम मान्ते नहीं मार्ग महाभयंकर है अनेक प्रकारकी दुर्दशा हिमालय महापर्वत बीचमें पड़ती है 'कदाचित् आप कंधेपर चढाकर लाये होंगे' इस्से यह बात कभी चित्तमें नहीं लानी चाहिये कि आर्यलोग कहींसे आयेहों किन्तु सदांसे इसी देशके रहने वाले हैं जोकि प्राचीन कालसे आर्यलोग इस देशमें रहते चले आते हैं इसीसे इस देशका आर्य्यावर्त कहते हैं जैसाकि मनुजीने लिखा है:-

आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात्
तयोरेवान्तरंगिर्योरार्य्यावर्तंविदुर्बुधाः अ० २

बंगालके समुद्रसे लैकै अरबदेशके समुद्रतक हिमालय और विंध्याचलके

बीचमें जितना देश है उसको आर्य्यावर्त कहते हैं आर्य्योंका यही देश (आर्य्याणामावर्त आर्य्यावर्तः) अर्थात् जन्मभूमि थी आर्य्यावर्तके कुछ भागका नाम ब्रह्मावर्त है:-

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम् ॥
तंदेवनिर्मितंदेशंब्रह्मावर्तंप्रचक्षते॥ मनु०

सरस्वती नदी जोकि गुजरात और पंजाब देशके पश्चिमभागमें वहती है और दृषद्वती नदी जोकि नयपालके पूर्वभागमें वहती है इन दौनों पवित्र नदियोंके मध्यमें जितना देश है वोह आर्य्यावर्तकी अपेक्षासे पुण्यदेश है और देवताओंका निर्मित है उसको ब्रह्मावर्त कहते हैं सबसे प्रथम ब्रह्माजीने यही देश रचा और उनके द्वारा मनुष्यकी उत्पत्ति यहांही हुई इसीकारण इस देश का नाम ब्रह्मावर्त रक्खा गया. इसके पश्चात् दूसरे देश बसे, सब देशके मनुष्योंने इस देशसे विद्या सीखी जैसाकि मनुजीने लिखा है:-

एतद्देशप्रसूतस्यसकाशादग्रजन्मनः ॥
स्वंस्वंचरित्रंशिक्षेरन्पृथिव्यांसर्वमानवाः ॥ मनु०

इस देशके उत्पन्न हुए विद्वानोंसे सारी पृथ्वीके मनुष्य अपने चरित्र और विद्याओंको सीखें यहींके लोगोंसे सबने विद्याऐं सीखी यहां यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्मावर्तही सबकी सृष्टिका मूलस्थान है और यहींसे और और देशोंमें विद्या गई यदि आर्य्यलोग तिब्बती होते तौ तिब्बतसे सब विद्या सीखीं जातीं क्योंकि आपके कथनानुकूल इस देशमें कोई रहताही नहींथा तौ आर्य्यलोग विद्या अपने साथही तिब्बतसे लायेथे तौ तिब्बतही सब विद्याओंका स्थान होता इस्से यही सिद्ध है कि आर्य्य इस देशमें सदांके हैं और विद्याभी सदांसे है और न कभी हिमालयवासियोंने आर्योंपर चढाई करी.

स० पृ० २२५ पं० २६

आर्य्यवाचोम्लेच्छवाचः सर्वेतेदस्यवःस्मृताः १
म्लेच्छदेशस्त्वतःपरः २

जो आर्य्यावर्तदेशसे भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहलाते हैं

समीक्षा क्या स्वामीजीने गपोड़ा लिखा है जो ऊपरके आधे श्लोकका अर्थ गडापही गये हैं सुनिये यह श्लोक मनुजीने यों लिखा है:-

मुखबाहूरुपज्जानांयालोकेजातयोबहिः॥
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचःसर्वेतेदस्यवःस्मृताः॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनकी क्रियालोपसे जो अधमजाति उत्पन्न हुईं चाहैं वे म्लेच्छभाषा करके संयुक्तहों चाहैं आर्यभाषा बोलते हों वे सब दस्यु हैं इसका अर्थ यह नहीं कि इससे भिन्न देश दस्युदेश कहाताहै इसका यह भाव है कि आर्य्यावर्त देशमेंभी कर्महीन क्रियाभ्रष्ट लोगोंका नाम दस्यु प्रचलित था और यदि आधाही पद प्रमाण मानों तौ जितने अपनेको आर्य्य कहते हैं उन सबकी दस्यु संज्ञा हो जायगी. देवासुरसंग्रामभी स्वामीजीने मिथ्याही कल्पना कियाहै यह संग्राम वास्त-वमें राजा इन्द्रसे और दैत्यौंसे जो उसका सिंहासन लेनेकी इच्छा करते थे अने वार हुआ है जो बहुत प्रसिद्ध है.

स० पृ०
बहुतमनुष्यसृष्टिकीआदिमेंबनाये

समीक्षा यह स्वामीजीका सृष्टिक्रम लोप होगया पूर्व तौ कहाहै वोह सृष्टिक्रम-को बदल नहीं सक्ता अब उसने बहुत मनुष्य कैसे उत्पन्न करादिये स्वयंविना स्त्री-पुरुष संयोगके मनुष्य उत्पन्न नहीं होसक्ता फिर परमेश्वरने स्त्री कहाँसे प्राप्त करी जो कहो कि उसने प्रयोजन पड़नेसे ऐसा किया था तो हमारा यह कहना फिर सिद्धही है कि आवश्यकता होती है तौ वोह तुरत अवतार धारण करलेता है और आवश्यकतासे सब कुछ करसक्ताहै परन्तु स्वामीजीका सृष्टिक्रम अब दूरतक दृष्टि नहीं पड़ेगा.

स० प्र० पृ० २२६ पं० १

ब्रह्माका पुत्र विराट् विराट्का मनु मनुके मरीच्यादि दश इनके स्वयंभुवादि सात राजा और उनके संतान इक्ष्वाकु आदिराजा जो आर्य्यावर्तके प्रथम राजा हुए उन्हौंने यह आर्य्यावर्त बसाया है.

समीक्षा स्वामीजीके लेखसे विदित होताहै कि इक्ष्वाकु राजासे पहले सब तिब्ब ती थे परन्तु मनुस्मृति जो मनुजीने रची है उन्होंने मनुका राज्यभी इसी देशमें होना लिखाहै जब कि ब्रह्माजीहीका प्राहुर्भाव ब्रह्मावर्त देशमें हुआहै तो बेटे पोतेभी

सब यहीं हुए और स्वामीजी तौ अग्निवायुआदिसे परंपरा लिखते ब्रह्मासे क्यों लिखी क्योंकि महात्माजीने तो प्रथम अग्निवायुकी उत्पत्ति लिखी है और प्रथम एक जातिभी नहींथी चारोंवर्ण सदांसे हैं यथाहि (ब्राह्मणोस्य मुखमासीदिति यजुर्वेदे) और मनुजी लिखते हैं

लोकानांतुविवृद्ध्यर्थंमुखबाहूरुपादतः
ब्राह्मणंक्षत्रियंवैश्यंशूद्रञ्चनिरवर्तयत मनु०

लोककी वृद्धिके अर्थ मुख बाहू जंघा चरणसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रको उत्पन्न किया सृष्टि कर्मानुसारहै तौ चारोंवर्ण कर्मानुसारही उत्पन्न हुए सबके एकसे कर्म नहीं इस कारण चारों वर्ण उत्पन्न हुए और शेष नाम परमात्माकाही है वही पृथ्वीको धारण करते हैं इससे शेषजीका पृथ्वीधारणकरना विख्यात है वोही पृथ्वीको धारण करते हैं अब आगे और स्वामीजीकी विरुद्धता देखियेः—

स० पृ० २२८ पं० १ से उक्षा वर्षाद्वारा भूगोलके सेचन करनेसे सूर्यका नाम है उसने अपने आकर्षणसे पृथ्वीको धारण कियाहै । और पं २१ में

सदाधारपृथिवीमुतद्याम्

यह यजुर्वेदका वचन है जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकलोकान्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाश सहित लोक और पदार्थोंका रचन धारण परमात्मा करताहै जो सबमें व्यापक हो रहाहै वोह सब जगतका कर्ता और धारण करनेवाले है.

समीक्षा-चार पांच पंक्तियोंकेही अंतरमें स्वामीजीकी स्मरणशक्ति लोप होगई वहां लिखाकि सूर्य धारण करता है यहां कहा ईश्वर. कौनसा वाक्य आपका सत्य माना जावै विनाही पढे अंग्रेजी विद्याका इतना असरहै कि सारी यूरूपियनोंकी बाते ग्रहण करी हैं किसी इंग्लेण्डवासी अंगरेजने बहुत सत्य कहा है कि यदि दयानंद सरस्वती अंग्रेजी पढे होते तौ जैसा वेदको ईश्वर वाक्य कहते हैं औरभी जो मत विषयक बातें कहते हैं उन सबको तिलांजलि देदेते यह बात बहुतही सत्य कहीथी अनुमानसेही विदित होता है.

स० पृ० २२८ पं० २५ पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर (उत्तर) घूमते हैं (प्रश्न) कितनेही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है पृथिवी नहीं घूमती दूसरे कहते हैं सूर्य नहीं घूमता इसमें कौन सत्य वाक्य मानाजाय (उत्तर) यह दोनोंही आधे झूंठे हैं क्योंकि वेदमें लिखा हैः—

आयंगौःपृश्निरक्रमीदसदन्मातरंपुरः॥पितरंचप्रयन्त्स्वः अ० ३ मं० १

अर्थात् यह भूगोल जलके सहित सूर्यके चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है

पृ० २२८ पं०

आकृष्णेनरजसावर्त्तमानोनिवेशयन्नमृतंमर्त्यंच

हिरण्ययेनसवितारथेनादेवोयातिभुवनानिपश्यन्

यजु० अ० ३३ मं० ४३

जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादिका कर्ता प्रकाशस्वरूप तेजोमय रमणीय स्वरू-पके साथ वर्तमान सब प्राणिअप्राणियोंमें अमृतस्वरूप वृष्टि वा किरणद्वारा अमृत-का प्रवेश करा और सब मूर्त्तिमान द्रव्योंको दिखलाता हुआ सब लोकोंके साथ आकर्षणगुणसे सहवर्त्तमान अपनी परिधिसे घूमता रहता है किन्तु किसी लोकके चारों ओर नहीं घूमता वैसेही एक २ ब्रह्माण्डमें एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोकलोकान्तर प्रकाश्य हैं पुनः पं० २५ जैसे राईके सामने पहाड़ घूमे तौ बहुत देर लगती है और राईके घूमनेसे बहुत समय नहीं लगता है वैसेही पृथ्वीके घूमनेसे दिनरात होता है सूर्यके घूमनेसे नहीं. और जो सूर्यको स्थिर कहते हैं वेभी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तौ एक स्थानसे दूसरी राशिको प्राप्त न होता और गुरुपदार्थ विना घूमे आकाशमें नियमस्थानपर कभी नहीं रहसक्ता.

समीक्षा स्वामीजीपर विनाही अंग्रेजी पढे बहुत कुछ अंग्रेजी विद्याका असर है सोचनेकी बात है यदि पृथ्वी घूमती होती तौ जिसप्रकार ग्रह बारहराशियोंमें घूमते हैं उसीप्रकार पृथ्वीभी राशियोंमें घूमती और इसकी ग्रहमें संख्याभी होती और यदि लोक घूमनेहीसे स्थिर रहते तौ ध्रुवका तारा नहीं घूमता इस बातको सभी मान्ते हैं और इसी कारण उसका नाम ध्रुव है कि वोह घूमता नहीं तौ ध्रुवतारा भी गिर पडना चाहिये तथा औरभी तारागण हैं जो नहीं घूमते वेभी गिरपड़ें तौ यह आकाश शून्य होजाय इसकारण यह कहना ठीक नहीं कि जो नहीं घूमते हैं वे गिरपड़ें और जो पृथ्वी सूर्यके चारोंओर घूमती है तौ गरमियोंके दिनोंमें सूर्यके निकट होनेसे यत्किंचित् सूर्य बडा दृष्टि आना चाहिये सो ऐसाभी नहीं होता और

राईका जो दृष्टान्त दिया है वोहभी अशुद्ध है क्योंकि आपने लिखा है कि राईको पहाड़के सामने घूमते देर लगती है यह कहनाही हास्ययुक्त है आपने सूर्यको पृथ्वीसे लाखगुणा बड़ा कहा और करोड़ों कोस दूर माना है देर तौ जब लगै जब राईके बराबर घूमना पड़ै और राईका लाखगुना पहाड़ नहीं हो सक्ता यदि राईको चावलकी बराबरही मानलैं तौ तोलाभरराईमें ६१४४ दाने हुए तौ १७ ही तो लेमें १०३४२८ लाखसेभी अधिक दाने होजायंगे जिनका बोझ पाव भरकाभी नहीं हो सक्ता इस कारण राईपर्वतका दृष्टान्त सम्पूर्णतः अशुद्ध है फिर एक पृथिवीही तौ नहीं अनेक ब्रह्माण्डोंमें यही सूर्य प्रकाश करता और दूर होनेसे क्या परमात्माके प्रतापसे अधिक वेगसे गमन करता है क्यों कि (सूर्यएकाकीचरति) और (हिरण्य येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्) अर्थात् " सूर्य असहाय चलता है " सुवर्णके रथमें सूर्य देवलोकोंको देखते जाते है यह यजुर्वेदके वाक्य हैं जिस्से सूर्यका लोकोंके चारोंओर घूमना सिद्ध होता है और जो पृथ्वी चलती होती तौ एक मिनटमें ७$\frac{1}{2}$ मील पृथ्वी घूमती है पृथ्वीका व्यास अंगरेजी १२००० मीलका लिखा है स्वामीजीने लिखा तौ नहीं पर उन्ही कैसा माना होगा और जो अधिक मानेंगे तौ अधिकही चाल होगी इस हिसाब जब घंटेभरमें ५०० मील पृथ्वी घूमती है तौ जो कबूतर सबेरेको उडते हैं और दुपहरको आते हैं तौ वे घरपर न आने चाहिये क्योंकि छघंटेभरमें पृथ्वी ३००० मील निकल जाती है कबूतर इतना चल नहीं सकता यदि कहो कि पृथ्वी कशिश उसे खैंचलेजाती है तौ ऐसी बडी पृथ्वीके घूमनेसे हवाका बहुत बडा धक्का लगना चाहिये और उडनेवाले अस्ताव्यस्त हो जाने चाहिये और सदां आंधीही चला करनी चाहिये जैसेकी जब रेल वेगसे चलती है तौ उसके निकट कितना हवाका वेग होता है और जहां तहां निकटके तृणादि अस्ताव्यस्त हो जाते हैं इसी प्रकार पृथ्वीके चलनेसे उडनेहारे जीवोंकी गति होनी चाहिये किन्तु जीव सर्व निर्विघ्न उड़ते हैं फिर पृथ्वीके चलनेके वायुके रुखकूं जीव चलते परन्तु सोभी इच्छाचारी उड़ते हैं कशिश होती तौ खींचते मालूम पड़ते सो गुव्वारेपै चढनेवालोंको अनुभव होना चाहिये सोभी नहीं चलता और पृथ्वीसे तिगुना जल है वोह विखर जाय क्यों कि आकर्षणशक्ति अपनेसे न्यूनको आकर्षण करसक्ती है वर्तीको नहीं यदि कहो कि पुरुयेमें जल भरकै फिरानेसे वोह नहीं गिरैगा तद्वत पृथ्वी मानो सो भी नहीं हो सक्ता क्यों कि पुरुएके भीतर पानी भरा होता है मुख छोटा होता है पृथ्वीके भीतर पानी नहीं ऊपर है इस्से दृष्टान्त ठीक नहीं विना वाडके वर्तनमें पानी नहीं ठहरसक्ता यदि पृथ्वीमें आकर्षणशक्ति समवायसंबंधसे रहती है तौ एक मिट्टीका गोला बनाकर उसमें तीन गुने गड्ढेकरकै पानी भरैं यदि

पानी ठहर जाय तौ पृथ्वीमेंभी ठहर जायगी सो ऐसा नहीं होता/इस प्रकारसे पृथ्वीका घूमना सिद्ध नहीं होता अब वेदमंत्रोंसे पृथ्वीका स्थिरहौना सिद्ध करते हैं औरकूं स्वामीजी आधे झूंठे बताते हैं परन्तु आप यहां सारेही झूंठे हैं मंत्रमें गौ शब्द देखकर पृथ्वीका चलना सिद्ध कर दिया निरुक्तिमें इस शब्दका इस प्रकार व्याख्यान किया है (गम्लृगतौ गौरिति पृथिव्या नामधेयं यद्दूरंगता भवति यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति गातेर्वौकारो नमकरणः) जिस कारणसे कि इसपर प्राणी चलते हैं इस्से पृथ्वीका नाम गौ है वा गीयते स्तूयते असाविति यह स्तुतिकी जाती है इस्से गौ कहलाती है यथा गौर्जगार यद्ध पृच्छात् अ० १०।३१।१० निघंटु निरुक्ति २।७ में पृथ्वीका नाम निर्ऋतिः लिखा है निर्ऋतिः निरमणात् निश्चलत्वेनावस्थानात् जिसमें गति नहीं होती अर्थात् जो स्थिर हो उसे निर्ऋति कहते हैं जैसे ऋग्वेदमें (बहुप्रजानिर्ऋतिमाविवेश १।१६४।३२) उदाहरण है जो पृथ्वी चलती होती तौ क्यों निर्ऋति नाम होता क्योंकि जिसमें गति नहीं वोह निर्ऋति है स्वामीजीने आयंगौः इसको तीसरे अध्यायका ९ मंत्र लिखा है परन्तु यह छठा मंत्र है नवमा नहीं इस मंत्रका सर्पराज्ञी कद्रुऋषिः गायत्रीछन्दः अग्निर्देवता है यहभी जान रखनेकी बात है कि जिस मंत्रका जो देवता होता है उस मंत्रमें उसीका गुण कथन होता है जब इस मंत्रका अग्निर्देवता है तौ अग्निकेही गुण इसमें कथन किये हैं यहां गौ नाम अग्निका है यथा हि:—

(अयम्) इस (गौः) यज्ञ सिद्धके अर्थ यजमानके घरआने जानेवाले (पृश्नि) श्वेतरक्त आदि बहुप्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त अग्निने (आ) सब ओरसे आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्निके स्थानोंमें (अक्रमीत्) अतिक्रमण किया (पुरः) पूर्वदिशामें (मातरम्) पृथ्वीको (असदत्) प्राप्तकिया (च) और (स्वः) सूर्यरूप होकर (प्रयन्) स्वर्गमें चलते अग्निने (पितरम्) स्वर्गलोकको (असदत्) प्राप्त किया ६

इस मंत्रमें कहीं यह बात नहीं निकलती कि पृथ्वी चलती है अब दूसरे मंत्रका अर्थ सुनिये:—

(सविता) सूर्य (देवः) देवता (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मय (रथेन) निज मंडलरूप रथके द्वारा (आवर्तमानः) मेरुपर्वतको परिक्रमण कर्ता (कृष्णेन) अंधकार औ(रजसा) ज्योतिसे (अमृतम्) देवताआदि (च) और (मर्त्यम्) मनुष्यादिको (निवेशयन्) अपने व्यापारमें स्थापन करता (भुवनानि) भुवनोंको पश्यन् देखता अर्थात् साधु असाधु कर्मोंको विचरता (आयाति) गति करता है और दिखेये यजुर्वेदमें.

येनद्यौरुग्रापृथिवीचदृढायेनस्वस्तभितंयेननाकः
योअन्तरिक्षेरजसोविमानःकस्मैदेवायहविषाविधेम अ०३२मं०६

भावार्थः जिस ईश्वरके द्वारा स्वर्ग वर्षा करनेमें उद्यत है और पृथ्वी दृढ है अर्थात् प्राणधारण वृष्टिग्रहण और अन्ननिष्पादन करती और अचल है जिस परमात्माकी शक्तिसे स्वर्गादि स्तंभित हैं जिसकी कृपासे भक्तोंको दुःखरहित लोक दृष्टिगोचरहै जो ईश्वर आकाशमें जलका निर्माता है उस परमात्माके लिये हवि देते हैं इत्यादि इन मंत्रोंसेभी यही सिद्ध है कि पृथ्वी दृढ और अचल है स्वामीजी पृथ्वीका चलना मानते हैं सो ठीक नहीं है.

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे मिश्रज्वालाप्रसादविरचिते सत्यार्थप्रकाशान्तर्गताष्टमसमुल्लासस्य खंडनं सम्पूर्णम् २२।८।९०

श्रीगणेशायनमः ।

मुक्तिप्रकरण.

स्वामीजीने इससमुल्लासमें मुक्तिसे जीवका लौटना लिखा है प्रथम इसके कि मुक्तिके विषयमें कुछ लिखैं यहभी दिखादेनाअवश्य है कि स्वामीजीने भाष्यभूमिका पृ० १११, और ११२ आर्य्याभिविनय पृ० १६,४२,४५ वेदान्तध्वान्तनिवारण पृ० १०।११ वेदविरुद्धमतखंडन पृ० १४ सत्यधर्मविचार पृ० २५ में यह लिखा है कि मुक्ति कहते हैं छूट जानेको अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे छूटकर एक सच्चिदानंद परमेश्वरको प्राप्त होकर सदा आनन्दमें रहना और फिर जन्म मरणादि दुःख सागरमें नहीं गिरना इसीका नाम मुक्ति है फिर न मालूम कौनसे कारणसे मुक्तिसै लौटना मानलिया सो वही विषय लिखा जाता है स० पृ० २३३ पं० १३(प्रश्न) बंधमोक्ष स्वभावसे होता है वा निमित्तसे (उत्तर) निमित्तसे क्योंकि जो स्वभावसे होता तौ बंधमोक्षकी निवृत्ति कभी नहीं होती

समीक्षा स्वामीजीको घरका मार्गभी विस्मृत होगया जबकि बंधमोक्ष निमित्त कारणसे होता है तौ जब निमित्त मोक्ष हुई तौ फिर कौनसे निमित्तसे जन्म लैना पड़ेगा इस्से तौ यही सिद्ध होता है कि उसका जन्म नहीं होता ·

स० पृ० २३३ पं० ६

ननिरोधोनचोत्पत्तिर्नबद्धोनचसाधकः
नमुमुक्षुर्नवैमुक्तिरित्येषापरमार्थता

यह माण्डूक्यपर कारिका है पं०११में इसका अर्थ किया है यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं क्योंकि जीवस्वरूप अल्प होनेसे आवर्णमें आता शरीरके साथ प्रगट होने रूप जन्मलेता पापरूप कर्मोंके फल भोगरूप बंधनमें फसता उसके छुडानेका साधन करता दुःखसे छूटनेकी इच्छा करता है दुःखसे छूटकर परमानंद परमेश्वरकी प्राप्ति होकर मुक्तिभी भोगता है.

समीक्षा स्वामीजीके इस वाक्यकौ तौ देखिये आपतौ प्राचीन वेदान्ती बनते हैं और दूसरोंको नवीन वेदान्ती कहते हैं और सरासर उल्टीही धांगते हैं यह कारिकाही असत्य बतातें हैं इसका आशय यह नहीं जैसा कि स्वामीजीने कथित किया है अर्थतौ इसका यह है कि जब अपने स्वरूपका ज्ञानहोजाता है तब निरोध

उत्पत्ति बंधसाधक मुमुक्षु मुक्ति कुछ शेष नहीं रहता है केवल स्वयंप्रकाश लक्षित होने लगता है उपरोक्त बातोंमेंसे कुछभी नहीं रहता इसीका नाम परमार्थता है यथा॰

नतुतद्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्पश्येत् छां॰
अत्रपिताऽपिताभवतिमाताऽमाताल़ोकाअलोकादेवाअदेवावेदाअवेदाःअथयत्रदेवइवराजेवाहमेवेदं॰सर्वोस्मीतिमन्यतेसोऽस्यपरमोलोकः

मोक्षावस्थामें जब अपने स्वरूपका ज्ञान होजाताहै तौ वहां कोई दूसरा नहीं है जिसको अपनेसे पृथक् देखे स्वयंप्रकाश एक वही है

मुक्तिमें पिता अपिता माता अमाता लोक अलोक देव अदेव वेद अवेद होते हैं अर्थात् उसके सिवाय दूसरा हैही नहीं २

जब यह राजा की नाई यह जान्ता है यह सबकुछ में हीं हूं सोई इसका परमलोक अर्थात् मुक्तिहै जबकि सत्यएक ब्रह्म तद्व्यतिरिक्त सब अनित्यहै जब ऐसा ज्ञान हुआ तौ बंधयुक्त अविद्याअज्ञान कुछ नहीं रहता इस्से ब्रह्ममें कुछ दोष नहीं

स॰पृ॰ २३६ पं॰ १८मुक्तिमें जीवका लय होताहै वा विद्यमान रहताहै (उत्तर)

विद्यमान रहता है (प्रश्न) कहां रहताहै (उत्तर) ब्रह्ममें (प्रश्न) ब्रह्म कहांहै और वोह मुक्तजीवएक ठिकाने रहताहै वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरताहै(उत्तर) जे ब्रह्म सर्वत्र पूर्णहै उसीमें मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र विचरताहै (प्रश्न) मुक्तजीवका स्थूल शरीर होता है या नहीं (उत्तर) नहीं रहता (प्रश्न) फिर वोह सुख और आनंदभोग कैसे करता है (उत्तर) उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिक संग नहीं रहता जैसे

शृण्वन्श्रोत्रंभवतिस्पर्शयन्त्वग्भवतिपश्यन्चक्षुर्भवति
रसयन्रसनाभवतिजिघ्रन्घ्राणंभवतिमन्वानोमनोभवति
बोधयन्बुद्धिर्भवतिचेतयँश्चित्तंभवत्यहंकुर्वाणोऽहंकारोभवति
शतपथकां॰ १४

मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साधन नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुन्ना चाहता है तबश्रोत्र स्पर्शकरना चाहता है

तब त्वचा देखनेके संकल्प करनेके समयसे चक्षु स्वादके अर्थ रसना गंधके लिये घ्राण संकल्प विकल्प निश्चय करनेके लिये बुद्धि स्मरण करनेके लिये चित्त और अहंकारके अर्थ अहंकाररूप अपनी शक्तिसे जीवात्मा मुक्तिमें हो जाताहै और संकल्प मात्र शरीर होजाता है जैसे शरीरके आधार रहकर इन्द्रियोंके गोलक द्वारा जीव स्वकार्य करताहै वैसे अपना मन शक्तिसे मुक्तिमें सब आनंद भोग लेताहै

समीक्षा—यह स्वामीजीका मिथ्या लेखहै इसमें सारार्थ केवल इतना है कि मुक्तिमें स्थूलशरीर रहित होता है और अपनी शक्तिसे श्रोत्रादिरूप होकर आनन्दको भोगताहै और उसको भौतिक पदार्थका संग नहीं रहता परन्तु जो श्रुतिप्रमाण लिखी है सो मोक्षप्रकरणकी नहीं है और इस अर्थका साधकभी नहीं तथाहि

सएषइहप्रविष्टआनखाग्रेभ्योयथाक्षुरःक्षुरधानेऽवहितः स्याद्विश्वंभरोवाविश्वंभरकुलायेतंनपश्यंत्यकृत्स्नोहिस प्राणन्नेवप्राणोनामभवतिवदन्वाक्पश्यंश्चक्षुःशृण्वन्श्रोत्रं मन्वानोमनस्तान्यस्यैतानिकर्मनामान्येवसयोऽतएकैक मुपास्तेनसवेदाकृत्स्नोह्येषोऽतएकैकेवभवत्यात्मेत्येवो पासीतात्रह्येतेसर्वएकंभवन्ति
बृह० उप० अ० ३ ब्रा० ४

इसीश्रुतिके आशयकी स्वामीजीने श्रुतिलिखी है परन्तु स्वामीजीके अर्थकी सिद्धि नहीं होती. इस पूर्णश्रुतिका अर्थ यह है (सो यह आत्मा पूर्व जो अव्यक्तका अधिष्ठानरूपसे निर्णीत है वोह अव्यक्तकार्य शरीरमें नखाग्रपर्यन्त प्रविष्टहुआ और प्रवेशभी विशेषरूपसे तथा सामान्यरूपसे हुआ इसमें दृष्टान्त कहतेहैं (यथा क्षुरधानेक्षुरोऽवहितःस्यात्) जैसे नाईके बरतनमें क्षुर प्रविष्ट होता है अर्थात् जैसे नाईके शस्त्रोंके पात्र (किस्वत) में क्षुरा आदि एकदेशमे प्रविष्टहोतेहैं वैसे ही परमात्मा प्राणादि विशेषस्थानमें प्रविष्टहोकर विदित हुआ अथवा "विश्वंभरकुलाये" काष्ठोंमें जैसे अग्नि प्रविष्ट होती है सामान्यरूपसे इसीप्रकार सामान्यरूपसे सब देहमें प्रविष्ट हुआ तिस स्पष्टप्रविष्टको भी नहीं जान्ते (हि) जिस कारणसे वोह आत्माका रूप (अकृत्स्न) सम्पूर्ण नहीं क्यों कि वोह आत्मा प्राणउपाधिकहोकर प्राणन क्रियाको करता हुआ प्राणनामवाला होता है और वदनक्रियाको वागुपाधिक होकर करता हुआ वाक्नामवाला होता है और चक्षुउपाधिक होकर दर्शनक्रियाके

करता हुआ चक्षु नामवाला इसी प्रकार मननक्रियाका करता होकर मन नामवाला होता है इसी प्रकार जब शाखान्तरीयपाठ होवै तौ रसना घ्राण बुद्धि चित्त अहंकार नामवाला होता है परन्तु यह सब आत्माके कर्म नाम अर्थात् औपाधिक क्रियाजनित नाम हैं इस कारण जो एक एक को आत्मरूपसे उपासना करता है सो नहीं जान्ता क्यों कि इन एक एक करकै वोह आत्मा असंपूर्ण होता है इसकारण सर्व को आत्मा इस रीतिसे ध्यान करै क्यों कि इस आत्मामें ही सर्व प्राणादि नामवाले एकताको प्राप्त होते हैं अब स्वामीजीकी मिथ्याकल्पना देखनी चाहिये कि मोक्षमें शरीर भाव अथवा अपनी शक्तिसे मुक्त जीवको श्रोतृत्वादि रचना करना इस श्रुतिमें कहां सिद्ध होसक्ता है क्यों कि आगेकी श्रुति देखनेसे यह प्रसंगके विरुद्ध प्रतीत होती है

यद्वैतन्नजिघ्रतिजिघ्रन्नैवतन्नजिघ्रतिनहिघ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयज्जिघ्रेत्॥ १॥
यद्वैतन्नरसयतेरसयन्वैतन्नरसयते नहिरसयितूरसयतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयद्रसयेत् २
यद्वैतन्नवदातिवदन्वैतन्नवदाति नहि वक्तोर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तियतोन्यद्विभक्तंयद्वदेत् ॥ ३ ॥
यद्वैतन्नशृणोतिशृण्वन्वैतन्नशृणोतिनहि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयच्छृणुयात् ४
यद्वैतन्नमनुतेमन्वानोवैतन्नमनुतेनहिमन्तुर्मतेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयन्मन्वीत ५
यद्वैतन्नस्पृशतिस्पृशन्वैतन्नस्पृशतिनहिस्प्रष्टुःस्पृष्टेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्स्पृशेत्॥६॥
यद्वैतन्नविजानातिविजानन्वैतन्नविजानातिनहिविज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वान्नतुतद्द्वितीयमस्तियतोन्यद्विभक्तंयद्विजानीयात् ॥ ७ ॥

भावार्थ-मुक्तिको प्राप्तहोकर न वोह सूंघता है वो सूंघता हुआभी नहीं सूंघता

सूंघनेवालेको सुगंधिसे विपरिलोप " विभक्तता " नहीं है अविनाशी होनेसे जब वहां कोई दूसरा है ही नहीं तौ क्या सूंघैगा अर्थात् उसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है १ इसीप्रकार रसन बोलना मनन छूना जानना इत्यादि मुक्तमें न कुछभी ही है जब कि दूसरा कोई है ही नहीं तौ उपरोक्तविचार कैसे करसक्ता है इत्यादि सातोंश्रुतियोंका अर्थ इसीप्रकार सरल है इस्से सिद्ध हुआ कि मुक्तिमें ब्रह्म जीवकी एकता होजाती है इच्छादिका करना बन हीनहीं सक्ता इसकारण स्वामीजीकी उपरोक्तश्रुति इस विषयमें नहीं है

स० पृ० २३७ पं०

उसकी शक्ति के प्रकारकी और कितनी है (उत्तर) मुख्य एक प्रकारकी शक्ति है परन्तु बल पराक्रम आकर्षण प्रेरण गति भीषण विवेचन क्रिया उत्साह स्मरण निश्चय इच्छा प्रेम द्वेष संयोग विभाग संयोजक विभाजक श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादन और गंधग्रहण तथा ज्ञान इन चौवीसप्रकार सामर्थके ज्ञानयुक्त जीव है इससे मुक्तिमें भी आनन्दकी प्राप्ति भोग करता है

समीक्षा—इसमें यह विचार करना चाहिये कि क्रियाशब्दार्थ यदि गमन है तौ गतिका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है यदि धात्वर्थ मात्रका नाम क्रिया है तौ जैसे बलप्राणने इस धातुका अर्थ बल है वैसेही परिक्रमादि सर्व ही किसी न किसी धातुके अर्थ हैं इनका पृथक् ग्रहणकरना असंगत है और यदि ज्ञानका ग्रहण किया था तब निश्चय स्मरण श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादन गन्धग्रहण इन सबका ग्रहण होगया था फिर इनका ग्रहण करना निष्फल है औरभी विचारनेकी बात है जो स्वामीजीने पृ० २३६ में दुःखसे छूटनेका नाम मुक्ति है यह लिखा है और अब २३७में भीषण इच्छा प्रेम द्वेष यह गुण तब कहे इनका यही अर्थ होगा किसीसे भयभीत होना अथवा किसीको भय देना इसका नाम भीषण है यह दोनो भी दुखःरूप हैं और इच्छा तृष्णाका नाम है सो महाक्लेशकारी सर्वथा प्रसिद्ध है यद्यपि मुक्त आत्मा अपनी इच्छा निवृत्त करसक्ता है तथापि उसके पीछे दुःख तौ लगेई हैं प्रेमनाम रागका है और द्वेष नाम क्रोधकाहैं सो यह बद्धजीवमें होसके हैं मुक्तजीवमें किसीप्रकार हो नहीं सक्ते इससे स्वामीजीको मोक्षमें बड़ा ही भ्रम है सो मिथ्या ज्ञानसे यह भ्रम उत्पन्न हुआ है

स० पृ० २३७ पं० १६

अभावंबादरिराहह्येवम् १

जो बादरिव्यासका पिता है वोह मुक्तिमें जीवका और उसके साथ मनका भाव मानता है अर्थात् जीव और मनकालय पराशरजी नहीं मान्ते

समीक्षा—यह भी सूत्रार्थ स्वामीजीने अशुद्ध ही लिखा है सूत्रके अक्षरार्थतककीभी स्वामीजीको खबर नहीं यह स्वामीजीका अर्थप्रकरण और श्रुतिविरुद्ध है क्योंकि इस सूत्रके अभावम् बादरिः आह हि एवम् यह पद है इसमें बादरिकर्ता है और अभाव कर्म है मन्यते क्रियाका अध्याहार होता है तब यह अर्थ होगाकि बादरि आचार्य अभाव मान्ते है सो किसका अभाव मान्ते है इसका उत्तर इस सूत्रके विषयकी श्रुतिमें है (सो आगेलिखैंगे) (हि) जिस कारणसे कि (एवम्) ऐसे (आह) श्रुति कहती है इस कारण इस सूत्रमें जीव और मनका भाव अर्थ नहीं और आह हि एवम् इन तीनो पदोंके अर्थकी तौ स्वामीजी चटनी करगये इस्से यह अर्थ ठीक नहीं.

स० पृ० २३७ पं० २१

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात्

और जैमिनि आचार्य मुक्तपुरुषका मनके समान सूक्ष्मशरीर इंद्रिय प्राण आदिको भी विद्यमान मानते है अभाव नहीं

समीक्षा यह भी अर्थ असंगत है क्योंकि इससूत्रमैं सूक्ष्मशरीर इन्द्रिय प्राण आदिका सद्भावमाना इसमें यह असंगत है कि सूक्ष्मसे पृथक् इन्द्रिय प्राणको कहा क्योंकि इन्द्रिय प्राणतौ सूक्ष्मान्तर्गत है और मनभी सूक्ष्म अन्तर्गत है पहले सूत्रमें मनका सद्भाव माना है और मनप्राण इन्द्रियसे विना नही रहसक्ता तौ पहले मतमें इन्द्रिय और प्राण भी माने होंगे तौ बादरिके और जैमिनिके मतमें अंतरा ही क्या रहा तौ उनका मतभेद ही क्या रहा जिन्है सूक्ष्म शरीरकी खबर नहीं सो व्याससूत्रोंका क्या अर्थ करैंगे इससूत्रमें विकल्पामननात्का अर्थ नहीं लिखा है फिर अर्थ कहांसे बने

पं० २४ द्वादशाहवदुभयविधंबादरायणोऽतः

व्यासमुनि मुक्तिमें भाव और अभाव इन दोनोको मान्ते है अर्थात् शुद्ध सामर्थ युक्त जीव मुक्तिमें बना रहता है अपवित्रता पापाचरण दुःख अज्ञानादिका अभाव मान्ते हैं

समीक्षा इस लेखमें भी सूत्रार्थका पता नहीं द्वादशाहवत् उभयविधं बादरायणः अतः इतनेपद इस सूत्रमें हैं स्वामीजीने इसमें आदि अन्तके पद छोडकै (उभयविध) का अर्थ किया है किशुद्ध सामर्थ युक्त हो पापाचरणादि विशिष्ट न होना यह कथनभी पूर्व दोमतोंका साधक नहीं क्योंकि पूर्वमतोंमेंभी पापाचरणादि नहीं माने

शुद्ध सामर्थ्यही मानेंगे जब पूर्व मतोंमेंभी यह अर्थ हुआतौ तीनमतोंका पृथक् लि-
खना असंगत है और स्वामीजीतौ प्रेमद्वेष इच्छादिक्लेश मान्ते हैं सोग्रह अपवित्रता
है वा और कुछ है फिर अपवित्रताका मोक्षमें अभाव कथन करना बादरायणके मतमें
असंगत है क्योंकि स्वयं स्वामीजी अपवित्र मान चुके हैं और स्वतः प्रमाण सं-
हिताके मंत्र लिखते व्याससूत्र क्यों लिखे अब हम अच्छी प्रकारसे इन सूत्रोंका पू-
र्वापर सहित लिखते हैं जिस्से सज्जन पुरुषोंको निर्णय हो जायगा कि स्वामीजीने
सूत्रोंका अर्थ बिगाड दिया है.

मुक्ति तीन प्रकारसे शास्त्रमें कथन करीहै कैवल्यमुक्ति ब्रह्मलोकप्राप्ति और ब्रह्म-
लोकप्राप्तिद्वारा क्रममुक्ति प्रथम कैवल्य मुक्तिवर्णन करते हैं

सम्पद्याविर्भावः स्वेनशब्दात् शारीरक अ० ४ पा० ४ सू० १

विषयवाक्य **अशरीरोवायुरभ्रंविद्युत्स्तनयित्नुशरीराण्येतानितद्य
थैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थायपरमज्योतिरुपसंपद्यस्वेनस्वेन
रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते एवमेवैषसम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्था-
यपरंज्योतिरुपसम्पद्यस्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते सउत्तमः पुरुषः
छां० उ० अ० ८ खं १२**

सूत्रार्थ–सम्पद्यनाम अविद्या तिरोहित रूपके आविर्भावका है क्यों कि श्रुतिमें
स्वेन ऐसा शब्द देखा जाता है और स्वरूपनाम पूर्वसिद्ध अपने रूपका है इस्से अ-
विद्या तिरोहित रूपका अविद्या निवृत्तिसे आविर्भावही कैवल्य है विषयवाक्य श्रु-
तिका अर्थ किसी निमित्तसे स्वस्वरूप तिरोधान होकर पश्चात् निमित्तान्तरमें स्व-
स्वरूपप्राप्तिमें दृष्टान्त कहते हैं जैसे वायु सूक्ष्ममेघ विद्युत् स्तनयित्नु अर्थात् स्थू-
लमेघ यह सम्पूर्ण पदार्थ वर्षाकालसे भिन्न कालमें शरीर अर्थात् तिरोहित शरीर
होते हैं आकाशके साथ एकताको प्राप्त होते हैं वे कालरूप निमित्तसे आकाशमें
तिरोहित रहते हैं और वर्षाभिन्नकाल निमित्तके अभाव होतेही आषाढके ज्योतिरूप
तेजको प्राप्त होकर आकाशसे समुत्थितहो अपने पूर्वसिद्ध चातुर्मासिक रूपसे प्राप्त
होते हैं तैसेही यह चैतन्य जीव इस शरीररूप निमित्तसे देहादितादात्म्यभावको
प्राप्त होकर अपने स्वतःसिद्ध रूपके भान होतेही ज्ञानसे देह तादात्म्यभावको त्याग
कर अपना स्वतःसिद्ध परंज्योतिस्वरूप आत्मा है तिसको प्राप्त होकर विराजमान
होता है और मुक्तात्माही उत्तम पुरुष अर्थात् परमात्मारूप है.

मुक्तः प्रतिज्ञानात् शा० अ० ४ पा० ४ सू० २

श्रुतिमें जो अभिनिष्पद्यते यह कहा है वोह सर्व बंधरहित शुद्धस्वरूप करके अ-वस्थान ज्ञानरूप जो मुक्तावस्था तिसको प्राप्त होता है

आत्मप्रकरणात् अ० ४ पा० ४ सू० ३

इस श्रुतिमें ज्योतिशब्द भौतिक ज्योतिका बोधक नहीं आत्माका प्रकरण होनेसे मुक्तिमें कैसा स्वरूप होजाता है परमात्मासे पृथक् हो रहता है अथवा लय हो जाता है इसपर अगला सूत्र है

अविभागेनदृष्टत्वात् अ० ४ पा० ४ सू० ४

मुक्त ब्रह्मसे अभिन्न स्थित होता है ऐसा श्रुति कहती है मुक्तका ब्रह्मके साथ भेद नहीं है "स उत्तमः पुरुष इति" इस वाक्यमें जो शब्द है उसने अभिनिष्पन्नरूप मुक्तस्वरूपका परामर्षकर मुक्तकोही उत्तम शब्दवाच्य ब्रह्मस्वरूप कहा है तिस्से मुक्त स्वरूपसे ब्रह्म भिन्न नहीं है अविभक्तही परसे मुक्त रहता है तथाहि

यत्रनान्यत्पश्यतिनान्यच्छृणोतिनान्यद्विजानातिसभूमाछां०अ०७ नतुतद्द्वितीयमस्तिततोन्यद्विभक्तंयत्पश्येत्

जिस भूमा ब्रह्ममें अन्य किसी वस्तुको अन्य द्रष्टा वा श्रोता देखता वा सुनता नहीं तथा अन्य किसी वस्तुको अन्य विज्ञाता जानता नहीं सो भूमा है जो भूमाको प्राप्त होकर पृथक् रहता तौ पृथक् द्रष्टा होकर देखता इस्से अभेदरूपसेही मुक्तिकी स्थिति होती है और जब दूसरा हैही नहीं तौ अन्य क्या देखैगा और एकमेंभी आ-धारान्तर निषेधके हेतु स्थिति कही जाती है यथा

सभगवःकस्मिन्प्रतिष्ठितः स्वेमहिम्नीतिहोवाच छां० अ० ७

" नारदजीने सनत्कुमारसे पूछा है भगवन् सो भूमा किसमें स्थित है (उत्तर) अपनी अखण्डैकरसमहिमामें स्थित है रूपान्तरसे स्थितिका निषेध किया है

अब यह प्रश्न है कि स्वस्वरूप इसका चेतन मात्र है वा सत्यकामत्वादि धर्म विशिष्ट है प्रथम इसमें जैमिनिआचार्यका मत कथन करते है

ब्राह्मणोनजैमिनिरुपन्यासादिभ्यः शा० अ० ४ पा० ४ सू० ५

जो ब्रह्मका सत्यकामत्वादि विशिष्ट रूप है तिसी रूपसे मुक्तिमें जैमिनिजी स्थिति मान्ते हैं वाक्यके आरम्भमें अयमात्मापहतपाप्मा इत्यादि सत्यकामत्व सत्य संकल्पत्व विशिष्टका उपन्यास नाम कथन करा है

सतत्रपर्य्येतिजक्षन्क्रीडन्रममाणः छां० अ० ८

सो मुक्त मोक्षपदमें वर्तमान हासक्रीडा रमण करताहुआ सब प्रकारसे जानता है इन प्रमाणोंसे ईश्वर सत्यकाम सत्यसंकल्प है तिसी रूपसे मुक्तका आविर्भाव होता है

चितितन्मात्रेणतदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः शा० अ० ४ पा० ४ सू० ६

चैतन्य मात्रस्वरूपसे मुक्तकी स्थिति होती है क्यों कि (तदात्मकत्वात्) चैतन्य स्वरूप है केवल ज्ञानमात्रही आत्माका स्वरूप है तिसी रूपसे मोक्षमें स्थिति होती है और जो श्रुतिमें सत्यकामत्वादि कथन करे हैं सो असत्यकामत्वादि जो बंध कालमें प्रसक्त थे तिनका निषेध करा है बृहदारण्यकमेंभी केवल ज्ञानमात्र स्वरूप आत्माका निर्णय करा है

सयथासैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नोरसघनएवैवंवाअरेऽ यमात्माऽनन्तरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघनएव बृ० अ० ६ ब्रा० ५

जैसे सेंधेका टुकडा अन्तरबाहरसे मैल रहित सम्पूर्ण रस घन है इसी प्रकार यह सर्वानुभवसिद्ध आत्मा अन्तर बाहरसे पदार्थान्तर मैल रहित संपूर्ण प्रज्ञान घन है इस कारण आत्मा चैतन्यरूप है मोक्षावस्थामें चैतन्यमात्ररूपसे स्थिति है यह औडुलोमि आचार्य मान्ते हैं.

एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधंबादरायणः शा० अ० ४ पा० ४ सू० ७

यद्यपि श्रुतिप्रमाणसे चैतन्यमात्र स्वरूपका रहे तौभी पूर्व श्रुतिप्रतिपाद्य ब्राह्म ऐश्वर्यका निषेध नहोसेभी विरोध नहीं है यह बादरायण ऋषि मान्ते हैं भाव यह है मुक्त पुरुषमें चैतन्यमात्र स्वरूपहै श्रुतिभी ईश्वर धर्मका कथन बद्ध पुरुषोंकी अपेक्षासे सत्यकाम सत्यसंकल्पादि करते हैं विद्वान मुक्त पुरुषका रूप चैतन्य मात्र है तौ अखण्ड चैतन्यसे अन्यत्र सत्यकाम सत्यसंकल्प जक्षन् क्रीडन् रममाणादि हैं नहीं इससे व्यासजीके मतमें दोनो वाक्योंका अविरोध है यह सिद्धान्त पक्ष है यह ज्ञानसे कैवल्यमुक्ति कथन करी अब सगुण उपासनासे ब्रह्मलोक प्राप्तिद्वारा मुक्ति निरूपण करते हैं

संकल्पादेवतुतच्छ्रुतेः शा० अ० ४ पा० ४ सू० ८

सयदा पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते

भावार्थ जो उपासक उपासनाके प्रभावसे ब्रह्म लोकमें प्राप्त भया है तिसे सर्व काम भोग्यवर्ग आनंदके कारण संकल्प मात्रसेही प्राप्त होजाते हैं सो उपासक जब पितृलोककी कामनावाला होता है तब संकल्पमात्रसेही इसके पितर समुत्थित होते हैं तिनसे पितृलोकमें प्राप्त हुआ पूजित होता है इसीप्रकार मातृलोककी इच्छासे वोहभी उपस्थित होता है (प्रश्न) उपासकमें सत्यसंकल्पताकी दृढता संभव नहीं क्योंकि वोह ईश्वराधीन है (उत्तर)

अतएवचानन्याधिपतिः शा० अ० ४ पा० ४ सू० ९

सत्यसंकल्प हौनेसेही सगुण ब्रह्म विद्वान उपासक (अनन्याधिपति) पराधीनता वर्जित है भाव यह है ईश्वरका धर्म सत्यसंकल्पही उपासकमें आविर्भावको प्राप्त हुआ है क्योंकि कार्यउपाधि जीवमेंभी सत्यकामादि तिरोभूतथे उपासनाबलसे प्रादुर्भाव होते हैं अब यह विचार कर्तव्य है ब्रह्मलोकमें प्राप्त उपासकका श्रुतिप्रमाणसे संकल्पका साधन मनतौ सिद्धही है शरीर वा बाह्य इन्द्रिय ऐश्वर्य्य प्राप्त विद्वानके होते हैं या नहीं इसमें मतभेद है तथाहि

अभावंबादरिराहह्येवम् शा० अ० ४ पा० ४ सू० १०

बादरि आचार्य्य ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वानके शरीर इन्द्रियोंका अभाव मान्ते हैं क्योंकि इसमें श्रुति प्रमाण है

मनसैतान्कामान्पश्यन्रमतेयएतेब्रह्मलोके छां० अ० ८

ब्रह्म लोकमें शरीरन्द्रियसे विना केवल मनसेही भोग साधन है यह ब्रह्म लोकमें जो विषय है तिनको मनसे अनुभव करता रमण करता है स्वामीजीने प्रकरण छोड़ मन सहित जीवका मोक्षमें हौना लिखा है और मोक्षका निर्धारण नहीं कराकि कौनसी मुक्तिमें जीव मन सहित है

भावंजैमिनिर्विकल्पामननात् शा० अ० ४ पा० ४ सू० ११

जैमिनि आचार्य ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप मुक्तिमें सहित इन्द्रियके शरीरका भाव मान्ते हैं (विकल्पामननात्) नानात्व भावका अभ्यास श्रुतिमें देखा जाता है यथाहि.

सएकधाभवतित्रिधाभवतिपञ्चधासप्तधानवधाचैवपुनश्चैकादशस्मृतःशतंचदशचैकश्चसहस्राणिचविंशतिः छां० अ० ७

सो मुक्त पुरुष एक प्रकारका तीन प्रकारका पांच सात नव पुनः ग्यारह सौ दश फिर एक फिर सहस्र वीस इत्यादि प्रकारके भावको प्राप्त होता है इसश्रुति प्रमाणसे मोक्षमें सहित इन्द्रिय शरीरका होना जैमिनि मान्ते हैं

द्वादशाहवदुभयविधंबादरायणोऽतः शा० अ० ४ पा० ४ सू० १२

इनदो प्रकारमें व्यासजी कहते हैं कि जबसशरीर कल्पना करता है तबतौसशरीर होता है और जब अशरीरता कल्पना करता है तब अशरीर होता है यह दौनो प्रकारही होते हैं क्योंकि ब्रह्मलोक प्राप्त विद्वान सत्यसंकल्प है इस्से संकल्पकी विचित्रतासे उभयविध भाव होसक्ता है (द्वादशाहवत्) जैसे दो प्रकारकी श्रुतिसे पूर्वमीमांसामें द्वादशाह यागको सत्रत्व तथा अहीनत्व यह दौनो प्रकार मान्ते हैं तैसेही मुक्त पुरुषको सशरीरत्व तथा अशरीरत्व दो प्रकारकी श्रुतिसे मान्ते हैं

तन्वभावेसंध्यवदुपपत्तेः शा० अ० ४ पा० ४ सू० १३

देहके अभावमें जैसे स्वप्नमें मातादिककी उपलब्धि होती है ऐसेही मोक्षमें मातादि विषयकी उपलब्धि सिद्ध है मनसे कल्पित विषयोंका स्वप्नमें भोग साक्षी भास्य है तब तौ सन्ध्यनाम स्वप्नवत् पित्रादि विषय तथा अपना शरीरभी स्वप्नतुल्य प्रतीत मात्र जानने ऐसेही भोगकी उपपत्ति होसक्ती है अन्यथा नहीं.

भावेजाग्रद्वत् शा० अ० ४ पा० ४ सू० १४

शरीरके भावमें मुक्तको जाग्रतके तुल्य भोग होता है.

प्रदीपवदावेशस्तथाहिदर्शयति शा० अ० ४ पा० ४ सू० १५

एक आत्मा अनन्त शरीरोंमें कैसे प्रवेश करैगा तहां व्यासजी कहते हैं–प्रदीपवत् प्रवेश होता है जैसे प्रदीप अनेक बत्तिओंमें प्रवेश होता है वैसे मुक्तभी विद्यायोग बलसे अनेक शरीरोंमें प्रविष्ट होजाता है क्योंकि उसका लिंगशरीर विद्याबलसे व्यापकहो जाता है एकधा भवति त्रिधाभवति इत्यादि पूर्वदिखा दिया है.

जगद्व्यापारवर्जंप्रकरणादसंनिहितत्वाच्च शा० अ० ४ पा० ४ सू० १७

जगतकी उत्पत्ति पालन संहारको छोड़कर मुक्त पुरुषका ऐश्वर्य है महाप्रलयके अनन्तर सृष्टिमें ईश्वरसे विना और किसी पुरुषका संनिधान नहीं होसक्ता

स० पृ० २३९ पं० ४ (प्रश्न) जीव मुक्तिको प्राप्त होकर पुनः जन्ममरण दुःखमें कभी आते हैं वा नहीं क्योंकि

नचपुनरावर्ततेनचपुनरावर्तते उपनिषद्वचनम्
अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिःशब्दात् शारीरक सू०
यद्गत्वाननिवर्तन्तेतद्धामपरमंमम

इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि मुक्ति वोही है जिस्से निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्यों कि वेदमें इस बातका निषेध किया है.

कस्यनूनंकतमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम
कोनोमह्याअदितयेपुनर्दात्पितरंचदृशेयंमातरंच १
अग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम
सनोमह्याअदितयेपुनर्दात् पितरंचदृशेयंमातरं च २
ऋ० मं० १ सू० २४ मं० १।२
इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः सांख्यसूत्र.

हमलोग किसका नाम पवित्र जाने कौन नाश रहित पदार्थोंके मध्यमें वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्तिका सुख भुगाकर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता तथा पिताका दर्शन कराता है (उत्तर) हम इस स्वप्रकाशरूप अनादि सदा मुक्त परमात्माका नाम पवित्र जाने वोह हमको मुक्तिमें आनंद भुगाकर पृथ्वीमें पुनः माता पिताके सम्बन्धमें जन्म देकर माता पिताका दर्शन कराता है वोही परमात्मा मुक्तिकी व्यवस्था करता सबका स्वामी है जैसे इस समय बंध मुक्त जीव है वैसेही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेद बंध मुक्तिका कभी नहीं होता किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती

समीक्षा—धन्य हैं स्वामीजीकी बुद्धिको कि उपनिषद् और शारीरकके वचनको वेद विरुद्ध कहते हैं यहां स्वामीजीने ब्राह्मण और शारीरकके कर्ताओंको तौ मूर्ख ठहराया और आप परम विद्वान बने कौन मान सक्ता है कि ब्राह्मण और शारीरकके कर्ताओंने तौ वेदका वास्तव अर्थ न समझा और अपने ग्रंथोंमें तद्विरुद्ध लिखा और दयानंदजीने अपने वेदभाष्यके वेदके यथार्थ आशयको समझे और उसे ठीक ठीक प्रगट किया स्वामीजीने विक्रयार्थ पृ० ८ पर व्याख्यान छपवाया था कि यह वेदभाष्य अपूर्व होता है इसमें कुछ कपोलकल्पित नहीं है शिक्षासे लेकर शाखान्तर पर्यन्त ब्रह्मासे लेकर जैमिनितकके ग्रंथ जो वेदके सत्यार्थ युक्त व्याख्यान हैं ऋषि मुनियोंके किये उनसनातन सत्यग्रंथोंके वचनोंके लेख प्रमाणसे सहित यह वेदभाष्य रचा जाता है.

अब पाठकगण विचारें कि ब्रह्मासे जैमिनितक जो वेदवचनोंके यथावत जाननेवालेथे उनकू सत्य वक्ता मानकर उनकी व्याख्या स्वामीजीने सत्य स्वीकारकी फिर यह उनका हठ दुराग्रह वा अज्ञान नहीं तौ और क्या है जो उपानिषदके वचन और शारीरकसूत्रका निरादर करते हैं यह सांख्य शास्त्रका सूत्र मुक्ति विषयका नहीं है यह तत्वके निर्णयमें है इसका अर्थ आगे करेंगे मुक्ति विषयमें वोही सांख्य कर्ता यों लिखते हैं.

नमुक्तस्यपुनर्बंधयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः

मुक्तको फिर बंधका योग नहीं है (अनावृत्ति) नहीं लौटना यह श्रुती हौनेसे यदि कपिलदेवजी मुक्तका जन्म मान्ते तौ ऐसा सूत्र क्यों बनाते क्या वेभी दयानंद जीके सदृश भ्रम जालमें पड़ेथे कि अपने ग्रंथोंमें परस्पर ऐसा विरुद्ध लेखकर बैठते जैसाकि सत्यार्थप्रकाश संन्यासप्रकरणमें लिखा है कि मुक्तिरूप अक्षय आनंदका देनेवाला संन्यासधर्म है कहिये यहां अक्षय शब्दका क्या अर्थ है जिन्हे अपने दो चार पंक्तियोंके लेखमेंभी परस्पर विरोधका ज्ञान नहीं वे ब्राह्मण और शारीरक शास्त्रके लेखको वेद विरुद्ध ठहरावें

वेद मंत्रोंकी व्यवस्था सुनिये प्रथमतौ मूल श्रुतिमें ऐसा कोई पद नहीं है जिससे प्रार्थना करनेवालेका मुक्तजीव हौना सिद्धहो दूसरे यह अर्थ स्वामीजीका सम्पूर्णतः प्रकरणविरुद्ध है ऐतरेय ब्राह्मणमें इस प्रकारसे इसका निर्णय है

सोऽसिंनिःशानरायायाथहशुनःशेपईक्षांचक्रेऽमानुषमिव वैमाविशसिष्यन्तिहंताहंदेवताउपधावामीतिसप्रजापतिमेव प्रथमंदेवतानामुपससारकस्यनूनंकतमस्यामृतानामित्येत यर्चातंप्रजापतिरुचावाग्निर्वैदेवानांनेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोग्निमुपससारआग्नेर्वयंप्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चातमग्नि रुवाचेत्यादिऐतरेयब्रा० सप्तमपंचिका कां० १६

इसका अर्थ यहहै अजीगर्त नाम एक राजर्षि असि खड्गकू तीक्षण करके (रायाय) शुनाशेफके पास आया तब शुनासेफ विचारनेलगा कि यह पशुकी नाई मुझे मारैगा मैं इस समय देवताओंका आराधन करूं यह विचार प्रथम हुए प्रजापतिकी शरण हुआ और कस्य नूनं इत्यादि मंत्रका उच्चारण किया तब प्रजापतिने शुनःशेपको बताया अग्निही देवताओंके मध्यमें समीप है इसकारण अग्निको स्मरण कर तब वोह शुनःशेप आग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्यादि मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करने

लगा तब अग्नि बोले सविता देवताकी आराधना करो यह राजसूय यज्ञके प्रकरण-में ऐतरेय ब्राह्मणमें वर्णित है मुक्तका संसार बंधनमें आनेका कोई प्रसंग नहीं है अब मंत्रार्थ दिखाते हैं

कस्यनामप्रजापतेःअमृतानांदेवानांमध्येकतमस्यश्रेष्ठत्वेननिर्धारितस्यदेवस्यचारुउत्तमंनाममनामहे अभ्यस्यामः मह्यैपृथ्वीरूपायैआदितयेमातृरूपायपुनर्दात्कःप्रजापतिः तदापितरंचमातरंचदृश्येयंपश्यामि १

भा० सब देवताओंके मध्यमें अच्छे प्रकार निर्णय किये हुए प्रजापतिके श्रेष्ठ नामका उच्चारण करताहूं जो प्रजापति पृथ्वीरूप अत्यन्त क्षमा गुण सम्पन्न (अदितये) माताके अर्थ मुझे देगा तब में पिता माताको देखूंगा

शुनःशेपका आशय यह है कि पुनर्जन्ममें विलक्षण गुणयुक्त माता पिताको प्राप्तहूं जो इन मातापिताकी नाई लोभी नहों.

अब दूसरा अग्निकी प्रार्थनामें मंत्र है तिस्से निरूपण करते हैं

पद । अग्नेः वयं प्रथमस्य अमृतानाम् मनामहे चारुदेवस्य नाम सः नः मह्यै अदितये पुनः दात् पितरम् च दृशेयं मातरम् च॥ ऋ० मण्ड० १ सू० २४ मं० २

भावार्थः-देवताओंके मध्यमें प्रथम मुखरूप अग्निके श्रेष्ठ नामका हम अभ्यास करते हैं सो अग्नि देवता हमें क्षमा गुणयुक्त माताके अर्थ देगा तब में माता पिताकू देखूंगा.

औरभी अगिले मंत्रमें शुनःशेपका संवाद है

शुनःशेपोह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यंद्रुपदेषुबद्धः अवैनंराजावरुणःससृज्याद्विद्वाँअदब्धोविमुमोक्तुपाशान् ऋ० मं० १ सू० २४ मं० १३

शुनःशेप तीनस्थानोंमें बंधाहुवा अदितिपुत्र वरुणको स्मरण करनेलगा और शुनःशेप (द्रुपद)विषमस्थानमें बंधाथा सो राजा वरुण इसशुनःशेपको प्राप्त हो और सो वरुण विद्वान् (अदब्ध) सर्व सामर्थ्य युक्त विपाशोंको मुक्तकरो ऐसे सवितादेवता के कहनेसे वरुणकी प्रार्थना करता हुवा.

और वरुण प्रसन्न होकर शुनःशेपको मुक्त किया ऐसा इस्से अगिले मंत्रमें स्पष्ट

लेखहै इसमें मुक्तजीवोंका बंधनमें आनानहीं पायाजाता किन्तु बद्ध मुक्तिचाहतेहै

प्रथम तौ स्वामीजी भाष्यभूमिकामें लिखचुकेहैं कि मुक्तिसे नहीं लौटते अब कहतेहें कि संसारसागरमें आपडतेहैं कहिये परस्परविरोधहै वा नहीं शोकहै स्वामी जीकी बुद्धिपर और उनके किये अर्थोंपर कि संसारके तुच्छ जीवभी जान्ते हैं कि परमेश्वर उपास्य है स्मरणीय है और स्वामीजीके विचानुसार मुक्त जीवोंकोभी यह ज्ञान नहीं कि कौनसा देव उपास्य है और यहभी विचारना चाहिये कि संपूर्ण सुखोंकी सीमा मुक्ति है जिसे परम गति कहते हैं उससे वढकर कोई आनंद नहीं और संसार बंधन सदा दुःखकी खान है फिर मुक्तजीवोंपर क्या विपत्ति पड़ी और कैसे अज्ञानी होगये जो सर्वानंद सर्वोत्तम पदसे दुःखरूप संसारमें आनेकी इच्छा करने लगे सवही सुख प्राप्ति दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करते हैं कोई महामूर्खभी सुखसे दुख भोगनेकी इच्छा नहीं करता क्या कोई धनीपुरुष निर्धन होनेकी इच्छा करता है या राजा होकर नौकर वना चाहता है या हाथीपर चढकर गधेपर चढना चाहता है कदापि नहीं क्या मुक्त व्यक्ति हमारीसीभी बुद्धि नहीं रखते जो परमपद मुक्तिसे दुखसागरमें आनेके लिये प्रार्थना करते हैं यहभी ध्यान रहै कि सवलोग अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिये यत्न किया करते हैं प्राप्तवस्तुकी प्राप्तिके लिये कोई यत्न नहीं करता मुक्त जीवोंको कोई पदार्थ अलभ्य नहीं संकल्पमात्रसेही सव उत्पन्न हो जाता है जैसा पूर्व लिख आये हैं (एकधा भवति आदि) जव कि मुक्तजीव संकल्प मात्रहीसे अनन्त शरीर धारण करसक्ता है तौ उसकी बुद्धिपर क्या अज्ञान छाया है कि जो ऐसे भ्रमजालमें पडें (कि हम देवतोंके मध्यमें जन्में संसारमें जाय) पहले तौ स्वामीजीने यह लिखा कि ब्रह्ममें जीव अव्याहत गति अर्थात् वे रुकावटविज्ञान आनंदपूर्वक स्वतंत्र विचरता है फिर पृ० २३८ पं० २४ में लिखा है कि जीव जो संकल्प करते हैं वोह२ लोक और वोह वोह काम उसको प्राप्त होता है और पृ० २४९ पं० २५ में

सत्यंज्ञानमनंतंब्रह्मयोवेदनिहितंगुहायांपरमेव्योमन् सोश्नुतेसर्वान्कामान्ब्रह्मणासहविपश्चितेति तैत्तिरीय०

ब्रह्मके साथ सब कामोंको प्राप्त होता है अर्थात् जिस २ आनंदकी इच्छा करता है वोह वोह उसको प्राप्त होता है पुनः पृ० २५० पं० ५ मुक्तजीव आनंद व्यापक ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता शुद्ध ज्ञानसे सब सृष्टिको देखता हुआ सब लोक लोकान्तरोंमें घूमता है सब पदार्थोंको देखता है मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित और असन्निहित पदार्थोंका ज्ञान(भान)यथावत् होता है इत्यादि

जब कि मुक्त जीवको कहीं कुछ रुकावट नहीं और वोह आनंद पूर्वक स्वतंत्र विचरता है दुःखोंसे छूट आनंदमें रहता जो जो संकल्प करता वोह वोह लोक वोह वोह काम उसे प्राप्त होता है सब लोकान्तरोंमें घूमता संसारका सुखदुःख स्पर्श नहीं होता सदा आनंदमें रहता ब्रह्मके साथ सब कामोंको प्राप्त होता निर्मल हौनेसे पूर्ण ज्ञानी सन्निहित असंनिहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है तौ किसप्रकार हो सक्ता है कि मुक्त जीव ऐसी प्रार्थना करैं कि हम किस देवताका नाम पवित्र जाने जो हम मुक्त जीवोंको फिर पृथ्वीमें जन्म दे जिस्से हम माता पिताको फिर देखैं ऐसी प्रार्थना मुक्त जीव कभी नहीं करसक्ते क्यों कि पूर्णज्ञानी और अवाप्त समस्त काम है किन्तु दुःखी जीव जो संकटमें पड़े होते हैं वे ऐसी प्रार्थना करसक्ते हैं क्यों कि वे पीड़ित हैं अब यहभी विचारना है कि जन्ममरणका कारण क्या है इस विषयमें सब विद्वानोंका यही मत है कि जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंसे जन्म होता है मुक्त जीवके शुभाशुभ कर्मोंका सर्वथा नाश हो जाता है यथाहि

भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः
क्षीयन्तेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टे परावरे १ मुण्ड०
यदा यःपश्यतेरुक्मवर्णकर्तारमीशंपुरुषंब्रह्मयोनिं
तदाविद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरंजनःपरमंसाम्यमुपैति २
तरतिशोकंतरतिपाप्मानंगुहाग्रंथिभ्योविमुक्तोऽमृतोभवति मुण्ड० ३
एषआत्मापहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोऽ
पिपासःसत्यकामःसत्यसंकल्पः ४
नजरानमृत्युर्नशोकोनसुकृतंनदुष्कृतंसर्वेपाप्मानोऽतोनिवर्तन्तेछां०
अपहतपाप्माऽभयंरूपम् बृहदारण्यके ५
ज्ञात्वादेवंमुच्यतेसर्वपाशैः ६
ज्ञात्वादेवंसर्वपाशापहानिः श्वेताश्वतरे ७

अर्थ उस परमेश्वरका पूर्ण ज्ञान होनेसे ज्ञानीके हृदयकी गांठ खुल जाती है सारे संशय निवृत्त होजाते हैं और पापपुण्य सारे कर्म नष्ट होजाते हैं १ जब यह प्रकाश स्वरूप जगत्कर्ता वेदके कारण ईश्वरको दिखताहै तब पुण्य पापको छोडकर निरंजन होता हुवा ईश्वरकी परम समताको प्राप्त होता है अर्थात् तद्रूपहोता है २ शोक और पापरूपी नदीको तरकर हृदयकी गांठोंसे विमुक्त होकर अमृत होता है ३ यह मुक्त

पुरुष पापशून्य होता हुआ जरा मृत्यु शोक भोजन पान इच्छासे निवृत्त होता है सत्यकाम सत्यसंकल्पवाला होता है ४ मुक्त जरा मृत्यु शोक सुकृत दुष्कृत रहित होता है उसके सारे पाप नष्ट होजाते हैं । मुक्त होकर पापशून्य भयरहित होता है ५ ज्ञानी परमात्माको जानकर पाप पुण्यरूप सब बंधनोंसे छुटता है६ परमात्माको जानकर ज्ञानीके पुण्य पापरूप सारे बंधनोंका नाश होता हैं ७ इससे स्पष्ट है कि मुक्ति हौनेपर पापपुण्य शुभाशुभ कर्मोंका नाश होजाता है जबकि उनके कर्मही न रहे तौ उनका पुनर्जन्म किस प्रकार होसक्ता है क्योंकि जन्म मरणका कारण शुभाशुभ कर्मही है मुक्त होकर फिर जन्म मरणोंसे छुटजाता है यह वेद और उपनिषदोंसे प्रगट है

वेदाहमेतंपुरुषंमहान्तमादित्यवर्णंतमसःपरस्तात्
तमेवविदित्वातिमृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेऽयनाययजु० १
यदासर्वेप्रमुच्यन्तेकामायेऽस्यहृदिश्रिताः
अथमर्तोऽमृतोभवत्यत्रब्रह्मसमश्नुते ॥ २ ॥
यएतद्विदुरमृतास्तेभवंति बृह० ॥३॥
नपश्योमृत्युंपश्यतिनरोगंनोतदुःखतांसर्वंहपश्यः पश्यतिसर्व
माप्नोतिसर्वशः छां०
धीराःप्रेत्यास्माल्लोकादमृताभवंतितवल्कारे ॥४॥
यएतद्विदुरमृतास्तेभवंति ॥ ५ ॥
यज्ज्ञात्वामुच्यतेजंतुरमृतत्वंचगच्छति ॥ ६ ॥
यदासर्वेप्रभिद्यन्तेहृदयस्येहग्रंथयः
अथमर्त्योऽमृतोभवत्येतावदनुशासनम्॥ कठ० ॥७॥
क्षीणैःक्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणि ॥ ८॥
तंज्ञात्वाऽमृताभवंति ॥ ९ ॥

अर्थ मैं इस महान् पुरुषको जान्ताहूं जो प्रकाश स्वरूप अंधकारसे परे है उसीको जानकर यह प्राणी मृत्युको अतिक्रमण करता है अर्थात् जन्म मरणसे छूटता है परमपद प्राप्तिके निमित और कोई मार्ग नहीं है ॥१ ॥ इस मनुष्यके हृदयमें जितनी

कामनाहै वे सब छुट जाती हैं तब वोह अमृत होता है॥२॥ जो कोई इस (परमात्मा) को जान्ते हैं वे अमृत होते हैं ॥२॥ ज्ञानी मृत्यु और रोगको नहीं देखता इसीसे दुःखको नहीं देखता ज्ञानी सबको देखता है और सब प्रकारसे सबको प्राप्त होता है ॥३॥ज्ञानी इस शरीर त्यागनेके अनंतर अमृत होते हैं ॥४॥ जो कोई इस परमात्माको जान्ते हैं वे अमृत होते हैं॥५॥जिसको जानकर मनुष्य संसार बंधनसे छूटता है और अमृतत्वको प्राप्त होता है ॥६॥ इस मनुष्यके हृदयमें जितनी कामना हैं वे सब छुट जाती हैं तब वोह अमृत होता है तब वोह अमर होजाता है इतनाही अनुशासन है ॥७॥ अविद्या स्मितादि पंचक्लेशोंके नाश हौनेसे मनुष्य जन्म मरणरहित होजाता है ॥८॥ परमात्माको जानकर अमृत होते हैं ॥ ९ ॥

इन वचनोंसे यह बात सम्यक् सिद्ध होती है कि मुक्तजीवोंका जन्ममरण नही है क्यों कि वोह तो उसमें प्रवेश कर जाते हैं आश्चर्यकी बात है कि सच्छास्त्रोंमें तो स्पष्ट लिखा है कि मुक्त जीवोंका पुनर्जन्म मरण नहीं है दयानंदजी उनका पुनर्जन्म सिद्ध करते हैं शास्त्रोंमें ऐसे वचन हैं कि मुक्तिसे फिर नहीं लौटते

एतस्मान्नपुनरावर्तते ॥ १ ॥ प्रश्नोपनिषदि
ब्रह्मलोकमभिसंपद्यतेनचपुनरावर्ततेनचपुनरावर्तते॥२॥छान्दो०
तेषुब्रह्मलोकेषुपरापरावतोवसंतितेषांनपुनरावृत्तिः ॥३॥ बृहदा०
नमुक्तस्यपुनर्बंधयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः॥४॥सांख्य०अ०६सू०१७
तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः न्याय०॥५॥
अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥६॥

भाषा ॥ यहांसे फिर नहीं लौटते ॥१॥ ब्रह्मको प्राप्त होकर इस जन्म मरणरूपी चक्रमें नहीं लौटते नहीं लौटते ॥२॥ ब्रह्म लोकको प्राप्त होकर फिर नहीं लौटते फिर नहीं लौटते ॥३॥ मुक्तको फिर बंधका योग नहीं अनावृत्तिः अर्थात् नहीं लौटना यह श्रुति हौनेसे ॥४॥ दुःख जन्म प्रभृति दोष मिथ्याज्ञानकी अत्यन्त जो निवृत्ति उसको मोक्ष कहते हैं॥५॥ मुक्तका फिर जन्म नहीं होता यह वेदसे सिद्धान्त है॥६॥इसके उपरान्त व्यासजीने और कुछ नहीं लिखा ॥

यदि कोई कुशाग्रबुद्धिसे न आवृत्तिः नावृत्ति अ नावृत्तिः अनावृत्ति ऐसे व्युत्पत्ति करैं तो उनको यह सोचना चाहिये कि उपनिषदोंमें जो दक्षिणायन उत्तरायण दो

मार्ग लिखे हैं जिस्मे कर्मकाण्डी दक्षिणायन मार्गसे चन्द्रलोक होते हुए फिर लौ-
टते हैं और ज्ञानी सूर्य लोक होकर फिर नहीं लौटते (तद्येहवैतदिष्टापूर्तेकृत
मित्युपास्तेते चान्द्रमसमेव लोकमभिजायन्ते त एवपुनरावर्तन्ते) यही पितृयाण
है इष्टापूर्ति आदि कर्मकाण्डी चन्द्रलोक जाकर फिर लौटते हैं और ज्ञानी सूर्यलोक
मार्गसे जाते हैं (एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते) जहांसे फिर नहीं लौटते तौ कहिये वे
इसका अब क्या अर्थ करेंगे यदि दौनौका अर्थ लौटनाही करैंगे तौ इन दो मार्गोंमें
अन्तरही क्या रहा इस कारण यह उनका कथन ठीक नहीं और जीव कभी निश्शेष
नहीं होते क्योंकि वे अपार हैं और यह प्रश्न आत्माके प्रकरणसे विरुद्ध है क्यों
कि सब कुछ आत्माही है॥

स० पृ० २३८ पं० २७ प्रश्न

तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापायेतदन्तरायादपवर्गः १ न्या० सू०

जो दुःखका अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्यों कि जब मिथ्या
ज्ञान लोभादि दोष दुष्ट व्यसनोंमें प्रवृत्त जन्म और दुःखका उतरके छूटनेसे पूर्व २
केनिवृत्त होनेसे मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है (उत्तर) यह बात नहीं
कि अत्यन्त शब्द अत्यंताभावहीका नाम है जैसे (अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चा-
स्य वर्तते) बहुत दुख और बहुत सुख इस मनुष्यको है इस्से यही विदित होता है
कि इसको बहुत सुख वा दुख है इसीप्रकार यहांभी अत्यन्त शब्दका अर्थ जान्ना
चाहिये

समीक्षा इस सूत्रमें अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभावहीका वाचक है स्वामीजीको अप-
ना लेखभी स्मरण नहीं रहा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० १८४ में इन सूत्रोंका अर्थ
लिखा है (दुःखजन्म) जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती तब जी-
वके सब दोष नष्ट हो जाते हैं उसके पीछे (प्रवृत्ति) अर्थात् अधर्मका अन्यास वि-
षयासक्ति आदिकी वासना दूर हो जाती है उसके नाश होनेसे जन्म अर्थात् फिर
जन्म नहीं होता दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानंद मोक्षमें सब दिनके लिये पर-
मात्माके साथ आनंदही आनंद भोगनेको बाकी रह जाता है इसीका नाम मोक्ष है १

(तदत्यन्त) फिर उस दुःखके अत्यन्त अभाव और परमात्माके नित्य भोग क-

रनेसे जो सब दिनके लिये परमानंद प्राप्त होता है इसीका नाम मोक्ष है और वेदान्त ध्वनि निवारणमें इस सूत्रका यही अर्थ स्वामीजीने किया है कि विविध प्रकारकी पीड़ा उसका नाम दुःख है उसकी अत्यन्त निवृत्ति होनेसे जीवको अपवर्ग जो मोक्ष ईश्वरके आधारमें अत्यानंद सो सदांके लिये प्राप्त होता है यह स्वामीजीके ही लेखसे प्रगट है कि मुक्तिसे फिर नहीं लौटता

स० पृ० २४० पं० ९

ते ब्रह्मलोकेहपरान्तकालेपरामृतात्परिमुच्यन्तिसर्वे

यह मुण्डक उपनिषद्का वचन है वे मुक्तजीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनंदको तबतक भोगके महाकल्पके पश्चात् मुक्ति सुखको छोड़के संसारमें आते हैं

समीक्षा दयानंदजी जब अपनी इच्छानुसार कोई बात प्रचार करना चाहते हैं तौ कोई श्रुति लिखकर उसके अर्थमें अपना प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं जिससे अज्ञानी लोग जानै कि यह बात सत्य है परन्तु वोह लेख जब बुद्धिमानोंके दृष्टिगोचर होता है तौ प्रगट होता है कि श्रुतिमें स्वामीजीके अभिप्रायकी गन्धभी नहीं जान्ते स्वामीजीने यह अर्थ कौनसे पदोंसे किया है यद्यपि स्वामीजीने यह श्रुति बदली है तौभी इसका यह अर्थ नहीं बनता जो वे करते हैं इसका यह अर्थ होता है कि

वे सब विद्वान् संन्यासी ब्रह्म लोकमें (ह) निश्चय (परान्तकाले) ब्राह्म महाप्रलयमें (परामृतात्) परामृत ब्रह्मज्ञान जन्म मुक्तिकू प्राप्त होकर (परिमुच्यन्ति) विदेह कैवल्यको प्राप्त होते हैं जैसे (प्रासादात्प्रेक्षते) इसका अर्थ यह है कि प्रासादपर आरोह करके देखता है ऐसेही " परामृतात्परिमुच्यन्ति " का अर्थ पूर्वोक्त है इसमें लौटना तौ किसीभी पदसे नहीं विदित होता.

और अब यहभी विचारना है कि यहां जो ब्रह्माका महाकल्प माना है तौ वोह ब्रह्मादेवता है मनुष्य है वा ईश्वरका विशेष विग्रह है ईश्वरका विग्रह माननेसे तौ स्वामीजीका मतभंग होता है और मनुकी सृष्टिसे बाह्य होनेसे मनुष्यभी नहीं है क्यों कि ब्रह्माजीके मनु पोते हैं तौ देवता है जिनकी महाकल्पतककी आयु है तौ अब यह बात यहां खंडन हो गई कि विद्वानोंहीका नाम देवता है अब श्रुति लिखते हैं

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयःशुद्धसत्वाः
तेब्रह्मलोकेषुपरान्तकालेपरामृताःपरिमुच्यन्तिसर्वे १

गताःकलाःपंचदशप्रतिष्ठादेवाश्चसर्वेप्रतिदेवतासु
कर्माणिविज्ञानमयश्चआत्मापरेऽव्ययेसर्वएकीभवन्ति २
यथानद्यःस्पन्दमानाःसमुद्रेऽस्तंगच्छन्तिनामरूपेविहाय
तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम् ३

भावार्थः–जिन्होंने विज्ञानसे वेदान्तके अर्थोंका निश्चय किया है और वे यत्नशील सर्वस्व त्यागरूप संन्यास योगसे शुद्ध चित्तवाले हो गये हैं ते सम्पूर्ण वेदित वेद्य ब्रह्म लोकमें यावज्जीव वर्तमान परान्तकाल अर्थात् विद्वद्देह पातकालमें जीवन्मुक्ति दशाहीमें (परामृता) परम अमृत मोक्षको प्राप्त हुए मुक्तहो विदेह कैवल्यको प्राप्त होते हैं यद्यपि ब्रह्मस्वरूप लोक एक है तथापि महात्माओंको स्थितिकी अपेक्षासे अनेकवत्प्रतीत होता है इस कारण ब्रह्म लोकेषु यह बहुवचनका प्रयोग करा है१ जो कि महात्मा विद्वानोंकी पंचदशकला हैं वे अपने २ कारणमें लीन हो जाती हैं वे कला यह हैं प्राण श्रद्धा आकाश वायु तेज जल पृथ्वी इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मंत्र कर्म लोक यह पंचदश कला हैं और धर्माधर्मरूप कर्म तथा विज्ञानोपाधिनिवृत्ति पूर्वक घटोपाधि निवृत्तिपूर्वक घटाकाशवत् विज्ञानोपाधिक जीवपर अव्ययमें एकीभावको प्राप्त होते हैं २ अब दृष्टान्त कहते हैं जैसे नदी सम्पूर्ण स्पन्दाय मान समुद्रमें लीन होजाती है तैसे मुक्तभी नाम रूपको त्यागकर पर जो सूक्ष्म समष्टिहिरण्यगर्भ तिस्से भी पर परमात्माको प्राप्त होता है क्योंकि जो परब्रह्मको जान्ता है वोह परब्रह्महो होता है ३ इस्से भी मुक्तिसे लौटना सिद्ध नहीं होता.

पृ० २४० पं० २१ जो मुक्तिमेंसे कोई भी लौटकर जीव इस संसारमें न आवै तौ संसारका उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष होजाने चाहिये

समीक्षा यह वही आक्षेपहै जो दयानंदजीपर किसी यवनने कियाथा और उसके संमुख निरुत्तर होकर मुक्तिसे पुनरावृत्ति मान बैठे और अर्थ उलटेकर दिये जीवोंके संसारमे न आनेसे उच्छेद कभी नहीं होसक्ता क्यौंकि जीव असंख्य हैं पहले स्वामीजी भी जीवौंको अनन्त मान्तेथे जबसे मुक्तिसे लौटना माना तबसे सान्त कहने लगे उच्छेद इस प्रकार नहीं होसक्ता जैसे कि अज्ञात कालके स्रोत नदियोंके चले आते और समुद्रमें मिलजाते हैं परन्तु उन स्रोतोंका उच्छेद नहीं होता इसी प्रकार जीव भी निश्शेष नहीं होसक्ते और वास्तविक विचारमें तौ जगत् मिथ्याही है इसमें सारही क्या है ज्ञानीकी दृष्टिमें संसारही नहीं है

पृ० २४० पं० २७ मुक्तिके स्थानमें बहुतसा भीड़ भड़क्का होजायगा क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ नहीं होगा बढतीका पारावार न रहैगा.

समीक्षा दयानंदजीके विचारमें मुक्तिका स्थान कितना लंबा चौड़ा है जो आपको जीवोंकी पुनरावृत्तिन हौनेसे वहां भीड़ भड़क्का होजानेका भय हुआ सत्यार्थप्रकाशमें आपने लिखा है ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसीमें मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं जबकि मुक्तजीव ब्रह्ममें रहते हैं और ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है तौ मुक्तिके स्थानमें भीड़भड़क्का हौनेकी शंका बुद्धिविरुद्ध है आपतौ गोलोकादिपर आक्षेप करतेथे पर आपनेभी यहां कोई मुक्तिका स्थान माना है जहां कोई चौंतरासा होगा.

स० पृ० २४१ पं० १ कोई मनुष्य मीठा मधुरही खाता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंके भोगनेवालेको होता है

समीक्षा इस दृष्टान्तके लिखनेसे स्वामीजीका अभिप्राय यह है कि कोई मनुष्य एक दशामें चाहैं वोह कैसीही सुखरूपहो सर्वदा रहना पसन्त नहीं करता कोई मनुष्य यह नहीं जान्ता कि सम्पूर्ण रसोंमें मधुर रसही सर्वोत्तम है किन्तु षड्रसमें उत्तम और निकृष्ट दौनो प्रकारके पदार्थ होते हैं जो षड्रस युक्त नानाप्रकारके उत्तम पदार्थोंकाभोजन करनेवाला होता है उसकी रुचि निकृष्ट पदार्थोंके भोगनेकी कभी नहीं होती अर्थात् पेड़ा कलाकंदका खानेवाला शीरा, तंदुल और गोधूमादिका खानेवाला यवादिकके खानेकी कभी इच्छा नहीं करता इसीप्रकार जो रेशमके अच्छे वस्त्र बहु मूल्य पहरता है वोह कभी फटे पुराने धोतर गजीके पहरनेकी इच्छा नहीं करता जिसको राज्याधिकार प्राप्त है वोह कभी नौकर बन्नेकी इच्छा नहीं करता जो पालकीमें चलता है वोह कहार बनकर उठाना नहीं चाहता जो आरोग्य है वोह रोगकी इच्छा नहीं करता प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित हौना नहीं चाहता मुक्त बंदीगृह जोनकी इच्छा नहीं करता कौन विद्वान मूर्ख बन्नेकी इच्छा करता है कोई मनुष्य पशुपक्षी कीट पतंगादिकी योनिको पसंत करता है कोई नहीं इसीप्रकार कोई मुक्तिके आनंदसे दुखमें आनेकी इच्छा नहीं करता इन दृष्टान्तोंसे यही विदित होता है कि उत्तम पद छोड़कर कोई बुद्धिमान निकृष्ट पद ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता ऐसी बातको दयानंदजीकी बुद्धि जो उनके शरीरसेभी अति स्थूल है स्वीकार करै तौ आश्चर्य नहीं मुक्त पुरुष जिनकों बड़े परिश्रमसे सर्वोत्तम पद अर्थात् आत्माकी प्राप्ति होती है जिस्से सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति प्राप्त हुई है क्या वोह संसाररूप बंधन जन्म मरणादि अनेक दुःखोंके स्थानको प्रसन्न करैंगे कदापि नहीं करैंगे

स० पृ० २४१ पं० ४ जो जितनाभार उठासकै उतना उसपर धरना बुद्धिमानों- का काम है जैसे एक मनभर उठानेवालेके शिरपर दशमन धरनेसे भार धरनेवाले- की निन्दा होती वैसे अल्प सामर्थ्यवाले जीवपर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं

समीक्षा स्वामीजीकी बुद्धिकी कोई कहांतक बड़ाई करै क्या सुखका भी कोई बोझ है जो जीवपरधरा जायगा क्या सुखकी गठरी है या बोरी है यागाड़ी भरीहुई है जो ईश्वर जीवके ऊपर धर देगा बस यह बुद्धिमानी स्वामीजीकी बुद्धि मानो हीकि ऊपर छोडे देते हैं

स०.पृ० २४१ पं० ११ मुक्तिमें जाना वहांसे आनाही अच्छा है क्या थोडेसे का रागारसे जन्म कारागार दंडवाले प्राणी अथवा फांसीको कोई अच्छा मान्ता है.

- समीक्षा सुनिये पाठक गण जो कोई मुक्तिको कारागार और फांसीके समान कहता है उससे अधिक नास्तिक कौन है स्वामीजीके मतमें मुक्ति कालापानी अथवा फांसी है इससे प्रगट है कि स्वामीजीका अभिप्राय गुप्त रीतीसे वैदिक धर्म नष्ट क- रनेका था और लोगोंके धर्म भ्रष्ट करनेकी इच्छाथी जैसाकि पहले सत्यार्थ प्रकाश- के ४५ पृष्ठमें सायंप्रातः मांससे हवन करना लिखा है नियोगादि व्यवस्था लिखी है

स० पृ० २४४ पं० ३० (प्र०) पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वरके लोकमें निवास (सायुज्य) छोटे भाईके सदृश ईश्वरके साथ रहना (सारूप्य) जैसे उपा- सनीय देवकी आकृति है वैसा बन जाना (सामीप्य) सेवकके समान ईश्वरके स- मीप रहना (सायुज्य) ईश्वरसे संयुक्त होजाना यह चार प्रकारकी मुक्ति मान्ते हैं वेदान्ति लोग ब्रह्ममें लय होनेको मोक्ष समझते हैं (उत्तर) पृ० २४५ पं० ११ पौराणिक लोगोंसे पूछना चाहिये जैसी तुह्मारी मुक्ति है वैसी कीट पतंगादिकों कोभी स्वतः सिद्ध है क्योंकि यह सब जितने लोक हैं वे सब ईश्वरके है इन्हीमें सब जीव रहते हैं इसलिये सालोक्य मुक्ति अनायास प्राप्त है (सामीप्य) ईश्वर सर्वत्र प्राप्त होनेसे सब उसके समीप है इसलिये सामीप्य मुक्तिभी स्वतः सिद्ध है (सा- युज्य) । जीव ईश्वरसे सब प्रकार छोटा और चेतन होनेसे स्वतः बन्धुवत् है सब जीव परमात्मामें व्याप्य होनेसे संयुक्त हैं इस्से सायुज्य मुक्तिभी स्वतः सिद्ध है -

समीक्षा स्वामीजीको यह खबर नहीं कि यह आक्षेप हमपरभी आता है जब आपका यह लेख है कि जीव मुक्तिमें ईश्वरमें रहकर विचरते हैं तो ईश्वर सर्वत्र व्यापक होनेसे सबकी मुक्ति स्वतःही सिद्ध है फिर क्यों इतने झगड़े डाले परन्तु इसमें यह जानियेकि उपरोक्त चार प्रकारसे जीवोंकी जो मुक्ति कही है उनमें किसी प्रकारका दुख नहीं है वे दुखादिसे पृथक् रहते हैं और सबको इसी तरहसे

मानै तौ सबको तौ दुःख रहताहै मुक्तिजीवको दुख नहीं होता यही मुक्तिमें विशेषता है चारोंप्रकारके मुक्तजीवोंकी पुनःआवृत्ति नहीं होती और ज्ञानीलोगोंकू तौ

मोक्षस्यनहिनिवासोस्तिग्रामान्तरमेववा
अज्ञानहृदयग्रंथिमुक्तोमोक्षइतिस्मृतः

मोक्षको कोई स्थान नहीं है जब अज्ञानकी ग्रंथी हृदयकी टूटगई तभी मोक्ष है और सांख्यशास्त्र कर्ताके सूत्रकाभी आशयभी यह नहीं है अर्थ यह है

इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः सां० अ० १ सू० १५८

यदि सर्वकालमें बंधका अत्यन्त नाश नहीं होता वर्तमानकालवत् तौ यह अनुमान फलित हुआ (सर्वकालः मोक्षशून्यःकालत्वात् वर्तमानकालवत्) सो यह वार्ता मोक्षवादीको अनिष्ट है क्योंकि जबतक जो मोक्षाभाव मान्ता है तबतक शास्त्रका फलही क्या है मुक्ति तौ शास्त्रोंमें प्रतिपादनहीं करी है क्योंकि कपिल देवजीने वामदेवकी मुक्ति सां० अ० १ सू० १५७ में मानी है तौ इस सूत्रसे मुक्ति न हौनी चाहिये सो कपिलदेवजीका यह तात्पर्य्य नहीं कि मुक्तिमें बंध रहता है यह अनुमान सूत्र लिखा है सिद्धान्त नहीं क्यों कि वोह पहलेही लिख चुके हैं

अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः सां०अ०१सू०१

तीन प्रकारके दुःखकी जो अत्यन्त निवृत्ति नामस्थूल सूक्ष्मरूपसे सर्वथा निवृत्ति सो अत्यन्त पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष है सो देखना चाहिये कौनसे दुःखकी निवृत्ति हौनी चाहिये वर्तमान तौ थोड़ी देर पीछे अपने आपही निवृत्त हो जायगा अतीत कालका निवृत्त हो गया है परिशेषसे भावीदुःखकी निवृत्तिही मोक्ष है सो इससेभी मुक्तिसे लौटना सिद्ध नहीं होता

स० पृ० २५४ पं. जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा क्षत्रिय वर्णस्थ राजाओंके पुरोहित वादविवाद करनेवाले प्राड्विवाक वकील बैरिष्टर युद्ध विभागके अध्यक्षके जन्म पावते हैं

समीक्षा खूब स्वामीजीने वकीलोंकी तारीफ करी है अंगरेजी विद्या अंग्रेजी शब्द शास्त्रोंमें मिलाये विना स्वामीजीकी तृप्ति नहीं हुई मनुजीके ग्रंथमेंभी बैरिष्टर घुसपड़े जो विलायत पास करनेसे होते हैं

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतनवमसमुल्लासस्यखंडनं समाप्तम् १२ सि० १८९०

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

भक्ष्याभक्ष्यप्रकरणम्।

श्रीगणेशायनमः

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत दशमसमुल्लासस्य खंडनं आरभ्यते।

इस समुल्लासमें दयानंदजीने भक्ष्याभक्ष्य आचार अनाचारका वर्णन किया है परन्तु कुछ विशेष प्रमाण न देकर केवल बुद्धिकेही घोड़े दौडाये हैं इस कारण उनका खंडन करना अवश्य है और मनुजीने जो कुछ शास्त्रमें लिखा है सो प्रमाणही है वे लिखते हैं

श्रुतिःस्मृतिःसदाचारःस्वस्यचप्रियमात्मनः
एतच्चतुर्विधंप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यलक्षणम्

वेद स्मृति और सत्पुरुषोंका आचरण और जो अपनी आत्माका प्रिय अर्थात् स्वर्गलोकका ले जानेवाला हो यही साक्षात् धर्मके लक्षण हैं इस कारण आचारादिकी व्यवस्था मनुजीनेकी है वोह वहां देखलैनी परन्तु अब सत्यार्थप्रकाश लिख दिखलाते हैं

स. पृ. २५८ पं. १३ जो अति उष्ण देश होतौ सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिरमें बाल रहनेसे उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढीमूछ रखनेसे भोजन पान अच्छेप्रकार नहीं होता और उच्छिष्टभी वालोंमें रह जाता है

समीक्षा वाह स्वामीजी अब आपको कोई वेदनिन्दक कहै तौ उसका कहा अनुचित नहीं होगा अथवा आप संन्यासी होकर शिखा डाढी मूंछ नहीं रखते वैसेही आप चाहते हैं कि सब घोटमघोट हो जाय और इस आर्य्यावर्त देशमें भी छःमहीने अधिक उष्णता होती है प्रत्यक्ष लिख दिया होता कि छःमहीनेको चुटियातक मुंडवा देनी चाहिये विशेष करके अपने शिष्योंको तौ आप यही आज्ञा देते कि तुमलोग तौ शिखा सहित शिरके वाल मुंडवा दो क्योंकि गरमीसे बुद्धि कम हो जायगी परन्तु स्वामीजीने सत्यार्थप्रकाश शिरमे ऊनी वस्त्र बांधकर लिखी होगी तभी बुद्धिहीनता की बहुत बातें लिखी हैं भला डाढी मूंछ वालोंका तो खानपान अच्छीतरह नहीं हो सक्ता इस कारण डाढी मूंछ न रक्खैं परन्तु शिखासे क्या बिगड़ता है वोह तौ भोजन पानमें बाधा नहीं डालती कदाचित् एक बातका भय है कि लड़ाईमें

कोई चुटिया पकड़लेगा इस कारण चुटिया कतरवानेकी आज्ञादी परन्तु इतना औरभी लिख देते कि लड़ाईमें कानभी पकडजातेहै तौ कानभी कतरवा देनेकी आज्ञा लिख देतें फिर शिखा सूत्रका संस्कार विधिमें धारण करना वृथाही लिखा है फिर यज्ञोपवीतभी धारण करना वृथा है तौ यह संस्कार उड़ाकर वेदपरभी हरताल फेरदी होती यह न सूझीकि यदि डाढी मूछमें जूठन लगजायगी तो क्या पानीसे नहीं धुलसक्ती वस यह मनुष्योंको भ्रष्ट करनेको स्वामीजीने ढंग निकालाथा क्यों कि आर्य्योंके यह दोही विशेष चिह्न है शिखा और सूत्रसो स्वामीजीने यही दूर करनेका विज्ञापन कर दिया इसकारण इनकी बात माननी ठीक नहीं संन्यासको छोड़कर और किसी समयभी शिखाका त्याग करना नहीं चाहिये यही वेदकी आज्ञा है.

पृ० २६४ पं० ३

अधिष्ठिताःवाशूद्राःसंस्कर्तारःस्युः

यह आपस्तंबका सूत्र है आर्योंके घरमें शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्रीपुरुष पाकादिसे वाको करैं

समीक्षा स्वामीजीकी बुद्धि जानैकौन उड़ाकरले गया मूर्ख स्त्रीपुरुष भला-रसोई क्या करसकैगा जबकि सूपशास्त्रभी ग्रंथ संस्कृतमें विद्यमान है तथा औरभी भोजन बनानेके कितनेहीं ग्रंथ हैं विना उनके जाने धनी पुरुषोंके घरोंमें विविध प्रकारके व्यंजन बनाये जाते हैं यह किसप्रकार बनासैकेंगे और भोजन बनानाभी एक बड़ी चतुरताका काम है बहुधा अव तौ यह कर्म स्त्रियां करती हैं और पूर्वकालमेंभी स्त्री बहुधा रसोई बनातीथीं पढी भी होतीथीं और व्यंजन विविध प्रकारके बनातीथीं और बनाती हैं केवल बड़े २ राजाओं और धनियोंके यहां रसोईये होते हैं आगेभी होतेथे सो यह कर्म शूद्र नहीं करतेथे जो ब्राह्मण वेदादि शास्त्र नहीं जान्तेथे और सूप शास्त्रही जान्तेथे वे रसोईका कार्य करतेथे और सूत्रार्थ तुह्मारी प्रकारसेही करै तौ यह अर्थ होगाकि आर्योंके यहां शूद्र संस्कार करनेवाले अर्थात् बुहारी देना चौका बर्तन मांजना टहलसेवा आदि संशोधनके कार्य शूद्र करतेथे और अबभी यह काम कहारादि करतेही हैं परन्तु भोजन बनवाकर खाना ऐसा तौ इस सूत्रमें कोई शब्द नहीं है.

पृ० २३४ पं० १० जिन्होंने गुड चीनी घृत दूध पिशान शाक फल फूल खाया उन्होंने जानो सब जगत्के हाथका खाया और उच्छिष्ट खाया.

समीक्षा स्वामीजीके इस वचनसे क्या प्रतीत होता है यहीकी सब जातिके हाथका भोजन करलैं सब जगत एक जात होजाय पहले चुटिया कटवाई अब सब जात एक बनाई यह तौ गुप्त अभिप्रायही था कि सब जाति एककर देनी स्वामीजी-

भी रोज बूरा खातेहीथे इस्से एक ववरची नौकर रखलेते तौ बड़ा सुवीता होजाता क्योंकि आपतौ यवन चमार कुह्मार सबकू एकही बनाना विचारते हैं क्योंकि गुड़-चीनी तौ प्रायः सभी खाते हैं तौ सबही भ्रष्ट हुए और आपहीने यहभी लिखा है पृ० २६४ पं० २ कि शूद्रके पात्र और उसके घरका पका हुआ अन्न आपत्कालके विना नखावै जब सबही एक होगये बूरा घी आदिखानेसे तौ शूद्रके यहांका फिर क्या दोष रहा और हुक्कापीनेकी बात न लिखी.

स० पृ० २६५ पं० २० और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ जिनका शरीर मद्यमांसा-दिकोंके परिमाणुओंसे पूरित है उनके हाथका न खावै

समीक्षा पीछे लिख आये हैं कि घी आदि खानेवालेने सबके हाथका खाया अब म्लेच्छके हाथका खानेका निषेध करते हैं म्लेच्छोंका शरीर मांसके परमाणुओंसे पूर्ण है और शूद्रभी तौ मांसही खाते हैं उनके हाथका भोजन करनेसे वोह बात जो म्लेच्छोंके हाथके भोजन करनेमें होती है क्या नहीं होगी शोच है ऐसी बुद्धिपर कहीं कुछ कहीं कुछ लिखते हैं इसीसे तौ कहते हैं स्वामीजीकी बुद्धिभी इसीकारण-विपरीत होगई है, शूद्रके हाथका भोजन कभी करना न चाहिये.

स० पृ० २६६ पं० २६ यह राजपुरुषोंका काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्यहों उनको दंड देवें और प्राणभी वियुक्त करदें (प्रश्न) क्या उनका मांस फैंकदें (उत्तर) चाहें फेंकदें कुत्ते चाहें आदि मांसाहारियोंको खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावै तौभी संसारकी कुछ हानि नहीं होसक्ती किन्तु उस मनुष्यका स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक होसक्ता है

समीक्षा क्या स्वामीजीने मनुष्योंके खानेकीभी परिपाटी निकाली क्या मनुष्यभी खाये जाते हैं हिंसक जीव शेर भेडिया चीता आदिका मारना राजाओंका काम है परन्तु इनका मांसतौ कोई मनुष्य नहीं खाता फिर मनुष्यका मांसभी मनुष्य नहीं खाते यह दोनौ बातें बुद्धिविरुद्ध हैं और जब मांस खानेसे मनुष्यका स्वभाव मांसा-हारी होकर हिंसक होसक्ता है तौ देशकी हानि कैसे नहीं बहुत बड़ी हानि है यह मांसविधि स्वामीजीने अलौकिक लिखी है.

स० पृ० २६७ पं० ८ (प्रश्न) एक साथ खानेमें कुछ दोष है वा नहीं (उत्तर) दोष है क्योंकि एकके साथ दूसरेका स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदिके साथ खानेसे मनुष्यका रुधिर विगड़ता है वैसे दूसरेके साथ खानेसेभी कुछ विगाड़ होही जाता है.

समीक्षा जबकि साथ भोजन करनेसे स्वभाव प्रकृति आदिमें अन्तर पडता है तौ भला जो भोजन बनावैगा तौ उसके हाथसे आटा मीडना आदि हौनेसे क्या स्वभावमें विकृति नहीं होगी वेशक होगी इसकारण शूद्रादिकोंके हाथका भोजन न करना चाहिये अब और देखिये.

स० प्र० पृ० २६८ पं० ६ मनुष्य मात्रके हाथकी पकी हुई रसोई खानेमें क्या दोष है (उत्तर) दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थोंके खाने पीनेसे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके शरीरमें दुर्गन्धादि दोष रहित रजवीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडालीके शरीरमें नहीं क्योंकि चांडालका शरीर दुर्गन्ध और परमाणुओंसे भरा-हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णोंका नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णोंके हाथका खाना और चांडालादि नीचके हाथका नहीं खाना.

समीक्षा कदाचित् स्वामीजीने यह समुल्लास शूद्रके हाथका भोजन करकै ही लिखा होतो कुछ आश्चर्य नहीं परस्पर विरुद्धतासे यह समुल्लास पूरित है पूर्व तौ शूद्रके हाथका भोजन करना लिखा कहीं एक जाति हौनेका आशय झलकाया कहीं मनुष्यादिकौंका मांसही भक्षण करना लिखा अन्तमें सब वार्तोंका निचोड़ सत्यवातही मुखसे निकली सिद्धान्त यह हुआ कि नीचके हाथका भोजन करना नहीं चाहिये क्यों कि नीचके हाथका भोजन करनेसे उनके शरीरकी दुर्गन्धी आदिसे भोजन हानि और रोगकारक होकर स्वभावको विगाड़ता है इसी कारण ब्राह्मणादि वर्णोंको शूद्रके हाथका बनाया भोजन करना नहीं चाहिये और यहीं कारण है कि धान्यकुधान्य आदिसे अबभी संतान बुद्धिहीन दरिद्री और मूर्ख होती हैं, मनुजीने लिखा है.

राजान्नंतेजआदत्ते शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम्
आयुःसुवर्णकारान्नंयशश्चर्मावकर्तिनः १
कारुकान्नंप्रजांहन्तिबलंनिर्णेजकस्यच
गणान्नंगणिकान्नंचलोकेभ्यःपरिकृंतति २
नाद्याच्छूद्रस्यपक्वान्नंविद्वानश्राद्धिनोद्विजः
आददीतामभेवास्मादवृतावेकरात्रिकम् ३

अर्थात् राजाका अन्न तेजका नाश करता है शूद्रका अन्न ब्रह्म संबंधी तेजका नाश करता है सुनारका अन्न आयुका और चमारका अन्न यशका नाश करता है १

वढईका अन्न संततिका नाश करता है धोबीका बलको गणिकाका अन्न स्वर्गादिलोकोंके फलोंको नाश करता है २ विद्वान् ब्राह्मणादि शूद्रके हाथका बनाया हुआ पक्का-अन्न भोजन न करें और जब कहीं आपदा आन पड़े और भोजन न मिलता होय तौ एक दिनके निर्वाह मात्र (कच्चासीधादालआटादि) ले लेवैं यहांभी यही विदित है कि शूद्रके हाथका बना भोजन नहीं करना.

इस प्रकार इस दशमसमुल्लासके साथ सत्यार्थप्रकाशके पूर्वार्द्धका खंडन किया गया क्यों कि इन्हीं दशसमुल्लासोंमें स्वामीजीने अपना मत स्थापन किया है इसको जो कोई मनलगाकर पक्षपातरहित हो विचार करैगा वोह दयानंदी लीलासे बचकर परमपदका अधिकारी होगा क्यों कि इसमें यथास्थानपर वेदवेदान्तोंके व्याख्यानभी किये गये है जिससे ज्ञानकी प्राप्ति होगी मेरा परिश्रम इसकारण है कि लोग सत्यासत्यका निर्णय करें मैंने इस ग्रंथमें जो कुछभी लिखा है बहुत निर्णय और विचारसे लिखा है और वेदादि वोही शास्त्र जो दयानंदसरस्वतीने माने हैं सिवाय उनके प्रमाणोंके और कोई अक्षरभी अपनी तरफसे नहीं लिखा अब इसके आगे ११ समुल्लासमें जो आर्य्यावर्तके मतोंका स्वामीजीने खंडन किया है उसमें स्मार्तमतका मंडन किया जायगा क्यों कि श्रुति स्मृति प्रतिपादित धर्मही सनातन धर्म है उसीका अनुष्ठान करना योग्य है उसीका मंडन किया जायगा और धर्मवाले अपना उत्तर आप दे लेंगे.

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतदशमसमुल्लासखण्डनम् ॥

१४ सि० १८९० रविः

ज्वालाप्रसादमिश्र.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ दयानंदतिमिरभास्करे उत्तरार्द्धप्रारम्भः ।

भूमिका.

यह वार्ता सब पर विदित है कि महाभारतसे पूर्व इस देशमें वेदमतसे भिन्न और कोई मत नहींथा जब महाभारतके पश्चात् अविद्या फैली तब जहां तहां अनेक मत दृष्टिगोचर होने लगे और जिसके मनमें जो आया सो मत चलाया इसीकारण इस देशकी एकता नष्ट होगई और विविधक्लेशोंसे भारत वर्ष पूर्ण हो धनहीन हो अ-धोगतिको प्राप्त हुआ और जब बहुतसे मत प्रचलित हुए तौ इस अन्धाधुन्धमें स्वा-मी दयानंदजीनेभी एक मत अपना नवीन खडा किया जिसमें सम्पूर्णतः वेदविरु-द्धही वार्ता प्रचलित की है और वेदमंत्रोंके अर्थ बदलकर अपने प्रयोजनानुसार कल्पना कर लिये हैं तथा पुराण मूर्तिपूजन तीर्थ श्राद्धादिक सबहीको वृथा कथन किया है इस मतका मुख्य ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश है जिसके दश समुल्लासोंका खंडन इस ग्रंथके पूर्वार्द्धमें करचुके हैं यह एकादश समुल्लासका खंडन इस ग्रंथके उत्तरा-र्द्धमें लिखते हैं ग्यारहवें समुल्लासमें स्वामीजीने पुराण तीर्थ मूर्तिपूजनका खंडन किया है तथा अन्यमतौंकाभी खंडन किया है जो इस समय प्रचलित हो रहे हैं परन्तु मेरा तात्पर्य उन मतौंको अच्छा बुरा कहनेका नहीं है इस बातको सम्पूर्ण आर्यगण मान्ते हैं और मुझैभी निर्भ्रान्त स्वीकार है कि जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें आज्ञा है उसे मान्ना परम धर्म है और जो उन ग्रंथोंके विपरीत है वोह अधर्म है इस कारण में इस स्थानमें केवल उन्ही बातोंकी चर्चा करूंगा जिनका वेदसे संबन्ध है और मतवालोंको यदि अपना मत सत्य सिद्ध करना हो तौ वोह अपना जबाब देलैंगे में उनकी ओरसे उत्तरदाता नहीं क्योंकि मैं तौ सनातन वैदिक मतकोही श्रेष्ठ मान्ताहूं और वास्तवमें यही मत श्रेष्ठभी है इस पुस्तकके लिखनेसे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि किसीका चित्त दुःखीहो किन्तु मेरा आशय यह है कि इस ग्रंथको विचारकर सत्यासत्यका निर्णय करकै सत्यका ग्रहण और असत्यका त्या-ग करैं यही इस संसारमें मनुष्यजन्मका फल है कि श्रेष्ठकर्मोंका अनुष्ठान कर मोक्षके भागी बनैं.

पण्डित. ज्वालाप्रसाद शर्म्मा.

श्रीगणेशायनमः।

मंत्रप्रकरणम्

अथ सत्यार्थप्रकाशान्तर्गत ११ समुल्लासस्य खंडनं प्रार०

स० पृ० २७४ पं० ३ यह सब वातें जिनसे अस्त्रशस्त्रोंको सिद्ध करतेथे वे मंत्र अर्थात् विचारसे सिद्ध करतेथे और चलातेथे और जो मंत्र अर्थात् शब्दमय होता-है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता और जो कोई कहे कि मंत्रसे अग्नि उत्पन्न होती है तौ वोह मंत्र जप करनेवालेके हृदय और जिह्वाको भस्मकर देवै मारने जाय शत्रुको और मररहै आप मंत्र नाम है विचारका.

समीक्षा धन्य है स्वामीजी खूब मंत्रोंकी रेढ लगाई भला यह तौ कहिये महा भारतमें लिखा है जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रका प्रयोग कियाथा तौ उस समय जिसने अस्त्र नहीं खोले वोह अस्त्र उसीके ऊपर टूटकर गिरनै लगा अब विचारिये कि विना मंत्रके जड़वस्तुमें क्या सामर्थ्य है कि कुछ समझसकै और अश्वत्थामा-ने जो पाण्डववंश निर्वंश करनेको अस्त्र त्यागन कियाथा तौ वोह उत्तराके गर्भमेंभी मारनेको प्रविष्ट हुआ तौ क्या वहां उत्तराके गर्भमें विचार वा सलाहसे वाण छोड़ाथा जो परीक्षित गर्भहीमें मृतक होगया यह मंत्रहीका तौ प्रभावथा सर्प अवतक मंत्रोंको मान्ते हैं मंत्र पढनेसे वीछू उतरजाता है यदि मंत्रका प्रभाव न होता तौ एक वाण छोडनेसे पत्थर वा पानी वरसने लगे और जन्मेजयके यज्ञमें ब्राह्मणोंने मंत्र पढके सर्पोंका आह्वान कियाथा और इन्द्रसहित तक्षकका सिंहासन उड आया और जिस मंत्रमें अग्नि उत्पादन करनेकी शक्ति होगी वोह उसी स्थानमें अग्नि उत्पन्न करैगा जहांकि प्रेरककी इच्छा होगी प्राचीनऋषि मंत्रद्वारा देवताओंको बुलालेतेथे और यह जो स्वामीजीने कहा है कि शब्दमय मंत्र होता है उससे द्रव्य उत्पन्न नहीं होता यहभी असत्य है फिर वेदवाक्य तौ कहते हैं 'स्वर्गकामो यजेत' यदि केवल मंत्र शब्दमय है तौ स्वर्ग कैसे होसक्ता है यदि कुछ शब्दसे नहीं होता तौ परीक्षि-त वेणु सगर पुत्रोंको वाणी मात्रसेही तौ शाप दियाथा और वोह सत्य हुआ तथा कश्यपजीके भेजें हुए वैद्यने तक्षकके भस्मकिये हुए वृक्षकू दो घड़ीमे पूर्ववत् करदि या इस्से मंत्रकी सामर्थ्य न मान्ना स्वामीजीकी अविद्या है एक जर्मनी कईसहस्रकू इस देशसे अस्त्रविद्याकी पुस्तक खरीद कर ले गया है.

स० पृ० २७७ पं० २७ "ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः"

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणोंके मुखसे वचन निकलता है वोह जानो साक्षात् भगवानके मुखसे निकला.

समीक्षा स्वामीजीने इसका अर्थ नहीं जाना तभीतो उलटा लिखदिया इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मवाक्यं-- वेदवाक्य जो हैं सो जनार्दन हैं अर्थात् वेद ईश्वरवाक्य होनेसे उस्से पृथक् नहीं वेद नाम ब्रह्मसे इस श्लोकमेंभी ब्रह्म नामसे वेदहीका ग्रहण किया है "तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये" इसी कारण वेदवाक्य जनार्दनही हैं

स० प्र०पृ० २७८ पं० १३ तौ हम कौन हैं (उत्तर) तुम पोप हो (पुनः पं० १४ में) छल कपटसे दूसरोंको ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवालेको पोप कहते हैं

समीक्षा यह स्वामीजीने संस्कृत छोड़ अब रूमनभाषाका आश्रय लिया यह पोप शब्दही रूमनभाषाका स्वामीजीके मतका नाशक है क्यों कि आपही १४ पंक्तिमें पोपके अर्थ बड़ा और पिता है लिखते हैं जब रूमनभाषामें तौ इसके अर्थ पिताके लिखे हैं तौ छलीकपटीके अर्थ कौनसी भाषामें हैं किसीमें नहीं तौ स्वयं कल्पना करना धूर्तता है या नहीं और फिर कहते हैं कि हमने कोई शब्द अपनी ओरसे नहीं लिखा क्या स्वामीजीको कोई संस्कृतका शब्द नहीं मिला और वास्तवमें यह पोप शब्दका काल्पित अर्थ तुह्मीमें घट सकता है कि (अन्यमिच्छस्वसुभगे पतिं मत्) इत्यादि वेदमंत्रोंका जहां तहां अर्थ बदल दिया है अपना मत चलानेके लिये वेद भाष्यके नामसे चंदावटोरना तथा पुस्तकोंकी कीमत चौगुनी करके रजिस्टरी कराना इत्यादि यह ठगई नहीं तौ और क्या है तथाच तुह्मारे मतके सहजानन्द रुपया गड़ाप गये अक्षयानंदने जाटनीकी कन्या हरण की गूजर गौओंका रुपया गड़ाप गये इस्से तुम चेलोंसहित पोपहो जिस मतके आचार्यही पोप हैं तौ चेलोंकी क्या ठीक वे तौ महापोप कहे जांय तौ ठीक है

स० प्र० पृ० २९७ पं० १३ शंकराचार्यके पूर्व जैनमतभी थोड़ासा प्रचरित था उसकाभी खंडन किया पुनः पं० १९ उन दोनों जैनियोंने अवसर पाकर शंकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई पश्चात् शरीरमें फोड़े फुंन्सी होकर छः महीनेके भीतर शरीर छूट गया.

समीक्षा शंकराचार्यने शैवमतका खंडन नहीं किया वे स्वयं शिवके उपासक थे उनके बनाये हुए बहुत स्तोत्र विद्यमान हैं शिवापराधभंजन स्तोत्र उन्हींका बनाया हुआ है. फिर यहभी कहना असत्य है कि शंकराचार्यको विषयली वस्तु दीगई वि-

षयली वस्तुसे क्षुधा मन्द हो गई यह कहांका लेख है यह सब कुछ असत्य है और यादि विचारा जाय तौ यह सब कुछ. आपहीके ऊपर हुआ है आपको विष दिया गया शरीरमें फलक पड़गये अतीसार संग्रहणीनेभी दुःख दिया स्वामीजीकी ही यह दशा हुई.

स० प्र० पृ० २८७ पं० २९ जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्यका निजमत था तौ वोह अच्छा नहीं और जो जैनियोंके खंडनके लिये उसमतका स्वीकार कियाहो तौ कुछ अच्छा हो और पृ० २८७ पं० १ अन्तमें युक्ति और प्रमाणसें जैनियोंका मत खंडित और शंकराचार्यका मत अखंडित रहा.

समीक्षा स्वामीजीकी बुद्धिकी कहांतक ठीक लगाई जाय पहलें लिखा कि युक्ति और प्रमाणोंसे शंकराचार्यका मत अखंडित रहा अब कहते हें कि जो शंकराचार्यका निजमत था तौ अच्छा नहीं भलाजी जो वोह सप्रमाण और युक्तियुक्त था तौ निजमत कैसा और अच्छा क्यों नहीं और जब कि शंकराचार्यने जैनियोंके जीतनेको यह मत स्वीकार किया तो वोह तौ छल किया और वैदिकमतमें हीनता आगई कारण कि सतमतसे तौ न जीतसके बनावटसे जीता तौ यह सिद्ध हुआ कि स्वामी शंकराचार्यने छलसे जीता तौ वैदिकमत कच्चा प्रतीत होता है फिर शंकराचार्यको आप विद्वानभी बतलाते हें जब विद्वान थे तौ सत्य शास्त्रानुसारही जय पाई बनावट नहीं की किन्तु यह बात स्वामीजीनेही कीहै कि ईसाई यवनोंके शास्त्रार्थको अर्थही बदल दिये तथा जब श्राद्धतर्पण मूर्तिपूजनमें यवनादिकोंका आग्रह देखा तौ इसे छोड़कर वेदमें रेलतारबिजलीही भरदी इस्से यह बात दयानंदजीमेंही प्रतीत होती हें शंकराचार्यने कुछ बनावट नहीं की फिर आगे इसके स्वामीजीने अद्वैतवाद लिखा है जो अटकल पच्चू है उत्तर उसका पूर्व लिख चुके हें.

स० पृ० २८७ पं० २०

नेतरोनुपपत्तेः १
भेदव्यपदेशाच्च २
विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांनेतरौ ३
अस्मिन्नस्यचतद्योगंशास्ति ४
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ५
भेदव्यपदेशाच्चान्यः ६

गुहांप्रविष्टावात्मानौहितद्दर्शनात् ७
अनुपपत्तेस्तुनशारीरः ८
अन्तर्याम्यधिदैव्यादिषुतद्धर्मव्यपदेशात् ९
शरीरश्चोभयेपिहिभेदेनैनमधीयते १० व्याससूत्राणि

ब्रह्मसे इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्यों कि इस अल्प अल्पज्ञ सामर्थ्यवाले जीवमें सृष्टिकर्तृत्व नहीं घटसक्ता इस्से जीव ब्रह्म नहीं " रसं ह्येवायं लब्ध्वा नन्दी भवति " यह उपनिषद्का वचन है जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्यों कि इन दोनोंका भेद प्रतिपादन किया है जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीवका निरूपण नहीं घटसक्ता इस कारण जीवब्रह्म एक नहीं " दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः अप्राणोह्यमनाःशुभ्रोऽक्षरात्परतःपरः मुंडको० दिव्यशुद्ध मूर्तिमत्वरहित, सबमें पूर्ण बाहर भीतर निरन्तर व्यापक जन्म मरण शरीर धारणादि रहित श्वासप्रश्वास शरीर मनके सम्बन्धसे रहित प्रकाशरूप इत्यादि परमात्मामें विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृतिसे परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उस्सेभी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्मका भेद प्रतिपादन रूप हेतुओंसे प्रकृति और जीवोंसे ब्रह्म भिन्न है ३ (यह लेख क्याही स्वामीजीके पांडित्यका बोधक है) इसी सर्व व्यापक ब्रह्ममें जीवका योग वा जीवमें ब्रह्मका योग प्रतिपादन करनेसे जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्यों कि योग भिन्न पदार्थोंका हुआ करता है ४ इस ब्रह्मके अन्तर्यामी आदि धर्म कथन किये हैं और जीवके भीतर व्यापक होनेसे व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्मसे भिन्न है क्योंकि व्याप्य व्यापक संबंधभी भेदसे संघटित होता है ५ जैसे परमात्मा जीवसे भिन्न स्वरूप वैसे इन्द्रिय अन्तःकरण पृथ्वी आदि भूत दिशा वायु सूर्यादि दिव्य गुणोंके भोगसे देवता वाच्य विद्वानोंसेभी परमात्मा भिन्न है (यहां तो खूबही विद्याका परिचय दिया.) ६ "गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके " इत्यादि उपनिषदके वचनोंसे जीव और परमात्मा भिन्न है वैसाही उपनिषदोंमें बहुत ठिकाने दिखलाया है ७ शरीरे भवः शारीरः शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है (अशरीरधारी होगा) क्योंकि ब्रह्मके गुणकर्म स्वभाव जीवमें नहीं आते८ (अधिदैव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियां पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवोंमें परमात्मा अन्तर्यामी रूपसे स्थित है क्योंकि उसी परमात्माके व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदोंमें व्याख्यात है ९ शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे जीवका भेद स्वरूपसिद्ध है १० इत्यादि शारीरक सू-

त्रोंसेभी स्वरूपसे ब्रह्म और जीवका भेद सिद्ध है ' और उपसंहार और आरम्भभी अशुद्ध है क्योंकि जब कोई दूसरी वस्तुही नहीं ' उत्पत्तिप्रलयभी ब्रह्मके धर्म होजाते हैं.

समीक्षा यह बात तौ प्रगट है कि स्वामीजीका वेदान्तमें कैसा कुछ अभ्यास है और जीवब्रह्मकी एकता पूर्व प्रतिपादन कर चुके हैं अब इन सूत्रोंके यथार्थ अर्थ दिखलाते हैं कि यह सूत्र कौनसे प्रकरणके हैं और कौनसे स्थलके हैं.

आनन्दमयाधिकरण
नेतरोनुपपत्तेः अ० १ पा० १ सू० १६

आनन्दमयके प्रकरणसे सुना है कि एकने बहुतकी इच्छा की इच्छासे विश्व सृजा है सो यह काम जीवका नहीं है तिससे जीव आनंदमय नहीं है अथवा आनन्दमयका मुख्य वर्णन नहीं है क्योंकि ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मको प्राप्त होता है और जो ब्रह्म असत् जान्ता सो असत् ऐसे आगे पीछेके संदर्भके विरोधसे संसारी जीव या प्रधान आनन्द मय नहीं है किन्तु ईश्वरही है सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति सतपो तप्यत सतपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत यदिदंकिंचेति, जो कुछ कार्य है सो सब ईश्वरने देखके रचा है.

भेदव्यपदेशाच्च १७

रसो वै रसः रसंह्येवायं लब्ध्वानंदी भवतीति (अर्थ) जीव ब्रह्मके लाभसे आनन्द होता है यहां प्राप्य ब्रह्म और प्रापक जीव है यह भेदका कहना है अविद्या कल्पित देह कर्ता भोक्ता विज्ञानात्मासे ईश्वर अन्य है जैसे खड्गधारी मायावी सूत्र पर चढकर आकाशको जाता सो दिखाई देता है और वास्तवमें वोह मायावी भूमि परही खडा है जैसे व्योम घटादि उपाधिसे भिन्न अनुपाधि अन्य है तैसेही जीव ब्रह्मका भेद है वास्तव नहीं.

अस्मिन्नस्यचतद्योगंशास्ति १८

इस आनंदमयके प्रकरणमें जीवका योग आनंदमय ब्रह्मके साथ वेद उपदेश करता है उस्से उपचारका इच्छासेभी आनंदमय वाक्यका अर्थ प्रधान या जीव नहीं है (यथा) ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयेऽभयं प्रतिष्ठतां विन्द-

तेथ सोऽभयङ्गतो भवीत तदावेंह्येष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेथ तस्य भयं भवतीति अर्थ तादात्म्यसे ईश्वरको देखै सो देखना परमात्माके ग्रहणसे बनता है न जीव या प्रधानके ग्रहणमें तिस्से आनन्दमय परमात्मा है नकि विज्ञानात्मा श्रुति सवाएष पुरुषोन्नरसमयस्तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योन्तर आत्मा प्राणमयस्तस्मा- दन्योन्तर आत्मा विज्ञानमय इति अर्थ यहां परभी विकारार्थकी परम्परासे आत्मा अर्द्धजरतीय है च हेतुमें है जिस्से आनन्दमयको आनन्दमयका सम्बन्ध वेदने उपदेश किया है तिस्से उपासनाके लियेभी आनन्दमय प्राधान्य नहीं है और आनंद प्रचुर कहनेसे दुख अल्पभी मत समझे अद्वितीयसे " श्रुति " रसंह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवतीति

हिरण्यमयाधिकरण

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् २०

परमेश्वरस्य धर्मा इहोपादिश्यन्त इति सौत्रोनुवादः छान्दोग्यके प्रथमाध्यायमें उद्गीथ उपासनाओंके बीच गौण उपास्योंका उपदेश किया है वोह यहकि सूर्यके बीचमें हिरण्यमय पुरुष है और ऋक्साम उक्थ यजुः जे ब्रह्म धर्म है और ब्रह्म सब पापोंसे युक्त अद्वितीय ईश्वर कहा है यह अर्थ इन श्रुतियोंसे लिया है " सै- वर्कंतत्सामतदुक्थन्तद्यजुस्तद्ब्रह्मेति उदेति हवै सर्वेभ्यः पाप्मभ्य इति अथ यएषो- न्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते इत्यादि मे (सइ) संशय है कि विद्या कर्मकी अतिशयसे बड़ा होकै सूर्यादि प्राप्त उपास्यकहा है या नित्य सिद्ध ईश्वर है फिररूपी सुनेसे संसारी है नकि ईश्वर नीरूपसे निरूपका रूप उपासनाके लिये मान लिया है " अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् " इस श्रुतिसे और ईश्वर अपनी सत्तासेही निराधार ठहरा है " सभगव कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वेमहिम्नी " ति इस वाकोवाक्यरूप श्रुतिसे निर्विकार अनन्त है " आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः " इस श्रुतिसे कभी २ विकारोंसे भी कहा है " सर्वकामः सर्व- गन्धः सर्वरस इत्यादि श्रुतिसे, तात्पर्य यह है कि जो बाहर गन्ध रसादि दे- खते हैं सो सब ईश्वरकी सत्ताही है और नकि मृदुद्रुत कठिनादि वस्तु कुछही है तिस्से ईश्वरही सूर्य और नेत्रके बीच उपदिष्ट है " सोसावहम् " वोह मैं हूं

भेदव्यपदेशाच्चान्यः २१

जो सूर्यमें है इस्से ईश्वर अन्य है इस भेदसे सूर्य आधार और ईश्वर आधेय

जानपड़ता है यह अर्थ इस श्रुतिसे लिया है य आदित्ये तिष्ठन्नादित्यादन्तरोय आदित्योन वेदयस्यादित्यः शरीरं यआदित्यमन्तरोयमयत्येषते आत्मान्तर्याम्यमृत इति इस्से यह सिद्ध हुआ कि हिरण्मय ईश्वरही है न कि देवतादि इसका अर्थभी स्वामीजीने गड़बड़में लिखा है.

मनोमयाधिकरण
अनुपपत्तेस्तुनशारीरः अ १ पा० २ सू० ३

मनोमय ब्रह्म है और जीवमें सत्यसंकल्पादि गुणोंका असंभव है तिस्से मनोमयादि धर्मोंसे उपास्य नहीं है यहां कइएक शंका सूत्र देकर पीछे सिद्धान्त सूत्र लिखा है किः-

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्चनेतिचेन्ननिचाय्यत्वादेवंव्योमवच्च ७

अर्भकं वाल्यं अल्पंवा ओको नीडं हृत्स्थानं निचाय्यत्वादेव हृत्पुण्डरीके द्रष्टव्यः वा उपास्यःव्योमवत् यथा सर्वगतमपिसत् व्योम शूचीपाशाद्यपेक्षयाअर्भकौके अणीयश्च व्यपदिश्यते इति एवमेव ब्रह्मापि " धानयवसेभी छोटा कहा है अणीयान्व्रीहेर्वायवाद्वेति आराग्रमात्र इति ईश्वरही जीव यहां कहा है जैसे सब पृथ्वीका पति अधिपति कहाता है बालकके हृदयसा, और धान जैसे छोटा इत्यादि उपाधियोंके भेदसे ब्रह्म उपासनाके लिये कहा है न कि स्वरूपसे जैसा अनन्त व्योम घटाकाश मठाकाशादिकोंसे छोटा कहा है इसीसे एषमआत्मान्तर्हृदय इति.

संभोगप्राप्तिरितिचेन्नवैशेष्यात् ८

सर्वगत ब्रह्मका सब प्राणियोंके हृदयमें सम्बन्धसे और चेतनरूपसे और एकत्वसे और शारीरके अभेदसे सुखदुःखादिकी प्राप्ति सम्यक्हो अन्य संसारीके न होनेसे " नान्यतोस्ति विसतीति " इस्से फिर सोपाधिक मानेसे उपाधि धर्मदुःखादिकी प्राप्ति न होगी क्यों कि उपाधि बिम्बमें नहीं होती है इस्से ब्रह्ममें भोगकी गन्धिभी नहीं है जीव ब्रह्मका भेद मिथ्याज्ञानसे है और ज्ञानसे अभेद है इस्से "अनश्नन्नन्योभिचाकशीति " कर्ताभोक्ता धर्माधर्म साधनसुखदुःखादि मान एक है और दूसरा अपहतपाप्मादि मान है इस विशेष अर्थात् भेदसे जो सम्बन्ध मात्रही कार्य होता है तो व्योमादिकोभी दाहादि होना चाहिये सर्वगतानेकात्मवादीकोभी उक्त चोद्यपरिहार समान है और जो शास्त्र जीवपरकी एकता कहते हैं ते एकताके द्वारा संयोगकी निवृत्तिभी कहते हैं जैसे " तत्त्वमसि " " अहं ब्रह्मास्मीति" इत्यादि जैसे

किसीने व्योमको मलिन कहा तौ क्या वोह मलिन हो सक्ता है तिस्से वेदमें जीव उपास्य नहीं कहा किन्तु ब्रह्म हो तैसे मिथ्या ज्ञानसे योग और सम्यक् ज्ञानसे ऐक्य है यही विशेष है तिस्से ईश्वरमें भोगगन्धभी नहीं कल्प सक्ते हें इत्यादि यहां मनोमयादि प्रकरण है जीव ईश्वरभिन्न अधिकारण नहीं है.

गुहाधिकरण

गुहांप्रविष्टावात्मानौहितद्दर्शनात् ११

कठवल्लीसे सुना है कि सुकृतका फल नरदेह है और वही परब्रह्मकी प्राप्तिका स्थान है विद्याशमादिके सम्भवसे फिर देहमें या हृदयमें ब्रह्म जीव ठहरे हैं और कर्मफलको पाता है औरनकि बुद्धि जीव हैं जड़ और अजड़के विरोधसे जड़ बुद्धि सुकृतपान नहीं करसक्ती है चेतना क्षेत्रज्ञ करसक्ता है एक क्षत्री अन्य अक्षत्री इनको देख कह सक्ते हैं कि क्षत्री चलते हैं उपचारसे जैसे, तैसे जीव पाता और ईश अपाता दौनो संगसे पाता कहे हैं तिस्से जीव ईश हैं, या जीव पीता ईश पिवाता है छाया और आतपकी नाई जीव हृदयमें प्रत्यक्षमें और ब्रह्म श्रुतिसे दिखाता है "गुहा हितङ्गह्वरेष्टं पुराणंयो वेद निहितं गुहायां परमेव्योमन् आत्मानमन्विच्छ गुहांप्रविष्टमिति" जैसे लोकमें इस गौका दूसरा लाओ यह कहनेसे न घोड़ा न भैंसा लाता है किन्तु गौही लाता है तिसे चेतन जीव ब्रह्म समस्वभाववाले हैं और नकि विषम स्वभाववाले जड़ चेतन बुद्धि जीव है और समान धर्म हौनेसे एक हैं केवल उपाधिसे पृथक् भासते हैं (ऋतंपिबन्तौ) इस श्रुतिकी व्याख्या पूर्वकर चुके हैं.

अन्तर्याम्यधिकरण

अन्तर्याम्यधिदेवादिषुतद्धर्मव्यपदेशात्

अन्तर्यामी परमात्मा अधिदेवादिषु पृथिव्यादिषु भवितुमर्हति कुतः तत् तस्य परमात्मनः धर्माणां गुणानां व्यपदेशनात् । भाषार्थः बृहदारण्यके पांचवें अध्यायमें याज्ञवल्क्यने उद्दालकसे कहा कि पृथिव्यादिमें अन्तर्यामी ईश्वर है क्योंकि पृथिवीमें रहता है पर उसको पृथ्वी नहीं जान्ती है फिर ज्ञान और अमृतादि गुणोंका उसीमें संभव है इस्से "यइमंचलोकं परंचलोकं सर्वाणि भूतानि योन्तरोयमिति" फिर कहा कि "पृथिव्यांतिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोप्ययं पृथिवीं न वेद यस्य पृथ्वीशरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृत" इत्यादि ऐसा वाक्योंमें नकि अधिदैवाधिका अभिमानी देवता या योगी या अपूर्व संज्ञा है किन्तु परमात्मा है अन्तर्यामी अमृतत्वगुणसे.

शारीरश्चोभयेपिहिभेदेनैनमधीयते २०

कण्व और माध्यन्दिन जे दौनों जीवसे अलग ईश्वरको पढते हैं तिस्से जीवभी अन्तर्यामी नहीं है और न प्रधान है किन्तु अन्तर्यामी ईश्वर है काण्वः "यो विज्ञाने तिष्ठन्"इति माध्यन्दिनः "यआत्मनि तिष्ठतात्मानमन्तरो भवति" अणुसे अणु और महानसे महान पृथ्वीव्योमादि सब वस्तुमें अन्तर्यामी को कहनेसे परमात्माही सर्व व्यापक है अन्तर्यामी है और विज्ञानमय शारीर है इत्यादि सब कुछ ब्रह्मही है यह अधिकरण ब्रह्महीको कहते जाते है जीव अज्ञानतक है जब यथार्थ अनुभव हुआ तो सब कुछ वोही है अब आगेका सूत्र भूतयोनिप्रकरणका है.

अदृश्यत्वादिगुणकोधर्मोक्तेः २१

इस सूत्रमें मुण्डकमें जो भूतोंका कारण सुना है सो ब्रह्म है सर्वज्ञादिगुणके कहनेसे यहां योनिनिमित्तोपादानकारणका नाम है भूतयोनि प्रधान और जीव है जैसे मकरीसे जाला पृथ्वीसे औषधी और देहसे केशलोमादि होते हैं तैसेही प्रधानसे भूतोंका जन्म है सो यह ठीक नहीं क्यों कि ईश्वरही भूतयोनि धर्मयुक्त सुना है.

यःसर्वज्ञःसर्वविद्यस्यज्ञानमयंतपस्तस्मादेतद् ब्रह्मनामरूपमन्नंचजायते इति

तिस्से अदृश्यादिगुणी ईश्वरही भूतयोनि है.

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यांनेतरौ २२

इतश्चपरेशएवभूतयांनिर्नेशारीरःप्रधानंचेति

जीवभूतोंका कारण नहीं होसक्ताहै क्योंकि अमूर्तपुरुष बाहरभीतर इत्यादि विशेषणोंसे व्यापकब्रह्मही कहाहै नकि परिच्छिन्न जीव इस्से "दिव्योह्यमूर्तयः" इत्यादि और प्रधानभी भूतोंका कारण नहीं होसक्ताहै क्योंकि प्रधानसे भूतौंका कारण अलग कहाहै. इस्से अक्षरात्परतः पर इति अक्षरंअव्याकृतं नामरूपबीजशक्तिरूपं भूतसूक्ष्ममीश्वराश्रयन्तस्यैकोपाधिभूतं सर्वस्मात् विकारात्परोय अविकारस्तस्मात्परतः पर इति भेदेन व्यपदेशात्परमिह विवक्षितन्दर्शयतीति.

रूपोपन्यासाच्च ॥२२॥

इसका सिद्धान्तसूत्र भूतयोनिका रूप सब विश्व कहाहै तिस्से भूतयोनि ईश्वरही है इनसे पुरुष एवेदम्विश्वङ्कर्मेति अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्चवेदा वायुःप्राणो हृदयम्विश्वमस्यपद्भ्यांपृथिवीह्येषसर्वभूतान्तरात्मेति, अग्नि उसका शिर नेत्र

चन्द्रसूर्य दिशा कान वाणी वेद वायु प्राण हृदय विश्व पाद पृथिवी सोहीसव भूतौंका अन्तरात्मा है हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, इत्यादि वाक्योंसे यही निश्चित है कि यह सब कुछ ब्रह्महीं है ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे.

वेदान्तसूत्रोंका अर्थ स्वामीजीने उलट दियाहै वास्तवमें वे इस ग्रंथको समजेही नहीं कि कौनसा उत्सर्ग शंका सिद्धान्तसूत्रहै सो कुछ नहीं लिखा इस्मे वेदान्तके विषयमें स्वामीजीने जो कुछभी लिखाहै वोह सब असत्यहै विशेष देखना हो सो शा. रीरकमें देखलो समाप्तं चेदं वेदान्तप्रकरणम् ।

कालिदासप्रकरणम्

स. पृ. २८६ पं. २० जिसके राज्यमें कालिदास बकरी चरानेवालाभी रघुवंश काव्यका कर्ता हुआ.

समीक्षा यहीतौ दयानंदजीने निधडकही लेखनी चलाईहै भला कौनसी पुस्तक इतिहास भोजप्रबन्धआदिमें यह लिखाहै कि कालीदास गडरियाथा और स्वामीजीने शत्रुतासे कालिदासको गडरिया बतायाहै क्योंकि इन महाकविके ग्रंथोंको " जिसका नाम इंग्लैंडीय मान्यपुरुषभी गौरवकेसाथ लेतेहैं " पढनेका निषेध कियाहै और भोजप्रबन्धमें कहीभी कालिदासको गडरिया नहीं लिखाहै किन्तु राजाकी सभामें नवरत्नोमें यहभीथा और स्वामीजीतौ जातिकर्मसे मान्तेहैं तौ उनके मतानुसार पण्डित होनेसे वोह गडरिया नहींरहा और जो पण्डित होकरभी गडरिया जाति रही तौ स्वामीजीकेही ग्रंथोंसे स्वामीजीका खण्डन होगया.

स. पृ. २८७ पं. १.

रुद्राक्षप्रकरणम्

धिक्धिक्कपालंभस्मरुद्राक्षाविहीनम् ॥
रुद्राक्षान्कण्ठदेशेदशनपरिमितान्मस्तकेविंशतीद्वे ॥
षट्षट्कर्णप्रदेशेकरयुगलगतान्द्वादशान्द्वादशैव ॥
बाह्वोरिन्दोःकलाभिःपृथगितिगदितमेकमेवंशिखायां ॥
वक्षस्यष्टाधिकंयःकलयतिशतकंसस्वयंनीलकण्ठः ॥ १ ॥

जिसके कपालमें भस्म और कण्ठमें रुद्राक्ष नहीं है उसको धिक्कार है.

जो कण्ठमें ३२ शिरमें ४० छः छः कानोंमें १२,१२ करोंमें सोलह सोलह भुजाओं १ शिखामें और हृदयमें १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वोह साक्षात् महादे- के सदृश है.

समीक्षा. स्वामीजीसे पूछे कि भस्म लगानेमें कौनसी बुराई है यह शिवके भक्तोंका चिन्ह है कि भस्म धारण करना, रुद्राक्ष पहरना, जिस प्रकार आप संन्यासी रंगे हुए वस्त्र पहरते हैं इसी प्रकार यह शिवके भक्तोंका चिन्ह है जो संन्यासी होकर संन्यासके धर्म और चिन्ह धारण नहीं करता उसे नामका संन्यासी जैसे शास्त्रोंने लिखा है वैसेही शिवका धर्म धारणकरनेवाला जो उन चिन्हौंको धारण नहीं करता उसे धिक्कार है क्यौंकि रुद्राध्यायमें शिवजीकी महिमा अधिक वर्णन की है.

स. पृ. २९८ पं. ३ राजा भोजके राज्यमें व्यासजीके नामसे किसीने मार्कण्डेय और शिवपुराण बनाकर खडा कियाथा उसका समाचार राजाको हौनेसे उन पंडितौंको हस्त छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई नवा ग्रंथ बनावै वोह अपने नामसे बनावै यह बात राजा भोजके बनाये संजीवनी नामक इतिहासमें लिखी है कि जो ग्वालियरके राज्य भिण्डनामक नगरमें तिवारी ब्राह्मणोंके घरमें है जिसको लखुनाके रावसाहब और उनके गुमास्ते रामदयाल चोबेजीने अपनी आंखसे देखा है उसमें लिखा है कि व्यासजीने चारसहस्र चारसौ और उनके शिष्योंने पांचसहस्र छःसौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दशसहस्र श्लोकौंके प्रमाण भारत बनाया था. वोह महाराजा विक्रमादित्यके समयमें वीससहस्र महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताके समयमें पच्चीस अब मेरी आधी उमरमें तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारतका पुस्तक मिलता है जो ऐसेही बढता चला तौ भारतका पुस्तक एक ऊंटका बोझा होजायगा.

समीक्षा. राजा भोजके बनाये संजीवक ग्रंथका पत्ता और उन मनुष्योंका वृत्तान्त कहांतक लिखैं हमने कई रजिस्टरी चिठ्ठी भिण्डस्थानको ब्राह्मणोंके पास भेजीथी जिसमें ऊपर लिखा ब्यौरा स्पष्ठ लिख दिया था उसमेंसे दोस्थानोंसे उत्तर आया है कि यह बात सब मिथ्या है यही कोई ऐसी पुस्तक हमारे पास नहीं जिसमें ऐसी बातें लिखी हों इस कारण स्वामीजीका कहना और चौबेजीके कहना दोनौं अप्रमाण हैं भोजके समय जितने ग्रंथ बने हैं वोह अद्यावधि उन्हीके नामसे विख्यात हैं जो उनके कर्ता हैं सहस्रों श्लोकोंको व्यासजीके नामसे रचनेसे उन्है क्या लाभ था पहलेस्वयं दयानंदजी कहतेथे व्यासजीने २४,००० सहस्र श्लोकका महाभारत बनाया अब चार सहस्रहीका वर्णन किया है फिर व्यासजीने प्रतिज्ञा की है कि मैं इस ग्रंथमें ८८०० कूट श्लोक कहूंगा " अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि चेति " जिन्है मैं और शुकदेव जान्ता हूं संजय अर्थ करसक्ता है या नहीं जिसके अर्थमें क्षणमात्र गणेशजी विचार करते थे इस अवसरमें व्यासजी बहुत श्लोक बना लेते थे वैशम्पायनने इसकी

प्रशंसा की है जो इसमें है वोह अन्यस्थानमें मिलसक्ता है जो इसमें नहीं है वोह और कहीं नहीं मिलैगा. यह ग्रंथ लक्षश्लोकसे पूर्ण है स्वर्गारोहणपर्वके अन्तमें लेख है कि इसके पाठसे अष्टादश पुराणकी श्रवणका फल होता है तथा अनुक्रमणिकामें प्रत्येक पर्वका वृत्तान्त और उसके अध्याय श्लोकोंकी संख्या लिखी है चार सहस्रमें तौ इसका युद्धभी नहीं समासक्ता और इसके विना इतिहास कहांसे आवेंगे क्या सत्यार्थप्रकाशमेंसे निकलैंगे और देखिये प्रत्येक पुराणोंमें अष्टादश पुराणोंका वर्णन है और उनके श्लोकोंकी संख्या है इस्से स्पष्ट विदित है कि यह सब एक समयके बने हैं राजाभोजके समय पुराण बना किसी प्रकारसे सम्भव नहीं.

स० पृ० ३०० पं० २ इन लोगोंने जैनियोंके सदृश अवतार और मूर्तियां बनाई.

समीक्षा. मूर्तिपूजन इस देशमें क्या सनातनसे समस्त भूमंडलमें चला आता है और हमारे यहांके अवतारोंको देख जैनियोंने २४ सिद्ध माने जैसे आपने तर्कसंग्रहके स्थानमें सत्यार्थप्रकाशमें एक सूत्रावलि बनाई है यवनोंकी पुस्तकौंमें "दीवायचा" देखकर वेदभाष्यभूमिका गढी इस्से स्वयं तुह्मी नकल बनाने हारेहो

स० पृ० २८८ पं० १५ देवीभागवतमें देवीने सब जगत् बनाया यह लिखा है.

समीक्षा. देवीभागवतमें जो देवीसे जगत्‌की उत्पत्ति मानी है सो यथार्थ है क्योंकि देवी परमेश्वरकी माया अर्थात् शक्ति है जिसे सामर्थ्यभी कहते हैं और यह सब संसार उसकी सामर्थ्यसेही हुआ है वोह मायाही प्रकृतिको प्रगट करके संसारकूं सूक्ष्मसे स्थूलरूप करदेती है इसीसे देवीसे जगत्‌की उत्पत्ति हुई है ऐसा लिखा है जिस पुराणमें ईश्वरके जौनसे नामके गुणोंका वर्णन किया है वोह उसी नामसे प्रसिद्ध है और जिस नामसे जिसको विश्वास है वोह उसी देवताका ध्यान उसीपुराणद्वारा करै अन्तमें सब ईश्वरहीको प्राप्त होगा जैसे समुद्रमें नदी. और आपभी इसे मानचुके हैं कि यह सब नाम परमात्माके हैं तौभी फिर क्या दोष है यथा.

स. पृ. ३०१ पं. १३.

"शिवस्यपरमेश्वरस्यायंभक्तः शैवः,
विष्णोः परमात्मनोयंभक्तः वैष्णवः,
गणपतेःसकलजगत्स्वामिनोयंभक्तः
सेवकोगाणपतः, भगवत्यावाण्याअयंसेवकः
भागवतः,सूर्यस्यचराचरात्मनोयंसेवकःसौरः"

यह सब रुद्र शिव विष्णु गणपति सूर्यादि परमेश्वरके और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणीका नाम है.

इन्ही बातोंमे यह सिद्ध है कि यह सब ईश्वरके नाम हैं तौ इन्ही नामोंकी महिमा पुराणोंमें कथन कीहै और उसी नामसे वोह पुराण विख्यात हैं तौ इनमें भेद मानना भूलकी बात है.

नाममाहात्म्यप्रकरणम् ।

स. प्र० पृ० ३०६ पं० २१ नामस्मरणमात्रसे कुछभी फल नहीं होता जैसे मिशरी मिशरी कहनेसे मुंह मीठा और नीम २ कहनेसे कडुवा नहीं होता.

समीक्षा. धन्य है स्वामीजी एक नामहीकी महिमा शेष थी सो वोहभी मेट दी एक नामही पतितपावन तारनतरन है सो आपने इसेभी साफ कर दिया क्या ईश्वरका नामस्मरणभी निरर्थक है जब नाम ग्रहण करनेसेभी कुछ लाभ नहीं तौ सत्यार्थप्रकाश रटनेसे सद्गति होगी? यजुर्वेदमें नामका माहात्म्य यों लिखा है.

यस्य नाम महद्यशः यजुर्वेदे

कि जिसके नामका बहुत बड़ा यश है बस यही वाक्य ऐसा बड़ा है जो प्रगट करता है कि उस परमात्माके नामका ऐसा माहात्म्य है कि बडे २ पातक उस नामके लेनेसे जाते रहते है इसीसे उसका बड़ा यश विख्यात है.

पुनः ऋग्वेदे

कस्यनूनंकतमस्यामृतानांमनामहेचारुदेवस्यनाम

यह वेदमें लेख है कि हम किसका नाम ग्रहण करैं और हम किसकेद्वारा पितामाताका दर्शन करें इत्यादि इस मंत्रकी व्याख्या पूर्वभी लिखचुके हैं मुक्तिप्रकरणमें देख लैना इस्से यही सिद्ध होता है कि नामसे सब कार्य बनता है और ऐसेही शुनःशेफको हुआ था.

गीतामेभी लिखा है

ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् मुच्यतेसर्वपापेभ्यो०

श्रीकृष्णजी कहते हैं जो " ओम् " इस मंत्रका जप ध्यान करता है वोह सब पापोंसे छुट जाता है.

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत छान्दो॰

ओम् जिसका नाम है जो अविनाशी है उसकी उपासना जप करना चाहिये.

" यन्मनसानमनुतेयेनाहुर्मनोमतं
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयादिदमुपासते "

जो मनसे इयत्ता करकै मनमें नहीं आता जो मनको जान्ता है उसी ब्रह्मको तूं जान; उसीकी पूजा उपासना नामस्मरण तूं कर.

फिर मनुस्मृतिमें गायत्रीका जप करनेसे पाप दूर हौना लिखा है सो पूर्व लिख-आये हैं जैसे विद्यामें आभ्यास करनेसे वोह कण्ठस्थ होजाती है और वोह विद्याके गुणोंसे भूषित होता है उसी रीतिसे परमेश्वरके नामोंको स्मरण करता हुआ मनुष्य पवित्र होता है और पवित्र हौनेसे पापरहित होकर सुख भोगते हैं जैसे कुसंगतमें बैठने थाबुरीबातोंके ध्यान करनेसे मनुष्य विषयासक्तिमें फंसकर नष्ट होजाते हैं अथवा जैसे बुरीबातोंका ध्यान करनेसे मनमें दुर्वासना उत्पन्न होजाती है कडवी या घृणायुक्त वस्तुके नामसेही मनमें ग्लानि उत्पन्न होकर थूक भरिआता है. खट्टी चीजके ध्यानसे जीभपर स्वाद विदित हौने लगता है और वोह मुखमें नहीं आता पर उसका गुण होजाता है. मिष्टान्नादि सुंदर पदार्थोंसे चित्त प्रसन्न हो जाता है दु-खके समाचार सुन्नेसे दुःख, मंगलके समाचार सुन्नेसे प्रसन्नता होती है. इसी प्रकार परमेश्वरके पवित्र नामस्मरण करनेसे चित्त निर्मल हो जाता है जैसे दुर्गन्धियुक्त पवन सुगन्धितस्थानमें जाकर सुगन्धित हो जाती है और उसमें दुर्गन्ध नहीं रहती इसी प्रकार परमेश्वरके नामस्मरण मात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है और परमेश्वरके नामोंका असर अन्तःकरणमें पड़कर पवित्र हो जाता है इत्यादि परमे-श्वरके नामकी महिमा शास्त्रोंमें विस्तारपूर्वक लिखी है मनुजीने कई मंत्रप्रायश्चि-त्तके उद्धारमें लिखे हैं जिसमें जप लिखा है अघमर्षण सूक्तका जप. गायत्रीका जप इत्यादि जप करनेका बहुत बड़ा विस्तार है जप परमेश्वरके नाम लैनेहीसे कुछ लाभ नहीं तौ परमेश्वर किस अर्थका है यह बात आपकी यही सिद्ध करती है कि परमेश्वरका नाम ग्रहण करना वृथा है. अब इसके आगे मूर्तिपूजनके विषयमें लिखा जायगा.

अथ मूर्तिपूजनमहाप्रकरणम् ।

प्रथमतः उनयुक्ति और प्रमाणोंको लीखैंगे जिसको स्वामीजीने आश्रयकर लिखाहै कि मूर्ति पूजन नहीं करना चाहिये फिर क्रमानुसार उनके उत्तर लिखे जायंगे.

स०पृ० ३०५ पं० १ मूर्तिपूजा कहांसे चली (उत्तर) जैनियोंसे और जैनियोंने अपनी मूर्खतासे चलाई.

स०पृ० ३०६ पं०४ जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तौ उसकी मूर्तिही नहीं बनसक्ति और जो परमेश्वरके दर्शनमात्रसे परमेश्वरका स्मरण होवैं तौ परमेश्वरके बनाये पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति आदि अनेक पदार्थ जिनमें ईश्वरने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथ्वी पहाडादि परमेश्वर रचित मूर्तियां कि जिन पहाड़ आदिसे मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं उनको देखकर परमेश्वरका स्मरण नहीं होसक्ता और जब वोह मूर्ति सामने न होगी तौ परमेश्वरके स्मरण न होनेसे मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करनेमें प्रवृत्तभी हो सक्ता है क्यों-कि वोह यह जान्ताहै कि इस समय यहां मुझको कोई नहीं देखता इस्से अनर्थ करे-विना नहीं चूकता.

स०पृ०३०७ पं १७ जो परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तौ किसी एक वस्तुमें परमेश्व-रकी भावना करना; अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसे चक्रवर्ती राजाको सब राज्यकी सत्तासें छुडाकर एक छोटीसी झौंपडीका स्वामी बनाना और जब व्यापकहै तौ वाटिकासे पुष्प पत्र तोडके क्यों चढाते चंदन पीसके क्यों लगाते क्योंकि उनमेंभी तौ व्यापक है हम परमेश्वरकी पूजा करते हैं ऐसा झूंठ क्यों बोलतेहो हम पाषाणादिके पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते अब कहिये भाव सच्चा है या झूंठा जो कहो सच्चाहै तुह्मारे भावके आधीनहै परमेश्वर बद्ध होजायगा और तुम मृत्तिकामें सुवर्ण रजतादि पाषाणमें हीरा पन्ना आदि समुद्रफेनमें मोती जलमें घृत दधि आदि और धूलिमें मैदा शक्कर आदिकी भावना कर वैसा क्यों नहीं बनातेहो तुम लोग दुखकी भावना कभी नहीं करते वोह क्यों होता अंधा पुरुष नेत्रकी भावना करके क्यों नहीं देखता मरनेकी भावना नहीं करते क्यों मरजातेहो इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं क्योंकि जैसेमें वैसी करनेका नाम भावनाहै जैसे अग्निमें अग्नि, जलमें जल जान-ना और जलमें अग्नि अग्निमें जल समझना अभावनाहै.

समीक्षा. यह मूर्तिपूजन बड़ी सूक्ष्मबुद्धिसे ध्यानमें आताहै जैसा ईश्वरका सूक्ष्म विचारहै ऐसाही इसका सूक्ष्म व्यवहारहै यह ज्ञानचक्षुसे ध्यानमें आती है. स्वामी-जीने जो कुछ इसके खंडनमें युक्ति और प्रमाण लिखेहैं उनका उत्तर क्रमसे दिया जाताहै

१ यह बात कहना सर्वथा विरुद्ध है कि मूर्तिपूजा जैनियोंसे चली जब कि वेदोंमें मूर्तिपूजन पाया जाताहै तौ कैसे होसक्ता है कि यह जैनियोंने चलाई है वोह वेदोंके

प्रमाण आगे लिखैंगे मूर्तिपूजा सनातन नित्य है जैसा कि कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीयारण्यकके ४ प्रपाठकके ५ अनुवाकमें लिखाहै.

मार्असि प्रमाअसि प्रतिमाअंसि

हे महावीर तुम ईश्वरकी प्रतिमा हो इत्यादि और-

सुम्वत्सुरस्यंप्रतिमांयांत्वांरात्र्युपास्महेसानुआयुंष्मतींप्रजारायस्योषेण संसृज: अथर्व ३ । ९ । १०

हे राज्यभिमानी देव ईश्वर सम्वत्सरकी प्रतिमा जिस तुझको हम उपासना करते हैं वोह तुम आयुष्मती संतानको धन पुष्टिसहित दीजिये और ब्राह्मण वाक्यभी देखिये.

सु एक्षत प्रजापतिः इमं वाऽआत्मनः प्रतिमामसृक्षियत्सम्वत्सरमितितस्मादाहुः प्रजापतिःसम्वत्सर इत्यात्मनोह्येतं प्रतिमामसृजत यदेवचतुरक्षरःसम्वत्सरश्चतुरक्षरः प्रजापतिस्तेनो हैवास्येषप्रतिमा

श० ११ । १ । ६ । १३

भाषार्थ.

ईश्वरने अपनी प्रतिमा सम्वत्सर नामको उत्पन्न किया ईसीकारण कहते हैं कि ईश्वर सम्वत्सरहै देखो सम्वत्सरमें चार अक्षरहैं और प्रजापतिमेंभी चार अक्षर हैं ईसीकारण सम्वत्सर ईश्वरकी प्रतिमा है यह शतपथब्राह्मणका लेख हुआ.

अब यह तौ सिद्ध हो चुका कि वेदमें प्रतिमा शब्द है और जब वेदमें प्रतिमा और उसकी विधि है तौ जैनियोंसे मूर्तिपूजा चली यह कहना असंगतहै अब दूसरा समाधान करते हैं.

२ जबकि आप निराकारकी मूर्ति नहीं मान्ते तौ निराकारसे साकार जगत् कैसे बन गया यदि कहोकि प्रकृतिसे जगत् हुआ तौ प्रकृति जड़है कुछ नहीं करसक्ती जब ईश्वरने ईच्छा करी तौ मनबुद्धि चित्तादि होगये तौ ईश्वर साकार होगया साकार हौनेसे इसमें मूर्ति भी सिद्ध होगई और यदि ईश्वरका कुछभी आकार नहो और आकाशसेभी सूक्ष्म

बताते हो तौ ईश्वरमें शून्यापत्ति दोष आ जायगा क्योंकि जब आकाशही शून्य है तौ ईश्वरमें शून्यापत्ति दोष आ जायगा क्यों कि जब आकाशही कुछ पदार्थ नहीं तौ ईश्वर आकाशसेभी सूक्ष्म होनेसे कब कोई पदार्थ ठहर सक्ता है वोह तौ शून्य हो जायगा इस्से ईश्वरको केवल निराकार मान्ना और निराकारभी कैसा (शून्य अर्थात् कुछ नहीं बड़ीभूल है क्यों कि वोह कैसाही सूक्ष्मकौं नहो पर कुछतौ है ही बस वोही होना ईश्वरता साकारता युक्त है यदि वोह कुछ नहीं है तौ तुह्मारे कथनानुसार यह प्रगट होता है कि ईश्वर हैही नहीं (शून्य) हौनेसे सुनिये ईश्वर कोई आकार वालाभी अवश्य है जिस्से संसार प्रगट होता है वेद प्रादुर्भाव होते हैं वोह शास्त्रकारोंने दो प्रकारसे कहा है सगुण और निर्गुण जब प्रलयकाल होता है तब उसे कोई नहीं जान्ता बस वोही शेष रहजाता है उस कालमें वेद वचनसे उसको निर्गुण कहते हैं निराकार कहते हैं और जब वोह यह सृष्टिरचना करना चाहता है तब आपही अनेक रूप धारण कर साकार संज्ञक होता है यथाहि.

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः

तदेवशुक्रन्तद्ब्रह्मताआपःसप्रजापतिः यजुः अ० ३२ मं० १

वोही ईश्वर अग्नि है वोही आदित्यरूप है वायुचन्द्र संसारका बीज प्रसिद्ध जल प्रजापति आदिरूप उसीका है अब निराकारकू वेदही कहता है कि वोही ईश्वर अग्न्यादिरूप वाला है और आदित्यका आकारभी दीखता है " योसावादित्येपुरुषः" " हिरण्यगर्भ इत्येषः " जो सूर्यमंडलमें पुरुष है जो कि हिरण्यगर्भ है वोह यही ब्रह्मकी मूर्ति है यही उपनिषदोंमेंभी लिखा है " द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्तामूर्तश्चेति " ईश्वरके दो रूप हैं एक निराकार और एक मूर्तिमान् और देखिये.

तंयज्ञम्बर्हिषिप्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः
तेनदेवाअयजन्तसाध्याऋषयश्चये यजु० अ० ३१ मं० ९

जो साध्य देवता और ऋषि हैं उन्हौने सृष्टिके पूर्व उत्पन्न उस यज्ञसाधनभूत-यज्ञपुरुष ईश्वरको इस लोकमें प्रोक्षण किया तिसी करके यज्ञ करते हुए इसपर शतपथ

अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येतंप्रतिमामसृजत श० ११।१।८।३

ईश्वरने अपनी प्रतिमा यज्ञनामको उत्पन्न किया इस कारण कहते हैं कि ईश्वर यज्ञस्वरूप है (यज्ञोवैविष्णुः) अब वेदसे यह बात निश्चय हुई कि यज्ञरूप ईश्वर है तौ जो कुछ यज्ञकी मूर्ति हुई वोह ईश्वरकी मूर्ति हुई अब वेदसे ईश्वरकी प्रतिमा निश्चित हो गई अब यह विचार कर्तव्य है कि यज्ञपुरुषकी मूर्ति कैसी होती है.

ओंदेवाहवै सत्रंनिषेदुः अग्निरिन्द्रः सोमोमखो विष्णुर्विश्वेदेवा अन्यत्रैवाश्विभ्याम् १ तेषांकुरुक्षेत्रंदेवयजनमासतस्मादाहुःकुरुक्षेत्रंदेवानांदेवयजनमितितस्माद्यत्रक्वचकुरुक्षेत्रस्यनिगच्छातित देवमन्यतऽइदंदेवयजनमितितद्धिदेवानांदेवयजनम् २ तआसतश्रियंगच्छेमयशःस्यामान्नादाःस्यामेति तथोऽएवेमेसत्रमासतेश्रियंगच्छेमयशःस्यामान्नादाःस्यामेति ॥ ३ ॥ तेहोचुः योनः श्रमणेतपसा श्रद्धयायज्ञेनाहुतिनाहुतिभिर्यज्ञस्योदृचं पूर्वोऽवगच्छात्सनः श्रेष्ठोऽसतदुनः सर्वेषांसहेतितथेति ४ तद्विष्णुः प्रथमःप्रापसदेवानांश्रेष्ठोऽभवत्तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानांश्रेष्ठइति५ सयःसविष्णुर्यज्ञःसं सयःसयज्ञोसौसआदित्यस्तद्धेदंयशोविष्णुर्नशशाक संयन्तुंतदिदमप्येतर्हिनैवसर्वइवयशःशक्नोतिसंयन्तुम् ६ सतिस्रधन्वमादायापचक्रामसधनुरारत्नीशिरउपस्तभ्यतस्थौतंदेवाअनभिधृष्णुवन्तःसमन्तं परिण्यविशन्त ७ ताहवम्र ऊचु इमावैवक्र्योयदुपदीकायोऽस्यज्यामप्यद्यात्किमस्मैप्रयच्छेतेत्यन्नाद्यमस्मै प्रयच्छेमापि धन्वन्नपोपिधिगच्छेत्तथास्मैसर्वमन्नाद्यं प्रयच्छेमेति तथेति ८ तस्योपरासृत्यज्यामपिजक्षुस्तस्यांछिन्नायांधनुरात्न्यौविस्फुरन्त्यौविष्णोःशिरःप्रचिक्षिदतुः ९ तद्धङ्घितिपपात तत्पतित्वासावादित्योभवदिति । ब्राह्मणम् श० १४।१।२।२७

भाषार्थः

अश्विनीकुमारके विना अग्नि इन्द्र सोम विश्वेदेवादिक देवता विष्णुके संग यज्ञ

करनेमें प्रवृत्त हुए १ उनका देवयजनस्थानकर्मभूमि कुरुक्षेत्र था जहांपर देव यजनस्थान निर्मित हो वोही कुरुक्षेत्राख्य कर्मभूमि कहाता है २ उन्हौने बैठकर कहा कि हम श्री और यशको प्राप्त करैं अन्नके भोक्ता होवें " और जो मनुष्य यज्ञ करते हैं वेभी ऐसीही इच्छा रखते हैं ३ उन्हो ने कहा कि हम सबमेंसे जो कोई श्रम तप श्रद्धा यज्ञ आहुतिके द्वारा यज्ञ सिद्धिको प्राप्त करै वोही सबमें श्रेष्ठ और हमारा सखा हो इसको सबने अंगीकार किया ४ विष्णुजीनेही सबमें मुख्य उस सबको प्राप्त किया वही सबमें श्रेष्ठ हुए इसी कारण कहते हैं कि विष्णु सब देवताओंमें श्रेष्ठ है ५ जो विष्णु है वोही यज्ञपुरुष है जो यज्ञपुरुष है वोही सूर्य है विष्णु यज्ञाभिमानी देवता इस यज्ञरूप तेजके रोकनेमें समर्थ न हुए इसी प्रकार दूसरेभी समर्थ नहीं होते ६. वोह यज्ञाभिमानी देव संकल्पमात्रसे धनुष धारणकर स्थित हुए और उसकी अरत्नी नोकपर शिरको धर स्थिर हुए तब देवता उनके चारों-तरफ स्थिर होकै उनका कुछ नहीं कर सके (किन्तु कलेश माना) ७ उन्हौंने उप-जिह्वका अर्थात् दीमकसे कहा कि इसे धनुषकी ज्याको काटो उन्हौंने कहा कि हमको क्या लाभ उत्तर दिया कि जहां तुम मट्टी निकालोगी वहां जल स्वयं प्रगट हो जायगा८ यहां यज्ञाभिमानी देवने विचारा कि हमको देवता धर्षणा नहीं करसक्ते यह विचार हंसी आई तौ तेज प्रादुर्भूत हुआ वोह देवताओंने औषधियोंमें नियुक्त किया और हास्यके तेजसे श्यामाक अन्न जिसे समा कहते हैं प्रगट किया उसका वाक्य नीचे लिखा है.

तस्यसिष्मियाणस्यपाक्रामततद्देवाऔषधीषुन्यमृजुः तेश्यामाकाअभवन् स्मयाकावैनामैते तैत्तिरीय०

यह बात उपजिह्वकाओंने अंगीकार करली और धनुषके नीचेकी कोटीको काटलिया उसके कटजानेसे दौनो कौने खुल यज्ञपुरुषाभिमानी देवका तेजरूपी शिर उड़गया और वोह सूर्य हुआ वोह सूर्य यही है.

यज्ञस्यशीर्षंछिन्नस्यरसोयत्रयत्रव्यक्षरत् ततस्तोगृहीत्वातेनै वेनमेतद्रसेनसमर्धयतीति।

यज्ञका शिर छिन्न होजानेसे वैष्णवीतेज मायामें गिरा उसका रस जहां जहां गिरा वहांसे लेकर उसी रससे मूर्ति व्यापक ईश्वरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है श० आगे ऐसा लेख है जब शिर नहीं रहा तौ यजमान स्वर्गफल और आशिष नहीं प्राप्त करसके तब सब देवताओंने अश्वनीकुमारोंको यज्ञमें भाग देना निश्चित्

करकै यज्ञपुरुषके शरीरपर शिर जोड़ ज्योंका त्यों करदिया और यजमानोंने फल पाये इसीको प्रवर्ग्य कहते हैं और शिर कटनेमें धनुषसे जो "घ्रां" यह शब्द हुआ इसीको धर्म कहते है महान् यज्ञपुरुषका सारभूत शिर पतित हुआ इसीकारण महावीर नामहै इन्हीकी मूर्ति यज्ञमें बनाते हैं

"प्रश्न" देवताओंके आकार कैसे होते हैं (उत्तर) निरुक्तमें लिखाहै पुरुषोंकेसे आकार होते हैं देखिये.

अथाकारचिन्तनंदेवतानांपुरुषविधाःस्युरित्येतंचेतनावद्भिस्तुत योभवन्तितथाभिधानान्यथापिपौरुषविविधिकैरङ्गैःसंस्तूयन्ते निरु० ऋष्वा तइन्द्र स्थविरस्य बाहू यत्सङ्गृभ्णामघवन्का शिरित्ते अथापिपौरुषविधिकैर्द्रव्यसंयोगैः ऋ० आद्वाभ्यांहरिभ्यामिन्द्रयाहिकल्याणीर्जायासुरणंगृहे तेअथापिपौरुषविधिकैःकर्मभिःऋद्धोद्रपिवंचप्रस्थितस्य आ श्रुकर्णश्रुधीहवम् (२।६) अ० १ पा० २ खं० २ निरु०

महाभाग्यवाले होनेसे देवताओंके आकारमें नियम नहीं है नियममें ऐश्वर्यका व्याघात होनेसे देवताओंका महाभाग्यपन जाता है इस कारणसे अवश्य देवताओंका आकार है और कृतिमताको विना देखे विकरण नाम कोई देवताधर्म नहीं है इस कारण देवताओंकी प्रकृति और स्वभावका चिन्तन करना अवश्य है क्यों कि ईश्वर और देवता उभय भावी हैं इसकारण उनका स्वभाव आकार जान्नेकी इच्छा है.

जो आत्मवित् हैं वोह सृष्टिके पूर्व परमेश्वरको आकार रहित मान्ते है और जब सृष्टिकी उत्पत्ति पालन करता है तब आकृतिवाला है संहार उपरान्त अनाकृतिही होता है इसकारण निराकार कहते हैं.

नैरुक्त कहते हैं कि यही ईश्वर सदैव अग्नि वायु सूर्यादि नाम धारण करता है तौभी प्रत्यक्षविषय होनेसे इस पक्षमें " आकार " चिन्ता विषयके अभावसे होती है.

याज्ञिकपक्षवाले कहते हैं यह सब देवता पक्षवादी अग्नि सूर्य इन्द्रादि यह सब

प्रत्यक्ष अर्थसे सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि लोकमें नाम, देखे हुए पदार्थोंके होते हैं इस कारण यह रुद्रादि शब्द मनुष्यादिवत् आकारवाले होनेसे अर्थवाले हैं.

उन देवताओंका कैसा आकार है अथवा है या नहीं जो है तो कैसा है. आकारके अर्थ यहां दो हैं. चेतन अचेतन, चेतन मनुष्यादि अचेतन पाषाणादि अब यह विचार हुआ कि इनमें मनुष्यादिवत् चेतना है या पाषणादिवत् अचेतना है द्रव्यमात्र हैं इसपर लिखते हैं कि " पुरुषविधाः स्यु " इति एकमंत्रोंसे देवताओंका होना पाया जाता है (यत्काम इत्युपक्रम्य तद्देवतः स मंत्रो भवतीति) जिस कामनावाला देवता हो उसका वैसाही मंत्र होता है अर्थात् वोही विषययुक्त होता और वोह उसीके नामसे प्रसिद्ध होता है जो विषय मंत्रका वोही उसका देवता तो जब मंत्रोंके साथ देवता देखे जाते हैं तो मंत्रोंमें देवत्व होना निश्चय है यदि ऐसा ही आकार हो तो उसका प्रत्यय (विधान) होना चाहिये और इसीप्रकार पुरुषभावसे युक्त मंत्रोंमें देवताओंका संबंध है इसीसे निरुक्तकार कहते हैं कि पुरुषके आकारवाले हैं वा पुरुषोंकेसे शरीरवाले हैं इसी हेतुसे " चेतनावद्धिस्तुतयो भवन्ति " जिससे कि चेतनोंके अर्थ स्तुतिये होती हैं वा चेतनोंकोही स्तुतिमंत्र करते हैं इससे पुरुषविग्रह कहा. यदि कहोकि चेतन्यता तो गौ आदि पशुओंमेंभी होती है तो इसका उत्तर यही है कि उन्है ज्ञान नहीं होता संसारमेंभी जिसै हिताहित जान्नेकी सामर्थ्य नहीं होती उसको कहते हैं कि यह अचेतन है इसीप्रकार यह पशु है चैतन्यता होनेमेंभी लोक अलोक आदिका ज्ञान नहीं होता इस्से इनकी अचेतन कीनाई उपेक्षा करी है क्योंकि पशु भविष्यत्की चिन्ता नहीं करते मनुष्य सब कुछ समझते हैं लोक अलोक जान्ते हैं मर्त्यधर्मसे अमृतत्वकी इच्छा करते हैं इसकारण हिताहित जान्नेसे (सिषाधयिषितत्वादनपेक्ष्य सामान्यं विशिष्टश्चैतन्यः पुरुषो नियम्यते) पुरुष ही नियोजन किया जाता है जैसे विद्वान् पुरुष अर्थयुक्त वाणियोंकूं सुन्ते हैं तैसे ही देवताभी इसकारण देवताओंके आकार पुरुषोंकेसे हैं और इसीप्रकार पुरुषोंकीनाई परस्पर संवादसूक्तोंमें देखा जाता है.

कयाशुभायादिषुकुतस्त्वमिन्द्रेत्येवमादीनि ऋ० मं० १अनु० २३

इस मंत्रमें इन्द्र और मरुतका संवाद है इस्सेभी देवता पुरुषाकारवाले सिद्ध हैं और पुरुषसम्बन्धी अंगोंसे स्तुति किये जाते हैं देखिये.

उरुंनो लोकमनुनेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयंस्वस्ति

ऋष्वाते इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता

ऋ० मं० ४।७।३१।३

(उरुं) विस्तीर्णं (लोकं) यः त्वम् (नः) अस्मान् (अनुनेषि)अनुनयसि स्वेन सुकृतेन कर्मणा गच्छतां गमनानुग्रहे वर्तसे (सर्वज्योतिः) आदित्य समानं प्रकाशेन लोकं (अभयम्) (स्वस्ति) स्वस्तयनाय तस्य (ते) तव वयम् (इन्द्र) (ऋष्वा) ऋष्वौ एतौ रेषणौ शत्रूणाम् (स्थविरस्य) महतः (बाहू) हस्तौ (बृहन्ता) बृहन्तौ महान्तौ (शरणा) शरणौ आश्रयणीयौ नित्यम्(उपस्थेयाम्)उपतिष्ठेसेत्येतदाशास्महे

भाषार्थः

बड़ेलोक जो तू हमारे अर्थ प्राप्त करताहै अपने कर्मसे जानेवालोंपर अनुग्रहसे वर्तताहै सूर्यसमान प्रकाश संसारके अभय और कल्याणके वास्ते हे इन्द्र! तेरी शत्रुओंकी मारनेवाली बड़ी दोनौ बाहू हमें नित्य आश्रयमें रक्खैं शरण दें यही हम चाहते हैं (यत् सङ्गृभ्णाइत्यादि) इन दोनौ मंत्रमें बाहू और मुष्टि सम्बन्ध दर्शनसे इन्द्रपुरुष विधिसे स्तुति कियागया है नहीं तो मंत्रौंका अभिधान झूंठा हो जायगा औरभी प्रमाण सुनिये.

आद्वाभ्यांहरिभ्यामिन्द्रयाह्या चतुर्भिराषड्भिर्हूयमानः
अष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयंसुतसुमख मामृधस्कः

ऋ० मं० २।६।२१।४

हेभगवन् (इन्द्र) यदि तावत् तव द्वौ हरी सन्निहितौ ततस्तावेवरथेयुक्त्वा ताभ्याम् (हरिभ्याम्) आयाहि अथ चत्वारःततस्तैः (चतुर्भिः) अथषट्ततस्तैः (षड्भिः) अथाष्टौ ततस्तैः (अष्टाभिः) अथदश ततस्तैः (दशभिः) आयाहि इदं

(सोमपेयं) सोमपानकर्म प्रतिकिम् इति एवं ब्रूमहे (अयंसुतः) सोमोभिषुतः त्वदर्थम् सत्वं हे (सुमुख) सुधन (मा) केनचित् (मृधः) संग्रामं (कः) कार्षीं अविलम्बितमागच्छेत्यभिप्रायः

भाषार्थः

हे भगवन् इन्द्र यदि आपके रथमें दो घोडे जुते हों वा चार अथवा छः वा आठ वा दश है तो उसमें सवार होकर आओ इस सोमपान कर्मके निमित्त और यहभी हम कहते हैं कि यह सोमरस तुह्मारेवास्ते है सो हे सुधन! तुम आओ और किसीसे संग्राम मत करो शीघ्र आओ

अपाः सोममस्तमिन्द्रप्रयाहिकल्याणीर्जायासुरणंगृहेते
यत्रारथस्यबृहतोनिधानंविमोचनंवाजिनोदक्षिणावत्

ऋ० मं० ३।३।२०।१

हे भगवन् इन्द्र (अपाः) पीतवानसि (सोमम्) एतस्मिन् कर्मणि (सत्वं पुनः) (अस्तं) गृहं (प्रयाहि) यस्मात् तव (कल्याणीः जाया) (तत्रबृहतः) च रथस्य (निधानं) रथशाला (विमोचनं) च (वाजिनः) जित्वा संग्राममागतस्य (दक्षिणावत्) अन्यदपि (सुरणं) यद्यद्रमणीयं तत्सर्वं ते तवगृहे वर्तते तस्मात् पुनरस्तं प्रयाहि

भाषार्थः

हे इन्द्र! आपने इस कर्ममें सोमपान कर लिया है अब गृहको जाओ जिस्से तुह्मारी सुन्दर कल्याणी जाया और बड़े रथके रखनेवाली रथशाला और घुड़शाला संग्रामसे जीत पाकर आये हुए प्रयोजनकी जो जो रमणीय वस्तु होती है वोह सब तेरे यहां हैं इन मंत्रोंसे पुरुषाकारवाले देवता होते हैं इत्यादि औरभी मंत्र हैं जिनसे इन्द्रको अपने वचन सुनाने और पुरोडाश भोजन करनेको बुलाया है विशेष इसपर निरुक्तमें विचार हुआ है अपेक्षा हो देख लीजिये.

अब दूसरा पक्ष कहते हैं कि देवताओंके आकार अपुरुष विधिकेभी होते हैं.

अपुरुषविधाःस्युरित्यपरमपितुयद्दृश्यतेऽपुरुषविधं
तद्यथाग्निर्वायुरादित्यःपृथिवीचन्द्रमा इति
उभयविधास्युरपिवापुरुषविधानामेवसतांकर्मात्मान
एतेस्युर्यथायज्ञोयजमानस्यैषचाख्यानसमयः निरु० ३।७

देवताओंका विधान अपुरुष विधिकाभी कहते हैं यह देखा जाता है कि अपुरुषाकारभी देवता हैं जैसे अग्नि वायु आदित्य पृथ्वी चंद्रमा यह अपुरुषाकारवाले हैं निरुक्तकार कहते हैं "उभयविधा स्युः" दौनौ प्रकारके होते हैं क्यों कि दौनोंमें वेदोंका प्रमाण है यह तीसरा पक्ष है पृथ्वीजलादिके अभिमानी देवता होते हैं अथवा जैसा यजमानका यज्ञ हो वैसाहि आकार देवताओंका चिंतन करना क्यौं कि आख्यानोंमें ऐसा है कि पृथ्वी गौरूपधर ब्रह्मलोकको गई इत्यादि अग्नि ब्राह्मणरूपधर अर्जुन और श्रीकृष्णके निकट आया था यह देवता महाभाग्यवान हौनेसे मूर्तिमान् पुरुषाकार अपुरुषाकार एकधा द्विधा बहुधा हो जाते हैं देवताओंकी परमशक्तिका वर्णन अवतार विषयमें करचुके हैं इत्यादि विशेष देखना हो तौ निरुक्तमें देखिये यहांतक मंत्रौं और युक्तियोंसे आकार सिद्ध हो चुका, अब सुनिये पृथ्वीके देखनेसे ईश्वरका ऐसा स्मरण नहीं होता जैसा कि एक विशेष चिन्ह माननेसे होता है और तुम तौ आकाशादिकौंको नित्य मान्ते हो जब यह ईश्वरकी रचना नहीं तौ इनसे ईश्वरका क्या संबन्ध फिर उनके देखनेसे ईश्वरका स्मरण कैसे हो सक्ता है सनातन धर्मानुसार यह ईश्वरके बनाये हैं पर इनमें स्तुतिप्रार्थनाका विधान नहीं है कपड़ेको देखकर यह बोध होता है कि कोई इसका बनानेवाला है कुछ कपड़ेसे प्रार्थना स्तुति नहीं होती और न कोईयों कहता है कि हे पत्थर तूं हमें अमुक सुख धन पुत्र दे किन्तु मूर्ति परमेश्वरका एक प्रधान चिन्ह है जैसे कि ओंकार प्रधान नाम है जैसे मुमुक्षु संन्यासियोंको ओंकार उपास्य है इसी प्रकार ग्रहस्थोंको प्रतिमामें ईश्वराराधन कर्तव्य है यह एक ऐसा चिन्ह है कि जिसके दर्शन मात्रसे ही यह स्मरण हो जाता है कि ईश्वरकी उपासना करणीय है और तुरतही ईश्वरका नाम दर्शन करनेवाले उच्चारण करते हैं और जब नाम स्मरण और प्रार्थना करैगा तौ प्रेम हौनेसे ईश्वरका ध्यान सदा बना रहैगा और वोह एकांत पाकर चोरी आदिभी नहीं करसक्ता क्यों कि मूर्तिविधान हौनेसे कुछ यह नहीं कहा है कि ईश्वर सर्वव्यापी नहीं किन्तु एक विशेष स्मरण चिन्ह शास्त्रकथित है जिस्से कि सम्पूर्ण गुण ईश्वरके विदित हो जाते हैं जैसे किसीकी तसबीर देखनेसे यदि उसके गुण पूर्व श्रवण-

करे हों तौ वोह सब स्मरण हो आतेहैं इसीप्रकार ईश्वरकी मूर्ति है परन्तु यह एक ऐसी वस्तु है कि एक अनिर्वचनीय भक्ति ईश्वरमें उत्पन्न करदेती है जैसे ऋषि मुनियोंके चित्र देखनेसे उनके गुण स्मरण हो आते हैं और उनका चरित्र चित्तमें कईदिनतक उपस्थित रहता है इसी प्रकारसे जो तीनोंकाल ईश्वरका अर्चन वंदन करते हैं और स्तोत्र पाठ करके उसके गुणोंका कीर्तन करते हैं तौ उनके मनमें कभीभी दुष्कर्मोंका प्रादुर्भाव नहीं होता जो वे दुष्कर्म करैं जो उसका पूजन स्मरण प्रतिदिन करता है वोह सम्पूर्ण बुराइयोंसे बच जाता है और दयानंदानुयायिमें यह स्वयंही देखा है कि ईश्वरका नाम निष्प्रयोजन समझ कर नहीं लेते रातदिन निन्दा झूंठ मिथ्या वितंडा करते हैं यह स्वामीजीके उपदेश और निर्भक्तिका फल है.

अब तीसरे भावका उत्तर सुनिये परमेश्वरकी भावना कोई ऐसी नहीं करता है कि, मूर्तिमें है अन्यत्र नहीं है किन्तु मूर्तिमें भावना करते हुएभी यही कहते हैं कि परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक हौनेसे इस मूर्तिमें व्यापक है और विकार रहित हौनेसे उसमें विशेषस्मरण होता है जैसे आज दिन महारानीकी बीसियों मूर्ति बनी हैं और सबमें उनकी भावना है कुछ मूर्ति बनजानेसे उनका राज नहीं घटगया किन्तु प्रजाभक्ति अधिक बढ जाती है और यह कहना तौ स्वामीजीका प्रलाप है कि जब व्यापक है तौ फूल पत्ते चंदन क्यों चढाते हो पुष्पादि निवेदन करना विधान और आदरका सूचक है व्यापक हौनेसे पुष्पादि न चढायेजांय तौ आपभी तौ व्यापक मान्ते हैं क्या रोटी दालभात भोजनमें व्यापक नहीं है. यदि कहोकि है तौ आप भोजन करते समय ईश्वरकोभी रोटी वा पूरीके साथ भक्षण करनेवाले हुए. हम पत्थरकी पूजा नहीं करते यदि करते तौ पत्थर २ जपते और पुष्पादि चढाने व्यर्थ होजाते हम लोग तौ उस मूर्तिको विधानसे प्राणादिप्रतिष्ठा करके उनमें देवता वा ईश्वरकी भावनासे पूजा करते हैं स्तुतिपाठादि सब ईश्वरका नाम ग्रहणकर, करते हैं धूपदीपादि सब ईश्वरहीके उद्देश्यसे करते हैं और स्तुति प्रार्थना करते हैं आपकूं वोह पत्थरही दीखता होगा क्योंकि इश्वरको उसमें व्यापक कदाचित् तुम न मान्ते होगे भला भावसे ईश्वर कैसे बंध जायगा क्या ईश्वर मूर्तिके सिवाय अन्यत्र नहीं वोह सब स्थानमें है यदि एकही स्थानमें हो तो लक्षों करोडों मूर्तिमें क्यों उसका भावहो सक्ता व्यापक हौनेसे वोह सब स्थानमें है परन्तु भाष्यभूमिकाके नियमोंमें तौ ईश्वरको आपहीने बांधा है कि अवतार नहीं लेता. सृष्टिक्रमके प्रतिकूल कुछ नहीं करसक्ता शक्तिहान ईश्वर तुह्माराही है जो भक्तोंकी प्रार्थना सुनकर तनक पापभी नहीं क्षमा करता अन्यधातुमें अन्यधातुकी भावना नहीं होसक्ती भावना ईश्वरकी है जो सर्वशक्तिमान चेतन व्यापक है (भावे हि विद्यते देवो) सर्वज्ञ हौनेसे वोह

भावमें विद्यमान है यादि इसकी समान कोई दूसरा हो तौ उसकी भावना होसक्ती है दुखसुखकी भावना नहीं होसक्ती भावना ईश्वरहीकी होती है सुखदुख कर्मोंका फल है इनमें भाव नहीं घटसक्ता ईश्वरका भाव सर्वव्यापी हौनेसे जिसमें चाहैं बन-सक्ता है जडपदार्थकी भावना जडमें नहीं बनसक्ती रागादिकी निवृत्ति अंधे आदि-की नेत्र लाभकी संभावना नहीं होसक्ती क्योंकि वोह कर्मानुसार प्राप्त हुए हैं और समयान्तरमें जाते रहैंगे ईश्वरकी भावना सर्वज्ञ होनेसे सब स्थानमें करसक्ते हैं और वोह सर्वशक्तिमानादि गुण जैसा है वैसाही जान्ते हैं इसकारण हमारी भा-वना ठीक है.

स० पृ० ३०८ पं० ११ जो मंत्र पढकर आवाहन करनेसे देवता आजाता है तौ मूर्ति चेतन क्यों नहीं होजाती और विसर्जन करनेसे चली क्यों नहीं जाती और वोह कहांसे आता कहां जाता है परमात्मा न आता है न जाता है जो तुम मंत्रबलसे परमेश्वरको बुलालेतेहो तौ उन्ही मंत्रोंसे अपने मरेहुए पुत्रके शरीरमें जीवको क्यों नहीं बुलालेते हो और शत्रुके शरीरमें जीवात्माका विसर्जन करकै क्यों नहीं मारस-के यह पोपजीकी ठगई है.

समीक्षा. देवता और ईश्वरका मंत्रोंसे सम्बध है वेदविधान हौनेसे और देवता सामर्थ्ययुक्त हौनेसे सहस्रोंशरीर धारणकरलेते हैं जो कि हमारे नेत्रपथसे अतीत हैं देवता मंत्रोंके प्रभावसे उस स्थानमें प्राप्त होजाते हैं परंतु अलक्ष्य रहते हैं देवता परोक्षप्रिय हैं देवता क्या पितरोंकाभी आवाहन है " यथा आयन्तुनः पितरः " और " अग्नआयाहि " इत्यादि अनेक मंत्र देवतापितरोंके आवाहनके है और शुद्धान्तः करण मुनिगणोंको यह सामर्थ्य है जैसाकि जन्मेजयके यज्ञमें तक्षकादि सर्प और इन्द्र आवाहन करतेही उपस्थित होने लगे थे और मंत्रबलसे सहस्रोंसर्प आन २ कर अग्नि कुंडमें भस्म होगये थे महाभारतका आदिपर्व देखो ऋग्वेदके बहुतसे मं-त्रोंमें देवताओंका आवाहन है सो जो उस विधानको जान्ते थे बुलालेतेथे और जा-ननेवाले अबभी बुलासक्ते हैं मूर्तिमें देवताओंका आवाहन विसर्जन नहीं करते हां प्रा-णप्रतिष्ठा करते हैं और इसका विधानभी है अबभी जिस मूर्तिकी प्रतिष्ठा अच्छे प्रकार हो उसमें चमत्कार होता है और लोगोंको इष्टप्राप्ति होती है उनके चमत्कार की विधि सामवेदके षड्विंश ब्राह्मणमें लिखी है.

यदादेवतायतनानिकम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्य न्तिस्फुटंतिस्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्तितदाप्रायश्चित्तं भ वतीदंविष्णुर्विचक्रम इति स्थालीपाकंहुत्वापंचभिराहुति

भिरभिजुहोति विष्णवेस्वाहा सर्वभूताधिपतयेस्वाहा चक्रपा णयेस्वाहेश्वरायस्वाहा सर्वपापशमनायस्वाहेति व्याहृतिभि र्हुत्वाथ साम गायेत ॥

जब देवताओंके स्थान कापतेहैं देवताओंकी प्रतिमा रोती है हंसती हैं नाचती हैं एकदेशसे स्फुटनको प्राप्त होती हैं पसीने युक्तहोती है नेत्र खोलती हैं मीचती हैं तब प्रायश्चित होता है"इदंविष्णुर्विचक्रमेति"इस मंत्रसे हवनकर पांच व्याहृतियोंके होम करै इसमें चक्रपाणि आदिशब्दसे ईश्वर साकार सिद्ध होताहै इस्से यही सिद्ध है कि जबतक यह मूर्ति स्थिर रहती है तभीतक शान्तिहै चलायमान होतेही वैकारिक गुणयुक्त होती है ईश्वरके अवतारोंकी मूर्ति वेदानुसार प्रतिष्ठा करके पूजनकरतेहैं परन्तु ईश्वरको आने जानेवाला किसीने नहीं कहा ईश्वर सर्वव्यापक होनेसे आताजाता नहीं और मूर्ति प्रतिष्ठा करनेसे क्यों चलायमानहो यह मूर्ति तौ एकघर समझिये जैसे कोई मनुष्य घरमें बैठाहै तौ क्या वोह घर चलने लगैगा कभी नहीं और स्था गति निवृत्तौ धातुसे प्रतिष्ठा शब्द सिद्ध होता है जो चलायमान न हो अचल रहै वोही प्रतिष्ठा की जाती है और जो चलै तौ हाला चाला होजाय यह तौ एक देवताओंके विग्रह हैं उनमें देवता आनकर प्रविष्ट होजाते हैं जैसे एकस्थान टूटजानेसे मनुष्य और स्थानमें चले जाते हैं इसी प्रकार जब मूर्ति अशुद्ध होजाती है या टूटजाती है तौ देवता और मूर्तिमें प्रवेश करजाते हैं महाभाग्य होनेसे एक अनेक होजातेहैं, यवनादिके स्पर्शसे देवता नहीं रहते उनका निवास बड़े पवित्रस्थानमें होताहै जैसे घरहालनेसे बड़ा उत्पात होताहै उसीप्रकार मूर्ति आदिमेंभी विकार होनेसे प्रायश्चित है पुत्रादिकोंमें प्राण डालनेका विधान नहीं है उनका आत्मा सर्वज्ञ नहीं एक अनेक नहीं होसक्ता मृतक होनेपर कर्मानुसार दूसरे तनुको प्राप्त होताहै जो पितर आदि किसी योनिको प्राप्त होताही है फिर कैसे प्राण आवै और वोह कैसे रहैं पितापुत्रकी आत्माकू बुलावै और उसका और बुलावै तौ जगतकी व्यवस्था नष्ट होजावैं यह सामर्थ्य देवताओंकोही है प्रत्येक मूर्तिमें अपना आत्मा प्रवेश करसक्तेहैं

स० प्र० पृ० ३०८ पं १८ प्रश्न.

प्राणाइहागच्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा आत्मेहाग च्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखंचिरंतिष्ठन्तुस्वाहा ॥

इत्यादि वेदमंत्रहैं क्यों कहतेहो नहीं है (उत्तर) भाई बुद्धिको थोडीसी काममें लाओ यह वाममार्गियोंकी वेदविरुद्ध तंत्रग्रंथोंकी पोपरचित पंक्तियां हैं (प्रश्न) क्या तंत्र झूंठाहै (उत्तर) हाँ सर्वथा झूंठा है जैसे आवाहन प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्तिविषयक वेदोंमे एक मंत्रभी नहीं वैसे " स्नानं समर्पयामि " इत्यादि वचनभी नही अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादि मूर्ति रचयित्वा मंदिरेषु स्थाप्य गंधादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाणादिकी मूर्ति बना मंदिरोंमें स्थापनकर चंदन अक्षतादिसे पूजे ऐसा लेशमात्रभी नहीं ॥

समीक्षा. यहां स्वामीजीने प्राणप्रतिष्ठाके मंत्र स्वयं ही लिखकर कहदिया कि यह वेदवाक्य नही. मतहो हम आगे मंत्रभागहीके वचन प्राणप्रतिष्ठामें लिखैंगे और क्रमानुसार मूर्तिका बनाना लिखा जायगा वहीं प्राणप्रतिष्ठा लिखैंगे और तंत्र सब सचाहै करनेवालाहो विधानसे करै तौ निश्चय सिद्ध होगा जिसे पूछनाहो हम बतासक्ते हैं श्रद्धासे करैगा तौ बेशक सिद्ध होगा.

स० प्र० पृ० ३०९ पं० १ जो वेदोंमें विधि नहीं तौ खंडनभी नहीं और जो खंडन है तौ " प्राप्तौ सत्यां निषेधः " मूर्तिके होनेहीसे खंडन होसक्ता है (उत्तर) विधि तौ नहीं परन्तु परमेश्वरके स्थानमें किसी अन्यपदार्थको पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध कियाहै क्या अपूर्वविधि नहींहोती सुनो यह है.

अन्धन्तमःप्रविशन्तियेऽसम्भूतिमुपासते ततोभूयइवतेतमोयउ संभूत्याᳬरताः यजु० अ० ४० मंत्र ९

न तस्यप्रतिमा अस्ति यजु० अ० ३४ मं० ४३
यद्वाचानभ्युदितं येनवागभ्युद्यते ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुतेयेनाहुर्मनोमतम् ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥२॥
यच्चक्षुषानपश्यतियेनचक्षूंषिपश्यन्ति ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ३ ॥
यच्छ्रोत्रेणनशृणोतियेनश्रोत्रमिदंश्रुतम् ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ ४ ॥

यत्प्राणेनप्राणितियेनप्राणःप्रणीयते ॥
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥८॥ केनोपनि०

भाषार्थः

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारणको ब्रह्मके स्थानमें उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागरमें डूबते हैं और संभूति जो कारणसे उत्पन्नहुए कार्यरूप पृथ्वी आदिभूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादिके शरीरकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें करते हैं वे उस अधंकारसेभी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोरदुःखरूप नरकमें गिरके महाक्लेश भोगते हैं॥१॥ जो सब जगतमें व्यापक है उस निराकार परमात्माकी प्रतिमापरिमाणसादृश्य वा मूर्ति नहीं है ॥२॥ जो वाणीका इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्तासे वाणीकी प्रवृत्ति होती है उसको ब्रह्मज्ञान और उपासना कर और जो उस्से भिन्न है वे उपासनीय नहीं १ जो मनसे इयत्ता करके मनमेंभी नहीं आता जो मनको जान्ता है उसी ब्रह्मको तू जान और उसीकी उपासनाकर ओर जो उस्से भिन्न जीव और अंतःकरण है उसकी उपासना ब्रह्मके स्थानमें मतकर २ जो आंखसे नहीं दीखपड़ता और जिस्से सब आंखे देखती हैं उसीको तू ब्रह्मजान और उसीकी उपासना कर और जो उस्से भिन्न सूर्य विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ है उनकी उपासना मतकर॥३॥जो श्रोत्रोंसे नहीं सुना जाता और जिस्से श्रोत्र सुन्ताहै उसीको तू ब्रह्मजान और उसीकी उपासनाकर उस्से भिन्न शब्दादिकी उपासना उसके स्थानमें मतकर ॥४॥जो प्राणोंसे चलायमान नहीं होता जिस्से प्राण गमनको प्राप्त होताहै (फिर मूर्ति उसके आगमनसे क्योंकर चलायमान होगी क्योंकि मूर्ति उसकी है और वोह प्राणोंसे चलायमान नहीं होता इस्से मूर्तिभी नहीं चलती) उसी ब्रह्मको तूं जान उसीकी उपासनाकर जो यह उस्से भिन्न वायु है उसकी उपासना मतकर ॥ ५ ॥

समीक्षा. यह संपूर्ण स्वामीजीका लेख असंगत है यहां यह विचार कर्तव्य है कि इस यजुर्वेदके मंत्रोंकी किसी पूर्व अथवा उत्तर मंत्रसे संगति है अथवा नहीं. जो यह कहैं कि विना संगतही कार्यकारण उपासनाका निषेध किया है तौ यह कहना चाहिये कि " ब्रह्मके स्थानमें " यह अर्थ किसपदका है- मंत्रके अक्षरोंसे तौ असंभूति–उत्पत्तिरहित और संभूति उत्पत्तिमत्- वस्तुकी जो उपासना करता है सो नरकमें पडता है यही अर्थ प्रतीति होता है तौ यह निर्णय करना चाहिये कि ब्रह्म असंभूति पदार्थ है अथवा नहीं जो उत्पत्ति रहित होनेसे ब्रह्मभी असंभूति

पदार्थ है तौ उसकी उपासना करनेसेभी नरक होगा और जो असंभूति पदार्थ ब्रह्म नहीं तौ संभूति शब्दका अर्थ होगा इसमें दो दोष है ब्रह्मको कार्यत्वापत्ति और ब्रह्मकी उपासनासे नरकभी होगा क्योंकि संभूतिकी उपासनामें नरकरूप फल मंत्रप्रतिपाद्य है जब पूर्व उत्तर संगति विना मंत्रके अक्षरोंके यह अर्थ कैसे करेंगे सो ईशावास्य इस मंत्रसे लेकर "अन्धंतमः" इस मंत्रतक कोई ऐसा पद नहीं कि जिसके अर्थ यह हैं "कि ब्रह्मके स्थानमें" इसकी संस्कृत ब्रह्मणःस्थाने अथवा ईश्वरस्य स्थाने यह कहींभी नहीं. सज्जन पुरुष यजुर्वेदका ४० वां अध्याय देखकर विचार लेंगे कि क्या प्रकरण है कुछ मंत्र पूर्वभी लिख आये हैं इस कारण उनका दुवारा लिखना ठीक नहीं ब्रह्मके स्थानमें कारण प्रकृति और कार्य पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरकमें गिरता है यह अर्थ प्रकरण विरुद्ध है और यहभी विचारना चाहिये कि ब्रह्मके स्थानमें इसका भावार्थ क्या है ब्रह्मका स्थान कौन है ब्रह्मकी उपासनाका स्थान वा ब्रह्मका निवासस्थान वा ब्रह्मरूपस्थान यह अर्थ है प्रथम पक्षमें तौ ब्रह्मकी उपासना स्थान कोई दूसरा पदार्थ स्वामीजीके मतमें नहीं है क्यों कि यदि ब्रह्मकी उपासनाका स्थान कोई पदार्थ मानैंगे तौ प्रतीक उपासना सिद्ध होगी क्यों कि ब्रह्म बुद्धिसे किसी पदार्थकी उपासनाही प्रतीकोपासना है और यदि ब्रह्मके निवासस्थानको ब्रह्मस्थान मानैं तौ ब्रह्मको व्यापक होनेसे सर्वही वस्तुमात्र ब्रह्मका निवासस्थान है तिस स्थानमें कारण कार्य उपासना करताही कौन है जो नरकको प्राप्त होगा क्योंकि कारण प्रकृति और कार्य पृथिवीआदिभी तौ ब्रह्मका निवासस्थान है तिसमें कार्य कारण दृष्टि सबको प्राप्त है क्योंकि कारणको कारण और कार्य्यको कार्य्य सबही जान्ते हैं परिशेषतें ब्रह्मरूप स्थानमें जो कारण प्रकृतिकी और कार्य्य पृथिवी पाषाणादिकी उपासना करता है सो नरकमें पड़ता है यह अर्थ दयानंदजीको विवक्षित होगा आशय यह है जो कारण प्रकृति बुद्धिसे और कार्य्य पाषाणादि मूर्तिबुद्धिसे ईश्वरकी उपासना करता है सो नरकमें पड़ता है जब यह अर्थ इष्ट हुआ तौ विचारिये कि मूर्तिपूजक आचार्य ब्रह्ममें मूर्तिबुद्धि करकै पूजन उपासना करते हैं अथवा मूर्तिमे ब्रह्मबुद्धि करकै पूजनादि करते हैं प्रथम पक्ष तौ कोई विचारशून्यभी ग्रहण न करैगा दूसरा पूर्व आचार्य मार्गारूढ पुरुष सर्व व्यापक ब्रह्मको वा भक्तवात्सल्यादि गुण विशिष्ट कैलासवासी वैकुंठवासी देवको केवल मूर्तिरूप कैसे मानैगा इस कारण मूर्तिमेही ब्रह्मबुद्धि दृढ करकै पूजन करते हैं स्वामीजीका यह विपरीत ज्ञान है जो कहते हैं कि ब्रह्मके स्थानमें कारण कार्यबुद्धि कर्ताको नरक होता है ऐसी बुद्धि तौ इन्हीकी है प्रतिमा पूजकोंकी नहीं प्रतिमा पूजक तौ प्रतिरूप अधिष्ठानमें ब्रह्मबुद्धिकरके ब्रह्मका पूजन करते हैं इसी अर्थको व्यासजी सूत्रसे कथन करते हैं ॥

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् शा० अ० ४ पा० १ सू० ५

इस सूत्रमें प्रतीकोपासना बोधक वाक्य उदाहरण हैं प्रतीककी दृष्टि ब्रह्ममें कर्तव्य है अथवा ब्रह्मदृष्टि अधिष्ठानमें करनी योग्य है इस संशयकी निवृत्तिके वास्ते व्यासजी कहते हैं ब्रह्मदृष्टिही प्रतीकमें कर्तव्य है ब्रह्मको उत्कर्ष होनेसे ऐसे उत्कृष्ट ब्रह्मदृष्टि करनेसे उत्कृष्ट ब्रह्मही पूज्य होगा इस सूत्रसेभी स्वामीजीका मत निर्मूल प्रतीत होता है अब इस नवम मंत्रका अर्थ लिखते हैं इसकी संगति दशम और एकादश मंत्रके साथ है.

अन्धंतमःप्रविशन्तीति–

प्रथम तौ कारण कार्य्य उपासनाके समुच्चयकी इच्छाकर एक एक उपासनाकी निन्दा करते हैं जो कारण जड़ प्रकृतिकी उपासना करते हैं वे अन्धतममें प्रवेश करते हैं और जो कार्यकी उपासना करते हैं वे तिस्सेभी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं.

अन्यदेवाहुःसंभवादन्यदाहुरसंभवात्
इति शुश्रुमधीराणांयेनस्तद्विचचक्षिरे यजुः०अ०४०मं० १०

संभवात् अर्थात् ब्रह्म दृष्टिसे कार्य्य मृण्मयमूर्ति उपासनासे अन्यही विद्युतलोक प्राप्तिरूप फल आचार्य्य कहते हैं और अन्यही फल असंभवात् अर्थात् कारणरूप प्रकृति उपासनासे प्रकृतिलयरूप फल कहते हैं ऐसे धीराणाम् वेदार्थ उपदेशक आचार्योंका वचन हम लोग सुन्ते हुए जो आचार्य्य हमारे प्रति कार्य्य कारण उपासनाका व्याख्यान करते भये हैं.

संभूतिञ्चविनाशंचयस्तद्वेदोभयꣳसह
विनाशेनमृत्युंतीर्त्वासंभूत्यामृतमश्नुते यजु०अ०४०मं ११

इस मंत्रमें संभूति शब्दकी आदिमें अकारका लुप्त उच्चारण जान्ना क्योंकि विनाश शब्द कार्य्यका वाचक है और संभूति शब्दभी कार्य्यका वाचक होनेसे पुनरुक्ति होगी और नवमदशम मंत्रमें अकारका उच्चारण है इससे इस स्थानमें अकार है तब यह वाक्यार्थ हुआ जो पुरुष असंभूति कारणकी और विनाश धर्मवत् कार्यकी एककालमें उपासना करता है सो पुरुष कार्य उपासनासे मृत्युको तरकर कारण उपासनासे अमृतको प्राप्त होता है आशय यह है कि प्रतिमाका ब्रह्मदृष्टि पूजन

ध्यान करता हुआ स्वभाव प्राप्त निषिद्ध कर्मोंको उत्तीर्णहोकर कारण उपासनासे ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रममुक्तिको प्राप्त होताहै यह तीन मंत्रोंका एक महावाक्य है निन्दा कुछ निन्दा करनेको नहीं प्रवृत भई किन्तु विधानयोग्य अर्थकी स्तुतिकरनेके वास्ते प्रवृत्त हुई है इसन्यायसे नवम मंत्रसे कारण कार्य उपासनाकी निन्दा समुच्चैके अर्थ करी है और दशम मंत्रसे एक एकका भलभी बोधन कियाहै क्योंकि निष्फलका समुच्चय नहीं होता जैसे कृषिकर्म और वाणिज्य प्रत्येक सफल होवैं तौ उन दोनोंका समुच्चय करके एकपुरुष सेवन करता है इस्से दशम मंत्रमें एकएक सफल कहा और एकादशमें समुच्चय कहाहै इस रीतिसे तीन मंत्रोंकी एक वाक्यता होनेसे प्रतीकोपासना स्पष्ट सिद्ध है १

अब दूसरे "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यह वेदवचन पूरामंत्र क्यों नहीं लिखा इसका अर्थ तौ इतनाही है कि उसकी प्रतिमा नहीं सो यहां यह विचार कर्तव्य है कि तत् शब्दार्थ क्या है निराकार है वा साकार सर्वजगतमें व्यापक है वा परिच्छिन्न और प्रतिमाशब्दार्थ क्या है सो बात विना प्रकरणके और पूरे मंत्रके निश्चित नहीं होसक्ती और विना प्रकरणके विचारे जो स्वामीजी व्यापक निराकारका वाचक तत् शब्द कहते हैं तौ हम कहते हैं साकारही तत्शब्दका अर्थ क्यों न हो और प्रतिमा शब्दका अर्थ सादृश्य मानकर उस साकार विश्वरूप परमात्माकासादृश्य किसीमें नहीं ऐसा अर्थ करनेमें क्या हानि इस कारण प्रकरण और पूरेमंत्रका जान्ना अत्यावश्यक है इस्से पहले (तदेवाग्नि०) इस ३२।१ मंत्रमें अग्न्यादिरूपसे परमात्माकी स्थिति कही है. दूसरा मंत्र.

सर्वे॑निमे॒षाज॑ज्ञिरेवि॒द्युत॒ः पुरु॑षा॒दधि॑ नैन॑मू॒र्ध्वंनति॒र्यञ्च॒ नम॒ध्येपरि॑जग्रभत् २

स्वयं ज्योतिःस्वरूप पुरुषमें सबही निमेषादिरूप खण्डकाल उत्पन्न होता भया औ इस पूर्ण पुरुषको "ऊर्ध्ववातिर्यञ्च" चारोंदिशाओंमें वा मध्यमें कोई ग्रहण नहीं करसक्ता सर्वका कारण होनेसे आशय यह है कि पूर्वमंत्रमें अग्नि आदिभाव कहनेसे ग्राह्यता प्रसक्तिका निवारण करादिया अवास्तव स्वशक्तिनिर्मित अग्निआदिभावसे वास्तव ग्राह्यत्व कारणात्मामें नहीं होसक्ता.

नत॒स्य॑प्रति॒मा॑अ॒स्ति॒यस्य॒नाम॑म॒हद्यश॑ः हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भइत्ये॒षः मा॒मा॒हि॒ꣳसी॒दित्ये॒षा॒यस्मा॒न्नजा॒त इत्येषःयजु० अ० ३२ मंत्र० ३

प्रतिमा शब्दके अर्थ दो हैं एक तो तुल्यरूपान्तरप्रतिमाशब्दार्थ तिसको तो निषेध करते हैं जिस परमात्माका नाम महत् है तथा यश कीर्ति महत् बडी है तिसका तुल्यरूपान्तर नहीं है और द्वितीय जो प्रतिमाशब्दार्थ है सो स्वयं मंत्र अंगीकार करते हैं "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे" इन चारमंत्रोंका जो अनुवाक है सो भी इसीका रूपान्तर न्यूनरूपहै तथा मामाहिंसी इत्यादि मंत्रवोध्यभी इसीकारूप है इसी रीतिसे हिरण्यगर्भादि परमेश्वर कार्य्य होनेसे सूर्यप्रतिबिम्बको सूर्य्यप्रतिमावत् न्यून मणिको अधिकमणिकी प्रतिमावत् उत्तमसुवर्णमुद्रिकाकी निकृष्टसुवर्णमुद्रिकाको प्रतिमावत् प्रतिमाहै और हिरण्यगर्भसे जो स्वामीजीने निराकारके अर्थ लिये हैं सो प्रसंगविरुद्धहै और यहां यह अर्थ नहीं है कि उस परमेश्वरकी मूर्ति नहीं है क्योंकि परमेश्वरकू प्रतिमारूप ऋग्वेद कहता है.

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानं नमाज्यकिमासीत्परिधिः
कआसीच्छन्दःकिमासीत् प्रउगंकिमुकथंयद्देवादेवमय
जन्तविश्वे ऋ० अ० ८ अ० ७ मं० १८०

अर्थ

सबकी यथार्थ ज्ञानबुद्धि कौन है और प्रतिमा मूर्ति कौनहै और जगतका कारण कौनहै और घृतके समान सार जान्नेयोग्य कौन है और सब दुःखोंका निवृत्तिकारक और आनंदयुक्त प्रीतिकापात्र परिधि (सीमा) कौन है और इस जगतका पृष्ठावरण कौन है और स्वतंत्र वस्तु और स्तुति करने योग्य कौन है यहांतक तो इसमें प्रश्न है अन्तमें सबका उत्तर इसमें है कि जिस परमेश्वर मूर्तिको इंद्रादिकोंने पूजा पूजते हैं और पूजेंगे वोह परमेश्वर प्रतिमारूपसे जगतमें स्थित है और वो ही सारभूत घृतवत् स्तुतिकरनेके योग्य है तो उपरलिखे मंत्रका यह अर्थ नहीं होसक्ता कि उसकी मूर्ति नहीं क्योंकि यह ऋग्वेदका मंत्रही कहता है कि वोह प्रतिमारूपहै बस यही अर्थ है कि उस परमेश्वरकी समान कोई नहीं है.

मामाहिꣳसीज्जनितायः पृथिव्यायोवादिवꣳसत्यधर्माव्यानट्
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमोजजानकस्मैदेवायहविषाविधेम
य० अ० १२ मं० १०२

जो हिरण्यगर्भ सत्यके धारण करनेवाला पृथिवी स्वर्ग अन्तरिक्षको अपने समष्टिरूपसे व्याप्त कर रहाहै तथा प्रथम शरीर होकर चन्द्रादि ज्योतिसमूहको रचना करता भया तिस प्रजापति देवके अर्थ हवि देते हैं.

यस्मान्नजातः परो अन्यो अस्ति य आविवेशभुवनानिविश्वा प्रजापतिः प्रजयासꣳरराणस्त्रीणिज्योतीꣳषिसचतेसषोडशी

य० अ० ८ मं० ३६

जिस्से कोई दूसरा श्रेष्ठ प्रगट नहीं हुआ जो सब चतुर्दश भुवन और प्राणियोंमें अंतर्यामीरूपसे प्रवेश हुआ वोह षोडश कलावतार महापुरुष पिंड ब्रह्मांडरूप प्रजाके साथ रमणकर्ता तीन ज्योति सूर्यचंद्राग्निकू सम्बद्ध करता भया, अन्यथा प्रजाकी चेष्टा कैसे होगी इस स्थानमें यह निर्धारण करना यावत् जगत् और जीव परमात्मारूप सिद्ध हुए परन्तु यह सर्व वस्तु परमात्माका प्रतिबिम्ब स्थानापन्न प्रतिमारूप है इस कारण स्वामीजी जिस मंत्रसे प्रतिमाका निषेध करते हैं इस मंत्रसे यावत् जगतही परमेश्वरकी प्रतिमा सिद्ध होती है जब ऐसे साकार व्यावहारिक परमात्माका रूप सिद्ध होता है तब परमात्माको केवल निराकार वेदप्रतिपाद्य कहना स्वामीजीकी विद्याहीनता है जब सर्व ब्रह्माण्ड परमात्माका रूप सिद्ध हुआ तौ प्रतिमाका निषेध असंगत है हां तुल्य रूपान्तरका निषेध है सो पूर्व निर्णीत है २ अब सज्जन पुरुष देखें जो इस प्रकरणमें केवल निराकार प्रतिपाद्य नहीं किन्तु सर्व प्रपंचगत यावत् रूपवाला और वास्तवसे स्वसदृश रूपान्तर वर्जित ब्रह्मप्रतिपाद्य है और स्वामीजीने इसी अध्यायके दो मंत्र पूर्व छोड़कर और तीसरे मंत्रमें एक टूटकाटकर प्रतिमा पूजनका निषेध किया है परन्तु इस्से क्या उनका मनोरथ सिद्ध हो सक्ता है अब केन उपनिषद्के वाक्योंका अर्थ देखिये.

(यद्वाचा०) यहांभी यह विचार है कि यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कौनसे पदका अर्थ है इस अर्थका वाचक इस श्रुतिमें कोई पद नहीं और उपासनाकर उस्से भिन्न उपासनीय नहीं यहभी किसी पदका अर्थ नहीं इस प्रकरणमें तौ उपासनाकी विधि वा किसीकी उपासनाका निषेध नहीं किन्तु जो सर्व प्रमाणोंका अविषय स्वप्रकाश जो सर्व प्रमाणोंका प्रकाशकहै तिसको ब्रह्मरूपता कही है यह तौ ज्ञेय वस्तुका विवेचन है सो अक्षरार्थको देखिये.

जो वाक्करकै प्रकाशित नहीं होता वाणीका अविषय वस्तु है आशय यह कि जो वस्तु शब्दजन्य वृत्ति ज्ञानसे प्रकाशित होता है सो वाचाभ्युदितं ऐसे कहा जाता है और ज्ञेय वस्तु ब्रह्म शब्द और शब्दजन्य अन्तःकरणकी वृत्ति और वृत्तिविषय जड़ पदार्थ इन सर्वको प्रकाशता है जिस्से वाणी प्रकाशित होती है हे शिष्य तिसेही तू ब्रह्म जान जिसे उपासक इदंरूपसे उपासना करते हैं सो ब्रह्म नहीं आशय यह है जिसको वृत्ति विषय करकै पश्चात् ध्यान करते हैं सो ब्रह्म नहीं किन्तु

योह दृश्य कोटिमें प्रविष्ट है ऐसे सर्व प्रकाशकको ब्रह्मता कहकर उपास्य मात्रको मुख्य ब्रह्मताका निषेध किया है एक वस्तुको उपासनीयत्व और दूसरीको अनुपासनीयत्व कहना प्रकरण अनुकूल और श्रुतिके अक्षर अनुकूल श्रुत्यर्थ नहीं हो सक्ता और वेदसिद्धान्तमें दो पदार्थ है दृक् और दृश्य तिसमें यह विचारणीय है कि दयानंदजीने जो यह जल है लीजिये वैसा विषय नहीं यह कहकर उसको उपासनीय कहा सो दृक् पदार्थके अन्तर्गत है वा दृश्यके यदि दृक् है तौ उपासनीय नहीं अविषय होनेसे यदि उपासनीय है तौ दृश्य है तिसको ब्रह्मत्व नहीं ऐसे ध्येय विलक्षण दृक् वस्तुके प्रकरणकी यह श्रुति किसीको उपासनीयत्व और किसीको अनुपासनीयत्व नहीं बोधन करती किन्तु उपास्य मात्रको ब्रह्मत्वके निषेधद्वारा दृकवस्तुको ब्रह्मत्व जनातीहे सो यह अर्थ इस श्रुतिके पूर्व तीन मंत्रोंमें संपादन कियाहै ॥ १ ॥

(यन्मनसा०) इस मंत्रकाभी अर्थ दयानंदजीने अशुद्धही लिखाहै यह जानिये कि जिस अधिष्ठानमें दूसरी वस्तुकी उपासना करी जाती है सो अधिष्ठान प्रत्यक्ष होताहै जैसे विष्णुकी मूर्तिमें वैकुण्ठवासी विष्णुकी उपासना होती है इस स्थानमें अधिष्ठान प्रत्यक्ष है और आरोप्य करने योग्य विष्णु अप्रत्यक्ष है और स्वामीजी कहते हैं कि ब्रह्मके स्थानमें जीव और अन्तःकरणकी उपासना मतकर और ब्रह्मको कैसा कहा जो मनमें नहीं आता जब मनमेंभी ब्रह्म न आया तौ अप्रत्यक्ष हुआ तौ अप्रत्यक्ष अधिष्ठानमें उपासना कैसे होगी. जीव और अन्तःकरणकी, और यहभी विचार करना कि ब्रह्मके स्थानमें अन्तःकरण और जीवकी उपासनाका फलही क्या है और करताही कौन है क्यों कि उपासनाका फल तौ उपास्य साक्षात्कार है (सो तो अन्तःकरण और जीवका साक्षात्कार पूर्वसिद्ध है) और जो उपासना है तौ जीवके स्थानमें प्रत्यक्ष ब्रह्मकी उपासना होती है ब्रह्मभी किंचित् उपाधिविशिष्ट हो अथवा साक्षी आत्मामें अब्रह्म वासना निवृत्तिके अर्थ स्वतःसिद्ध ब्रह्मकी उपासना होती है अप्रत्यक्ष ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें प्रत्यक्ष सिद्ध किसी पदार्थकी उपासना लोक वेदमें अप्रसिद्धका निषेध करना केवल विद्याहीनताका कारण है अर्थ यह है कि.—

मनका अविषय हुआही जो मनका प्रकाशकहै तिसको ब्रह्मजान और इदं उपासना करा जाता है सो ब्रह्म नहीं २

(यच्चक्षुषा०) एक तौ इस श्रुतिका पाठही अशुद्ध है क्यों कि येन चक्षुंषि पश्यति ऐसा शुद्ध पाठ है और स्वामीजीने (पश्यन्ति) लिखा है इससे उनका अर्थ ही क्या ठीक होगा अर्थ यह है चक्षुजन्य वृत्तिकरकै जिस चैतन्य ज्योतिको विषय नहीं करता लोक और अन्तःकरण वृत्तिसंयुक्त जिस चैतन्य ज्योतिसे अन्तःकरण वृत्तिओंके भेदसे भिन्न चक्षुवृत्तिओंको देखता है तिस चैतन्य ज्योतिको तू ब्रह्मजान

और इदं रूपसे उपासना किया जाता है सो ब्रह्म नहीं और इस मंत्रमें सूर्य्य अग्नि विद्युत् जड़ कहा है सोभी बुद्धिहीनताहै क्यों कि इसी उपनिषद्के तृतीय खण्डमें अग्नि वायु इंद्रको ब्रह्मके साथ संवाद निरूपणसे देवत्व कहा है और अग्नि आदित्य वायुको धर्मस्वरूप मार्ग निरूपणके प्रसंगमें उपास्यता निरूपित है और गायत्री अर्थ निरूपणके प्रसंगमें आदित्यकी ब्रह्मरूपता निर्णीत है और विद्युतभी ब्रह्म है.

विद्युद्ब्रह्मेत्याहुर्विदानात् बृ० उप० अ० ७ ब्रा० ७

विद्युत् ब्रह्म है ऐसे वेदविद्या उपदेशक आचार्य कहते हैं.

अब स्वामीजीका इस मंत्रमेंभी अज्ञान प्रगट हो गया जो आदित्यादिको जड़ कहते हैं ॥ ३ ॥ दिग्देवतानुग्रहीत आकाश कार्य्य मनोवृत्तिसंयुक्त श्रोत्र करकै जिस चैतन्य ज्योतिको लोक नहीं जान सकता जिस चैतन्य ज्योतिसे मनोवृत्ति सहित श्रोत्र जन्य वृत्तिको विषय करा जाता है तिसको तू ब्रह्मजान और जो इदंकर उपासनीय वस्तु है सो मुख्यज्ञेय कोटिप्रविष्ट ब्रह्म नहीं ४

पंचममंत्रमें प्राणशब्दार्थ घ्राणहै क्योंकि प्राणमें क्रियाशक्ति है ज्ञानशक्ति नहीं तब यह अर्थ हुआकि पृथ्वी देवतानुग्रहीत मनोवृत्ति सहित घ्राण जन्यवृत्ति करकै जिस चैतन्य ज्योतिको लोक नहीं जान्ता और जिस चैतन्य ज्योतिकर मनोवृत्तिसहित घ्राण जन्यवृत्ति जानी जाती है तिसको तू ब्रह्मजान जोकि इदं करकै उपास्य वस्तु है सो मुख्य ब्रह्म नहीं ५ अब इसप्रकारसे प्रतीकोपासना तौ सिद्ध होगई और नतस्य प्रतिमा अस्ति इसका अर्थभी निर्णीत होगया.

स० प्र० पृ० ३११ पं०४ नास्तिकोवेदनिन्दकः

मनुजी कहते हैं जो वेदोंकी निन्दा अर्थात् अपमान त्याग विरुद्धाचरण करताहै वोह नास्तिक कहाता है.

समीक्षा. यह स्वामीजी मानचुके जो वेदविरुद्धाचरण करता है वोह नास्तिक कहाताहै सो यह बात स्वामीजीपरही लगी क्योंकि मूर्तिपूजन वेदमें विद्यमानहै और यह उसके विपरीत कहते हैं कि मूर्तिपूजा मतकरो तौ यह शब्द उन्हींपर लगताहै यदि कहोकि वेदमें तौ मूर्तिका निषेधहै "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यद्यपि इसका अर्थ पूर्व लिखचुकेहैं परन्तु अभी कुछ और कहनाहै जब वेदमें हम इसमंत्रका स्वामीजीका कियाही अर्थ मानलैं तौ यह स्पष्ट होताहै कि पहले मूर्तिपूजाथी तभी तौ इसकी मनाई लिखी "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" प्राप्ति होनेसे निषेध होताहै तौ मूर्ति-

पूजन वेदसेभी पूर्वका सिद्ध हुआ यदि कहोकि कहीं बिना प्राप्तिकेभी निषेध किया-जाताहै जैसे कि पितापुत्रको समझाताहै पुत्र चोरी मतकरना जुआ मतखेलना तौ अभी बालक चोर नहीं हुआ जुआ नहीं खेला परन्तु पिता उसे निषेध करताहै इस्से बिना प्राप्तिकेभी निषेध होताहै ॥ यह तुह्मारा कहना ठीक नहीं यद्यपि बालक अभी चोर ज्वारी नहीं हुआहै परन्तु चोरी जुआ यह दौनौ विद्यमानहैं पहलेहीसे उनका ग्रहण-करना बुराजान पिताने उसे निषेध कियाहै बिना कोई.क्षते हुए उसका निषेध नहीं होसक्ता इसकारण जो इस मंत्रमें प्रतिमाशब्द मूर्तिवाचक मानो तौ वेदसे पूर्वभी मूर्ति पाई जाती है तौ वेदभी पीछेका हुआ सो ऐसा है नहीं वेद सबसे पूर्वकाहै इसकारण यहां "प्रतिमा" शब्द मूर्तिका वाचक नहीं किन्तु प्रतिमान उपमानका अर्थ है तौ अब वेदप्रतिपाद्य वस्तुको न मान्ना नास्तिकताहै या नहीं

१ स० प्र० ३११ पं० २१ मूर्तिपूजा सीढी नहीं किन्तु एक गहरी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर होजाताहै पुनः उस खाईसे निकल नहींसक्ता किन्तु इसीमें मर-जाताहै मूर्तिपूजा करते २ कोई ज्ञानी तौ नहीं हुआ किन्तु मूर्ख होगये.

पृ० ३१२ पं० ६ साकारमें मन स्थिर कभी नहीं होसक्ता क्योंकि उसको मन झट ग्रहणकरके उसीके एकएक अवयवमें घूमता और दूसरेमें दौड़जाताहै और निराकार परमात्माके ग्रहणमें यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ताहै तौभी अन्त नहीं पाता निरावयव होनेसे चंचलभी नहीं रहता किन्तु उसीके गुण कर्म स्वभावका विचार कर्ता आनंदमें मग्न होकर स्थित होजाताहै और जो साकारमें स्थिरहो तौ सब जगतका मन स्थिर होजाता क्योंकि जगतमें मनुष्य स्त्रीपुत्रधन मित्र आदिसा-कारमें फंसा रहताहै परन्तु किसीका मन स्थिर नहीं होता जबतक निराकारमें न लगावै क्योंकि निरावयव होनेसे उसमें मन स्थिर होजाताहै इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है.

२ दूसरे उसमें करोडों रुपये व्ययकरकै दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होताहै.

३ तीसरे स्त्रीपुरुषोंका मंदिरोंमें मेला होनेसे व्यभिचार लडाई बखेडा और रोगादि उत्पन्न होते हैं.

४ चौथे उसीको धर्म अर्थ काम और मुक्तिका साधन नामकै पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गमाताहै.

५ पांचवां नानाप्रकारकी विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियोंके पुजारियोंका ऐक्यमत नष्ट होकै विरुद्ध मतमें चलकर आपसमें फूटबढाके देशका नाश करते हैं.

६ उसीके भरोंसे शत्रुका पराजय और अपना विजय मानकै बैठे रहते हैं उनका

पराजय होकर राज्य स्वातंत्र्य और धनका सुख उनके शत्रुओंके स्वाधीन होताहै और आप पराधीन भटियारेके टट्टू और कुम्हारके गदहेके समान शत्रुओंके वशमें होकर अनेक विधि दुख पाते हैं।

७ सातवां जब कोई कहै कि हम तेरे बैठनेके आसन वा नामपर पत्थर धरैं तौ जैसे वोह उसपर क्रोधित होकर मारता वा गाली देताहै वैसेही जो परमेश्वरके उपासनाके स्थान हृदय और नामपर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं उन दुष्ट बुद्धिवालोंका सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करै.

८ आठवां भ्रांत होकर मंदिर २ देश देशान्तरोंमें घूमते २ दुखपातेहैं धर्म संसार और परमार्थ काम नष्टकरते चोरादिकोंसे पीडित हो ठगोंसे ठगाते रहतेहैं

९ नवमा दुष्ट पूजारियोंको धन देतेहैं वे उस धनको वेश्या परस्त्रीगमन मद्यमांसाहार लडाई बखेडोंमें व्यय करतेहैं जिस्से दाताके सुखका मूल नष्ट होकर दुखहोताहै.

१० माता पिता आदि माननीयोंका अपमानकर पाषाणादि मूर्तियोंका मान करतेहैं.

११ ग्यारहवां उन मूर्तियोंको कोई तोड डालता वा चोर ले जाता है तब हाहाकररोते रहतेहैं.

१२ बारहवां पुजारी परस्त्रियोंके संग और पुजारीन पर पुरुषोंके संगसे प्रायःदुखित होकर स्त्री पुरुषके प्रेमके आनन्दको हाथसे खो बैठतेहैं.

१३ स्वामीसेवककी आज्ञाका पालन यथावत न होनेसे परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजातेहैं.

१४ जडके ध्यान करनेवालोंका आत्माभी जड बुद्धि होजाताहै क्योंकि ध्येयका जडत्व धर्म आत्मामें अन्तःकरणद्वारा अवश्य आताहै.

१५पन्द्रहवां परमेश्वरने सुगन्धि युक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जलके दुर्गन्धि निवारण और आरोग्यताके लिये बनायेहैं उनको पुजारीजी तोड तोड कर न जाने उन पुष्पोंकी कितने दिनोंतक सुगन्धि आकाशमें चढकर वायु जलकी शुद्धि पूर्ण सुगंधके समयतक उसका सुगन्ध होताहै उसका नाश मध्यहीमें करदेतेहैं पुष्पादिकीचके साथ मिल सडकर उलटी दुर्गन्ध उत्पन्न करतेहैं क्या परमात्माने पत्थरपर चढानेके लिये पुष्पादि सुगंधि युक्त पदार्थ रचेहैं.

१६ सोलहवां पत्थरपर चढे हुए पुष्पचंदन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिकाके संयोग होनेसे मोरी वा कुंडमें आकर सडकै इतना उस्से दुर्गन्ध आकाशमें चढताहै कि जितना मनुष्यके मलका और सहस्र जीव उसमें पडते उसीमें मरते सडतेहैं ऐसे ऐसे अनेक मूर्ति पूजाके करनेमें दोष आतेहैं इस लिये सर्वथा पाषाणा-

दि मूर्तिपूजा सज्जन लोगोंको त्यक्तव्यहै और जिन्होंने पाषाणमय मूर्तिकी पूजाकी है करतेहैं करेंगे वे पूर्वोक्त दोषोंसे नवचे नवचतेहैं नवचैंगे.

समीक्षा- यह सोलह अंक स्वामीजीने मूर्ति पूजाके विरुद्ध बडे बल और क्रूर वचनयुक्त लिखेंहैं और गालिप्रदान करनेमेंभी बडी सेखीवघारीहै जिसका वर्णन इसी- में है परन्तु यह सोलह वाक्य उन्मत्त पुरुषकेसे वचन हैं जिसे थोडीभी बुद्धि होगी वाह ऐसी वातें न लिखैगा वस यही स्वामीजीकी सभ्यता है अब क्रमानुसार इनके उत्तर लिखतेहैं

१ विना स्थूलके देखे सूक्ष्मका ज्ञान नहीं होता विना सीढीके महलपर नहीं चढ सक्ता विना अक्षराभ्यास किये कोई ग्रंथ नहीं पढसक्ता इसीसे विनासाकारकी उपास- नाके निराकारकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती जैसे हमको पृथ्वीका स्थूलरूप देखकर इस- के परिमाणुरूप सूक्ष्म शरीरका ज्ञान होताहै ऐसेही साकारको देखकर निराकारका ज्ञान होताहै इसी कारण पहले विराटादि रूपकी उपासना कही है विना आधारके आधेय नहीं ठहरता इसी कारण विनासाकारमें मन लगाये स्थिर नहीं हो सक्ता क्यों कि साकारके किसीएक अंगकी शोभा देखकर मन उसमें लग जाता है और अपना चंचलपना भूल जाता है वोही ध्यान रहनेसे वही प्रतीत होने लगता है उसीके आ- कारमें मग्न रहता उसीके गुणकर्म स्वभावको विचारता है क्यों कि साकारहोनेसे अवतारोंकीभी अनिर्वचनीय शोभाहै जैसे श्रीरामचंद्र श्रीकृष्णचन्द्रादि इनके गुणकर्म स्वभाव और प्रत्येक अंगमें मनका दौडना तो क्या एकही अंगमें निश्चल होजाताहै जब सगुण उपासनामें मन निश्चल हुआ तो अभ्यास होते होते निराकारमेंभी मन ठहर सक्ता है क्यों कि मनदौडे कहां देखे क्या कौन निशाना है शून्यमें क्या ट- टोले इस कारण साकारमेंही पहले मन दृढ होकर पीछे निराकारमें स्थिर होसक्ता है पहले थोडे जलमें पैरना सीखे तो गहरेमेंभी पैर सक्ता है जो थोडे जलमें स्थिर नहीं रह सक्ता वोह गहरे जलमें कूदनेसे डूब जायगा और पत्ताभी न लगैगा ऐसेही साकार निराकारमें मनकी वृत्ति जानलीजिये ऐसेही कुटम्बादिमें मनुष्योंको मन लगे हैं और स्थिरहो रहे हैं यदि जगतमें कुटुम्बादिकोंमें मन न लगै तो सबही विरक्त हो जांय और फकीर हो जंगलमें जा रहैं यह आकारकाही प्रताप है जिसके द्वारा मनुष्य प्रेममें मनको स्थिर किये हैं ऐसेही प्रथम साकाररूप परमात्मामें मन लगजाय तब निराकारमें पहुंचकर स्थिर होता है मूर्तिपूजा बड़ी सीढी है इसके करनेसे बडे बड़े ऋषि मुनि मुक्तिपदवीके अधिकारी हुए हैं यह मूर्तिही परमेश्वरमें मनको आकर्षण करती है युधिष्ठिरादिने मूर्तिपूजन करकेही सिद्धि पाई है यही पर- मेश्वरमें प्रीति कराती है और यही निराकारतक पहुंचाती है नामही नामीको मिला देता है इस कारण मूर्तिपूजन वेदविधान होनेसे धर्म है.

२ दूसरे मन्दिरोंमें जो रुपया लगता है उसमें बड़ा लाभ होता है हानि नहीं होती परदेशी महात्मा लोग आनकर ठहरते हैं और भक्तजन प्रातः सन्ध्या उसमें आनकर बैठते और भगवानका नामस्मरण करते हैं और उनके गुणकथनसे चित्तमें सतोगुण प्रगट होताहै और जो कोई उस ओरको निकलते हैं वे नारायणका नाम लेकर दंडवत करते हैं बहुत मंदिरोंमें बिचारे परदेशी सदावर्तभी पाते हैं बनवाने-वालेका धर्मके सिवाय नामभी चिरस्मरणीय होताहै.

३ तीसरे मंदिरोंमें मेला नहीं होता केवल मंदिरके भीतर वोही स्त्रीपुरुष जाते हैं जो कि व्रत धारणकर पूजन करते हैं जो सारेदिन व्रत धारणकर भक्तिपूर्वक नामस्म-रण करते हैं वे व्यभिचारमें क्योंकर प्रवृत होसक्तेहैं उनका चित्त तौ सतोगुणमें प्रवृत्त होताहै और पूजन करनेवालोंकूं रोगभी बहुत नहीं होते दोनो समय स्नान करते धूप कपूर घृत बालते हैं तथा व्यभिचार एकान्तमें होताहै देवालयमें दोचार महात्मा प्रतिक्षण विद्यमान रहते हैं मेलेवाले बाहरसे खडे होकर देखते हैं इससे व्यभिचार उत्पन्न नहीं होता और जिनके मन व्यभिचारमें लगे हैं न वे भक्ति करते है और निराकार साकारका उन्है विवेक नहीं रहता और मंदिरमें दोचार लोग रह-तेही है और मंदिरमें ईश्वरकी विशेष सान्निध्यता हौनेसे पापाचरणका भय रहताहै इसकारण मंदिर अवश्य बनवावै.

४ चौथे मूर्तिपूजनसे धर्मादिपदार्थोंकी प्राप्ति होती है और पुरुषार्थ बढताहै जब कि पूजामें भक्ति होगी तौ सत्यभाषणादि शुभकर्म करैगा और ईश्वरके चरित्रोंके स्मरणसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी और ज्ञान होनेसे मुक्तिका अधिकारी होताहै क्योंकि ईश्वरके नामसे और ज्ञानसे संबंध है और यही मनुष्यजन्म लेनेका फल है कि ईश्वरके चरित्र हृदयमें दृढ होजांय सो प्रतिदिन मूर्तिके अर्चन वंदनसे दृढता आजातीहै.

५ पुजारीलोग तौ मंदिरमें सेवाकरनेको नौकर होते हैं वे कभी नहीं लड़ते न आजतक कहीं पुजारियोंकी लड़ाई होती सुनी बहुधा मंदिरोंमें श्रीकृष्ण वा रघुनाथ जीकी मूर्ति होती है सो उनके स्वरूपभी ऐसे मनोहरहैं कि देखतेही मन निश्चल होजाताहै शिवमूर्तिभी सब मंदिरोंमें एकसीही होती है कोई यह नहीं कहताकि इस मंदिरके अतिरिक्त सब मंदिर निकम्मेहैं जिस्से लड़ाई द्रोह बढे किन्तु सब मंदिरोंके पुजारी परस्पर मेल रखते हैं और उत्सवोंमें एक दूसरेके मंदिरमें आतेजाते रहते हैं और उत्सवोंमें भगवानकी मूर्तिका विशेष शृंगार करनेसे यह लाभ होताहै कि ईश्व-रमें मनुष्योंकी भावभक्ति अधिक होजाती है. ईश्वरके भयसे वे कुकर्मके साहसी नहीं होते इस्से देशकी भलाई होती है.

६ छठे मूर्तिमें ईश्वर पूजन करनेके वास्ते है न कि हमारे संग टहलुओंकी भांति डंडा लिये फिरे इसकारण जयपराजयके निमित्त बैठ रहना बुद्धिमत्ता नहीं ईश्वरने यह शरीर उद्योग करनेको दियाहै इसेपाकर आलसी हो बैठ रहना उचित नहीं है यादि तुम्हारी पूर्णभक्ति है और सामर्थ्य नहीं है तौ वोह इच्छानुसार बहुत सहायता करताहै और आगेभी करैहीगा परन्तु हस्तपादादि पुरुषार्थही करनेकू दिये हैं और जो भजनानंदी है उन्हे शत्रु मित्रसे क्या काम वे तौ जो कुछ करते हैं उसे ईश्वरकी इच्छा और प्रेरणा मान्ते हैं फिर कौनसा उनका राज्य बिगडगयाहै ईश्वरने यह नहीं कहाहै कि तुम अजगरसे एक स्थानपर पडे रहो किन्तु पुरुषार्थ करनेको कहता है जितनी सहायता निराकार उपासनामें करताहै उतनीही सगुणउपासनामें करताहै और जो विशेष ज्ञानी हैं उनके कोई शत्रु मित्र नहीं है उनकी समान दृष्टि होती है इसकारण वे मुक्तिके अधिकारी होते हैं.

७ सातवें यह बात तौ लोकमेंभी प्रसिद्धहै कि जब कोई किसीके नामपर कोई स्थान बनवावे और उसकी मूर्ति बनाकर उसकी मान बडाई प्रतिष्ठा करै तौ वोह जिसकी वोह मूर्ति वा मंदिरहै अधिक प्रसन्न होताहै क्योंकि जब उसके नाम और मूर्तिकी इतनी प्रतिष्ठा करते हैं यादि वोह स्वयं उपस्थितहो तौ कितनी प्रतिष्ठा हो " यदि उसके नाम वा मूर्तिका तिरस्कार करैं तौ चाहैं बुरा माने परन्तु मूर्तिमें परमेश्वरकी उपासना करनेहारे कभी मूर्तिका तिरस्कार नहीं करते देखनेमें आताहै कि आजदिन विक्टोरियामहारानीकी मूर्ति शतशः स्थानोमें विद्यमानहै बड़े बड़े मंदिर बने हैं (हाल) तथा जब कोई गवर्नरजनरल वा प्रिन्स (राजकुमार) आते हैं तौ उनके स्मरणीय चिन्ह अबतक बनाते हैं कहीं २ मूर्तिभी स्थापित करते हैं उसको आदरसे देखते है परन्तु वोह मनुष्यकी मूर्ति है इसकारण उसका पूजन नहीं होता कहिये क्या इन मूर्तियोंसे महारानी और लाट प्रिन्सादि कुछ बुरामान्ते हैं प्रत्युत प्रसन्न होते हैं क्या कुछ उनका प्रताप घटता है, नहीं घटता किन्तु अधिक बढताहै सब लोग देखते हैं मनमें अधिक ध्यान करते हैं कि यह हमारा राजाहै बुरा काम मतकरो दंड देगा इसीकारण सिक्कोंतकमें मूर्ति रहती है इस्से क्या कुछ तिरस्कार होताहै इसीसे पहले राजा बादशाह आदि अबतक सिक्कोमें नाम मूर्ति आदि रखते है जिसे देखतेही उनका झट स्मरण होजाता है इसीप्रकार यादि कोई किसीकी मूर्ति बनाकर उसकी बडी भक्तिकर पूजा प्रार्थना करै यदि वोह मूर्तिका प्रतिनिधि जीवितहो तौ निश्चय अधिक प्रसन्न होता है और जाकर पूछताहै कि कहो क्या चाहतेहो में प्रसन्नहूं इसीप्रकार व्यापक ईश्वरकी प्रार्थना करै तो क्या वोह प्रसन्न न होगा निश्चय प्रसन्नहो अपने भक्तोंका भला करैगा. इसकारण मूर्तिपूजनसे ईश्वर प्रसन्न होता है.

८ आठवां जब लोग दूरदेशमें दर्शनोंकी इच्छासे जाते हैं तो उनके मनमें ईश्वरकी भक्ति अधिक उत्पन्न होती है और देशदेशान्तरोंके चरित्र मनुष्यादिकोंकी भेंटसे मनकी यह इच्छाभी निवृत्त होजाती है कि हमने अमुक स्थान नहीं देखा इससेभी मनमें निश्चलता प्राप्त होती है और वोह पुरुष जो दूर देश दर्शनोंकी इच्छासे जाते हैं वे कोई कार्य धर्मविरुद्ध नहीं करते क्योंकि वे जान्ते हैं कि यदि हम कुछ पाप करैंगे तौ यह यात्रा दर्शनोंका फल द्रव्यादि सब वृथा होजायगा इससे उनके सब कार्य सधर्म होते हैं और धर्मसे परमार्थ बनाताहै यात्री लोग देशान्तरोंमें इकठे होकर जाते हैं इसकारण चोरोंकाभी विशेष डर नहीं होता यदि विदेश जानेमें दुःखहै तौ स्वामीजीके कथनानुसार व्योपारभी बंद होना चाहिये क्योंकि व्यापारमें भी चोरादिकका भय है और व्यापार क्या प्रत्येकही जात्रीको चोरादिकका भय होताहै और जहाजकी यात्रामें प्राणजानेका भय और रेलकी यात्रामें गाडी लड जानेसे प्राणोंका दान पैदल जानेमें चोरोंका भय तौ बस स्वामीजी एक नोटिस देकर रेल, जहाजमार्ग इन सबका सत्यानाशकर देते तौभी देशका उनकी दृष्टिमें उपकारही होता, परन्तु स्वामीजीनें पूर्वमें दूरदेशमें व्याह करनेकी क्यों अनुमति देदी उसमें भी तौ चोरादिकका भय है और भला जब किसीके घरमेंसेही कोई चोरीकर लेजाय तौ क्या तुह्मारे सत्यार्थ प्रकाशके पत्रोंमें अपना घर बनाकर बैठजाय इसी भरोसे परदेशके हितकारी बने चले जब परदेशमें जांयगे तौ ठगोंको पहचानकर उनसे सब प्रकारकी चतुरता जान जांयगे और जो कोई घर बैठेही रसायन बनालेजाय तौ क्या करो.

९ नवमें बहुधा पुजारी ब्राह्मण होते हैं केवल दोचार रुपयेके नौकर होते हैं कुटुम्बी होते है उन लोगोंका इतनेमें गुजारा नहीं होता जैसे तैसे गुजरान करते हैं जो कुछ चढावा चढताहै वोहभी कुछ ऐसा बहुत नहीं होता और रोज नहीं चढता केवल त्यौंहारोंमेंही आताहै ऐसे समयमें द्रव्यकी उनकोभी आवश्यकता रहती है जब कि उदरसे अधिक उनको प्राप्तही नहीं होता तौ मांसमदिरा वेश्यादिकमें दोरुपये रोज कहांसे आवै क्या कोई समाजका कोषाध्यक्ष उनको द्रव्यदे देता होगा. और जहां बड़े २ मंदिरहैं अधिक चढवा चढताहै वोह मंदिरके कोषमें जमा होता है और वोह ठाकुरजीके भोग वस्त्रादिमें व्यय होताहै पुजारीजीको केवल वेतन मिलताहै और कुछ नहीं यदि साधु पूजारी हुए तो तीसरे छठे महीनेमें भंडारा करते रहतेहैं आये गयेका सन्मान करतेहैं तुम्हारे यहां तो एक रात ठहरनेकीभी जुगत नहींहै कोरीबातें हैं पुजारियोंपर दोषदैना वृथाहै और यदिकोई किसीको कुछ वस्तु प्रदान करै तौ दाताका तौ फल हो चुका वोह उस द्रव्यका जो चाहै सो करै और यदि यहीहै तौ गरीबखाने मोहताजोंको दान कोढिखाना शफाखाना आदि

सबमें द्रव्य दियाहुआ हो वृथा जाय क्योंकि विषयी समझतेहैं कि कुकर्म करनेसे यदि रोग होजाय तौ शफाखाना मौजूद आराम होजायगा पास नहीं रहैगा तौ मोहताजखानेमें जा पड़ैंगे इत्यादि इन स्थानोंमें दियाहुआ द्रव्यभी वृथाही होजायगा और आप इन स्थानोंकी बडाई करतेहैं इस्से यह कहना वृथा है यदि ऐसा होतौ कोई कौडीभी नदे देनेवाला ईश्वरके नामपर देता है कुछ उसे नहींदेता जैसे कर्ज लेकर द्रव्यका जो चाहैं सो करै वोह द्रव्य उसको देनाही पडैगा ऐसेही दानकी व्यवस्थाहै इस्से मूर्ति पूजनका निषेध और पुजारियोंपर दोष नहीं होसक्ता.

१० दशवां जो मूर्तिका मानकरते ईश्वरकी आज्ञा मान्तेहैं वे अपने बडोंकाभी मान करतेहैं माता पिताकी विशेष प्रतिष्ठा करते क्योंकि यह किसी धर्मग्रंथमें नहीं लिखा कि मूर्तिपूजन करनेवाले अपने माता पिताकी आज्ञा मतमानो किन्तु जो मूर्तिमें ईश्वरको पूजन करतेहैं वे धर्मके भयसे अपने माता पिताकी विशेष प्रतिष्ठा करतेहैं यह स्वामीजीकी भूलहै जो कहतेहैं मान नहीं करते रामचंद्रकी मूर्ति वा चरित्र श्रवण करतेही माता पिताकी आज्ञा पालन भाई भक्तिका चमत्कार कैसा कुछ हृदयमें छा जाता है।

११ पुजारियोंपर तौ परस्त्रियोंके संगका दोषारोप करतेहो और आप प्रगट एक स्त्रीको ग्यारह पति बनानेकी आज्ञा देते हो जो कर्म ठीक वेश्याकी नाई है और मंदिरमें पुजारी व्यभिचार नहीं करसक्ता क्योंकि स्त्रीपुरुष सायंप्रातः मंदिरमें दर्शन करनेको आतेहैं और दो चार साथही आतेहैं इस्से व्यभिचार नहीं होसक्ता और जिनके मनमें ईश्वरका प्रेमहै वोह दर्शन करनेसे अधिक बढताहै और भक्ति तीव्र होतीहै कुमार्गसे बचते हैं और जिनके मन बुरेहैं उन्हें पुजारी पुजारन क्या चाहैं जहां जी चाहैं सो करसक्तेहैं जिन्हैं परमेश्वरका भय नहीं वे चाहैं सो करें और पुजारनपर पुरुषोंका संग क्योंकर करसक्तीहै क्या पुजारी उनके पास नहीं जातेहै दिनमें भोजन करने घरको जाते रात्रिमें संध्याके उपरान्त जो ग्रहस्थीहैं वे घर चले आतेहैं यदि इतनेहीमें वे परपुरुष गामिनी होजांय तौ यह दुकानदार और व्यापारी लोग अपने रोजगार छोड स्त्रियोंकी रखवाली करैं और क्या सब स्त्री अकेली रहतीहैं तौ बस सबही स्त्री व्यभिचारिणी होजांय तौ चाहियेकि सब लोग स्त्रियोंको गांठमें बांधे फिरा करैं यह तौ स्वामीजीने बडी कठिनताईसे विचारी होगी.

१२ बारहवां मूर्तिको कोई चुराले जाय या तोडै तौ रोवैं नहीं तौ क्या हंसे जिस का जब कुछ खो जाताहै या टूट जाताहै तौ वोह क्या हानि हो जानेवाले सबही दुःखी होते हैं फिर वोह वस्तु जिस्से अपने इष्ट देवका स्मरण करतेहैं खो जाय तौ क्यों न दुखीहों क्योंकि और स्थापन करनेसे द्रव्यका खर्च होहीगा यदि मूर्ति ले

जानेके दुःखसे मूर्तिपूजन करना बुराहै तौ जिस वस्तुके चुरा ले जाने वा टूटजानेका भयहो वोह कुछभी पास नरखनी चाहिये तौ यह सारी धनदौलत जो आपके और आपके अनुयायियोंके पासहै वोह सब फिकवा देना चाहिये मकानोंके टूटनेका डर है द्रव्यके चुराये जानेका कपडेके गल जानेका तौ इस आपके वचनके विश्वासीयोंपर फर्जहै कि घरबार छोड वस्त्र त्याग दें नंगे फिरें और आपसे तौ स्थिरताकी कहां आशा मुंशी इन्द्रमणिके मुकदमेंमें क्या आपने थोडी हाय २ मचाई थी.

१३ स्वामी सेवककी आज्ञा नहीं पालन हौनेमें स्वामीजीने कौनसा हेतु निकाला है पूजन करनेमें स्वामी सेवकमें क्या विरुद्धता होगी जो विदेशीय जनोंके नौकरहैं वे पूजा ऐसे समयमें करतेहैं कि जिस्से अपने स्वामीके काममें बाधा नपडै क्यों कि जान्तेहैं आज्ञा उलंघन करनेसे नौकरी जायगी और जो पूजारियों पर आक्षेपहै तौ उनके स्वामीकी आज्ञा तौ मंदिरके स्वच्छ रखने और भगवत् मूर्तिके शृंगार करनेकी होती है सो वोह करतेहीहै यदि न करैं तौ नौकरी कहां इस्सेभी स्वामीसेवकका विरोध नहीं होसक्ता पूजन करनेवालोंको यह आज्ञा नहीं कि स्वामीसे लडपडो यदि ईश्वरके स्वामीभावमें न्यूनता आवै सोभी नहीं क्यों कि उसमें तौ ईश्वरको स्वामी मानना भक्ति स्तुतिकरना विधानहै हां एकबात है कि यदि कोई यवन अपने यहांके सनातन धर्मविलम्बी नौकरसे यह कहै कि तुम पूजन करना छोडदो इस्से तौ विरोध होसक्ताहै परन्तु यह बात इसीमें नहीं है वोह यहभी कहसक्ता है कि वेदकू मतमानो तौ इसमेंभी वोह दोष आसक्ताहै अंग्रेजोंमें यह बात नहीं मुसलमान इन लोगोंकू नौकर नहीं रखते हां यह बात आपहीमेंहै कि जो दयानंदीनहो उसे अपने यहां जगह मतदो ईश्वरके पूजनमें तौ यह शिक्षा होतीहै कि जैसे मेरी भक्ति करतेहो वैसेही अपने स्वामी सेवकसे वर्तो

१४ मूर्तिमें ईश्वरका पूजन करनेवाले कभी जडका ध्यान नहीं करते जो स्तोत्र पढे जातेहैं किसीमें यह नहीं लिखाहै हे परमेश्वर तुम जडहो अशक्तहो पत्थरहो परन्तु उन स्तुतियोंमें तौ परमेश्वरके सर्वज्ञादि गुण वर्णन कियेहैं इस कारण मनमें कभी जडत्व धर्म नहीं आता परन्तु जैसे शून्यवादी आपहैं ऐसेका ध्यान करनेसे मनमें शून्यता धर्म प्रगट होताहै नाम तुम्हारे कल्पितहै नामी कोई नहीं उपासनाके अर्थही समीपमें पूजन करनेकेहैं फिर शून्यमें क्या पूजन करै बस शून्यही अन्तःकरण होगा.

१५ पहले तौ आपने हवन विषयमें हवनसे वायु शुद्धि मानीहै अब फूलोंसे वायु शुद्धि मानी है (पहले तेल फुलेलका निषेध किया था) यदि पुष्पोंकी सुगन्धिसेही परमात्माकूं वायुशुद्धिकरनी इष्ट थी तौ विलायतादि देशोंके पुष्पसुगन्धिहीन क्यों बनाये वहां हवनभी नहीं होता तौ बस प्रजा घोर रोगोंसे पीडित हौनी चाहिये पानी

नहीं बरसना चाहिये सो ऐसा नहीं होता; मृतकदाहसेंभी वायुमें दुर्गन्धि फैलती है इसकाभी निषेध करते. जैसे और देशोंमें रोग होते तैसे यहांभी होते हैं यहां हवन और सुगन्धि युक्त पुष्प रहनेसेभी रोग शान्त नहीं होता इस भारतवर्षके बागोंमें सहस्रों मन पुष्प उत्पन्न होते हैं उनमेंसे थोडेसे पूजनको आते हैं प्रायः माली लोग पुष्पादिकोंको वेचते हैं उनकी आजीविकाभी चलती है और फिरभी जो फूल खिलते हैं वे ही पूजनमें काम आते हैं जो कि एक दिनमेंहीं वृक्षपर रहनेसे सूखकर गिरजाते हैं कुछ मंदिरोंमें आनेसे उनकी सुगन्धि कमती नहीं होजाती. सुगन्धियुक्तही चढाये जाते हैं इस्से सुगन्धि ज्योंकी त्यों फैलती रहती है दूसरेदिन वे अलग कर दिये जाते हैं यदि उनका तोड़नाही मनै हैं तो यह इतर फुलेल हारादि सब वृथाही है जिनका प्रचार प्राचीन कालसे चलाआता है और इनके तोड़नेसे हानिभी नहीं होती किन्तु लाभ होता है बाग बहुधा नगरसे बाहर होते हैं उनकी सुगन्धिसे बाहरकी ही वायु पवित्र रहती है यदि वोह प्रत्येक मंदिर वा पुरुषोंके स्थानमें आवैं तो घरघरकी वायु शुद्ध होजाती है आर्य्यावर्तदेश तो वन उपवनके पुष्पोंसे परिपूर्ण है जिन्है कोई तोड़नेको नहीं जाता वे सब वायुको शुद्धकर सक्ते हैं चंदनके वृक्ष केशर कर्पूरादि यह सब सुगन्धित द्रव्य हैं इसकारण पुष्पोंसे परमेश्वरकी पूजा करनी श्रेष्ठ है जहां मूर्तिपूजन नहींहोता उस देशकी पृथ्वीमें अधिक सुगन्धित पुष्प नहीं होते यह इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है.

१६ सोल्हवां मंदिर सब पक्के बने हुए होते हैं बडी मूर्तियोंको स्नान नहीं कराया जाता छोटी मूर्तियोंको कटोरोंमें स्नान कराते हैं उसमें चंदन तुलसीदल आदिक होता है उसीका चरणामृत लेते हैं वोह जल पुण्यदायक और तुलसीदल पड़ जानेसे हाजिमभी हो जाता है परन्तु दयानंदजीका. यह आक्षेप शिवजीके मंदिरपर है क्योंकि शिवालयके पीछेही जलहरी होती है सब पूजन करने हारे जान्ते हैं कि जलहरीमें जलही जाता है बेलपत्र पुष्पादिक नहीं जाते एकाध चले जानेकी कोई बात नहीं वोह बेलपत्र वा पुष्प जो शिवजीपर चढायेजाते हैं वे पूजारी दूसरे दिन उन्है लेजाते हैं कहीं नदीमें बहा आते,वा और कहींडाल आते हैं जलहरी रोजभरजाती हैं कुछ कुआ तो है ही नहीं जो मुद्दतोंमें भरे और सडे यदि दूसरे दिन पुजारी जलहरीका पानी न निकालै तो पानी सब स्थानमें फैलनेलगै और लोग उस पूजारीकी निन्दा करैं इस कारण वोह नित्यप्रति जल निकाल डालता है मंदिरोंमें यह बात होती ही नहीं. विदित होता है कि स्वामीजी इस प्रसंगके लिखनेमें या तो किसी सडे हुए चौबच्चेके धोरे बैठेथे या कहीं चौबच्चेका स्वप्न देखा होगा सोलह दोष जो उन्होंने मूर्तिपूजनपर किये हैं इसमें एकभी नहीं घटसक्ता.

स० पृ० ३१४ पं० २६ इस मूर्तिपूजाको लोगोंने इस वास्ते स्वीकार किया है कि जो माता पिताके सामने नैवेद्य भेंट पूजा धरेंगे तौ वे स्वयं खालेंगे हमारे मुख वा हाथमें कुछ न लगैगा.

समीक्षा. जाने स्वामीजीकी बुद्धिपर क्या परदा पड़गया है जो मनमानी गाते हैं जो भोग ईश्वरकूं लगाया जाता है वोह सबकूं बांटाजाता है और पूजन करने हारे गृहस्थी ईश्वरको भोग लगाने उपरान्त भोजन करते हैं एक यहभी लाभ है कि भोग लगीहुई सुंदरवस्तु सबको बांटते हैं और ऐसे तौ मातापिता बहुत कम-होंगे जो अपने पुत्रोंके खाने पीनेसे दुखी होते हों और जो अपने मातापिताके पालनमें असमर्थ और मातापिताके द्रोही हैं उन्हे पूजामें कबभक्ति होगी क्यों कि वोह जान्ते हैं कि यदि हमने भोग लगाया तौ प्रत्येक मनुष्य इसके लेनेके अधि-कारी हो जायगे इस कारण वे कहीं एकान्तमें वस्तु खा लेते हैं और जो भक्तिमान हैं वे भोग लगाते अपनी माताको देते हैं.

अब मूर्तिपूजन प्रतिष्ठादि वेद मंत्रोंसे लिखते हैं.

यज्ञस्यशीर्षछिन्नस्यरसोऽव्यक्षरत्सइमेद्यावापृथिवीऽअगच्छ द्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौतन्मृदश्चापांचमहावीराःकृताभवन्ति तस्मान्मूर्तिनिर्माणायमृत्पिण्डंपरिगृह्णातितेनैवेनमेतद्रसेन समर्द्धयतिकृत्स्नंकरोतीति ब्राह्मणम् श० १४।१।३।९

भाषार्थः

वैष्णवी तेज मायामें गिरा उस समय कुछ दीप्तिरूपी रस पृथ्वीस्वर्गमें व्याप्त हुआ जिसको जल और मिट्टी कहते हैं और इन्हीं दोनो वस्तुसे महावीर परमेश्व-रकी मूर्ति बनाते हैं इसकारण मूर्तिवनानेके लिये मृत्पिण्डको ग्रहण करता है मानो उस पूर्वोक्त ज्योतिरससे ही इसको समृद्धियुक्त और पूर्ण करता है १४।१।३।९

तस्यमंत्रः

देवीद्यावापृथिवीमखस्यवामद्यशिरोराध्यासंदेवयजने पृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु० अ० ३७ मं० ३

हे (देवी) दिव्यगुणयुक्तदेव्यौ (द्यावापृथिवी) मृज्जले (अद्य) अस्मिन् समये (पृथिव्याः) वसुधायाः (देवयजने) देवयजन स्थाने (वां) युवां मृज्जलेऽआदाय (मखस्य) (शिरः) यज्ञस्य शिरोभूतंमहावीरस्यमूर्तिं (राध्यासं) साधयेयं (मखाय) यज्ञाय (त्वा) त्वांगृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीराय (त्वा) त्वांगृह्णामि ॥

भाषार्थः

हे मृद् जलरूपदेवियो! अब देवयजनस्थानमें तुम दोनोंको लेकर महावीरकी मूर्तिको साधन करूं में यज्ञके हेतु तुझे ग्रहण करता हूं और महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं

एतावाऽएतदकुर्वतयथायथैतद्यज्ञस्याशिरोऽच्छिद्यततस्मान्मूर्तिनिर्माणायतावाल्मीकिवपांपरिगृह्णातिताभिरेवैनमेतद्रसेन समर्धयतिकृत्स्नंकरोतीति ब्राह्मणम् श० १४ । १ । २ । १०

यज्ञपुरुषका तेज पतित होनेसे वल्मीकवपा अर्थात् बमईकी मट्टी हुई इसकारण उसको लेताहै और उस्से महावीरकी मूर्तिको परिपूर्ण करताहै उसका मंत्र.

तस्यमंत्रः

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्यवोऽद्यशिरोराध्यासन्देव यजनेपृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे यजुः अ० ३७ मं० ४

पदार्थः

हे (भूतस्य) प्राणिजातस्य (प्रथमजाः) प्रथमोत्पन्नाः (देव्यः) (वम्र्यः) उपजिव्हकाः (वः) युष्मानादाय (पृथिव्याः) (भूम्यः) (देवयजने) (मखस्य) यज्ञस्य (शिरः) महावीरं (अद्य) (राध्यासम्) सम्पादयेयम् शेषंपूर्ववत्.

भाषार्थः

हे प्राणीओंसे प्रथम उत्पन्न उपजिह्वकाओ तुमको लेकर देवयजन स्थानमें अब महावीरकी मूर्तिको सम्पादन करूं में यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूं महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं

इयतीहवाऽइयमग्रेपृथिव्यासप्रादेशमात्रीतामेमूषइतिवराहउ ज्जघानसोऽस्याः पतिःप्रजापतिस्तस्मान्मूर्तिनिर्माणायवराह विहितंमृदंपरिगृह्णाति तेनैवेनमेतन्मिथुनेनप्रियेणधाम्ना सम र्धयतिकृत्स्नंकरोतीतिब्राह्मणम् श० १४ । १ । २ । ११

सृष्टिके आरंभकालमें यह पृथ्वी प्रादेशमात्र थी उसको श्री वाराहजीने ऊंचा उठाया वोह वाराहजी इस पृथ्विके पति और प्रजाके स्वामी है इसकारण उस प्रियधाम मिथुनके द्वारा महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है (अर्थात्) मूर्ति बनानेको वाराह विहित मृत्तिका लेता है.

तस्यमंत्रः

इयत्यग्रेआसीन्मखस्यतेऽद्यशिरोराध्यासन्देवयजनेपृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु० अ० ३७ मं०५

(अग्रे) आदौवराहोद्धरणसमयेपृथिवी (इयती) एतत्प्रमाण प्रादेशमात्री (आसीत्) हे पृथिवी (अद्यते पृथिव्याः देवयज ने मखस्य) (शिरः) महावीरं (राध्यासम्) (मखाय त्वा) त्वांगृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीरायत्वांगृणामि ५

भाषार्थः

आदिमें अर्थात् वाराह अवतारके समय यह पृथ्वी प्रादेशमात्रीथी हे पृथिवी अब तेरे देवयजनस्थानमें माहवीरकी मूर्तिको संपादन करूं. हे वराह विहित मृत यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरकी मूर्तिके लिये तुझे लेताहूं " वाराहकी खोदी मट्टी ग्रहण करै. "

सुरभयः पूतीका यज्ञस्याहिरसात्सम्भूतास्तस्मान्मूर्तिनिर्मा णायताःपरिगृह्णातीति ब्रा० श० १४ । १ । २ । १२

तस्यमंत्रः

इन्द्रस्योजस्स्यमखस्यवोशिरोराध्यासन्देवयजनेपृथिव्याः मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु० अ० ३७ मं० ६

पदार्थः

हेपूतीकायूयं (इन्द्रस्य) परमेश्वरस्य (ओजः) तेजोरूपाः (स्थ) (वः) युष्मानादाय (पृथिव्याःदेवयजनेमखस्यशिरः) महावीरं (राध्यासम्) (मखाय) यज्ञाय (त्वां) त्वां गृह्णामि (मखस्यशीर्ष्णे) महावीराय (त्वा) त्वां गृह्णामि ॥

भाषार्थः

सुगन्धित पूतीका वैष्णवतेज (यज्ञरस) से उत्पन्न हुई इसकारण मूर्तिनिर्माण-के लिये उनको लेता है श० १४ । २ । १ । १२

मंत्रार्थः

हे पूतिकाओ! तुम परमेश्वरके तेजरूपहो तुमको लेकर देवयजनस्थानमें महावीर-को संपादन करताहूं यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे लेताहूं

एक समय जब इन्द्र वृत्रासुरके मारनेको जहां जहां वज्र स्थापन करता था वहीं से वोह स्खलित होजाता था और इसीकारण भागतेहुए वृत्रासुरको ग्रहण नहीं कर सके तब इन्द्रने विचारकर पूतीकास्तम्बके निकट वृत्रासुरके पकड़नेको वज्रसे चेष्टा-की तब वोह वृत्र पूतीकास्तम्बसे मार्ग रुकजानेके कारण न भागसका तब इन्द्रने उसको पकड़ वज्रसे मारा और प्रसन्नहो बोला हे पूतीकास्तंभ तुमने मेरी (ऊतिं) पराक्रम रक्षा (धाः) धारण करी है इसीसे तुम्हारे पराक्रम धारण करनेसे उन पूतिकौंका पूतीका नाम हुआ इनके ग्रहणसे यज्ञरक्षा होती है तैत्तिरीय०

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यशुगुदक्रामत्ततोऽजासमभवत्तस्मादजाक्षी

रंपरिगृह्णाति तथैवेनमेतच्छुचासमर्धयति कृत्स्नं करोतीति ब्रा० श० १४ । १ । २

तस्यमंत्रः

मखायत्वामखस्य त्वाशीर्ष्णे यजु० अ० ३७ मं० ७ का अंत०

भाषार्थः

जब वैष्णवी तेज मायामें गिरा तब उसकी दीप्तिसे अजा उत्पन्न हुई इसकारण अजाके दुग्धको लेताहै और उस दीप्तिसे महावीरको समृद्ध और पूर्ण करताहै श. १४।१।२।

मंत्रार्थः

हे अजाके दुग्ध यज्ञके लिये तुझे ग्रहण करताहूं महावीरके हेतु तुझे ग्रहण करताहूं

सर्वानिवास्मा एतद्देवानभिगोप्तॄन्करोतीति ब्रा० श० १४।१।२।१५

तस्यमंत्रः

प्रैतुब्रह्मणस्पतिःप्रदेव्येतुसूनृताअच्छावीरन्नर्यम्पङ्क्तिराधसन्देवायज्ञन्नयन्तुनः यजु० अ० ३५ मं० ७ इसका शेष ऊपर लिखा है

पदार्थः

(ब्रह्मणस्पतिः) मंत्रस्यपालकः (अ) ईश्वरः (प्रैतु) प्रथतोगच्छतु (सूनृता) यज्ञसम्बंधिनीमंत्रगतप्रियवाक्यरूपा (देवी) प्रकर्षेण (एतु) गच्छतु किमर्थं तदुच्यते (नर्यं) नृभ्यःयजमानेभ्योहितं (पंक्तिराधसं) पांक्तस्ययज्ञस्यसाधकं (वीर) महावीराख्यं (अच्छ) प्राप्तुं (देवाः) सर्वे (नः) अस्मदीयंयज्ञं "नयन्तु"

सब देवताओंको मूर्तिका रक्षक करता है ब्राह्म० १४।१।२।१५.

भाषार्थः

वेदके रक्षक ईश्वर आओ और इस यज्ञसम्बन्धी वाणीको सुनो सम्पूर्ण मनु-

क्योंके हितकारक यज्ञके साधनभूत महावीरदेवता हमारे इष्टदेवकी मूर्त्तिरूप और समृद्ध यज्ञपुरुषरूप अपनी शक्तिप्राप्त करानेको देवता हमारे यज्ञमें लाओ.

पयआदिसम्भारसमूहं गृह्णाति॥तस्यमंत्रः

दुग्धादि सम्भार समूहको ग्रहण करता है उसका मंत्र.

मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु॰ अ॰ ३७ मं॰ ८

यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे लेताहूं

अथमृत्पिण्डमुपादायत्रीन्महावीरान्करोतिप्रादेशमात्रंमध्येसंग्रहीतमथास्योपरिष्टाद्‌यङ्गुलंमुखमुन्नयतिनासिकामेवास्मिन्नेतद्दधातीति श्रा॰श॰ १४।१।२।१७ तस्यमंत्रः

मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे यजु॰अ॰ ३७ मं॰ ८

मृत्पिण्ड लेकर महावीरकी तीन मूर्तिं बनाता है जो कि प्रादेशमात्र अर्थात् (तर्जनीतकका अंतर) और मध्यमें संग्रहीत हों फिर उसमें मुख और नासिकाको धारण करता है श्रा॰ १४ । १ । २ । १७

मं॰—हे मूर्तियो यज्ञके लिये तुम्हें निर्माण करताहूं महावीरके लिये तुम्हें ग्रहण करताहूं.

यज्ञस्यशीर्षच्छिन्नस्यरसोव्यक्षरत्ततएताओषधयोजज्ञिरेताः परिगृह्णातितेनैवमेतद्रसेनसमर्धयतिकृत्स्नंकरोतीति

श्रा॰ श॰ १४ । १ । २ । १८

तस्यमंत्रः

मुखायत्वामुखस्यत्वाशीर्ष्णे ८

जब वैष्णवी तेज मायामें गिरा तब कुछ रसरूप तेज फैला उससे औषधियां उत्पन्न हुईं उसको ग्रहण करता है और उसी रससे महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करता है, १४ । १ । २ । १९

हे औषधे यज्ञके लिये तुझे लेताहूं महावीरके लिये तुझे ग्रहण करताहूं.

अथैतान्महावीरान्धूपयतीति श्रा॰ १४।१।२।२०

तस्यमंत्रः

अश्वस्यत्वा वृष्णं शक्राधूपयामिदेवयजनेपृथिव्याः अ० ३७ मं० ९

हेमहावीर (पृथिव्याः देवयजने वृष्णः) धर्मार्थकाममोक्षैः सेक्तुः (अश्वस्य) परमेश्वरस्य असौ वा आदित्य एषोऽश्वः श० ६।३।१।२९ सूर्यो वै सर्वे देवाः १३।७।१।८ शक्राभो गोच्छिष्टेन यथाहाथर्वः

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रितायच्च प्राणति प्राणेनयच्च पश्यतिचक्षुषा उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेदिविदेवादिविश्रितः ११।७

(त्वा) त्वां धूपयामि

महा वीरोंको धूप देता है ब्राह्म० अब मंत्रार्थ लिखते हैं ॥ हे महावीर देवयजन स्थानमें चारों पदार्थके दाता ईश्वरके उच्छिष्टसे तुझे धूप देताहूं अथर्व वेदमें लिखा है कि शर्करावालू पाषाण औषधि तृण बादल बिजली वर्षा यह सबही उच्छिष्टमें आश्रित हैं जो स्वांश लेता है जो नेत्रसे देखता है और जो स्वर्गवासी देवता है वे सब उच्छिष्टसे उत्पन्न हुए हैं इत्यादि.

अथैनान्धूपयतीति ब्रा० श० १४ । १ । २ । २१

तस्यमंत्रः

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे ९

महावीरोंकी मूर्त्तिको अग्निमें पक्व करता है यह ब्राह्मण वाक्य हुआ.

मंत्रार्थः

हे मूर्त्ति तुझे यज्ञके लिये पक्व करताहूं महावीरके लिये तुझे पकाताहूं.

उद्वपतीति ब्रा० १४।१।२।२२

तस्यमंत्रः

ऋजवेत्वासाधवेत्वासुक्षित्यैत्वा य० अ० ३७ मं० १०

पदार्थः

(ऋजवे) स्वर्गायआदित्याय (त्वा) त्वामुद्वपामि (साधवे) वायवे अन्तरिक्षलोकाय च (त्वा) त्वामुद्वपामि (सुक्षित्यै) पृथिवीलोकायाग्नये च(त्वा) त्वा मुद्वपामि त्रैलोक्यप्राप्तयेत्वामु द्वपामीत्यर्थः

भाषार्थः

फिर मूर्तिको अग्निमेंसे निकालता है ब्रा० १४।१।२।२२

मूर्ते स्वर्ग और सूर्यके लिये तुझै निकालताहूं वायु और अन्तरिक्षके हेतु तुझै निकालताहूं पृथ्वी और अग्निके लिये तुझै निकालताहूं.

अथैनानाघ्रणतिअजायैपयसेति ब्राह्म०१४।१।२।२५

तस्यमंत्रः

मखायत्वामखस्यत्वाशीर्ष्णे १०

मंत्रार्थः

फिर महावीरकी मूर्तियोंको अजाके दुग्धसे सींचताहै ब्राह्मणम्
हे मूर्ति यज्ञके लिये तुझै सींचताहुं महावीरके लिये तुझै सींचताहूं.

प्रोक्षतीति ब्रा० श०१४।१।३।४

तस्यमंत्रः

यमायत्वा मखायत्वा सुर्यस्य त्वा तपसे य०अ०३७ मं०११

पदार्थः

(यमाय) यमयति नियच्छति सर्वमिति यमः सूर्यः तस्मै (त्वा) त्वां प्रोक्षामि (मखाय) सर्वप्रेरक ईश्वरस्य (तपसे) सूर्याय (त्वा) त्वां प्रोक्षामि ११

प्रक्षाणकरताहै ब्राह्मणम् १४॥१।३।४

मंत्रार्थः

हे मूर्ति सूर्यके हेतु तुझे प्रोक्षण करताहूं यज्ञपुरुष विष्णुके लिये तुझे प्रोक्षण करताहूं सबके प्रेरक परमेश्वरके तपरूप सूर्यके लिये तुझे प्रोक्षण करताहूं.

महावीरमाज्येनससमनक्तीति ब्राह्मणम् १४।१।२।१३

तस्यमंत्रः

देवस्त्वा सविता मध्वा नक्तु यजु अ० ३७ मं ११

पदार्थः (सविता) (देवः) (मध्वा) मधुना मधुरूपेण सर्वजगद्रूपेणाज्येन (त्वा) त्वां (अनक्तु) लिम्पतु ११

महावीरको घृतसे लिप्त करताहै ब्राह्मणम् १४ । १ । २ । १३

मंत्रार्थः

हे महावीर सविता देवता तुझे घृतसे युक्त करो.

मूर्तिव्यापकं परमेश्वरं स्तौति-

अर्चिरसिशोचिरसितपोसि अ० ३७ मं ११

पदार्थः

हेमहावीर (त्वं) (अर्चिः) ज्वालारूपः ब्रह्मरूपअसि (शोचि) शुचिरूपः असि "(ज्योति)" प्रकाशरूपः सूर्यतापरूपः (असि)

मंत्रार्थः

मूर्तिव्यापकपरमेश्वरकी स्तुति करताहै.

हे महावीर तुम ज्वालारूप ब्रह्मतेजरूप हो पवित्ररूप हो - प्रकाशस्वरूप सूर्यताप रूपहो.

प्राणानेवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्रा० श० १४।१।२।२०

मधु मधु मधु यजु० अ० ३७ मं० १३

हे प्राणहेव्यानहेउदानयूयमात्ममग्निवीजयतेतिब्राह्म० १४।३२६

मूर्तिमें प्राणोंको स्थापन करताहै ब्राह्मण

हे प्राणहे व्यान हे उदान तुम आत्माग्निको प्रज्वलितकरो.

यज्ञस्यशीर्षछिन्नस्यशिरएतद्देवाःप्रत्यदधुर्यदातिथ्यंनहवा स्यापशीर्ष्णाकेनचनयज्ञेनेष्टंभवतियएवमेतद्वेद श १४।२।२।४८

जो वैष्णवी तेज मायामें गिरा देवताओंने फिर उसको विष्णुहीमें युक्त किया वही आतिथ्य यदि तेजके विना युक्त करने तेजके यज्ञकरै तौ उसमें सिद्धि नहीं होसक्ती जो इसको जान्ताहै वही सिद्धिको पाताहै.

यज्ञस्यशीर्षछिन्नस्यशुगुदक्रामत्सेमांल्लोकानाविशतमेवेनमे तच्छुचासमर्धयतिकृत्स्नं करोतीति ब्राह्मणम्० १४।३।१।२

तस्यमंत्रः

यातेघर्मदिव्याशुग्यागायत्र्याᳪंहविर्धानेसातआप्यायतान्नि ष्ट्यायतान्तस्यैते स्वाहा,यातेघर्मान्तरिक्षेशुग्यात्रिष्टुभ्याग्नीध्रे, सातआप्यायता तान्निष्ट्यायतान्तस्यैतेस्वाहा,याते घर्मपृ थिव्याᳪंशुयाजगत्याᳪंसदस्यासातआप्यायतान्निष्ट्यायता न्तस्यैते स्वाहा यजुः अ० ३८ मं० १८

हे (घर्म) महावीर (या) (ते) तव (शुक्) दीप्तिः (दिव्या) दिविभवा (या) (गायत्र्याᳪं)समष्टिप्राणे "प्राणोगायत्री श० १३।५।१५" (हविर्धाने) समष्टिस्थूल शरीरे (सा) (ते) (आप्यायतां) वर्धतां (निष्ट्यायतां) दृढाभवतु (ते) (तस्यै) दीप्तये(स्वाहा) हे (घर्म) महावीर (या ते शुक्) दीप्तिः (अंतरिक्षे) (यात्रिष्टुभि) आत्मनि "आत्मावै त्रिष्टुप् श० ६।४।२।६" (आग्नीध्रे) हार्दान्तरिक्षे (साते आप्यायतां निष्ट्यायतां ते

तस्यै) दीप्तये (स्वाहा) हेघर्म महावीर (याते सदस्या) समष्ट्युदरे स्थिता"उदरमेवास्य सदः श० ३।५।२।५"(शुक्र) दीप्तिः (पृथिव्यां याजगत्यां) समष्ट्यपाने "योऽयमवाङ् प्राणएषजगती शत० १० । ३ ।१ ।१ " साते (आप्यायतां निष्टयायतां ते तस्यै) दीप्तये (स्वाहा)

भाषार्थः

जब वैष्णवी तेज मायामें प्राप्त हुआ तब उसकी दीप्ति इन लोकोंमें प्रवेश हुई उस दीप्तिसे इस महावीरको समृद्ध और परिपूर्ण करताहै ब्राह्म०श०१४। ३ । १ । २

मंत्रार्थः

हे महावीर जो तेरी दिव्य दिप्ति विराट् शरीरमें है और समष्टि प्राणमें है वोह तुझमें वृद्धि पावो अचलहो उस दीप्तिके हेतु आहुती दीजाती है हे महावीर जो तेरी दीप्ति अन्तरिक्ष हार्दान्तरिक्ष और आत्मामें है वोह तुझमें वृद्धिपावो अचलहो उस तेरी दीप्ति के लिये आहुति दी जातीहै हे महावीर जो तेरी दीप्ति समष्टि उदर पृथ्वी और समष्टि अपानमें है वोह तुझमें वृद्धिपावो अचलहो उस तेरी दीप्तिके लिये आहुती दीजातीहै.

सउपहवमिष्ट्वाभक्षयतीति ब्रा० १४। ३ । १ । ३१ ।

तस्यमंत्रः

मयित्यदिन्द्रियंबृहन्मयिदक्षोमयिक्रतुः घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजाज्योतिषासह ब्रह्मणातेजसासह यजुः अ०३८मं० २७

पदार्थः

(त्रिशुक्) त्रिदीप्तियुक्तः (घर्मः) मूर्तिमयोदेवः (विराजाज्योतिषासह) तथा (ब्रह्मणाज्योतिषासह) (मयि) ममहृदयेविराजति (तत्) तस्मात् (यः) समष्टिप्राणः (बृहत्) महत् (इन्द्रियं) बलं (मयि) अस्ति (क्रतुः) संकल्पः(दक्षः)संकल्प सिद्धिः (मयि) वर्तते २७

भाषार्थः

होम करके उपद्रवको भक्षण करता है ब्राह्मणम्

तीनों दीप्तिसे युक्त मूर्तिमय देवता विराट्की ज्योतिके साथ युक्त होकर मेरे हृदयमें विराजमानहै इस कारण समष्टि प्राण और महान बल मुझमेंहै संकल्प और संकल्पसिद्धि मुझमें वर्तमानहै.

यस्यघर्मोविदीर्यते तत्र प्रायश्चित्ति श० १४ । ३ । २ । १

आहुतिभिर्भिषज्यति यत्किंचविवृढंयज्ञस्येति ब्रा०शत० १४।३।२।२

तस्यमंत्रः

स्वाहाप्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः पृथिव्यैस्वाहा अग्नयेस्वाहा अन्तरिक्षायस्वाहा वायवेस्वाहादिवेस्वाहा सूर्यायस्वाहा १ दिग्भ्यःस्वाहा चंद्रायस्वाहा नक्षत्रेभ्यःस्वाहा अद्भ्यःस्वाहावरुणायस्वाहा नाभ्यैस्वाहा पूतायस्वाहा अ० ३९ मं ०।१।२

भाषार्थः

जिस यज्ञमें महावीरकी मूर्त्ति फटजाय उसका प्रायश्चित्त कहतेहैं ब्रा० आहुतिसे चिकित्सा करताहै जो कुछ मूर्त्तिका अंगभंग हुआ उसकी ब्रा० प्राण साधिपति अग्नि अन्तरिक्ष वायुदिवि सूर्य दिशा चंद्रमा नक्षत्र जल वरुण नाभि पूतके हेतु श्रेष्ठ होम हो

मुखमेवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्रा० १४।३।२।१७

तस्यमंत्रः

वाचेस्वाहा यजुः अ० ३९ मं० ३

नासिकेऽएवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्रा०श०१७

तस्यमंत्रौ

प्राणायस्वाहा २ प्राणायस्वाहा २

अक्षिणीऽएवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्रा० १७

तस्यमंत्रौ

चक्षुषेस्वाहा २ चक्षुषेस्वाहा २

कर्णावेवास्मिन्नेतद्दधातीति ब्रा० १७

तस्यमंत्रौ

श्रोत्रायस्वाहा २ श्रोत्रायस्वाहा २

मूर्तिमें मुखको धारण करताहै श० १४।३।२।१७

मंत्रार्थः

वागभिमानी देवताके अर्थ श्रेष्ठहोमहो यजुः अ० ३९ मं० ३

घ्राणेंद्रियको मूर्तिमें धारण करताहै श०

मं० प्राणकेहेतुहोमहो प्राणकेअर्थहोमहो यजुः

मूर्तिमें चक्षुइन्द्रियको स्थापन करताहै श०

मं०चक्षुओंकेहेतु होमहो चक्षुओंकेहेतुहोमहो यजुः

मूर्तिमें श्रोत्रइन्द्रियको स्थापन करताहै श०

मं० श्रोत्रकेहेतुहवनहो श्रोत्रकेहेतुहवनहो यजुः

मनसावाइदꣳसर्वमाप्तं तन्मनसैवैताद्भिषज्यतियत्किंच

विवृढं यज्ञस्येति ब्राह्मणम् १४।३।२।१९

तस्यमंत्रः

मनसाकाममाकूतिं वाचस्पत्यमशीयपशूनाꣳरूपमन्नस्यरसो

यशःश्रीःश्रयतामयिस्वाहा यजुः अ० ३९ मं० ४

पदार्थः

अहं (मनसा कामम्) अभिलाषं (आकूतिं) आंकुंचनंप्रयत्नं (आशीय) प्राप्नुयाम (वाचः) (सत्यम्) प्राप्नुयाम् (पशूनां) इंन्द्रियाणाम् (रूपं) गोलकं यद्वा पशूनांशोभा (अन्नस्य रसः) स्वादुत्वं (यशः) कीर्तिः (श्रीः) लक्ष्मीश्च (मयि, श्रयताम्) तिष्ठतु (स्वाहा)

भाषार्थः

यह सब मनसे प्राप्त होताहै इस कारण मनकेद्वाराही चिकित्सा करताहै जो कुछ यज्ञका अंगभंग हुआ श० १४।३।२।१९ मंत्रार्थः मैं मनकेद्वारा अभिलाष और प्रयत्नको प्राप्त करूं वचनकी सत्यताको प्राप्त करूं इन्द्रियोंके गोलक वा पशुओंकी शोभा अन्नका स्वादुत्व कीर्ति और लक्ष्मी मुझमें वास करो ४

प्रश्न.

कस्मादेतं मृन्मयेनैवजुहोतीति श० ब्रा० १४।२।२।५३

यह ब्राह्मणमें प्रश्न है कि मट्टीकीही मूर्ति क्यों बनाते और संस्कार करते हैं

उत्तरम्

यज्ञस्यशीर्षंछिन्नस्यरसोव्यक्षरत्सइमे द्यावापृथिवीऽअगच्छ द्यन्मृदियंतद्यदापोऽसौतन्मृदश्चापाश्च महावीराः कृताभवन्ति सयद्वानरूपत्यःस्यात् प्रदह्येतयद्धिरण्मयः स्यात्प्रलीयेत यल्लोहम यः स्यात्प्रसिच्येत यदश्मयः स्यात्प्रदहेत्परीशासावथैषएवैत स्माऽअतिष्ठित तस्मादेतं मृन्मयेनैवजुहोतीति ब्राह्म. १४।२।२।५४

भाषार्थः

जब वैष्णवी तेज गिरा तौ वोह दीप्तिरूप रस पृथिवी स्वर्गमें प्रवेश हुआ जोकि मिट्टि जलरूपहै इस कारण मिट्टि जलसे महावीरकी मूर्ति बनातेहैं यदि मूर्ति काष्ठ-

की होतौ (अग्निसंस्कारके समय) जलजाय सुवर्णकी होतौ पिघल जाय पाषाणकी होतौ फटजाय लोहेकी होतौ परीशासोंको भस्मकरदे इस कारण यज्ञमें मृन्मय मूर्ति-ही बनातेहैं क्योंकि उसका अग्निमें रखना एक प्रकारकी यज्ञ विधिहै इस कारण मृन्मय मूर्ति बनाकर होम करतेहैं यह तो यज्ञमें मूर्तिविधान कहा अब मंदिरमें पूजन विधान कहतेहैं देवताका आव्हान.

ऊध्नोदिव्यस्यनोधातरीशानोविष्माद्दृतिम् १ अथर्व ७। १४ .

हे (ऊध्नः) रात्रेः (दिव्यस्य) दिवसस्य (धातः) ईश्वर (नः) अस्माकं (ईशानः) ईश्वरत्वं (दृतिम्) दृविदारेवधेआदरेच पाषाणस्यविदारणान्निर्मितां धातूनां ताडनाद्रचितां पूजनीयां च मूर्तिं (विष्याः) प्रविश स्वकीयं देहं कुरु

भाषार्थः

हे अहोरात्रके धाता हमारे ईश्वर तुम इसमूर्तिमें प्रवेश करो अर्थात् मूर्तिको अपना शरीर कल्पित करो

एह्याश्मानमातिष्ठाश्माभवतुते तनुः कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टेशरदः शतम् अथर्व २।१३।४

हेइष्टदेव (अश्मानम्) अश्ममूर्तिम् (आतिष्ठ) (आश्मा) अश्ममूर्तिः (ते) तव (तनुः) देहः (भवतु) (विश्वे) सर्वे (देवाः) (ते) तव शरीरस्य (आयुः) (शरदः शतम् कृण्वन्तु)

हे इष्टदेव पाषाणमूर्तिमें विराजमान हूजिये पाषणमूर्ति आपका शरीरहो सब देवता इस आपके शरीरकी आयु अनन्त वर्षोंकी करो.

दृते दृꣳहमामित्रस्य माचक्षुषा सर्वाणि भुतानि समीक्षन्ताम् मित्रस्याहञ्चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्यचक्षुषा समीक्षामहे यजुः

पदार्थः

(दृते) हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर त्वं (मा) मां दृहं (दृढीकुरु)

शान्तचित्तंकुरु यथा (सर्वाणि) (भूतानि) ब्रह्मपर्यन्तानि (मा) मां (मित्रस्य) (चक्षुषा समीक्षन्ताम्) मित्रदृष्ट्यामांपश्यन्तु (अहम्) अपि (सर्वाणि) भूतानि (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे) पश्यामि परमेश्वरस्यसर्वव्यापकत्वात् (मित्रस्यचक्षुषासमीक्षामहे)वयं पश्यामः पुत्रशिष्याद्यभिप्रायेणबहुवचनम्।

भाषार्थः

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर तुम मुझे एकाग्रचित्त करो जिसप्रकार ब्रह्मापर्यन्त सब प्राणी मुझे मित्रदृष्टिसे देखें मेंभी सब प्राणीयोंको मित्र दृष्टिसे देखूं हम सबको मित्र दृष्टिसे देखते हैं ।

दृते दृꣳहमाज्योक्तेसन्दृशिजीव्यासञ्ज्योक्तेसन्दृशिजीव्यासम्अथर्व०

पदार्थः (दृते) हेमूर्तिव्यापकपरमेश्वर त्वं (मा) मां (दृंह) (एकाग्रचित्तं) कुरु (ते) तव (सन्दृशि) संदर्शने (ज्योक्) चिरं (जीव्यासम्) अहं जीवेयम् (ते) सन्दृशि (ज्योक्) जीव्यासम् पुनरुक्तिरादरार्था ।

भाषार्थः

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर तुम मुझको एकाग्रचित्त करो आपका दर्शन करता हुआ दीर्घ कालतक जीता रहूं आपका दर्शन करताहुआ दीर्घ कालतक जीतारहूं

नमस्तेहरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे अन्यांस्तेऽअस्मत्तपन्तुहेतयः पावकोऽअस्मभ्यꣳ शिवोभव २०

पदार्थः

हेमूर्तिव्यापकपरमेश्वर (ते) तव (हरसे) हरति सर्वार्हणानि भक्तैर्दत्तानितस्मै हरतेरसुन्प्रत्ययः (शोचिषे) तेजसे (नमः) (अर्चिषे) स्वमूर्तिप्रकाशकायतेजसे (ते) तुभ्यं (नमः) (अस्तु) ते (तव) (हेतयः) चक्रत्रिशूलनारायणपाशुपता

अस्त्राणि (अस्मत्) (अन्यान्) मूर्तिपूजनविमुखान्नास्तिकान् (तपन्तु) (पावकः) पापैः शोधकस्त्वं (अस्मभ्यम्) (शिवः) कल्याणकर्ता (भव)

भाषार्थः

हे मूर्तिव्यापक परमेश्वर तुम भक्तोंके चंदनादि द्रव्य ग्रहण करतेहो तुम्हारे तेजरूपके अर्थ नमस्कारहै तुम्हारे मूर्तिव्यापक रूपके अर्थ नमस्कार तुम्हारे शंखचक्रादि अस्त्रोंका अर्थ नमस्कार और जो मूर्तिपूजनसे विमुख नास्तिकहैं उनको तपाओ और हमको कल्याणकारी हो

यतोयतःसमीहसे ततो नो अभयंकुरु शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः २२

पदार्थः

हेपरमेश्वर (यतः) यस्माद्यस्माद्रामकृष्णादिरूपात्त्वं (समीहसे) चेष्टसे (ततः) रूपात् (नः) अस्माकं (अभयंकुरु) किञ्च (नः) अस्माकं (प्रजाभ्यः) (शं) सुखं (कुरु)

भाषार्थः

हे परमेश्वर तुम जिस जिस अवतारादि रूपसे चेष्टा करतेहो उसउस रूपसे हमको अभय करो और प्रजाको सुख करो.

अश्मवर्ममे ऽसियोमाप्राच्यादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् अथर्व० ५।१०।१–७

हेइष्टदेव त्वं (मे) मम (अश्मवर्म) मूर्तिव्यापकपरमेश्वररूपं कवचं अश्म व्याप्तौ असि (यः) अघायुः(पापपुरुषः) (मा) मां (प्राच्याः) (दिशः) (अभिदासात्) अभिहन्ति दासहिंसने (सः) (एतत्) (हिंसनं) (ऋच्छात्) प्राप्नुयात् ऋच्छतिगच्छतिकर्मा निघं० १

भाषार्थः

हे इष्टदेव तुम मूर्तिव्यापक परमेश्वर मेरे कवचहो जो पापपुरुष पूर्वदिशासे मुझे मारे वोह इस वधको प्राप्त करै.

अश्मवर्ममेऽसियोमादक्षिणायादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्स ऋच्छात् २ अश्मवर्ममेऽसियोमाप्रतीच्यादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ३ अश्मवर्ममेऽसियोमोदीच्यादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ४ अश्मवर्ममेऽसियोमाध्रुवायादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ५ अश्मवर्ममेऽसियोमोर्ध्वायादिशोऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात् ६ अश्मवर्ममेऽसियोमादिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् एतत्सऋच्छात्७

भाषार्थः

अथर्व०

हे इष्टदेव मूर्तिव्यापक परमेश्वररूप तुम मेरे कवचहो जो पापपुरुष दक्षिण पश्चिम उत्तर नीची ऊंची दिशा और अन्तर दिशाओंसे मुझे मारै वोह इस वध को प्राप्त करै इत्यादि बहुत प्रार्थना हैं अब मूर्तिपूजनका फल।

नघ्रंस्तताप नहिमोजघान प्रनभतां पृथिवीजीरदानुः आपश्चिद स्मैघृतमित्क्षरन्ति यत्रसोमःसदमित्तत्रभद्रम् अथर्व ७।१८।२

पदार्थः

(यत्र) यस्मिन् स्थाने (सोमः) मूर्तिव्यापकोदेवः "सोमोवै राजायज्ञः प्रजापतिः तस्यैतास्तन्वीयाएतादेवताः श० १२।६ १।१" "सर्वंहिसोम श० ५।५।४।१०" (तत्र) (सदमित्) सदैव (भद्रं) कल्याणं (घ्रंस) दिनकरः सूर्यः (घ्रंस अह इतिनिघं०) (न) (तताप) (अवृष्ट्या हिमः) उपलवर्षा (न)

(जघान) किन्तु (अस्मै) मूर्तिपूजकाय (आपः) (चित्त) अपि (घृतम्) (इत) एव (क्षरन्ति) क्षीरस्यबहुलत्वात् (पृथिवी) (जीरदानुः) क्षिप्रमन्नानांदात्रीभवति हे मूर्तिव्याप कपरमेश्वर (प्रनभताम्) असुरान् अन्यताम्

भाषार्थः

जिस स्थानमें मूर्तिव्यापक देवता है वहां सदैव कल्याण है सूर्यका वर्षासे नहीं तपाता है ओलोंकी वर्षा नहीं मारती है किन्तु इस मूर्ति पूजककेलिये जलभी घृतकोही देते हैं घृतकी बहुलतासे घृत बहुत प्राप्त होता है हे मूर्तिव्यापकपरमेश्वर असुरोंको मारो

इत्यादि शतशः मंत्र मूर्ति पूजनादिके हैं इस्से जहां कहीं तीर्थादिकोंमें मंदिरोंमें पूजन होता है वोह सब ठीक है जब वेदमेंही पूजन है तौ अब और ग्रंथोंके दिखानेसे क्या है इस्से यह पूजन सत्य श्रेष्ठ है.

स० पृ० ३१८ पं० २४ रामचंद्रके समय उस लिंगके मंदिरका नाम चिन्हभी न था किन्तु दक्षिण देशस्थ रामनाम राजाने मंदिरबनवा लिंगका नाम रामेश्वरधर दिया है रामचंद्रजीने तौ आकाश मार्गसे पुष्पक विमानपर बैठे अयोध्याको आते सीतासे कहा है कि

अत्रपूर्वं महादेव प्रसादमकरोद्विभुः ॥
सेतुबन्ध इति विख्यातम् वाल्मीकि रामायणे०

हे सीते तेरे वियोगसे हम व्याकुल हो घूमतेथे और इसी स्थानमें चातुर्मास्य कियाथा और परमेश्वरकी उपासना ध्यानभी करतेथे वोह जो सर्वत्र विभुव्यापकदेवोंका देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपासे हमको सब सामग्री यहां प्राप्तहुई और देख यह सेतु हमने बांधकर लंकामें आके उस रावणको मार तुझको ले आये इसके सिवाय वाल्मीकिने अन्य कुछभी नहीं लिखा.

समीक्षा धन्य है स्वामीजी वाल्मीकिमेंसे रामेश्वरभी अलगकिया रामचंद्रजीने यह जानकीजीसे परमात्माका स्मरण करना कहा भला इसका कौन प्रसंगथा वोह तौ युद्धभूमि दिखातेथे चातुर्मास्यतौ प्रवर्षणपर्वतपर किसकिन्धामें कियाथा यहां यह कहां, जो जो विख्यात वार्ता एथीं सो सो रामचंद्रजीने दिखाई इसी प्रकार म-

हादेवजीका स्थापन विख्यात समुद्रके वर्णन किया परमेश्वरके ध्यान स्मरण बताने की क्या बातथी वाल्मीकिजीने तौ सब कुछ लिखा है आपने पौन श्लोक क्यों लिखा पूरा लिखते तौ कलई खुलजाती वाल्मीकिजी तौ ऐसा लिखते हैं कि

एतत्तुदृश्यतेतीर्थंसागरस्यमहात्मनः॥
सेतुबन्धइतिख्यातंत्रैलोक्येनचपूजितम् ॥ १॥
एतत्पवित्रंपरमंमहापातकनाशनम् ॥
अत्रपूर्वंमहादेवःप्रसादमकरोद्विभुः ॥ २॥

हे जानकि महात्मासागरका यह सेतुबन्धतीर्थ दीखता है जो त्रिलोकीमें पूजित होगा यह परमपवित्र और महापापका दूरकरनेवाला है पूर्वकालमें इसी तीर्थपर (मेरे स्थापन करनेसे) विभु महादेवजीने मुझपर कृपा कीथी, अब विचारनेकी बात है कि पवित्र और पापनाशक क्या है रामचंद्र कहते हैं कि मैंने यहीं महादेवजीका स्थापन कियाथा जिस कारण उन्हौने मेरे ऊपर कृपा कीथी यह मूर्तिही पवित्र और पापनाशक है और फिरभी उत्तर काण्डमें लिखा है

यत्रयत्रसयातिस्मरावणोराक्षसेश्वरः ॥
जाम्बूनदमयंलिंगंतत्रतत्रस्मनीयते ॥ १ ॥
वालुकावेदिमध्येतुतल्लिंगंस्थाप्यरावणः ॥
अर्चयामासगन्धैश्चपुष्पैश्चामृतगन्धिभिः २

रावण राक्षसेश्वर जहां जहां जाताथा वहां वहां जाम्बूनदमय लिंगसाथ जाता था ॥१॥ उस लिंगका वालुके वेदीके मध्यमें स्थापन करके अमृत गन्धवाले पुष्पोंसे पूजन करता था ॥ २ ॥

इत्यादि बहुत स्थानोंमें मूर्तिपूजन वेदमें विद्यमान है और पुराण शास्त्रोंमें तौ सर्व प्रकारसे वर्णन किया है सो सब जान्तेही हैं एक भीलने द्रोणाचार्यकी मूर्ति बनाकर अर्जुनसे अधिक विद्या उस्से सीखीथी सो भारतमें विद्यमान है सब कोई जान्ते हैं इसकारण उसके लिखनेकी अवश्यकता नहीं है।

स० पृ० ३२० पं० २० द्वारकामें जब १८१४ के वर्षमें तोपौंके मारे मंदिरकी मूर्तिं अंगरेजोंने उडादीथीं तब मूर्तियां कहां गईथीं।

समीक्षा-स्वामीजीकी यह वार्त्ता सर्वथा मिथ्या है, कभी अंगरेजोंने ऐसा नहीं किया मूर्त्ति नहीं तोडी।

तीर्थ प्रकरण

स० पृ० ३२३ पं० २८ यह तीर्थभी प्रथम नहींथे जब जैनियोंने गिरनार आबू आदि तीर्थ बनाये तौ उनके अनुकूल इन लोगोंनेभी बनालिये जो कोई इनके आरम्भकी परीक्षा करना चाहै तौ पंडोंकी पुरानीसे पुरानी वही और तांबेके पत्र आदि देखैं तौ निश्चय होजायगा कि यह सब तीर्थ पांचसौ वर्ष अथवा एक सहस्र वर्षसे इधरही बनेहै सहस्र वर्षसे ज्यादेका लेख किसीके पास नहीं निकलता इस्से आधुनिक हैं ।

पृष्ठ३२४ गंगागंगेतियोब्रूयात् योजनानांशतैरपि
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥
हरिर्हरतिपापानि० इत्यादि
यह पोपपुराणके श्लोकहैं

पृ. ३२४ पं २१ इनके मिथ्या हौनेमें क्या शंका क्योंकि गंगा २ वाहरे २ रामकृष्णनारायण शिवभगवती नामस्मरण करनेसे पाप नहीं छूटता ।

पं. २४ मूढोंको विश्वास है कि हम पापकर नामस्मरणकर तीर्थयात्रा करैंगे तौ पापौंकी निवृत्ति होजायगी ।

स. पृ. ३२५ प. ३ जो जल स्थलमय है वे तीर्थ कभी नहीं होसक्ते ।

पं. ६ प्रत्युत नौका आदिका तीर्थ होसक्ता है कि उस्से समुद्र आदिको तरते हैं ।

समानतीर्थेवासी १ पा०अ० ४।४।१०७
नमस्तीर्थायच यजु०

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य और एक शास्त्रको साथ साथ पढतेहों वे सब सतीर्थ अर्थात् समान तीर्थसेवी होते हैं जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणोंमें साधुहो उसको अन्नादि पदार्थ और उनसै विद्यालैनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं

समीक्षा. स्वामीजी तीर्थभी उड़ाना चाहते है जो लिखाहै कि ५०० वर्षसे ऊपर १००० वर्षसे नीचेके हैं क्योंकि पंडोंकीसही पुरानीसे पुरानी इतनेही दिनोकी मिलती है धन्य है तीर्थोंके प्रमाणमें पंडोंकीसही तौ प्रमाण और वेदशास्त्र पुराणादि सब अप्रमाण जब कि महाभारतमें पूर्णतासे तीर्थोंकी महिमा लिखी है जिसको रचे ५००० वर्ष व्यतीत होगये तौ आपका कथन यह सर्वथा असत्यहै कि तीर्थ पांचसे वर्षके हैं तीर्थ तौ वेदोंमें विद्यमान हैं।

नमः पार्य्याय चावार्य्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमः स्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च यजु० अ १६ मं ४२

भावार्थः

हे शिव सब प्रकारसें सबमें श्रेष्ठ सब संसारके तारने पार उतारनेहारे हो क्योंकि आप तीर्थरूपहो जैसे गंगा अथवा आप तीर्थोंमें पर्यटन करतेहो आपके अर्थ नमस्कार और तीर्थोंके घाट किनारे रूप आपके लिये नमस्कार शष्प्य अर्थात् गऊरूपी फेनारूपी सिकतारूपीहो आपको वारंवार नमस्कारहै यहां (नमस्तीर्थ्याय च) यह पद इसी हेतुमें है कि आप प्रयागादि तीर्थोंमें विचरतेहो इसके अर्थ स्वामीजीने कुछ नहीं लिखे. और गंगादिका माहात्म्यभी सुनिये ऋग्वेदमें इस प्रकार लिखाहै ।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया

ऋ० मं० १० अ० ६ सू ७५ मं ५

पदार्थः

हे गंगे हे यमुने सरस्वति शुतुद्रि यूयं (मे) मम स्तोमं (सचत) आसेवध्वम् परुष्ण्या सह मरुद्वृधे आर्जिकीये त्वमपि असिक्न्या वितस्तया सुषोमया च सह आ शृणुहि आभिमुख्येन स्थित्वा शृणुहि नि० अ० ९ पा० ३ खं० ५

भाषार्थः

हे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि तुम संपूर्ण मेरे यज्ञको सन्मुखहोकर सेवनकरो हे मरुद्वृधे आर्जिकीये परुष्णी असिक्नी वितस्ता सुषोमा के साथ मेरे यज्ञको सेवन करो मेरी स्तुतियोंको सब प्रकारसे सुनो ५

यहां यह विचार करना है कि यदि गंगादिनदियोंके अधिष्ठात्री देवता न हैं तो उनका आह्वान यह किसप्रकार है और स्तुति श्रवणकी प्रार्थना कैसे की है इसकारण गंगादितीर्थोंको अतीर्थ कहना अज्ञान है और देखो.

सरस्वतीसरयुः सिंधुरूर्मिभिर्महोमहीरवसायंतुवक्षणीः
देवीरापोमातरःसूदयित्न्वोघृतवत्पयोमधुमन्नोअर्चत.

ऋ० मं० १० अ० ५ सू० ६

पदार्थः

(महो) महतोपि (महीः) महत्यः (ऊर्मिभिः) सहिता (सरस्वती) (सरयुः) (सिन्धुःवक्षणीः) नद्यः (अवसा) रक्षणेन हेतुना (आयंतु) अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छन्तु (मातरः) मातृभूताः (सूदयित्न्वः) प्रेरयित्र्यः (देवीः) (आपः घृतवत् मधुमत्) पयः (नः अर्चत) प्रयच्छत.

भाषार्थः

महान्से भी महान् लहरोंसे युक्त सरस्वती सरयू सिंधुनामा नदी देवियां रक्षा करनेके लिये हमारे यज्ञमें आओ माताकी समानप्रेरक जलदेवियां घृत मधु युक्त दुग्धको (वा जलको) हमें दो और देखो

आपोभूयिष्ठाइत्येकोअब्रवीदग्निर्भूयिष्ठइत्यन्योअब्रवीत्
वधर्यन्तीवहुभ्यःप्रैकोअब्रवीदृतावदंतश्चमसाँअपिंशत

ऋ० मं० १ अ० २२ सू० १६१ मं० ९

हे ऋभवःभवतांमध्येएकःकश्चित्तीर्थाश्रयेणैवप्राप्तदेवभावआप एवभूयिष्ठाइत्यब्रवीत्वधर्यन्ती(ते यूयं) (ऋता) ऋतानिसत्यान्येवैतान्यवादीनितीर्थस्नानादीनिदेवताभावप्राप्तिसाधनानिवदन्त उपदिशन्तीयज्ञेषुचमसान्सोमयुक्तान् अपिंशत व्यभंजत

भाषार्थः

ऋभव देवता स्तुतिद्वारा सद्गतिप्राप्तिसाधनोंका इस मंत्रमें उपदेश दिया है हे ऋभव तुममें से कोई एकतीर्थ सेवन कर देव भावको प्राप्त हो तीर्थजलको

सर्वोत्तम साधन कहता है कोई अग्निहोत्रादि साधन अनुष्ठानसे प्राप्त देव भाव तिसको सर्वोत्तम कहता है इसी प्रकार कोई प्राणीमात्रपर दयाके अनुष्ठानसे देवभाव प्राप्त हौनेसे दयाको सर्वोत्तम मान्ता है इस प्रकार यथार्थ साधनका उप- देश करते हुए यज्ञपात्रके विभाग करते हो अथवा (ऋतावदन्त) इसका यह अर्थ है कि जितेन्द्री सत्यवादीको तीर्थ फल देते हैं अजितेन्द्री असत्यवादीको नहीं यही बात महाभारतके वनपर्व तीर्थयात्रा पर्वाध्यायमें लिखी है और देखिये वाल्मीकि बालकां० श्लो० २२।२३

एतेतेशैलराजस्यसुतेलोकनमस्कृते
गंगाचसरितांश्रेष्ठाउमादेवीचराघव ॥ २२ ॥
सुरलोकसमारूढाविपापाजलवाहिनी

विश्वामित्र बोले हे रामजी गंगाजी और पार्वती दौनो हिमाचलकी कन्या हैं और दौनो श्रेष्ठ पूजनीयहें २२ गंगाजी जलरूपहो पापोंका नाशकर स्वर्गलोकमें पहुंचाती हैं

पुनःअयोध्याकांडे श्लो. ८२–८७ तक

मध्यंतुसमनुप्राप्यभागीरथ्यास्त्वनिन्दिता ॥
वैदेहीप्रांजलिर्भूत्वातांनदीमिदमब्रवीत् ॥१॥
पुत्रोदशरथस्यायंमहाराजस्यधीमतः॥
निदेशंपालयत्वेनंगंगेत्वदभिरक्षितः॥ २ ॥
चतुर्दशहिवर्षाणिसमग्राण्युष्यकानने ॥
भ्रात्रासहमयाचैवपुनःप्रत्यागमिष्यति ॥ ३ ॥
ततस्त्वांदेविसुभगेक्षेमेणपुनरागता॥
यक्ष्येप्रमुदितागंगेसर्वकामसमृद्धिनि ॥ ४॥
त्वंहित्रिपथगेदेविब्रह्मलोकसमक्षमे॥
सात्वांदेविनमस्यामिप्रशंसामिचशोभने॥ ५ ॥
प्राप्तेराज्येनरव्याघ्रेशिवेनपुनरागमे ॥
गवांशतसहस्रंचवस्त्राण्यन्नंचपेशलं ॥६ ॥
ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यामितवप्रियचिकीर्षया ॥ ७ ॥

जिस समय बनको जाते समय नौकामें बैठ रघुनाथजी गंगापारकूं चले और नौका बीचमें पहुंची उस समय जानकीजी हाथ जोड़ इसप्रकारसे प्रार्थना करने लगीं १ हे गंगे यह महाराज दशरथके पुत्र वनवास करेंगे तुम इनकी रक्षा करो २ चौदह वर्ष बनमें अपने भाई और मेरे सहित वास करेंगे फिर वहांसे घरको पधारेंगे ३ हे गंगादेवी! तुम इनपर प्रसन्नहो और आनंदमंगलसे फिर लाओ तुम सकल मनोरथ सिद्ध करतीहो ४ हे गंगे! तुम त्रिलोकीका कार्य साधन करतीहो ब्रह्मलोकका वास देनेहारी हो तिसकारण हे देवी में तुम्हारी प्रार्थना करती हूं हाथ जोडकर ५ जब रघुनाथजी वनवाससे निवृत्त होके अपनी राजधानीमें प्राप्तहोंगे तौ तुम्हारे अर्थ हजार गौ वस्त्र और अन्न पतिकी प्रीतिके अर्थ दूंगी.

अब सज्जन पुरुष विचारलैंगे कि गंगादितीर्थ कबसे हैं इनसे पाप दूर होतेहै यथाहि

यमोवैवस्वतोदेवोयस्तवैषहृदिस्थितः
तेनचेदविवादस्तेमागंगामाकुरून्गमः अ० ८ श्लो० ८२

यदि यमराज वैवस्वत देवता तुम्हारे मनमें विराजमान हैं यदि तुम्हारा विवाद यमके साथ न हो तौ गंगा और कुरुक्षेत्रमें मत जावो अर्थात् जो तुम मिथ्या भाषण करोगे तो पातक होगा यमराजासे विवाद होगा पापकी शान्तिके अर्थ गंगा और कुरुक्षेत्रमें जाना होगा और यदि सच्चे हो तौ पापरहित होनेसे तीर्थ जानेकी आवश्यकता न हीं यहां भी प्रत्यक्ष तीर्थोंकी महिमाहै और यह श्लोक पुराने सत्यार्थप्रकाशमें भी आपने लिखाथा. और देखिये ऋग्वेदसंहितामें.

सितासितेसरितेयत्रसंगथेतत्राप्लुतासोदिवमुत्पतन्ति
येवैतन्वाःश्वविसृजन्तिधीराः तेजनासोऽमृतत्वंभजन्ते

जहां स्वर्गीय गंगा यमुनाका संगम होताहै वहां शरीर त्यागन करनेसे धीर पुरुष मुक्त होतेहै जब कि तीर्थोंकी ऐसी महिमा है तो फिर अन्यथा कैसे हो सक्ताहै वेद पुराण शास्त्रादिकोंमें सर्वथा तीर्थोंकी महिमा लिखीहै इस थोडेहीमें समज लीजिये.

गुरुप्रकरणम्

स० पृ० ३२६ पं०७ गुरु माहात्म्य गुरुगीता एक बड़ी भारी पोपलीला है पं०९ जो गुरु लोभी क्रोधी मोही और कामी हो तौ अर्चपाद्य अर्थात् ताड़ना दंड प्राणहरणतकमें भी कुछ दोष नहीं

समीक्षा स्वामीजीने तो गुरुको बडा भारी दंड लिखा और गुरुमाहात्म्य जिसमें गुरुओंके पास उठने बैठने बोलने चालनेकी विधि है वोह पोपलीला है तौ आपने

शिक्षा क्यों बनाई और यह दोष तौ आपहीमें घटसक्तेहैं क्यों कि ये लोभ यहांतक है कि अपनी पुस्तकौंपर रजिष्टरी कराकर तिगुना मोल रखदिया जहां तहां चंदा उगा हा जिसके पास गये बिना भेंट लिये पीछा न छोडा क्रोध ऐसाथा की मूर्तिपूजनके विषयमें पुराणप्रकरणमें (ऐसों का परमेश्वर नाश करै यह मर ही क्यों न गये) यह शब्द उच्चारण कियेहैं मोह यहांतक कि अपने लिखेकी आप ही खबर नहीं कामना ऐसीथी कि अनेक संकल्प विकल्प आपके ग्रन्थोंसे ही प्रगटहैं तौ फिर अब आपकी किस प्रकार शिष्टाचारी करनी चाहिये गुरुका गुरुत्व यहीहै कि कैसी ही भली या बुरी जो कुछ वोह आज्ञा करै सो मान्नी अच्छा बचन तौ बालकसे लेकै बूढेतकका मान्ना योग्य है फिर गुरुमें और औरोंमें अन्तर क्या आपने गुरुका कुछ मान न रक्खातभी तौ कहीं अपने गुरुको न नमस्कार किया न कुछ नाम ही लीया. (आज्ञा गुरूणां ह्य विचारणीया) गुरुकी भली बुरी आज्ञा बिना विचारे संपादन करै शुद्ध जानकीजीकू रामचंद्रकी आज्ञासे लक्ष्मण बनमें छोड आये पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने माता और भाइयोंका वध किया और देखो महाभारतका पौष्यपर्व तृतीय अध्याय आपो-दधौम्य नाम मुनिके उपमन्यु शिष्य जो मुनिकी गोचारणमें नियुक्तथा मुनिने उसको पुष्ट देखकर कहा कि जो तुम भिक्षान्नलाया करते हो सो हमें दे दिया करो वोह भिक्षा देने लगा और यत्किंचित् धेनुके दुग्धसे जीवन धारने लगा जब गुरुने उस-काभी निषेध किया तौ फेनाधार रहा उसकेभी निषेध करनेसे क्षुधित हो उपमन्युने अर्कपत्र भक्षण किया तिस्से अन्धा हो कूपमें पतित हुआ फिर गुरुने अन्वेषण कर अश्विनीकुमारकी स्तुति कराई और नेत्र प्राप्त होगये पश्चात् गुरुने आशीर्वाद दे सब विद्या दानकरदी और वोह सब शास्त्रविशारद हो अपने घर गया और इसी प्रकार उनके दो शिष्य और भी थे ऐसे ही कार्य उनसे लिये पश्चात् वे भी परीक्षोत्तीर्ण हो विद्यापाय अपने घर गये मनुजी गुरुमहिमा लिखते हैं कि.

गुरोर्यत्रपरीवादो निन्दावापि प्रवर्तते ॥
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोन्यतः ॥२००॥
परीवादात्खरोभवतिश्वावैभवति निन्दकः ॥
परिभोक्ताकृमिर्भवतिकीटोभवतिमत्सरी॥२०१अ०२ मनु०

जहां गुरुका परिवाद अर्थात् दोषकथन करा जाता है और जहां निन्दा अर्थात् झूंठ ही दोष लगाकर कोई कहता हो तौ वहांसे कान मूंद कर चला जाना उचित है ॥२००॥जो कोई गुरुके दोष कथन करता है वोह गधा होता है जो निन्दा झूंठी क-रता है वोह कुत्ता होता है और जो अनुचित रीतिसे गुरुका अन्न खाता है वोह छोटा कीड़ा होता है और जो ईर्षा करता है वोह स्थूलकीट होता है अब विचारनेकी

बात है जब गुरुका सत्यदोष कथन करना भी पाप है तौ गुरुको दंड देनेसे तौ फिर उद्धार है ही नहीं.

पुराणप्रकरणम्

पुराणोंका वर्णन तीसरे समुल्लासमें कर चुके है परन्तु यहां संक्षेपसे विवरण लिखेंगे यहबात सबही जान्ते हैं कि अनादिकालसे यह सृष्टिचक्र चला आता है अनन्तवार प्रलय और सृष्टि हो चुकी हैं जब अनेकवार उत्पत्ति हुई तौ प्रत्येक समय एकही समान उत्पत्ति नहीं हो सक्ती कुछ भेद होही जाता है हां सबका आदि कारण परमेश्वर माना है इसमें कभी कुछ विरुद्धता नहीं है परमेश्वरसे प्रकृति उत्पन्नहोकर उनसे विविध प्रकारकी प्रजा उत्पन्न होती है इसी कारण पुराणोंमें कभी सृष्टि किसीसे कभी किसीसे उत्पन्न हुई लिखी है कभी आदिमे कोई हुआ कभी कोई हुआ जिस कल्पमें जो आदिमें हुआ है वोही उसका कर्ता कहा है यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है सतरजतमयुक्त तीनही इसके देव हैं विष्णु ब्रह्मा महेश जब जो प्रधान होता है उसी देवतासे उसकी सृष्टि चलती है कहीं प्रकृतिको प्रधान मानके देवी नामसे संसारकी उत्पत्ति लिखी है जैसा कि वेदसे प्रगट है

अहमेववातइवप्रवाम्यारभमाणाभुवनानिविश्वा परोदिवापरएनापृथिव्यैतावतीमहिनासंबभूव ऋ०

लक्ष्मी मायाका वाक्यहै कि मैंही सबभुवनोंको उत्पन्न करती वायुके समान चलती हूं स्वर्ग और इस पृथ्विसेपरे जो पुरुषहै उतनीही और उससे युक्त मैं महिमासे नाना रूपवाली हुईहूं.

इत्यादि वाक्योंसे सृष्टिकी रचना अनेक प्रकारकी है ईश्वरहीकी माया रूप देवी देवताहैं चाहै जिस देवके गुणगाओ सब ईश्वरकोही पहुंचतेहैं जैसे नदी समुद्रमें जातीहैं किसीएक रूपमें विश्वास युक्त मन लगानेसे सिद्धि प्राप्त होजायगी अनेकोंमें लगानेसे शान्ति सिद्धि नहीं होती इसीसे पुराणोंका यह आशयहै कि जिस देवताका वर्णन कियाहै वा ईश्वरका नाम वर्णन कियाहै तौ उसमें उसीकी उत्कृष्टता सबसे अधिक वर्णनकीहै जो जिसका उपासकहै वो उसेही सर्व श्रेष्ठजाने और उसका चित्त भटकता न फिरे ब्रह्मादिदेव दशअवतार भगवती गणेशादि देवताओंके सिवाय और किसीका पूजन किसी पुराणमेंहै नहीं व्यासजीने पुराण नवीन कल्पना नहीं करेहैं उन कथाओंका जो लक्षों वर्षसेहीं संग्रह करदियाहै इस कारण वे नवीन नहींहै कथा पूर्वकालीनकीहै व्यासजीने उन्हे श्लोक बद्धकर दियाहै बस इसी कारण जो पुराण जिस देवताकी महिमाकाहै उसमें सर्वोत्कृष्टतासे उसी देवताके गुण लिखेहैं सबकीरुचिएकसी नहीं होती

जिस देवतामें जिसकी प्रीतिहो वोह उसीके पुराण ग्रहण करै मन लगावै तौ पार हो-जाता है और जिस कल्पमें जहांतक प्रलय हुइ है वहींसे फिर रचना आरम्भ होती है इस कारण सृष्टिके भिन्न २ प्रकारसे उत्पन्न होनेमें कोई विरोध नही अब शिव-पुराणकी कथा जो दयानंदजीने लिखी है उसे संक्षेपतः प्रकाश करते है

स० पृ० ३२८ पं० २९ से० पृ० ३३० पं० ८ तक.

शिवजीने इच्छा कि में सृष्टि करूं तौ एक नारायण जलाशयको उत्पन्न किया उसकी नाभि कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ उसने देखा कि सब जलमय है जलकी अंजली उठा देखकर जलमें पटकदी उस्से एकबुदबुदा उठा उस बुदबुदेमेंसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ उसने ब्रह्मासे कहा हे पुत्र सृष्टि उत्पन्नकर ब्रह्माने उस्से कहा तू मेरा पुत्र है और दिव्यसहस्र वर्ष जलपर लड़तेरहे उन दोनोके बीचमें एकतेजो मय लिंग प्रगट हुआ और आकाशमें चला गया उसकी थाहले आनेका प्रण करकें कूर्मका रूप धारकै विष्णु नीचेको और ब्रह्माजी हंसका रूपधार ऊपर गये जो पहले आवै वोह पिता जो पीछे आवै वोह पुत्र यह प्रणकर दिव्यसहस्र वर्षवीते परभी अन्त न मिला उस समय एक गाय और केतकीका वृक्ष ऊपरसे उतर आया और ब्रह्मासे कहा हमसहस्रों वर्षसे लिंगके आधार चले आते हैं थाह नहीं मिली ब्रह्माने कहा तुम हमारे साथ चलो यह साक्षी दोकिमें इस लिंगके ऊपर दूध और वृक्षफूल वरसाताथा वे ब्रह्माके शापके भयसे भीत हो कि यह भस्म करनेकहता है झूंठी साक्षी देनेको संमत हुए और नीचेको चले विष्णुजी पहलेहीसे बैठे थे ब्रह्माजीके कहनेपर बोले कि मुझे लिंगकी थाह नही मिली ब्रह्माजीने कहा हम लिंगका अन्तदेख आये

गौ वृक्षकी गवाही दिवाई उनकी गवाही होतेही लिंगमेंसे शब्द निकाला और यों शापदिया कि तेरा फूल किसी देवतापर न चढैगा और गाय तू झूंठ बोली इस्से विष्ठा खाया करैगी ब्रह्मासे कहा तेरी पूजाकहीं न होगी विष्णुजीसे कहा तुम सर्वत्र पुजोगे पुनः दोनोने स्तुतिकरी तौ लिंगमेंसे एक जटाजूट मूर्तिनिकली और कहाकि मेने सृष्टिकरनेको भेजा तुम झगडेमें पड़गये और अपनी जटामेंसे एक भस्मका गोला निकाल करदिया और कहा इस्से सब सृष्टिकी रचना करो

भलाकोई इन पुराणोंके बनानेवालोंसे पूछे कि जब सृष्टितत्व और पंचमहाभूत भी नहींथेतौ ब्रह्माविष्णुमहादेवके शरीर जल कमल लिंग गाय और केतकीका वृक्ष भस्मका गोला क्या तुम्हारे घरमेंसे आगिरे..

समीक्षा यह कथा स्वामीजीने अपनी मिलावट और गडबडीसे लिखाहै विदित होताहै कि स्वामीजीने कभी शिवपुराणका दर्शनभी नहीं किया जो कुछ शिवपुराणमें चौथेसे आठवें अध्यायतक लिखाहै सो संक्षेपतः कहतेहैं

सूतजीबोले कि हे शौनक जिसके अनन्तनाम और जो सबका स्वामीहै उसको वैष्णव मत रखनेवाला विष्णु शाक्त, शक्ति, सूर्योपासकरवि गाणपत्य उसीको विनायकजान्तेहैं इन निर्गुणपरमात्माकी इच्छा हुईकि हम एकहैं अनेक हो जांय तब आप शिवरूप होकर प्रगट हुए और शक्तिकोभी अपने आनंदके हेतु उपजाया जिसको महामाया भगवती कहतेहैं यही संसारकी आदि कारणहै इन्ही शिवको पुरुष महामाया प्रकृति कहतेहैं शिवजीने बिहारके निमित्त एक लोक बनाया जिसको अविमुक्त कहतेहैं जो सब जीवोंको आनंददायक परम मनोहरहै फिर शिवजीकी इच्छा हुई कि एक संसारका पालक पुरुष उत्पन्न करैं इति ४ अध्याय. यह सुन्तेही शक्तिने अब लोकनमात्रसे सुंदरस्वरूप विष्णुजीको उत्पन्न किया और शिवजी बोले तुह्मारानाम विष्णुहोगा तुम सृष्टिमें श्रेष्ठ देवता पालकहो अब तपकरो विष्णुजीके महा तपकरनेसे ऐसा जल उत्पन्न हुआ कि विष्णुजी उसके अन्तर्गतहो योगविद्याजो शिवजीने बताईथी उसके आश्रितहो शयन करने लगे उस समय नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ उसमें शिवजीने ब्रह्माको उत्पन्न किया अब ब्रह्माजी सोचने लगे कि मुझे किसने उत्पन्न किया यह विचार कमलकी नीचे थाह लेने चले गये और बहुत दिनोतक उस कमलकोभी न देखा तब आकाश वाणी हुई और दो अक्षर प्रगट हुए और एक स्थानमें रहनेके हेत उनमें प्रतिष्ठितहैं फिर विष्णुजी योग निद्रा त्याग ब्रह्माजीके पास आनकर बोले कि हम सृष्टिके कर्ता सत्‌चित्‌ आनंदहैं वेद हमारे उत्पन्न कियेहैं तुम हमारे नाभिकमलसे उत्पन्नहो इस कारण हमारे पुत्र हो ब्रह्माजी बोले तुम हमें गुरुकी समान उपदेश देतेहो तुमनहीं जान्ते कि वेद क्याहै इस वचनको सुन विष्णुजी विवादकरनेलगे

इति पंचमोध्यायः ५

उन दोनोंका विवाद देख शिवजी अन्तकालकी जलती हुई वड़वाग्निके सदृश प्रगट हुए यह देख ब्रह्माविष्णुजी विवाद त्याग परस्पर विस्मितहो पूछने लगे कि यह क्याहै जो कोई इसका आदि अन्त देखले वोही सृष्टिका मालिकहो ब्रह्माजी ऊपर और विष्णुजी श्वेतवाराह हो नीचेंचले वोही यह श्वेतवाराह कल्प कहाता है दिव्यसहस्र वर्षतक दोनो ढूंढते रहे परन्तु भेद न मिला और दोनो लौटि आये और जब वोह अपना पूर्वस्थानभी न पाया तो जाना कि कोई तीसरा हमसेभी अधिक है यह विचार दोनोंने प्रीतिकरली तब आकाशवाणी हुई कि तुम योगकरो यह सुन दोनो योगधार स्तुतिकर कहनेलगे महाराज आप दर्शन दीजिये तब ओंकार प्रगट हुआ जिसको उन दोनोंनें सम्यक् नहीं जाना परन्तु फिर उसके चार भाग हुए अ, उ, म, बिन्दु पहला लिंगकी ज्योति दूसरा मध्यभाग आधी मात्रा उस लिंगकी ज्योतिका

शिरहै. बिन्दु सर्व लिंग ज्योतिहै इसीमें चारों वेद प्रतिष्ठितहैं कोईभी उस प्राण रूप लिंगका अन्त नहीं पाते ब्रह्मासे तृण पर्यन्त सब उसीमें मिलतेहैं प्राण वही शिवजीका स्वरूपहै इस प्राणरूप शिवजीकी मूर्ति देख दोनोनें बडी स्तुतिकी इतिषष्ठोऽध्यायः

तब शिवजीने शरीरधार दर्शनदिया इतिसप्तमोध्यायः

शिवजीबोले तुह्मारा विवाद देखकर यह प्रणवरूपी लिंग हमने उत्पन्न कियाहै और फिर कहने लगे हमारा कहना मानो यह कह स्वांसकेद्वारा वेदोपदेश किया प्रणवकी शिक्षादी विष्णुजीको पालन ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेमेंनियुक्त किया. और कहाकि जिस क्षेत्रमें सब संसार लीन हुआ है उसे लिंग कहतेहैं इस लिंगके पूजनसे लोक परलोक बनैगा और हमभी रुद्रनामसे अवतारले तुह्मारे नगरमें आवैंगे हम चारोंका एकही स्वरूपहै जो पृथक् विचारैगा वोह दुखी होगा और कभी हम कभी ब्रह्मा कभी विष्णुजी सृष्टिकी आदिमें होते है में सबमें सब मुझमें है में तुम सब एकहैं यह कह दोनोको अपनी शक्तिसे शक्तिदे सृष्टि रचनाकी आज्ञाकर शिवजी अन्तर्धानहुए विष्णुजीभी शक्ति सहित अन्तर्द्धानहुए तब ब्रह्माजीने प्रकृतिसे सृष्टिकी रचना आरम्भकी

अष्टमोध्यायः

अब सज्जन पुरुष कथाको विचार लैंगे कि कहीं कोई द्रोह या वेद विरुद्धता की इसमें बातहै किन्तुवेद, ओंकार ईश्वरहीके तीनो देवता स्वरूपहैं इत्यादि वस्तुओंका वर्णन कियाहै.

स्वामीजीने जो अपनी बनावट सत्यार्थप्रकाशमें लिखीहै उसमें गौ केतकीका वृक्ष ब्रह्माका असत्य भाषण शाप लडाई भस्मका गोला यह सब स्वामीजीके मुखरूपि घरमेंसे निकलकर सत्यार्थ प्रकाशमें आनपडे या अपने बाबाके घरसे लाये होंगे यह कथा शिव पुराणमें नहीं बस ऐसीही औरभी जानलैनीकि यह स्वामीजीनें बनावटकीहै

भागवतप्रकरणम्

स. प्र. पृ.३३० पं. ११

कश्यपसे दितिसे दैत्य दनुसे दानव अदितिसे आदित्य विनतासे पक्षी कद्रूसे सर्प सम्मीसे कुत्ते स्याल आदि और अन्य स्त्रियोंसे हाथी घोडे ऊंट गधा भैंसा घास फूस बबूर आदि वृक्ष कांटेसहित उत्पन्न होगये वाहरे वाह भागवतके बनानेवाले लाल बुझक्कड तुझै ऐसी बातें लिखते लाज और शर्म न आई निपटही अंधा बनगया स्त्रीपुरुषके रजवीर्यके संयोगसे मनुष्य तो बन्तेही हैं परन्तु परमेश्वरकी सृष्टि क्रमकें

विरुद्ध पशुपक्षी सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं होसक्ते सिंहादि उत्पन्न होकर अपने माबापको क्यों न खागये इनही झूंठी बातोंको वे अंधे पोप बाहर भीतरकी फूटी आंखोंवाले सुन्ते और पं.२७ इन भागवतादि पुराणोंके बनानेहारे जन्मतेही गर्भहीमें क्यों न नष्ट होगये वा जन्मते समयही क्यों न मरगये

समीक्षा. स्वामीजीने सब सृष्टि कश्यपसे उत्पन्न होनेमें बड़ा आश्चर्य मानाहैं और कहा कि सृष्टि क्रमके विरुद्ध नहीं होसक्ता यद्यपि हम यह विषय पहले लिख चुके हैं कि प्रथम तौ सब जीवोंकी उत्पत्ति कैसे हुई वेदमें लिखा है कि उस्से घोडे चौपाये ढोर ग्रामके पशु आरण्यपशु उत्पन्न हुए (यजुर्वेद पुरुषसूक्त) तौ क्या यह सब सृष्टिभी परमेश्वरके रजवीर्यसे हुईहै प्रथम ऋषियोंको तप करनेसे बड़ी सामर्थ्यथी कर्मानुसार जो जिस योग्यथे वैसीही योनिमें उनका जन्म हुआ निरुक्त- में लिखाहै "कश्यपः कस्मात् कश्यपोभवतीति" जो भ्रान्तिरहित होकर संसारके जीवोंके कर्म यथावत् देखे उसे कश्यप कहते हैं ब्रह्माजीने कश्यपजीको सब प्रका- रकी सृष्टि रचनेकी आज्ञादी जो जैसे शरीरमें उत्पन्न होने योग्यथे कश्यपजीनें उन्हे वैसाही ज्ञानसे बनाया और जो जिस योनिसे उत्पन्न हुए वोही उनकी माता कह- लाई यह बनानेसे पिता कहाये (वे अपने माबापोंको क्यों न खांय) यहभी कथन स्वामीजीका असत्यहै क्योंकि सिंहादि अपने मातापिताओंको नहीं खाते दूसरा वचन स्वामीजीकी सभ्यता प्रगट करताहै उसमें हम कुछ नहीं कहते क्योंकि तुलसी बुरा न मानिये जो गंवार कहजाय यदि स्वामीजीका जन्म न होता तौ यह नवीन भ्रष्ट नियोगादि पंथ क्यों चलते और मुझे यह कष्ट उठाना क्यों पडता.

स. पृ. ३३२ पं.५

ज्ञानंपरमगुह्यंमेयद्विज्ञानसमन्वितम्
सरहस्यंतदंगंचगृहाणगदितंमया १

हे ब्रह्माजी तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और अर्थ धर्म काम मोक्षका अंगहै उसको मुझसे ग्रहणकर जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तौ परम अर्थात् ज्ञानका विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषणसे रहस्यकाभी पुनरुक्त है जब मूल श्लोकही अनर्थ कहैं तौ ग्रंथ अनर्थक क्यों नहीं

समीक्षा, यहभी स्वामीजीका विवाद निरर्थकहै यह श्लोक स्वामीजी समझे नहीं जो आस्तिक बुद्धि होती तौ समझमें आता इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं श्रीधरजी लिखते हैं कि

ज्ञानं शास्त्रोक्तं, विज्ञानमनुभवः रहस्यंभक्तिः सुगोप्यमपिव क्ष्यामीत्यादिनिर्देशात् तस्यांगं साधनम्

हे ब्रह्मा मेरा शास्त्रोक्त ज्ञान अति गोप्यहै अनुभव भक्ति और सब साधन सहित है सो सुन । अब स्वामीजी बतावैं इसमें पुनरुक्ति दोष किधरहै.

स. पृ. ३३२ पं१२ भवान्कल्पविल्पेषुनविमुह्यातिकर्हिचित्

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलयमेंभी कभी मोहकूं प्राप्त नहीं होगे ऐसा लिखकै पुनः दशमस्कंधमें मोहित होकै वत्सहरण किया इन दौनोमेंसे एक बात सच्ची दूसरी झूंठी ऐसा होकर दौनो बात झूंठी

समीक्षा जब स्वामीजीने भागवतके अर्थोंहीमें गडबडीकी है तौ वेदोंमें जितनी गडबडीकी हो उतनीही थोडी इसका अर्थही अशुद्ध कियाहै सुनिये इसका अर्थ

एतन्मतंसम्यगनुतिष्ठसमाधिनाचित्तैकाग्र्येणकल्पेषुयेविक ल्पाविविधासृष्टयस्तेषुविमोहंकर्तृत्वाभिनिवेशनंयास्यतीति.

परम समाधिसें इस मतमें तुम स्थित रहोगे तौ कल्पोंके विकल्पोंमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि है इसके हम कर्त्ता है ऐसे मोहको प्राप्त नहीं होगे.

भगवानने यह वर दिया कि कल्पोंकी अनेक सृष्टिमें हम कर्ता हैं ऐसे मोहको प्राप्त नहीं होगे जो समाधिमें स्थित रहोगे सो वत्सहरणमें कोई सृष्टिका विकल्प नहींथा, होता तौ उसमें मोह होना शंकाका स्थानथा किन्तु यहां तौ ब्रह्माजीको भगवानके चरित्रोंमें मोह होगयाथा इसकारण यह कहना ठीक नहीं कि ब्रह्माजी क्यों मोहे और विकल्पके अर्थ यहां प्रलयकेभी नहीं हैं

स. पृ. ३३२ पं. १५ से जब वैकुंठमें राग द्वेष ईर्षा क्रोध दुख नहीं है तौ सनकादिकको वैकुंठके द्वारमें क्रोध क्यों हुआ जय विजय तौ द्वारपालथे उन्हे स्वामीकी आज्ञा पालन करनी अवश्यथी उन्हौने सनकादिकौंको रोका तौ क्या अपराध हुआ जो कहाकि तुम पृथ्वीमें गिरपड़ो इसके कहनेसे यह सिद्ध होता है कि वहां पृथ्वी न होगी आकाशवायु अग्नि और जल होगा तौ ऐसा द्वार मंदिर और जल किसके आधारथे पुनः जय विजयके विनय करनेपर उन्हौने कहा जो प्रेमसे नारायणकी भक्ति करोगे तौ सातवें जन्म और विरोधसे भक्ति करोगे तौ तीसरे जन्ममें वैकुण्ठ मिलैगा । इसपर विचार है जयविजय नारायणके नौकरथे उनकी रक्षा करन

नारायणका कामथा. नारायणको उचितथा कि जयविजयकी सहायताकर सनकादि-कौंको दंड देते उन्हौने भीतर आनेमें क्यों हठ किया और नौकरोंसे क्यों लडे

समीक्षा विदित होताहै कि स्वामीजीने भागवतका दर्शनभी नहीं किया जयविजय-की क्या बातहै यह कथायों है कि जयविजय द्वारपालथे जब सनकादिक वैकुण्ठमें नारायणके दर्शनको गये तौ जयविजयने हंसकर भीतर जानेसे रोका इसपर सनकादिकने कहा कि हमारे आनेजानेकी कहीं रोकटोक नहीं, और थाभी ऐसाही; तुमको यह अनर्थ कहांसे उत्पन्न हुआ जो स्वर्ग हौनेके योग्य नहीं इस कारण जैसा तुह्मारे चित्तमें भाव हुआ है ऐसेही लोकमें तुम जन्मलो

लोकानितोव्रजतमेतरभावदृष्ट्यापापीयसस्त्रयइमेरिपवोऽस्ययत्र

उन लोकौंमें तुम जाओं जहां भेद भाव दृष्टिसे कामक्रोध लोभ यह पापी हैं यही इस जीवके तीनो रिपु हैं

पश्चात् नारायणने दर्शन देकर कहाकि इन्हौने निश्चय अपराध किया जो मेरी बिनाआज्ञा तुमको रोका मेरा किसी समय यह वचन नहीं कि ब्राह्मणोंको रोको इस कारण यह कुछ दिन इसका फल भोग फिर मेरे पास आवैंगे.

विचारनेकी बातहै कि स्वर्गमें क्रोधादि युक्त पुरुष कैसे रह सक्ताहै सनकादिक कहतेहै

तद्वामनुष्यपरमस्यविकुंठभर्तुः कर्तुंप्रकृष्टमिहधीमहिमंदधीभ्याम्

इस कारण इन वैकुंठनाथ परमश्रेष्ठ ईश्वरके, मंदभागी तुमसरीके सेवकौंका जिसमें कल्याण होय वोह हमने करनेका विचार कियाहै.

यह विचार सनकादिकने शापदिया कि वैकुंठमें ईर्षावाला नहीं रहसक्ता इसी कारण जय विजय मनुष्य लोकमें आये जैसे यह लोक निराधारहै उसी प्रकार वैकुं-ठभी निराधारहै वहांभी सब कुछ पृथ्वी आदिहै और "तुम पृथ्वीमें गिरो वैरसे भ-क्तिकरो सातजन्ममेंतरो" यहबाते स्वामीजीने इस कथामें अपनी ओरसे मिलाई है.

स० पृ० ३३३ पं०५ उनमेंसे हिरण्याक्षको वाराहनेमारा उसकी कथा इस प्रकारहै कि वोह पृथ्वीको चटाईकी समान लपेट शिरहानेधर सोगया विष्णुने वाराहका रूप धारण करके उसके शिरके नीचेसे पृथ्वीको मुखमें धर लिया वोह उठादौनौकी लडाई हुई वाराहने हिरण्याक्षको मारडाला इनसे कोई बूझै पृथ्वी गोलहै वा चटाईके समान तो कुछनकहसकैगे क्योंकि पौराणिक लोगतौ भूगोल विद्याके शत्रुहैं भला जबलपेटकरही शिरहाने धरली आपकिसपरसोया और वाराहजी किसपरपगधरके

दौड़आये पृथ्वीतौ वाराहजीके शिरपरथी दौनो लडे किसके ऊपर वहां कोई ठहर-नेको जगह नहींथी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजीकी छाती परख-डे होकर लडे हौंगे.

समीक्षा विदित होताहै कि स्वामीजीने कभी भागवतको तौ अवलोकन नही किया पर कभी बालकौंमें बैठकर कहानी सुना करतेहौंगे वोही यहां ऊटपटांग लीखदी है धन्यहै इसीभरोसे भागवतका खंडन करने लगे यह कथा यों है कि जब पृथ्वी थोडी होनेके कारण भगवान (वाराह) पृथिवींवरतीतिवराहः "जो पृथ्वीको उद्धारकरै वोह वराह." पृथ्वीको उद्धार करनेको जलमेंकूदे थोडी पृथ्वीथी शेष महाप्रलयके जलमें मग्नथी पृथ्वीको वाराहजी उठातेआरहेथेकि उसी समय

हरेर्विदित्वाहरिमंगनारदात् रसातलंनिर्विविशेत्वरान्वितः
ददर्शतत्राभिजितंधराधरंप्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया

हिरण्याक्षने नारदजीसे पूछा कि मेरी समान कोई युद्ध करनेहारा बताओ नार-दजीने कहा वाराहजी पृथ्वी लैनेगये हैं वोह तुमसे युद्ध करैंगे यह सुनकर वोह पातालमें प्रवेश करगया और भगवानको पृथ्वी लेआते देख कठोर वचन कहनेलगा. भगवान उससमय जलसे पृथ्वी निकाल.

सगामुदस्तात् सलिलस्यगोचरे विन्यस्यतस्यामुदधात्ससत्वरम्
अभिष्टुतोविश्वसृजाप्रसूनैरापूर्यमाणोविबुधैःपश्यतोऽरेः

ब्रह्माजिनकी स्तुति करैं सब देवता जिनपरफूल वरसावैं ऐसे श्रीवाराहजी पृथ्वी-को जलपर धरकर अपनी आधार शक्ति स्थित करते हुए और पश्चात्

मर्माण्यभीक्ष्णंप्रतुदंतंदुरुक्तैःप्रचंडमन्युःप्रहसंस्तंबभाषे भाग०

कठिन वाक्योंसे वारंवार उसके मर्मस्थानमें पीडा देते वाराहजी क्रोधकर हिरण्या क्षसे बोले और फिर युद्धकर मारडाला यह युद्ध पृथ्वीके स्थापित होने उपरान्त पृथ्वीपर हुआथा तीसरे स्कंदमें यह कथा विस्तारपूर्वकहै अब स्वामीजीके छल प्रपंचको देखना चाहिये कि क्या तौ कथा है और क्या लिखदी है यह भागवतसे विश्वास उठानेकू स्वामीजीने गपोडा लिखदिया है यह चटाईकी तरहका लपेटना शिरके नीचेसे निकाल लेजाना इत्यादि स्वामीजीने बनावट लिखी है पौराणिक लोग तौ भूगोल विद्याके शत्रु नहीं हैं किन्तु सब सत्य विद्याओंके आपही शत्रुहैं

स० पृ० ३३३ पं० १७ हिरण्यकश्यपका लडका प्रह्लाद अपने अध्यापकसे बोला मेरी पट्टीमें रामराम लिखदो उसके पिताने इस बातको मनाकिया उसने न माना तब उसे बांधके पहाडसे गिराया कूपमें डाला परन्तु उस्से कुछनहुआ तौ एक लोहे-का खंभा आगिमें तपाके उस्से बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चाहै तौ तू इसे पकडनेसे न जलैगा प्रहलाद पकडनेको चला मनमें शंका हुई कि जलनेसे बचूंगा या नहीं नारायणने उसखंभेपर छोटी छोटीचैंटियोंकि पंक्ति चलाई उसको निश्चय हुआ झट खंभेको जापकडा वोह फटगया और उसमेंसे नृसिंहने निकल उसके बापको मारडाला प्रहलादको प्यारसे चाटने लगा उस्से कहा वरमांग उसने पिताकी सद्गति मांगी नृसिं-हने कहा तेरे इक्कीस पुरुष सद्गतिको गये अब यह देखो भागवतके बांचनेवालेको कोई पकड पहाडसे गिरावै तौ कोई नबचावै चकनाचूर होकरमरही जावे प्रहलाद को उसका पितापढनेको भेजताथा क्या बुराकाम कियाथा प्रहलाद ऐसा मूर्ख थाकि पढना छोड बैरागी होना चाहताथा जो खंभेकी बात सच्ची माने उसे गरम खंभेके साथ लगादेना चाहिये जब वोह न जलैं तौ जाने और नृसिंहभी न जला तीसरे जन्ममें वैकुंठके आनेका वर सनकादिकका था क्या उसे नारायण भूलगया भागवतकी रीतिसे ब्रह्मा प्रजापति कश्यप हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप चौथी पीढीमें होताहै इक्कीस पीढीं प्रहलादकी हुईभी नहीं इक्कीस पुरुषे सद्गतिको गये यह कहना प्रमादहै और फिर वे रावणकुंभकरण शिशुपालदंतवक्र हुए तौ नृसिंहका वर कहां उडगया.

समीक्षा—यह कथाभी स्वामीजीने गपोडसहित लिखीहै जब भागवत देखी नहीथी तौ क्यों विनासमझे लिखबैठे जब प्रहलादको ईश्वरकी कृपासे पूर्णज्ञान होगयाथा तौ उसे क्या आवश्यकताथी कि और अधिक पढै क्या पढके स्वामीजीकी नौकरी करनीथी अधिक ज्ञानी ऐसे हुए कि पाठशालाके सब विद्यार्थी उनके संगसे ज्ञानी होगये पिताने सब प्रकारके दुखदिये और यह कहताथा कि मेरे सिवाय कोई दूसरा ईश्वर नहींहै प्रहलाद कहाताथा यह बात नहीं वोह सर्व व्यापकहै यह सुन हिरण्याक्ष क्रोध करके बोला.

यस्त्वयामन्दभाग्योक्तोमदन्योजगदीश्वरः । क्वासौयदिस सर्वत्रकस्मात्स्तंभेनदृश्यते १ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतं महाभागवतंमहासुरः । खड्गंप्रगृह्योत्पतितोवरासनात् । स्तंभं तताडातिबलःस्वमुष्टिभिः २

जो तू कहताहै कि तुम ईश्वर नहीहो वोह सर्वज्ञ और तुमसे पृथक्है तौ वोह कहां

है और सर्वज्ञहै तौ इस स्तंभमें क्यों नहीं दीखता ? ऐसे पुत्रसे कठोर वचन कहवोह राक्षस आसनसे खड्ग ग्रहणकर उठा और एक घूंसा स्तंभमें मारा कहा इसमें होय तौ बोलै नहीं तौ तुझे मारडालूंगा. इतना कहतेही उसमेंसे नृसिंहजी निकले और उस राक्षसको पकड अपने नखौंसे उसका पेटचीर मारडाला. और प्रह्लादके वर मांगने के समय कहा (त्रिसप्तभिः पितापूता पितृभिः सह तेनघ) हे पापरहित पितापितृ आदि पूर्व और आगेके इक्कीस पुरुषाओंके सहित तेरे पिताकी सद्गति होगी यह बात कुलके ऊपर कहीहै और सद्गति कहनेका प्रयोजन यह कि नीचयोनीमें जन्म नहीं होगा किन्तु जहां होगा बडे ऐश्वर्यसहित होगा इसी कारण ब्राह्मणोंके वचनानुसार तीनो जन्ममें रावण शिशुपालादि बडे ऐश्वर्यवान् हुए जिनकी दुर्गति नहीं हुई तीसरे जन्ममें उद्धार होगया चौथी पीढी लिखीहै सोभी असत्यहै क्योंकि ब्रह्मा-प्रजापति २ मरीचि कश्यप हिरण्याक्षादि, इसकथामें गरमखंभके ऊपर चैटियोंका फिरना प्रह्लादका डरना आदि यहबातें स्वामीजीने गपोडेकी लिखीहैं जिसकी ईश्वर रक्ष करनी चाहताहै उसे सब प्रकार बचाताहै भक्तोंकी बडी महिमाहै भक्ति करकै कोई देखले तौ मालूम होजायगी कि भक्तोंकी क्या महिमाहै. भक्तजन तौ उसीके आश्रित रहतेहैं स्वामीजीके ग्रंथोंमें तौ भक्ति और विश्वासका लेशभी नहीं.

स० प्र० पृ० ३३४ पं० १२

रथेनवायुवेगेनजगाम गोकुलंप्रति

कि अक्रूरजी कंसके भेजनेसे वायुवेगके समान दौडनेवाले घोडोंपर बैठकर सूर्योदयसे चले और चारमील गोकुलमें सूर्यास्तसमय पहुंचे अथवा घोडे भागवत बनानेवालेकि परिक्रमा करते रहे हौंगे वा मार्ग भूलकर भागवत बनानेवालेके घरमें घोडे हांकनेवाले और अक्रूरजी आकर सोगये हौंगे.

समीक्षा यह तीसरा वाक्यभी यही सूचन करताहैं कि स्वामीजीने भागवत नहीं देखी भंगकी तरंग याहुक्केकी गुडगुडाहटमें यह बातेंसूझी हौंगी भागवतमें कहीं यह श्लोकही नहींहै स्वामीजीतौ अपनी चाल चले कि इस ग्रंथपरसै लोगोंका विश्वास उठजाय परन्तु औंधेमुंहगिरे यह घोडे स्वामीजीके सत्यार्थप्रकाश और बुद्धिमें घूमते हौंगे सुनिये वहां यों लिखाहै.

अक्रूरोपिचतां रात्रिंमधुपुर्यांमहामतिः
उषित्वारथमास्थायप्रययौ नंदगोकुलम् १

उस रात्रिमें अक्रूरजी मथुरामें रह प्रातःकाल रथमें बैठ नंदरायके गोकुलको चले इसके सिवाय और कुछ नहींहै और जब अक्रूरजी कृष्णको लेकर चले तौ यह श्लोकहै.

भगवानपिसंप्राप्तोरामाक्रूरयुतोनृप
रथेनवायुवेगेनकालिन्दीमघनाशिनीम् २

अर्थात् अक्रूरसहित श्रीकृष्ण बलराम वायुवेगयुक्त रथकी चालसे यमुनाजीपर आये बस देखनेकी बातहै कि ऊपरके श्लोकका आशय स्वामीजीके श्लोकसे नहीं खुलता यह स्वामीजीकी झूठी बनावटहै तभीतौ इनका लेख सरासर जालसे भराहै झूंठसे पूर्ण है

स० पृ० ३३४ पं० १८ पूतनाका शरीरछः कोस चौंडा और बहुत लम्बा लिखाहै. मथुरा और गोकुलदबकर पोपजीका घरभी दबगया होता.

समीक्षा-यहभी कहना असत्यहै कि पूतनाका शरीर छः कोस चौंडा और उससे अधिक लम्बाथा भागवतमें तौ यों लिखाहै.

निशाचरीत्थं व्यथितस्तनाव्सु व्यादायकेशांश्चरणौभुजावपि
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थितावज्राहतो वृत्तइवापतन्नृप
पतमानोपितद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्
चूर्णयामासराजेन्द्रमहदासीत्तदद्भुतम् भाग०

जब श्रीकृष्ण उसके प्राण निकालने लगे तब वोहगांवके बाहर आई उस काव वोह बडी व्याकुल होके हाथपैर फैलाये हुए अपनारूप बढाकर ऐसे गिरी जैसे वज्रलगके वृत्रासुर गिराथा १ उसका देह छः कोसके भीतरी वृक्षोंको चूर्ण करता हुआगिरा यह बडे आश्चर्यकी बात हुई जब कोई वस्तुगिरतीहै तौ उसकी धमकसे तौ पर्वतादि लजातेहैं छः कोसके घेरेके टूटगये तौ क्या हुआ और जब कि वोह गोकुलके बाहर-गिरी तौ गोकुल मथुरा क्यों कर दबजाती और छः कोसके घेरेमें तीनकोस लम्बा दोकोस चौंडा होताहै इस्से कोई असंभव नहीं आंधिसे वीसियों कोसके वृक्ष टूटजातेहैं.

स० पृ० ३३४ पं० २२

अजामेलकी कथा ऊंतपटांग लिखीहै उसने अपने पुत्रको पुकारा नारायण बीचमें कूदपडे जिन्होंने उसके मनका भाव न जाना कि मुझे पुकारताहै या अपने पुत्रको ज्योतिश्शास्त्रके विरुद्ध सुमेरुका परिमाण लिखाहै प्रियव्रत राजाके रथकी लीक तौ झूंठी निन्दाही करनी इष्टथी यह क्यों मान्ते इसीसे यह विदित होता है कि

स्वामीजीकेही यह सब श्लोक बनाये हुएहैं और फिरभी जिस श्लोकमें लिखाहै कि (श्रीमद्भागवतंनामपुराणंचमयेरितम्) यह भागवत पुराण मैंने बनाया है यह श्लोक स्वामीजीका बनाया हुआही है जिसे स्वामीजी स्वयं अंगीकार करचुके हैं और जितने श्लोक बोपदेवनामसे लिखे हैं उस्से यह विदित होताहै कि उस्से हिमाद्रिने पूछा होगा कि श्रीमद्भागवतमें क्या कथा है तुम मुझे संक्षेपसे सुनाओ उसने श्रीमद्भागवतकी कथा अपने संक्षेप श्लोकोंमें सुनादी होगी क्या इस्से श्रीमद्भागवत बोपदेवकी बनाई होगई अस्तु हम विवादको मानभीले कि श्रीमद्भागवत बोपदेवकी बनाई है बनाई होगी पर यह प्रचलित श्रीमद्भागवत नहीं उसकी कोई और होगी जैसा कि कविलोग करते हैं देखाजाता है कि आजदिन कितनी रामायणें संसारमें पृथक् २ प्रचलित हैं तथा "कितनी श्रीकृष्णजीकी कथाहैं" नाम सबका रामायण सबमें श्रीरामचंद्रजीकी कथा कवि पृथक् २ हैं वाल्मीकि शिव लोमश अग्निवेश तुलसीदास रामविलासादि और जैसे आपने सत्यार्थप्रकाशमें तर्कसंग्रह आदि लिखी हैं और जैसे जैनी लोगोंने हमारे ग्रंथोंके अनुकरण कर अपने यहांभी उसी नामके ग्रंथ बनालिये हैं तौ क्या उनके नामकी सूचीपत्रसे यह ग्रंथ हमारेभी उनके बनाये होगये इसीप्रकार उसनेभी कोई भागवत बनाई होगी और जिसने राजासे यह बात कही कि यह भागवत मैंने बनाई है जिसे अपनी ख्याति करनी होती वोह व्यासजीके नामसे कभी न बनाता और जो अपनी बनाई बताकर व्यासजीका नाम डालता तौ निश्चय हिमाद्रि क्रुद्ध होता चार अक्षरोंकी सूचीमें तौ अपना नाम डाला और १८००० अठारह हजार श्लोकोंमें कहींभी नाम न हो उसने यदि जो भागवत बनाई होगी तौ उसमें अपना बहुत जगह नाम लिखा होगा और इसकी सूचीमें राजा परीक्षितको आखेटके समय कलियुगका मिलन राजाकू शाप शुकदेवजीका आगमन इस बडे व्याख्यानका एक पदभी नहीं आया जिसपर भागवतकी जड़ जमी है इस्से ही विदित होताहै बोपदेवने बनाई होगी तौ और होगी इस भागवतको व्यासजीनेही बनायाहै कुछ यह भागवतही नहीं वरन और पुराणभी कहते हैं कि यही भागवत व्यासजीकी बनाई हुइ है व्यासजी इस बातको जान्तेथे कि आगे औरभी भागवत बनेगी तौ यह भ्रम दूर करनेको और २ पुराणोंमें इसका माहात्म्यभी लिखा है जिसमें भागवतके सब चरित्र वर्णन होगये हैं सो माहात्म्य भागवतके साथ लगा हुआ रहता है जो और पुराणोंसे संग्रह कियागयाहै यदि यह बोपदेवकी बनाई होती तौ और पुराणोंमें इसका वर्णन क्यों होता यही भागवत व्यासजीका बनाया है इसमें प्रमाण यह है-

मत्स्य पुराणमें लिखा है

यत्राधिकृत्यगायत्रींवर्ण्यतेधर्मविस्तरः
वृत्रासुरवधोपेतंतद्भागवतमिष्यते १
लिखित्वातच्चयोदद्याद्धेमसिंहसमन्वितम्
प्रोष्ठपद्यांपौर्णमास्यांसयातिपरमंपदम् २
अष्टादशसहस्राणिपुराणंतत्प्रकीर्तितम्
मत्स्यपुराणेपुराणान्तरेच.
ग्रंथोष्टादशसाहस्रोद्वादशस्कंधसंमितः
हयग्रीवब्रह्मविद्यायत्रवृत्रवधस्तथा १
गायत्र्याचसमारम्भस्तद्वैभागवतंविदुः ॥
पद्मपुराणेअम्बरीषंप्रतिगौतमोक्तिः
अम्बरीषशुकंप्रोक्तंनित्यंभागवतंशृणु
पठस्वस्वमुखेनापियदीच्छसिभवक्षयम् १ पाद्मे

भाषार्थ.

जिसमें गायत्रीको आगे लेकर धर्म वर्णन कियाजाताहै और वृत्रासुरका वध है उसीका नाम भागवतहै १ जो कोई इसे लिखाकर सुवर्णके सिंहासनसहित भादोंकी पूर्णमासीको दान करताहै वोह परमगतिको जाताहै २ इस ग्रंथमें अष्टादश सहस्र श्लोक है. और पुराणोंमें लिखाहै जिस ग्रंथमें अठारहसहस्र श्लोक बारह स्कंध हय-ग्रीव ब्रह्मविद्या वृत्रासुर वध १ गायत्रीसे प्रारम्भ है उसीको भागवत कहते हैं पद्म-पुराणमें लिखाहै गौतमजी कहते हैं अम्बरीष जो संसारसे पार होनेकी इच्छा करता है तौ शुकदेवजी कथित भागवतकूं सदा सुन. और पाठकर.

इन श्लोकोंसे यह भलीभांति प्रगट होती है कि श्रीमद्भागवत अष्टादशपुराणान्तर्गत व्यासकृत यही है और इसमें माखनचोरी दानआदि कुछभी लेख नहीं है और रासलीलामें जो गोपिया थीं वोह सब वरदान पाये हुए थीं और श्रीकृष्णसे भिन्न न थीं.

मार्कण्डेयपुराणप्रकरणम्

स. पृ. ३३१ पं. २३

मार्कंडेयपुराणमें रक्तबीजके शरीरसे एक बिन्दु भूमिमें पड़नेसे उसके सदृश

रक्तबीजके उत्पन्न होनेसे सब जगतमें रक्तबीज भरजाना रुधिरकी नदीका वह चल-ना आदि गपोडे बहुतसे लिखे हैं जब रक्तबीजसे सब जगत भरगया तौ देवी और देवी-का सिंह और उसकी सैना कहां रही जो कहो कि देवीसे दूर थे तौ सब जगत रक्त-बीजसे नहीं भरा था भरजाता तौ पशुपक्षीमनुष्यादि प्राणी वृक्षादि कहां रहे थे यहां यही निश्चित जाना कि दुर्गापाठ बनानेवालेके घरमें भागकर चलेगये होंगे

समीक्षा—रक्तबीजसे जगतका भरजाना श्लोकका आशय नहीं है किन्तु यही आशय है कि रक्तबीज बहुतसे उत्पन्न होजानेसे उस संग्राममें जिधर तिधर रक्तबीज-ही दृष्टि आने लगे थे जैसे जब नदीमें जल अधिक आ जाता है तौ जलके किनारे खड़े होनेवालोंकूं जल ही जल दिखाई देताहै तब वोह यह कहने लगते हैं कि आज यह जगत जलमय होरहा है सिवाय जलके और कुछ दृष्टि नहीं आता यद्यपि सब जगत् जलमग्न नहीं है परन्तु कहनेमें यही आता है ऐसे ही रक्तबीजकी जगत भर जानेकी वार्ता कहकर उसकी अधिकता दिखाई है. अतिशयोक्ति अलंकार है.

ज्योतिश्शास्त्रप्रकरणम्

स. प्र. पृ. ३३६ पं. २४ देखो ग्रहोंका कैसा चक्र चलाया है जिसने विद्याहीन मनु-ष्योंको ग्रस लियाहै पुनः पृ. ३३७ पं. ७ यजमानो तुम्हारे आज आठवां चंद्रमा है सूर्यादि क्रूर घरमें आये हैं ढाई वर्षको शनिश्चर पगमें आया है बड़ा विघ्न होगा पूजा पाठ करोगे तौ बचोगे (यह पोपलीला है) पृ. ३३८ पं. ८ सच तौ यह है कि सूर्यादिलोक जड़ हैं न वे किसीको सुख और न वे किसीको दुख देनेकी चेष्टा करते हैं पृ. ३३८ पं. १ जो धनाढ्य दारिद्रप्रजा राजा रंक होते हैं अपने कर्मोंसे होते हैं ग्रहोंसे नहीं और गणित करके विवाह करनेसे फिर विधवा क्यौं होजाती है इस लिये कर्मकी गति सच्ची ग्रहोंकी गति दुख सुख भोगमें कारण नहीं ग्रह आकाशमें और पृथ्वी भी आकाशमें बहुत दूर है इनका संबंध कर्ता और कर्मोंके साथ साक्षात् कार नहीं और जो सच्चे हो तौ एक चक्रवर्तीके समान दूसरा क्यों नहीं राजा हो यह उदरभरनेके वास्ते हैं.

समीक्षा. स्वामीजी ग्रहोंका फल नहीं मान्ते कि जड़ पदार्थ किसीको दुःख देते नहीं वेद इस बातको कहता है कि ग्रह दुख सुख देते हैं यदि ग्रह दुःख नहीं देते तौ क्यों उनकी शान्ति वेदमें की हैं निश्चय यह भेंट पाकर शान्ति करते हैं.

शंनोमित्रःशंवरुणः शंविवस्वांछमन्तकः

उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाछंन्नोदिविचराग्रहाः ॥ १ ॥

नक्षत्रमुल्काभिहतंशमस्तुनः ॥ २ ॥

शन्नोग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्याश्चराहुणा

शंनोमृत्युर्धूमकेतुः शंरुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ ३ ॥

आरेवतीचाश्वयुजौभगंस आमेरयिं भरण्या आवहन्तु ॥ ४ ॥

अष्टाविंशानिशिवानिशग्मानिसहयोगंभजन्तुमे

योगंप्रपद्येक्षेमंचक्षेमंप्रपद्येयोगंचनमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ५ ॥

स्वस्तमितमेसुप्रातःसुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु॥६॥

अथर्ववेदे १९।६।७ से. १८।९ तक

मित्र वरुण विवस्वान् अन्तक अर्थात् काल पृथ्वी अन्तरिक्षके उत्पात और आकाशमें फिरनेहारे ग्रह हमारा कल्याण करैं १ नक्षत्र उल्कापातसे हमकूं कल्याण रहै २ ग्रह चन्द्रमा आदित्य राहु मृत्यु (धुमकेतु)-(केतु) और रुद्र हमारा कल्याण करैं ३ रेवती अश्विनी भरणी आदि हमको ऐश्वर्य और धन दें ४ अठ्ठाईस नक्षत्र योग रात दिन हमको सुखकारक हों ५ प्रातःसायं दिन अच्छे शकुन मुझकोहों६

शंदेवीः शंबृहस्पतिः ११

देवी और बृहस्पति कल्याण करैं

देखिये यादि ग्रह दुख नहीं देते तो उनकी शान्तिके अर्थ प्रार्थना करनी क्यों हे क्या यह अनर्थ प्रलाप है कभी नहीं वेदमें प्रार्थना इसी कारण है कि शान्तभी होजाते हैं और जैसे मनुष्यके कर्म होते है तदनुसार ही ग्रह होते हैं ग्रह और कर्म एकसे ही होते हैं ग्रहोंसे मनुष्योंके कर्म जाने जाते हैं जिनके ग्रह स्पष्ट हैं शुद्ध हैं उसके कर्म प्रत्यक्ष हो जाते हैं उनकी जन्मपत्रीकी बात कभी झूठी नहीं होती राशि-योंमें ग्रहोंके आनेसे मनुष्योंके नामोंसे सम्बन्ध होताहै, क्योंकि (गृह्णन्ते ते ग्रहाः) ग्रहण करते हैं इसीसे उनका नाम ग्रहहै यह ज्योतिश्शास्त्रही है कि जिसके द्वारा भूत भविष्य वर्तमान दशा मनुष्य जान सक्ताहै ज्योतिश्शास्त्रका अपेल सिद्धान्त है

इसीसे इस देशकी उन्नति हुई जबसे इसका लोप होता चला तबसे नास्तिकता फैलने लगी जिससमय एक चक्रवर्ती राजा होगा उससमय कोई दूसरा नहीं हो-सकता क्यों कि उसके कर्म और ग्रह ऐसेही होते हैं दूसरा उत्पन्नही नहीं होसक्ता पतिका वियोगभी ग्रहोंके अनुसार होताहै.

स. पृ. ३३८ पं. २६

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुंभूमिभाः

यह सिद्धान्त शिरोमणिका वचन और इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तादिमेंभी है जब सूर्य भूमिके मध्यमें चन्द्रमा आताहै तब सूर्यग्रहण और जब सूर्य और चन्द्रके वीचमें भूमि आतीहै तब चंद्रग्रहण होताहै अर्थात् चन्द्रमाकी छाया भूमिपर भूमिकी छाया चन्द्रमापर पडती है सूर्य प्रकाशरूप होनेसे उसके सन्मुख छाया किसीकी नहीं पडती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य वा दीपसे देहादिकी छाया उलटी जाती है वैसेही ग्रहणमेंभी समझे.

समीक्षा वाह स्वामीजी धन्यहै ग्रहलाघवका वाक्य लिखकर नाम सूर्यसिद्धान्तका लिखतेहैं क्याही अद्भुत वातहै कि जब सूर्य और चन्द्रमाके वीचमें भूमि आवैगी तौ चंद्रग्रहण होगा यदि यह बात मानलें तौ पृथिवीवासियोंको कभी चन्द्रग्रहण न दीखना चाहिये क्योंकि छायासे चन्द्रग्रहण दृष्टि आवै तौ किसी और लोकवालोंको दीखना चाहिये पृथ्वीवालेको नहीं क्योंकि जैसे किसी आदमीके सामने कोई और दूसरा आजाय तौ वेशक उसपर उसकी छाया पडेगी परन्तु उसकी ओट तीसरे मनुष्यको मालूम होगी जो ठीक उसके पीछे होगा वीचके मनुष्यको दोनो यथावत् दीखसकेंगे इस कारण चन्द्रसूर्यके पृथ्वीके वीचमें आनेसे कभी कोई ग्रहण नहीं होसक्ता और सूर्य चंद्रमा दोनो पृथ्वीसे ऊंचेपरहैं उनकी छाया पृथ्वीपर पडती है पृथ्वीकी उसपर नहीं पडती हां जो पृथ्वीसे नीचे लोकहैं उनको चन्द्र और सूर्यके वीचमें पृथ्वीआनेसे ग्रहण दीखसक्ताहै परन्तु ऐसा नहीं है यह स्वामीजीने अपना शास्त्र छोड अंग्रेजोंका अनुकरण कियाहै ज्योतिषका मतहै जब राहु सूर्य एक राशिमें होंतौ उनकी छाया पडनेसे तीसरे स्थानके पृथ्वीवासियोंको ग्रहण दीखताहै और ऐसेही केतु चंद्रमा एक राशिपर होनेसे चन्द्रग्रहण सबको दीखताहै

पूर्णिमाप्रतिपत्संधौराहुःसंपूर्णमंडलं । ग्रसतेचन्द्रमर्कंच पर्वप्रतिपदन्तरे ॥

यदि पृथ्वी चलती होती तौ इसको राशियोंमें आना जाना पूर्व आचार्य मान्ते

और यदि हमारे यहांके सिद्धान्त अशुद्धहौंते ग्रहणादिकौंकी यह ठीक विधि कैसे मिलती और किसी २ ने राहुकोही पृथ्वी कहाहै और वेद ब्राह्मणोंमेंही यह राहुकाही आच्छादन करना लिखाहै.

देखिये जिस ग्रहलाघवका यह वाक्यहै उसका प्रसंगयौंहै ग्रहणाधिकार संख्या श्लोक २ "एवंपर्वान्ते विराह्वर्कबाहोरिंद्राल्पांशा संभवश्चेद्ग्रहस्य । तेंशानिघ्रा शंकरैःशैलभक्ताव्यग्वर्काशास्यात्पृषत्कोंगुलादिः ॥

अर्थ इसी प्रकार पर्वान्त अर्थात् तिथ्यन्तमें सूर्यमें राहु कमकर फिर भुजा बनाय देखना १४ अंशसे न्यून होतो ग्रहणका हौना समझ जाताहै अंश ग्यारहके संग गुण सातका भाग देकर जो प्राप्तहो राहु चढाये हुए सूर्यकी दिशाकी तरफ शर होताहै आगे यह वोही श्लोक चतुर्थ है जो कि स्वामीजी सिद्धान्त शिरोमणिका लिखतेहैं (छादयत्यर्कमिंदुर्विधुंभूमिभाश्छादकछाद्यमानैक्यखंडंकुरु इति४) इसका अर्थ सूर्यको राहु चन्द्रमाके साथ होकर छादन करताहै और चन्द्रमाको राहु भूमिके साथ मिल-कर छादन करताहै पूर्व जो दूसरा श्लोक (एवंपर्वा) है इसका अर्थ पूर्व लिखचुकेहैं राहु सूर्यसेहीन क्यों किया जाताहै यदि राहू छादक नहीं तौ राहूके स्थानमें चन्द्र-माहीन क्यों नहीं किया जाता प्रत्यक्ष लिखाहै राहु और सूर्यका अंश १४ के बीच अन्तर दौनोंका होगा तौ ग्रहण होगा नहीं तौ क्योंकर राहुका अन्तर १४ अंश ग्रहण-में छादक चन्द्रहोता तौ चन्द्रका अन्तर १४ से न्यून होगा तौ सूर्य ग्रहण होगा यह ग्रंथकारने क्यों नही लिखा और जो चंद्रमाकोही मानो तौ प्रत्येक अमावस्यामें सूर्य चन्द्रका अन्तर १४ से ऊन होताहै किस कारण प्रत्येक अमावस्याको सूर्यग्रहण नहीं होता इस कारण यावत्काल राहु वा केतु अंतर अंश १४ का सूर्य चन्द्रसे न होगा तौ ग्रहणभी न होगा (प्रश्न) फिर छादयत्यर्क इंदुः–यह क्योंकर लिखा(उत्तर) राहु तौ पूर्व श्लोकमें कह चुकेहैं चंद्रमा इस श्लोकमें कहा इस्से जाना जाताहै कि दौनौ मिलैं तौ ग्रहण होताहै यदि राहु न लिया जाय प्रत्येक अमावस्याको सूर्य चन्द्रतुल्य हौनेसे ग्रहण हौना चाहिये पुनरुक्ति दोषके कारण चंद्रमाके साथ राहु फिर दोवार नहीं लिखा स्वामीजीको सिद्धान्तशिरोमणिका प्रमाणथा ग्रह लाघवका अप्रमाणथा इस कारण ग्रहलाघवके श्लोक खण्डको सिद्धान्तशिरोमणिके नामसे लिख दिया शोकहै इस झूंठे जाल और संन्यासपर परन्तु हम सिद्धान्तशिरोमणिके श्लोक लिखतेहैं ग्रहणाध्याय श्लो० ८–१०

दिग्देशकालावरणादिभेदान्नछादकोराहुरितिब्रुवन्ति
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत् संहितावेदपुराणबाह्यम् १

राहुःकुभामंडलगःशशांकंशशांकगश्छादयतीनबिम्बम्
तमोमयःशंभुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत् २

अर्थ

दिशा देश काल आवरण भेदसे राहुको छादक जो नहीं मान्ते वो पुरुष केवल गोल विद्या संहिता वेद पुराणोंसे बाह्यहैं राहू पृथ्वीकी छायामें होकर चंद्रमाको छादे है चंद्रमेंहोकर सूर्यको छादन करताहै राहु अंधेरारूप शिवजीका वर होनेसे सम्पूर्ण वेद सम्मत यह वाक्यहै यह सिद्धान्तशिरोमणिका वचनहै अब गणिताध्यायमें ग्रहणाध्यायका प्रथम श्लोक-

राहुफलंजपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदःप्रवदंतिहि
सदुपयोगिजनेसचमत्कृतिर्ग्रहणमिंद्विनयोःकथयाम्यतः १

अर्थ

महाफलहै जपदान हवनका ग्रहणके समयमें यह स्मृति पुराण वेदवेत्ता कहतेहैं श्रेष्ठोंके योग्य यह चमत्कार्यरूप सूर्यचन्द्रग्रहण स्फुट कहताहै इस श्लोकके ऊपर स्मृति पुराणवचन भास्कराचार्यने स्वरचित भाष्यमें लिखेहैं सो लिखतेहैं

स्नानंस्यादुपरागादौ मध्ये होमसुरार्चने
सर्वस्वेनापिकर्तव्यं श्राद्धं वैराहुदर्शने १
अकुर्वाणस्तुनास्तिक्यात् पंकेगौरिवसीदति
स्नानंदानंतपःश्राद्धमनंतंराहुदर्शने २
संध्यारात्र्योर्नकर्तव्यंश्राद्धंखलुविचक्षणैः
द्वयोरपिचकर्तव्यं यदिस्याद्राहुदर्शनम् ३
उषस्युषसियत्स्नानं संध्यायामुदितेरवौ
चंद्रसूर्योपरागेचप्राजापत्येन तत्फलम् ४

अर्थ

स्नान ग्रहणादिमें करे होम देवपूजन मध्यमेंकरे सर्वस्वमेंभी राहुदर्शनमें श्राद्धकरै १ जो नास्तिकतासे जपादिनकरै तौ कीचडमें फंसी हुई गायकी नाईं अत्यन्त दुःखित

होताहै स्नान दान जप श्राद्ध राहुके ग्रासमें अनंत होतेहैं २ श्राद्ध संध्या रात्रिमें न करै ग्रहण समयमें सदाकरैं ३ प्रातःकाल जो स्नानका फलहै संध्याका जो फलहै वोह फल प्राजापत्यरूप ग्रहणमें मिलताहै ४ इत्यादि यह सत्त युगका बना ग्रंथहै और पुराण उस समयभीथे इस्से पुराण प्राचीनहैं प्रमाण.

अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमेतत्कृतंयुगमिति

अर्थात् यह अट्ठाइसमां सतयुग व्यतीत होता है.

गरुड़पुराणप्रकरणम्

स. पृ. ३३९ पं. १४ क्या गरुड़ पुराण झूंठा है (उत्तर) हां असत्य है (प्रश्न) जो यमराजा चित्रगुप्त मंत्री उनके भयंकर गण पहाड़से शरीरवाले पकड़ लेजाते हैं पापपुण्यके अनुसार स्वर्ग नर्कमें डालते हैं उसके लिये दान पुण्य श्राद्ध तर्पण वैतरणी आदि नदी तरनेके लिये करते हैं क्या यह बात झूंठी है (उत्तर) यह सब पोपलीला है जो यमलोकके जीव पापकरैं तौ दूसरा यमलोक मान्ना चाहिये वहांके न्यायाधीश न्याय करैं पर्वतकी समान यमके गणहों तौ दीखते क्यों नहीं और जिस घरमें आवैं वोह टूटता क्यों नहीं इत्यादि और पिंडदानादि कुछ नहीं पहुंचता.

समीक्षा—स्वामीजीने गरुड़पुराणकी वृथा निन्दाकरी वेशक यमराजके गण पापियोंके प्राण निकालते हैं उनका अत्यन्त सूक्ष्म शरीरहै और ऐसी शक्तिहै कि वे अपने शरीरको घटा बढासक्ते हैं वेही प्राण निकालते हैं और यमलोकमें क्या अपराध करैंगे वहां तौ पराधीन होकर कष्ट भोगते हैं और यदि अपराधभी करैं तौ दूसरे यमलोककी क्या आवश्यकता है यही यमराज दण्ड दे सक्तेहैं जैसे जेलखानेमें कैदी कोई अपराध करै तौ उसकी कैद और बढादी जाती है वेदमें गोदान यमराजा आदि सबका वर्णन है.

१ वैवस्वतंसंगमनंजनानांयमंराजानंहविषासपर्यत अथर्व १८।१।४९

२ मृत्युर्यमस्यासीद्दूतःप्रचेताअसून्पितृभ्योगमयांचकार १८।२।२७

३ यातेधेनुर्निपृणामियस्तेक्षीरओदनम्
तेनाजनस्यासिभर्तायोऽत्रसदजीवनः १८।२।३०

४ दण्डंहस्तादाददानोगतासोःसहश्रोत्रेणवर्चसाबलेन
(अत्रैवत्वमिहवयंसुवीराविश्वामृधोअभिमातीर्जयेम १८।२।५९)

५ धनुर्हस्तादददानोमृतस्यसहक्षत्रेणवर्चसाबलेन
समागृभायवसुभरिपुष्टमर्वाङ्त्वमेह्युपजीवलोकम् १८।२।६०
६ एतत्तेदेवःसविता वासोददातिभर्तवे
तत्त्वंयमस्यराज्येवसानस्तार्प्यंचर १८।४।३१
७ धानाधेनुरभवद्वत्सोअस्यास्तिलोऽभवत्
तांवैयमस्यराज्येअक्षितामुपजीवति ३२
८ एतास्तेअसौधेनवः कामदुघाभवन्तु
एनीःश्येनीःस्वरूपाविरूपातिलवत्साउपतिष्ठन्तुत्वात्र ३३
९ एनीर्धानाहरिणीःश्येनीरस्यकृष्णधानारोहिणीर्धेनवस्ते
तिलवत्साऊर्जमस्मैदुहानाविश्वाहासन्त्वनपस्फुरन्तीः ३४अथर्ववेदे

भावार्थः

वैवस्वत देव जो मनुष्योंको संगमन करनेहारे हैं उन यमराजाकू हविसे तृप्त करताहूं १ यमराजाका दूत मृत्यु है प्रचेता है जो कि प्राणोंको निकालते हैं २ जो तुह्मारे वास्ते धेनुदान करताहूं जो कि दुग्धादिक देंगी इसी गौसे यमलोकमें गये प्राणी सुखीहैं ३ हाथमें दंड धारण किये हुए प्राणियोंको बलपूर्वक ग्रहण करते हैं ४ धनुष हाथमें लिये मृतककू बलपूर्वक ग्रहण करते हें ५ यह सविता देवताके अर्थ वस्त्र देताहूं सो हे सविता देवता तुम यमलोकमें हमारे पितरोंको वस्त्र दो ६ यह धानधेनुहैं तिल वत्सहैं यही यमराजमें पितरोंको सुखदाताहैं ७ यह गायें कामधेनु समहैं एनी श्येनी स्वरूप विरूप और तिलरूप वत्सपितरोंके अर्थ प्राप्तहों ८ एनी धन हरनेहारी श्येनी कृष्णगौः तिलवत्सा यमलोकके पितरोंके अर्थ हैं ९

देखिये तप दान श्राद्ध यमराज गोदान आदि सब विधान अथर्ववेदमें हैं.

स. पृ. ३४२ पं. ७ यमेनवायुनासत्यराजन् इत्यादि वेद बचनोंसे निश्चय है कि यमनाम वायुका है शरीर छोड़के वायुके साथ अन्तरिक्षमें जीव रहते हैं जो सत्यकर्ता पक्षपातरहित परमात्मा धर्मराज है वोह सबका न्याय करताहै.

समीक्षा–धन्य स्वामीजी पंचयज्ञ महाविधिमें पृ. ५८ पं. १८ में सानुगाय यमायनमः, का अर्थ लिखाहै जो सत्य न्याय करनेवाला ईश्वर और उसकी सृष्टिमें सत्य न्याय करनेवाले सभासद वे (सानुगाय) शब्दार्थसे ग्रहण होते है यहां तो

ईश्वर और हाकिमोंको यम लिखा है पुनः सत्यार्थ० पृ. ३० पं. २४ भूत प्रेतके निषेधमें लिखाहै देखो जब कोई प्राणी मरताहै तब उसका जीव पापपुण्यके वश होकर परमेश्वरकी व्यवस्थासे सुखदुःखके फल भोगनेके अर्थ जन्मान्तर धारण करताहै यहांतक दूसरी देहमें होकर जन्मान्तरमें भोग लिखा है और यहां ऊपर आकाशमें वायुमें रहना लिखते है यहां शरीररहित आत्माकी स्थिति वायुमें मानी है अब विचारिये--कहीं ईश्वर और हाकिमोंको यम लिखा है कहीं तत्काल देह धारण माना कहीं विना देह जीवकी स्थिति नहीं होती यह माना कहीं विना देह जीवोंको वायुमें लटकाया है यह सब ऐसी विरुद्ध बातें हैं जिसे थोडीभी बुद्धि होगी वोह स्वामीजीका बुद्धिभ्रम जानलेगा अट्ठाईस नरक मनुजीनें अंधता मिस्रादि अध्याय ४ श्लोकमें ८७ से ९० तक लिखे हैं इस्से गरुड़पुराण वेद विरुद्ध नहीं और (यमेनवायुना) इसको स्वामीजीने यह नहीं लिखा कि यह कौनसे वेदका अर्थ है इसका अर्थ तौ यह है कि "हेराजन् यमकरके वायु सत्य है" यह क्या बात हुई.

व्रतप्रकरणम्

स. पृ. ३४४ पं ४ ये गरुडपुराणादि और तंत्र वेदसे उलटे चलते हैं तंत्रभी वैसेही हैं जैसे कोई मनुष्य एकका मित्र सब संसारका शत्रु वैसाही पुराण और तंत्रका मान्नेवाला पुरुष होताहै क्योंकि एक दूसरेके विरुद्ध करानेवाले यह ग्रंथहैं इनका मान्ना किसी विद्वान्का काम नहीं किन्तु इनका मान्ना अविद्वत्ताहै देखो शिवपुराणमें त्रयोदशी सोमवार आदित्यपुराणमें रविचंद्रखंडमें सोम ग्रहवाले मंगल बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहुकेतु वैष्णव एकादशी द्वादशी नृसिंह वा अनन्तकी चतुर्दशी चंद्रमाकी पौर्णमासी दिक्पालोंकी दशमी दुर्गाकी नवमी वसुओंकी अष्टमी मुनियोंकी सप्तमी कार्तिकस्वामीकी षष्ठी नागकी पंचमी गणेशकी चतुर्थी गौरीकी तृतीया अश्विनीकुमारकी द्वितीया आद्यादेवीकी प्रतिपदा पितरोंकी अमावास्या पुराण रीतिसे यह दिन उपवास करनेकेहैं सर्वत्र यही लिखाहै जो मनुष्य इनवार और तिथियोंमें अन्न ग्रहण करैगा वोह नरकगामी होगा निर्णयसिंधु व्रतार्कादि ग्रंथ प्रमादी लोगोंने बनायेहैं.

पं० २२ एकादश्यामन्ने पापानि वसंति.

जितने पापहैं एकादशीके दिन अन्नमें वसतेहैं इन पोपजीसे पूछा जाय कि किसके पाप उनमें बसतेहैं जो सबके सब पाप एकादशीमें जा बसे तौ किसीको दुःख न होना चाहिये ऐसा नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदिसे दुःख होताहै दुःख पापका फलहै

इससे भूंखों मरना पापहै पृ० ३४५ पं० १३ एकपानकी बीडी जो स्वर्गमें नहीं एकादशीके फलसे भेजना चाहतेहैं कोई भेज देतौ पं० २१ ज्येष्ठमहिनेके शुक्लपक्षमें जिस समय घडीभर जल न पीवें तौ मनुष्य व्याकुल होजाताहै व्रत करनेवालोंको महा दुख होताहै विशेषकर बंगाले देशमें सब विधवा स्त्रियोंकी व्रतके दिन बडी दुर्दशा होतीहै इस निर्दयी कसाईको लिखते समय कुछभी दया न आई नहीं तौ निर्जलाका नाम सजला और पौष महीनेकी शुक्ल पक्षकी एकादशीका नाम निर्जला रख देता गर्भवती वासद्यो विवाहिता स्त्री लडके वा युवा पुरुषोंको तौ कभी उपवास न करना चाहिये किसीको करना होतौ जिस दिन अजीर्णहो क्षुधा न लगै उस दिन शर्करा (शर्बत) पीकर रहना चाहिये भूंखेमें नहीं ३४४ पृ०पं३०ब्रह्मलोककी वेश्या एकादशीके पुण्यसे स्वर्गको चलीगई इत्यादि.

समीक्षा--अब स्वामीजी व्रतौंहीको उडानेके निमित्त वाग्जाल विस्तार करतेहैं यद्यपि व्रतोंकी प्रथा सबही मतोंमें प्रचलितहै ईसाई यवनादिभी व्रत करतेहैं परन्तु स्वामीजीको तौ अपना पंथही पृथक् करनाहै वोह क्यों व्रतविधान लिखेंगे वेद पुराणादि सबमें व्रत करनेकी आज्ञा है वैद्यकसे तौ यह स्पष्ट है कि व्रतकरने वालेको रोग नहीं रहता जो एक मासमें दो भी व्रतकर लेते हैं वे चिरकालतक सुखी रहतेहैं और व्रतकरनेकी जो पुराणोंमें प्रत्येक तिथि लिखी है वे इस कारण हैं कि जो जिस देवताकी भक्ति उपासनाकरै वोह उसकी प्रसन्नताके निमित्त उसीकी तिथिमें व्रतकरै कुछ वे व्रत यह नहीं कहतेकि इस दिन करो इस दिन मत करो प्रतिपदासे पूर्णिमातक जिस दिन व्रत करना हो करै इसमें यह तौ हो ही नहीं सक्ता कि सबही देवताओंका उपासक हो सबहीका व्रतकरै केवल जिसका उपासक हो उसीका व्रत करै निश्चय पुण्य होगा विष्णुभगवानकी पूजामें एकादशीव्रत न करनेसे पाप है उनकी प्रीतिके अर्थ एकादशीव्रत है व्रत रखनेसे ब्रह्मप्राप्ति होती है जैसा एक मनुका श्लोक पूर्व लिख आये है (स्वाध्यायेनव्रतैर्होमैः) ब्रह्मलोकमें वेश्या थी यह स्वामीजीका कथन झूंठा है ब्रह्मलोककी वेश्याकी कोई कथा नहीं किन्तु इन्द्रलोककी गन्धर्वी तौ एकादशीके पुण्यफलसे इन्द्रलोकको गई थी यदि ऐसे ही कोई देवांगना आजाय तौ अब भी जासक्ती है लोगतौ शरीरत्याग वैकुंठको जाते है परन्तु विदित होता है स्वामीजी जीवित ही खबर ले आये कि वहां पान नहीं होता वहां चावनेको पान न मिलाहोगा अय! यह क्या संन्यासी होकर अहा! पानहीके लिये लौट आये और यह तौ किसी ग्रंथमें नहीं लिखाकि कुछ खाओ ही मत किन्तु एक समय फलाहार वा दुग्धाहार करना लिखा है दो तीन व्रत निजलभी है आपने धर्मसिंधुग्रंथोंको प्रमाद लिखा है परन्तु यज्ञोपवीतसंस्कारमें तीनदिनका व्रत आपने ही कथन कर दिया है धन्य है इस बुद्धिपर ज्येष्ठके महिनेकी निर्जलासे बडे घबडाये क्या कभी करनी पडी थी

बेशक अब तौ बुरीही मालूम होती होगी क्योंकि अब तौ तोसकतकिये मखमली बिछौनेपर शयन दूध खीर हलुआ भोजन चरण दाबनेको नौकर भला तुमसे व्रत कैसे होसकै इसीकारण व्रत करना बुरा लिखा. और जो एकदिनकी निर्जलामें बुराई है तौ यह तपस्या संयम नियम सब कुछ बुरे ठहरे विद्या पढनाआदि क्यों कि इन सबही कार्योंमें चित्त और शरीरको कष्ट होता है जाडोंमें जलमें गरमीमें पंचाग्निमें चौमासेमें मैदानमें बैठ तपस्वी तप करतेहै तौ क्या यह सब मिथ्या है नहीं कभी नहीं और देखिये (यह व्रत लिखनेवाले कसाईको दया न आई) यह पुराणकर्ता भगवानव्यासको गालिप्रदानकी है मनुजीने बहुतपापीयोंको पाप दूर करनेको अतिकृच्छ्रआदि महाकठीनव्रतोंका विधान किया है यथाहि.

एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक् पृथक् यैर्यैर्व्रतै
रपोह्यंते तानिसम्यङ् निबोधत अ० ११ श्लो० ७१

यह सब ब्रह्म हत्यादिपाप जैसे अलग २ कहे गयेवे जिन २ व्रतों करकै नाशको प्राप्त होते हैं उनको अच्छीतरहसे सुनो.

ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटींकृत्वावने वसेत्
भैक्ष्याश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वाशवशिरो ध्वजम् ७२

जो ब्राह्मणको मारे वोह वनमें कुटीको करकै और मुरदेके शिरका चिन्हकरकै भीखमांगके खाता हुआ अपनी शुद्धिके अर्थ बारह बरस बनमें वास करै ७२

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वासकृन्निशि
सुरापानापनुत्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी ८२

चावलकी खुद्दी वाखली एक समयरातको बरस रोजतक भक्षणकरै बुराकपड़ा और सिरपर बाल रखै सुरापात्र चिन्हवाला होवै तौ सुरापानका पाप दूर हो.

चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणंमितम्
गोमूत्रेणचरेत्स्नानंद्वौमासौनियतेन्द्रियः १०९

इन्द्रियोंको वश करता हुआ गोमूत्रसे स्नान करै और कृत्रिम लवण वर्जित हविष्य अन्नकों चौथे कालमें भोजनकरै दो मासपर्यन्त ऐसा करै

तेभ्योलब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम्
उपस्पृशंस्त्रिषवणंत्वब्देन स विशुध्यति १२३

उस प्राप्त हुए भिक्षासे एक काल भोजन करता हुआ त्रिकालस्नानके आचरण करनेवाला एक बरसमें शुद्धहोता है (इच्छासे शुक्रउत्सर्ग करनेसे)

अतोऽन्यतमयावृत्याजीवंस्तु स्नातको द्विजः
स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत् १३ अ० ४

किसी प्रकारसे निर्वाह करता हुआ स्नातकद्विज स्वर्ग आयुयशके देनेवाले इन व्रतोंको धारण करै इत्यादिव्रत करनेमें बहुत प्रमाण है एकादशीके दिन अन्नमें पाप वसते हैं यह वाक्य भी पुराणोंका नहीं आदित्यपुराण चंद्रखंड स्वामीजीके सत्यार्थ प्रकाशमें ही दीखते हैं भूंखो मरना यह स्वामीजीने व्रतके अर्थ किये हैं धन्य है व्रतमें ही जब पाप है तौ पुण्य क्या चोरी करना होगा.

ब्रह्माण्डप्रकरणम्

स०पृ० ३४६ पं० २८ देखो जैमिनिने मीमांसामें सब कर्मकाण्ड पतञ्जलमुनिने योगशास्त्रमें सब उपासनाकाण्ड और व्यास मुनिने शारीरक सूत्रोंमें सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है.

समीक्षा–इस कथनसे सिद्ध होता है कि व्यासजीने वेदान्त सब यथार्थ लिखाहै फिर "अनावृत्तिशब्दात्" इस व्याससूत्रको यह ठीकनहीं ऐसा लिखते स्वामीजीको लज्जा न आई अब वोही पातंजलका व्यासभाष्य सहित एक सूत्र लिखते हैं जिसमें ५० कोटि योजन पृथ्वी और स्वर्गादिका सविस्तरवर्णन है

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् यो० पा० ३ सू० २६
ततः प्रस्तारः सप्तलोकास्तत्रावीचेः प्रभृतिमेरू पृष्ठयावदित्येवं भूर्लोको मेरुपृष्ठादारभ्या ध्रुवात् ग्रहनक्षत्रतारादि विचित्रोऽन्तरिक्षलोकस्ततः परः स्वर्गलोकः पंचविधोमाहेन्द्रस्तृतीयलोकश्चतुर्थः प्राजापत्योमहर्लोकस्त्रिविधो ब्राह्मः तद्यथाजनलोकस्तपोलोकः सत्यलोक इति ब्राह्मास्त्रिभूमिकोलोकः प्राजापत्यस्ततो महान् माहेन्द्रश्चस्वरित्युक्तो दिवितारा भुविप्रजा इति

अर्थ

सूर्यसे सुषुम्नानाडीमें संयम अर्थात् ध्यान धारणासमाधिरूप त्रितयसे योगिको

भुवनका ज्ञान होता है तिस भुवनका विस्तार सप्तलोकहै अर्वाचीनाम अवकाशसे लेकर सुमेरुपर्वतकी पीठतक भूलोकहै तिस्से आरंभकर ध्रुवपर्यन्त नक्षत्रादि करके विचित्र अन्तरिक्ष लोकहै और तिस्से परेस्वर्ग चतुर्थ पंचप्रकारका माहेन्द्रलोकनामकतृतीयलोक है और प्रजापतिका महर्लोक है और तीनप्रकारका ब्रह्मलोकहै जनलोकतपलोक सत्यलोक.

भाष्य

तत्रावीचेरुपर्य्युपरिनिविष्टाः षण्महानरकभूमयोघनसलिलानलानिलाकाशतमःप्रविष्टाः महाकालाम्बरीषरौरव कालसूत्रान्धतामिस्राः यत्र स्वकर्मोपार्जितदुःखवेदनाः प्राणिनः कष्टमायुर्दीर्घमाक्षिप्यजायन्ते.

भाषार्थः

तिनसप्तलोकोंमें अवकाशसे ऊपर २ रचितषट्महानरकस्थान हैं पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश अन्धकारमें प्रतिष्ठित हैं तात्पर्य्य यह है इन षट्महानरक स्थानोके पृथ्वी आदि परिवार हैं कोटवत् जिसनरकस्थानका कोई परिवार नहीं तिसका आकाशही परिवारवत् परिवार है इन नरकोंके महाकाल अम्बरीष २ रौरव महारौरव कालसूत्र अन्धतामिस्र ६ नाम हैं जिनस्थानोंमें अपने कर्मजन्य दुःख वेदनायुक्त प्राणी कष्टरूप दीर्घायुको प्राप्तहोकर जन्मलेते हैं इस्से यह विदित है कि नरक एक कोई पृथक् स्थानहै.

भाष्य

ततो महातलरसातलातल सुतलवितलतलातलपाताला ख्यानि सप्त पातालानि भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपावसुमती यस्याः सुमेरुर्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः

तिस नरक स्थानसे ऊपर २ महातल रसातल अतल सुतल वितल तलातल पाताल नामवाले सप्तपाताल हैं और भूमि यह अष्टमी सप्तद्वीपवाली धनवती है जिस भूमिके मध्यमें सुमेरुनाम पर्वतराज सुवर्णका प्रकाशमान उज्वल दीप्तिवाला पृथ्वीरूप पुष्पके मध्यमें कर्णिकावत् शोभायमान अनन्त निवास स्थान युक्त है.

भाष्य

तस्यराजतवैडूर्य्यस्फटिकहेममणिमयानिशृंगानि तत्रवैडूर्य्य

प्रभानुरागान्वितोत्पलपत्रश्यामोनभसोदक्षिणभागः श्वेतः पूर्वः स्वच्छः पश्चिमः कुरुण्डकाभउत्तरः दक्षिणपार्श्वंचास्य जम्बुर्यतोऽयंजम्बूद्वीपः तस्यसूर्य्यप्रचाराद्रात्रिंदिनंलग्नमिव विवर्ततेतस्यनीलश्वेतशृंगवन्तउदीचीनास्त्रयःपर्वताद्विसहस्रायामास्तदन्तरेषुत्रीणिवर्षाणिनवनवयोजनसाहस्राणिरमणकं हिरण्मयमुत्तराः कुरव इति

तिस सुमेरु पर्वतके पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तरकी तरफ क्रमसे राजतमणिमयशृंग वैडूर्य्यमणिमय स्फटिकमणिमय और हेममणिमयशृंग हैं तिनचार शृंगोंमेंसे दक्षिणकी ओर वैडूर्य्यमणिमयशृंगहै तिसकी प्रभाके अनुरागयुक्त नील कमलवत् श्याम आकाशका दक्षिण भागहै और ऐसेही राजत मणिमयशृंगकी प्रभानुराग प्रभावसे पूर्वका आकाश भाग श्वेतहै और पश्चिमका स्वच्छहै और उत्तरकुरुण्ड-काभ नाम हरेपनसेयुक्त है क्यों कि सुवर्णकी छाया हरेपनके लिये होती है इस्से उत्तरभाग आकाशका सुवर्णमणिमय शृंगकी छायायुक्त होनेसे हराहै और सुमेरुके दक्षिणकी तरफ जम्बूका वृक्षहै इस्से प्रथम सुमेरुके चारों तरफ नवखण्डयुक्त जम्बू-द्वीप है तिस पर्वत सुमेरुके चारों ओर सूर्यप्रचारसे रात्रिदिन लग्नवत् भ्रमण करते हैं और तिस सुमेरुकी उत्तर दिशामें दोदोहजार योजन दीर्घ नीलश्वेत शृंगोंवाले तीन पर्वतहैं तिन पर्वतरूप अन्तरायके होते नौनौहजार योजन तीन खण्डहैं रमणक हिरण्यमय उत्तरकुरु नामवाले सुमेरुके समीप जो प्रथम पर्वतहै नील शृंगयुक्त होनेसे नील, और श्वेत शृंग पर्वतके मध्यमें रमणकखण्डहै वर्षखण्ड दोनो शब्द एकार्थक हैं और श्वेत शृंग पर्वतोंके मध्यमे हिरण्यमय खण्डहै और श्वेत शृंग पर्वत तथा लवणोदधि उत्तर समुद्रके बीचमें उत्तर कुरुनामक खण्डहै

निषिधहेमकूटहिमशैलादक्षिणतोद्विसाहस्रायामास्तदन्तरेषु त्रीणिवर्षाणिनवनवयोजनसाहस्राणिहरिवर्षंकिंपुरुषंभारतमिति सुमेरोः प्राचीनाभद्राश्वामाल्यवत्सीमानः प्रतीचीनाः केतुमालगन्धमादनसीमानोमध्येवर्षइलावृतम्

अर्थः

सुमेरुके दक्षिण दिशामे निषिध हेमकूट हिमशैल नामवाले तीनपर्वतहैं दोदोहजार

योजन विस्तारवाले तिनके अन्तरायके होते तीन खण्डहैं नौनौहजार योजन हरिवर्ष किंपुरुष भारतनामवाले हैं तिनमें सुमेरुके निकट जो निषध पर्वत तथा हेमकूट पर्वतहैं तिन दोनोंके मध्यवर्ति हरिवर्ष खण्ड है और हेमकूट तथा हिमशैलके मध्यवर्ति किंपुरुष खण्डहै और हिमशैल तथा दक्षिण लवण समुद्रके बीचमें भारतखण्ड है और सुमेरुके पूर्व भद्राश्वखण्डहै माल्यवत् पर्वतहैं जिसकी सीमा है आशय यह है कि जैसे उत्तर दक्षिणमें तीनपर्वतहैं ऐसे सुमेरुके पूर्व पश्चिममें एकएक पर्वतहै पूर्वमें माल्यवान् दक्षिणमें गन्धमादन तौ यह सिद्ध हुआ कि पूर्व समुद्र और माल्यवान् पर्वतके बीचमें भद्राश्वखण्ड है और पश्चिमकी तरफ पश्चिम लवणसमुद्र तथा गंधमादन पर्वतके बीच केतुमालखण्ड है उत्तरका नील पर्वत और दक्षिणका निषिधपर्वत पूर्वका माल्यवान्पर्वत पश्चिमका गन्धमादनपर्वत यह चार पर्वत चारों तरफ रहने वाले एक ओर और एक ओर सुमेरुपर्वत कीलीके समान स्थानापन्न और मध्यमें वर्ष इलावृत है अर्थात् सुमेरुपर्वतोंके चौगिर्द चारपर्वतोंके बीचमें इलावृत खण्ड है.

भाष्य

तदेतद्योजनशतसहस्रंसुमेरोर्दिशिदिशितदर्द्धेनव्यूढंसखल्वयंशतसहस्रायामोजम्बूद्वीपस्ततोद्विगुणेनलवणोदधिनावलयाकृतिनावेष्टितः ततश्चद्विगुणाः शाककुशक्रौञ्चशाल्मलिगोमेधपुष्करद्वीपाः सप्तसमुद्राश्चसर्षपराशिकल्पाः सविचित्रशैलावतंसालवणेक्षुरससुरासर्पिदधिमण्डक्षीरस्वादूदकसप्तसमुद्रवेष्टितावलयाकृतयोलोकालोकपर्वतपरिवाराः पंचाशतयोजनकोटिपरिसंख्याताः

अर्थ

अब सकल जम्बूद्वीपका परिमाण कहते हैं सो यह सौ हजार योजन सुमेरुकी सब दिशाओंमें लंबेपनमें है और तिस्से आधे भागकरके चौड़ाईमें है सो यह सौ हजार योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है तिस्से द्विगुण लवणसमुद्र कंकणाकारसे लिपटा है और तिस्से उत्तर उत्तर द्विगुण शाक कुश क्रौञ्च शाल्मल गोमेधपुष्कर इन नामवाले द्वीपहैं सप्तसमुद्र तौ सर्षपकी राशि तुल्य हैं और द्वीप संपूर्ण विचित्र पर्वतरूप शिरोवाले हैं और लवण इक्षुरस सुरासर्पि दधिमण्डक्षीर स्वादूदक इन नामवाले सात समुद्रोंसें चारों ओर घेरे हुए हैं कंकणाकार लोकालोक पर्वत परिवृत हैं यह सब पचास करोड़ योजन परिमाणवाले हैं.

॥ भाष्यम् ॥

तदेतत्सर्वंसुप्रतिष्ठितसंस्थानमण्डलमध्येऽव्यूढम्.

अर्थ

सो यह सम्पूर्ण वसुधामंडल सुप्रतिष्ठित स्थानोंवाला ब्रह्माण्डके मध्यमें व्यूढ अर्थात् संक्षिप्त हो रहा है.

भाष्यम्

अण्डश्चप्रधानस्याणोरवयवोयथाकाशेखद्योतइतितत्रपाताले जलधौपर्वतेष्वेतेषुदेवनिकायासुरगंधर्वकिन्नरकिंपुरुषयक्षरा क्षसभूतप्रेतपिशाचापस्मारकोऽप्सरोब्रह्मराक्षसकुष्माण्डविना यकाः प्रतिवसंति सर्वेषुद्वीपेषुपुण्यात्मनोदेवमनुष्याः सुमे रुस्त्रिदशानामुद्यानभूमिस्तत्र मिश्रवनंनंदनंचैत्ररथंसुमानस मित्युद्यानानि सुधर्मा देवसभा सुदर्शनंपुरंवैजयंतः प्रासादः ग्रहनक्षत्रतारकास्तुध्रुवेनिबद्धा वायुविक्षेपनियमेनोपलक्षित. प्रचाराः सुमेरोरुपर्युपरिसन्निविष्टावेपरिवर्त्तन्ते माहेन्द्रनिवा सिनः षट्देवनिकायास्त्रिदशाअग्निष्वात्तायाम्यास्तुषिताः ॥

अर्थ

ब्रह्माण्ड अत्यन्त सूक्ष्म प्रधानका एक अवयव है जैसे आकाशमें खद्योत होता है तैसे प्रधानमें अण्ड है (अब वोह भुवन वृतान्त है जिसके हेतु यह सब लिखा है देवजाति सब मनुष्योंसे भिन्न है सो दिखाते हैं जिस स्थानमें जो जो रहते हैं सो सो दिखाते हैं) पाताल समुद्र पर्वत जो पहले निर्णय कर चुके हैं तिनमें देवनिकाय नाम देवजाति असुर गंधर्व किन्नर किम्पुरुष इतने नामवाले निवास करते हैं और सर्व द्वीपोंमें पुण्यात्मा देवता तथा मनुष्य निवास करते हैं और सुमेरु त्रिदशनामक देवताओंकी उद्यानभूमि है तिसमें मिश्रवन नन्दनवन चैत्ररथवन सुमानसवन यह बगीचे हे सुधर्मा देवसभा है सुदर्शन पुर है वैजयन्त मंदिर है इतने स्थान सुमेरुपर हैं और ग्रह नक्षत्र तारागण ध्रुवमें बंधे हुए हैं वायुके व्यापार नियमसे उनका प्रचार देखा जाता है सुमे-

इके ऊपर ऊपर संवद्धही विचरतेहैं माहेन्द्रलोकमें षट् देवजाति हैं त्रिदश अग्निष्वात्त याम्य और तुषित यह छःजाति देवतोंकी हैं माहेन्द्रलोकमें

व्यासभाष्यम्

अपरिनिर्मितवर्तिनः परिनिर्मितवशवर्तनश्चेतिसर्वेसंकल्पसिद्धाः अणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषोवृन्दारकाः कामभोगिनऔपपादिकदेहाउत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिःकृतपरिवाराः

भाषार्थः

और अपरिनिर्मितवर्ती परिनिर्मितवशवर्ति संपूर्ण सत्यसंकल्प अणिमादि ऐश्वर्ययुक्त हैं कल्पपर्यन्त आयुवाले हैं वृंदारक नाम सबसे पूजनयोग्य विषयभोग प्रधानतावाले हैं और औपपादिकदेहा नाम माता पिताके संयोगके विनाही स्वसंकल्पसे दिव्य देही सूक्ष्मभूतोंसे उत्पन्नकर व्यवहार करते हैं (इससे यहभी स्वामीजीका कथन असिद्ध होगया कि सृष्टिक्रमके विरुद्ध विना माता पिताके कोई उत्पन्न नहीं होता वैशेषिकमें लिखाहै कि)

सन्त्ययोनिजा वै०अ०४आ०२स०१०

अयोनिजभी ब्रह्मादिकके शरीर होते हैं और वोह देवता सर्व स्त्रीगुणसंपन्न अप्सराओंसे युक्त हैं सत्यसंकल्प अयोनिज शरीर अणिमादि सिद्धिके प्रभावसे सम्पन्न होकर यथेष्ट विचरतेहैं.

व्यासभाष्य

महतिलोकेप्राजापत्ये पंचविधोदेवनिकायः कुमुदःऋभवःप्रतर्दनाअञ्जनाभाः प्रचिताभा इत्येतेमहाभूतवशिनोध्यानाहाराः कल्पसहस्रायुषः प्रथमेब्रह्मणोजनलोके चतुर्विधोदेवनिकायो ब्रह्मपुरोहिताः ब्रह्मकायिकाः ब्रह्ममहाकायिकाअमरा इतिते भूतेन्द्रियवशिनोद्विगुणद्विगुणोत्तरायुषोद्वितीये तपसिलोकेत्रिविधोदेवनिकायः । आभास्वरामहाभास्वराः सत्यमहाभास्वरा इतितेभूतेन्द्रियप्रकृतिवशिनः द्विगुणद्विगुणोत्तरायुषः सर्वे

ध्यानाहाराः ऊर्द्धरेतस ऊर्द्धप्रतिहतज्ञाना अधरभूमिष्वनावृत-ज्ञानविषयाः तृतीयेब्रह्मणःसत्यलोकेचत्वारोदेवनिकाया अच्युताः शुद्धनिवासाः सत्याभाः संज्ञासंज्ञिनश्चेति

प्रजापतिके महति लोकमें पांच देवजाति हैं कुमुद ऋषभ प्रतर्द्दन अंजनाभ प्रचिताभ यह संपूर्ण देवता महाभूत वशी हैं ध्यानमात्र आहारवाले हैं सहस्र-कल्पकी उनकी आयु होती है ब्रह्माके प्रथम जनलोकमें चार प्रकारकी देवजाति हैं ब्रह्मपुरोहित ब्रह्मकायिक ब्रह्ममहाकायिक और अमर यह सम्पूर्ण देवता भूत इन्द्रियवशी हैं आशय यह है कि पृथिव्यादि पंचभूत और श्रोत्रादि इन्द्रिय-गण उन देवताओंकी इच्छासे स्व स्व कार्यमें प्रवृत्त होते हैं और उनसे दूनी आयुवाले हैं और दूसरे तपलोकमें तीन प्रकारकी देवजाति हैं आभास्वर महाभास्वर और सत्यमहाभास्वर यह देवता सम्पूर्ण भूत इन्द्रिय प्रकृतिवशीहैं प्रकृतिनाम तन्मात्राका है तन्मात्रा तिन देवताओंकि इच्छासे शरीराकार वा विषयाकार परिणामको प्राप्त होते हैं और उत्तर २ द्विगुण आयुवाले हैं और ध्यानसे तृप्त रहते हैं ऊर्द्धरेता ब्रह्मचर्य सम्पन्न हैं ऊर्ध्व लोकमें अप्रतिवद्ध ज्ञानवाले हैं पृथ्वी मूलसे लेकर तपोलोक पर्य्यन्त सव पदार्थोंके सूक्ष्मव्यवहित व्यवहारको जान्ते हैं तृतीय सत्य लोकमें देवताओंकी चारि जाती है अच्युत शुद्धनिवास सत्याभ संज्ञासंज्ञी.

व्यासभाष्यम्

अकृतभुवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठाउपर्य्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनोयावत्स्वर्गायुषः तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः शुद्धनिवासाः सविचारध्यानसुखाः सत्यभाआनंदमात्रध्यानसुखाःसंज्ञासंज्ञिनश्चास्मितामात्रध्यानसुखास्तेऽपि त्रैलोक्यमध्येप्रतिष्ठन्तेतएतेलोकाःसर्वेएवब्रह्मलोकाः विदेहप्रकृतिलयास्तुमोक्षपदेवर्त्तन्तेनलोकमध्येन्यस्ताइत्येतद्योगिनासाक्षात् कर्तव्यं सूर्यद्वारेसंयमंकृत्वाततोन्यत्रापिएवंतावदभ्यसेयावदिदंसर्वंदृष्टमिति ॥

भाषार्थः

यह चार प्रकारके अच्युतादि संज्ञावाले देवता अकृतभुवनन्यास नाम निवास स्थानसे वर्जित्त स्वप्रतिष्ठानाम आधारान्तर रहित हैं और सबके ऊपर स्थित्त हैं और

प्रधानवशी हैं अर्थात् इनके संकल्पमें सत्त्वादिगुण परिणामको प्राप्त होते हैं और ब्रह्म लोककी स्थिति पर्यन्त आयुवाले हैं इस स्थानमें ब्रह्मलोकका नाम ही स्वर्गहै तीन देवों- में अच्युत देवता तौ सवितर्क ध्यानसे तृप्त रहतेहैं और शुद्धनिवास सविचार ध्यानसे तृप्तहैं संज्ञासंज्ञि अस्मिता ध्यानसे तृप्त हैं वे अस्मि ध्यानवालेभी देवता त्रिलोकीके मध्य- मेंही स्थितहैं यह संपूर्ण ब्रह्मलोकहै जनलोकादि और विदेह तथा प्रकृतिलय योगीजन मोक्षपदमें वर्तमान हैं इस कारण लोकोंमें तिनका प्रवेश नहींकरा भाव यह है कि बुद्धिवृत्तिपरिणामवाले ही लोक यात्रामें वर्तमान हैं और बुद्धिवृत्तिपरिणाम रहित प्रकृतिमें लीन रहते हैं विदेह और प्रकृति लय योगीजनोंमें भेद इतना है कि विदेह तौ स्थूलशरीररहित केवल लिङ्गशरीरमें सावरणब्रह्माण्डके अन्तर्गत प्रकृतिमें लीनहोकर भोगोंको भोगते हैं परन्तु प्रकृतिलयोंकी अपेक्षासे मलिन है वोह भोग और प्रकृतिलय योगीजन केवल सत्त्वप्रधान निरावरणप्रकृतिमें वर्तमान निर्मल प्रकृतिकार्य विषयभोग भोगते हैं और महा ऐश्वर्य्य संपन्न होते हैं और विदेहोंके नियन्ता होकर वर्तमान हैं वेही प्रकृति लय योगीजन ईश्वर कोटिमें कहे जाते हैं यह संपूर्ण पूर्ववर्णित ब्रह्माण्ड योगीको साक्षात् कर्तव्य है इससे यह बात सिद्ध होगई कि देवता मनुष्य असुरआदि सब पृथक् स्थानोंमें रहते हैं देवता विद्वानमनुष्योंका नाम नहीं है पृथ्वीका विस्तार जो कुछ पुराणोंमें लिखाहै सो ठीकहै

इसी प्रकार मोहनादि सब प्रयोग सत्य हैं मंत्र गुप्त हैं उनका विधान गोप्य है इस कारण प्रयोगविधि नहीं लिखी है जो पवित्रदेशमें मंत्र आराधन करै निश्चय सिद्धि होती है और योगसे भी अष्टसिद्धि प्राप्त होती है.

भस्मासुरके पीछे भागनेसे जो शिवजी भागे थे इस कारण लोग डौरू बजाते बंब शब्द करते हैं यह ३५० पृष्ठका आक्षेप असत्य है.

स० प्र० पृ० ३५२ पं० ८ एक मनुष्य वृक्षके नीचे सोता था सोता सोता ही मर गया काकने विष्ठाकरदी ललाटपर तिलकाकार होगई (पं० १४) विष्णुके दूत उसे सुखसे वैकुंठमें ले गये इत्यादि.

समीक्षा. स्वामीजीका यह कथन सम्पूर्ण ही असत्यहै कहीं भक्तमालमें ऐसी कथा नहीं है यह झूंठी कथा लिखी है.

इसके आगे स्वामीजीने कवीर नानक दादूपंथी आदिकोंका खंडन किया है जो जो बातें इन्होंने लिखी है यद्यपि वोह संस्कृतसे बहुत कुछ मिलती हैं परन्तु भाषामें है

वेदानुकूल जो उसमें है इस वैदिकधर्मकी पुष्टिसे इनके ग्रंथोंका भी मंडन होगया हमारा आशय वैदिकधर्मोंके दिखानेका है जो कुछ लिखा है जो इसके विरुद्ध है वोह असत्य है सिद्धान्त यह है कि जो वेदवाक्य हैं उनका मानना सब आ- र्योंका परम धर्म है उसीके अनुसार जो कुछ भाषामें जिसने लिखा है वोह माननीय है इसके अतिरिक्त अप्रमाण है इस कारण कबीरादिके ग्रंथोंके खंडन मंडनसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं.

स०प्र०पृ० २७९ पं० २३ जो विद्याका चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा है.

समीक्षा. धन्य है स्वामीजी यह संस्कार विद्याका चिन्हहै तौ और संस्कार काहेको चिन्ह हैं भला गर्भाधान काहेके वास्ते है और इनका चिन्ह क्या है खूब विद्याकी वृद्धिकरी यदि यह विद्याके चिन्ह होते तौ विद्या पढनेके उपरान्त चोटी और यज्ञो- पवीत धारण कराया जाता फिर तीनोंवर्णोंको शिखासूत्रकी कड़ी आज्ञा क्यों और जो विद्या न पढे होते उनके शिखा सूत्र न होते जो तीन वर्णोंमें है उनके भी क्या यज्ञोपवीत तगमा है जो पढने उपरान्त पहराया जाता चुटिया रखाई जाती फिर (गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्) गर्भके आठवें वर्षमें यज्ञोपवीत करना क्यों लिखा, क्या जबतक विद्या न होती तबतक घोटम घोट ही रहते इस्से शिखा सूत्रको विद्याका चिन्ह बताना भूल है.

स० प्र० पृ० ३८५ पं० १८ कलियुग नाम कालका है कालनिष्क्रय हौनेसे कुछ धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं.

समीक्षा. स्वामीजी कहते हैं कि काल धर्ममें साधक बाधक नहीं काल तौ सब ही कुछ है समयानुसार मनुष्य उत्पन्न होता बढता पुनः नष्ट होता है समयमें ही धान्य बोयेजाते उत्पन्न होते कटते हैं कालसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति पालन प्रलय होती है जैसा समय वैसा ही उसका फल होता है जैसा युग होताहै वैसे ही उसके धर्म होते हैं इसी प्रकार कलियुगमें पापादि अधिक होते हैं और अपनी ४३२००० वर्षतक अवधि भोगेगा तबतक अनेक अधर्म पाप संसारमें रहेंगे यह अट्ठाईसवां कलियुग है यदि युगोंकी अवस्था न मानी जायगी तौ यह सृष्टिके उत्पन्न हौनेके वर्ष जो आपने लिखे हैं कहांसे मालूम होगये. इस्से जैसा समय होगा वैसाही धर्म होगा कलियुग खोटा समय है इस्से इसमें खोटी ही बातें हौंगी इस्से ऊपर लिखीबातकि समय धर्माधर्मके करनेमें साधक बाधक नहीं यह कहना ठीक नहीं.

स० प्र० पृ० ३८६ पं० १० (प्रश्न) गिरी पुरी भारती आदि गुसांई तौ अच्छे हैं

पं. १३ (उत्तर) यह दशनाम पीछेसे कल्पित किये हैं सनातन नहीं किन्तु उनकी मंडलियां केवल भोजनार्थ हैं.

समीक्षा सब महात्मा लोग इस बातको जान्ते हैं कि दशनाम जो संन्यासियोंके हैं उसीके अन्तरगत "आनन्द सरस्वती"भी है यदि यह नवीन कल्पित नाम मिथ्या है तौ आपने अपने नामके अन्तमें (आनन्द सरस्वति) क्यों लगाया जो संन्यासियोंके नामोंमें पीछे लगा रहता है कोई प्राचीन नाम धरा होता और स्वामीजीके शिष्यभी तौ इस उपदेशको नहीं मान्ते और इस आनन्दसरस्वती शब्दकी कलगी लगायेही फिरते हैं जैसे अक्षयानंद ब्रह्मानंद पूर्णानंद ईश्वरानंदादि जो देखो नन्द ही नन्दवना फिरता है"वाह जो थूकै वो ही मुंहमें आवै" आगेसे सावधान रहना कि कोई दयानंदी संन्यासी आनदपर नाम न रखने पावै.

स.प्र. पृ. ३८० पं. ७ स्वायंभू मनुसे लेकर महाराज युधिष्ठिरपर्यन्तका इतिहास महाभारतादिमें लिखाही है.

समीक्षा. जहां अपना मतलब आया वहीं महाभारतभी मानलिया और यदि और कोई महाभारतका कुछ प्रमाण दें तौ झट कह दें कि प्रमाण नहीं फिर यहां स्वायंभू मनुसे महाराज रामचन्द्रतक १०० पीढीके लगभग होती हैं यदि एक पीढी १०० वर्षकीभी मान लैं तौ १०००० वर्ष रामचंद्रजीके समयतक आते हैं रामचंद्रजी त्रेताके अन्तमें हुए हैं जिसमें १७२८००० सतयुगके बीते और १२८६००० त्रेतायुग के बीतगये तौ १०० वर्षकी आयु मान्नेसे यह व्यवस्था कैसे ठीक होगी इस कारण उस समय बहुत बड़ी आयु होती थी.

यथारामायणे.

षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममकौशिक.

हे विश्वामित्रजी मुझै ६०००० वर्षकी अवस्थामें रामचंद्र प्राप्त हुए हैं यह विश्वामित्रजीसे दशरथजीने जब वे बुलानेको आये थे तौ कहा था इस्से विदित है कि आयु बड़ी होती थी मनुके समयसे रामचन्द्रके समयतक तथा अब भी ब्रह्मलोकमें वसिष्ठजी विद्यमान हैं इत्यादि यदि आयु अधिक न मानी जायगी तौ युगोंकी व्यवस्था बिगडजायगी.

इसके उपरान्त पृष्ठ ३९४ से ५८४ तक जैनी ईसाई मुसलमानोंका खंडन स्वामीजीने किया है जिसके विषयमें भला बुरा लिखनेसे हमारा कोई भी प्रयोजन नहीं हैं क्योंकि वोह वेदमतके अनुकूल नैं होनेसे हमको इष्ट नहीं है यदि वे अपनी हानि समझैं तौ इसका स्वामीकू उत्तर दे लैंगे हमें कुछ प्रयोजन नहीं.

स.प्र. पृ. ५८५ पं. ११ मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतान्तर चलानेका लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है.

समीक्षा—धन्य है नया मत भी खडा करदिया प्राचीनरीति छोड नईही चलाई शास्त्रोंको जडसे खोदडाला मूर्तिपूजन श्राद्धतर्पण मंत्र जप तप सब झूंठा बताया नियोगादि कुकर्म करना चलाया आर्य्यसमाज जहां तहां स्थापित कर ब्राह्मणोंको पोप बताया जाति वर्ण सब मिटाया शूद्रकू वेदपढनेका ढंग निकाला अलग वेदभाष्य रचा प्राचीनरीतिके उडानेको कुछ कसर न रक्खी इसी हेतु सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य भूमिकादि ग्रंथ रचे वेदमें रेल तार निकाला ईश्वर पाप दूर नहीं करता नाम जपनेसे कुछ नहीं होता मुक्तिसे लोटना इत्यादि सब अपनाही मत स्थापित किया है और कहते हैं मैने कुछ नहीं किया इस झूंठका क्या ठिकाना और मतमें क्या जहात बोलते.

इसके आगे स्वामीजीने स्वमन्तव्य लिखे हैं वोह सत्यार्थप्रकाशके अन्तर्गत ही आगये इस्से उनका भी खंडन होगये और स्वमन्तव्य तौ स्वयं ही खंडनीय है क्यों कि वोह वेद और विद्वानोंके तौ मन्तव्य नहीं घरमें बैठेका नाम राजा धरलिया तौ उससे क्या ऐसेही यह स्वमन्तव्य है सो इनसे क्या लाभ है केवल बुद्धिको भ्रम जालमें डालनेको लिखे हैं.

स. प्र. पृ. ५८९ पं. २३ आर्य्यावर्तदेश इस भूमिका नाम इस लिये है कि इसमें आदि सृष्टिसे आर्य्यलोग निवास करते हैं.

समीक्षा—वडी स्वामीजीकी बुद्धिका चमत्कार पूर्व लिखा था कि आर्य्य त्रिविष्टप् अर्थात् तिब्बतसे आये हैं अब स्वामीजीने कौनसी भंगकी तरंगमें लिखदिया कि आर्य्य सदासे यहां रहते हैं धन्य है.

इसप्रकार यह ५८२ पृष्ठपर्यन्त सन् १८८४ का छापा हुआ सत्यार्थप्रकाश खण्डन हुआ नवीन छपे हुओंमें कदाचित् पृष्ठ पंक्तिका भेद होजाय तौ पाठकगण उसका विषय आगे पीछे देख लैंगे इस ग्रंथमें समीक्षा कर सनातन वैदिकमतका स्थापन और दयानंदकल्पित आधुनिकमतका खंडन कियाहै इसमें सम्पूर्ण मन्तव्य वेदसे निर्णीत कर लिखे हैं और जहां कहीं दूसरे ग्रंथोंका वर्णन कियाहै वोह उन्हीका है जिनको स्वामीजीने अपने ग्रंथ सत्यार्थप्रकाशमें माना है मैने यह ग्रंथद्रोह वा ईर्षासे किसीका मन दुखानेको नहीं बनाया है किन्तु सत्यासत्यके निर्णयकेवास्ते रचना की है जो

पुरुष स्वामीजीके निस्सार युक्तियोंसे अपना सनातन मत झट छोड बैठते हैं वे पहले पक्षपात रहित होकर इसे विचारें पीछे जो मनमें आवै सो करैं जो जिज्ञासु हैं वे निश्चय इससे लाभ उठावेंगे इसकी भाषाभी यथाशक्ति सरल करी है इस ग्रंथके अवलोकनसे आर्य्यगण सब प्रकारसे धर्मका निर्णय कर चारोंपदार्थके अधिकारी होंगे और महाशय शास्त्रोंका गूढतत्त्व जानेंगे यदि इसमें कहीं भ्रमवश कोई बात अनुचित लिखीगई हो उसे क्षमा करेंगे और हंसोंकी समान गुणग्राही होंगे आप महाशयोंके ही आदरसे यह ग्रंथ प्रकाशित होगा. परमेश्वर सच्चिदानंद श्रोता वक्ताका कल्याण करें शं भवतु ॥

इति श्रीदयानंदतिमिरभास्करे सत्यार्थप्रकाशान्तर्गतएकादशसमुल्लास-
स्यखंडनं समाप्तम् १० सि० १८९०

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र.

स्वामी दयानंदजीकृत दश नियमोंका खंडन जो कि समाजके मूलकारण हैं.

१ सब सत् विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है ।

समीक्षा–जब सबका आदिमूल परमेश्वर है तो स्वमन्तव्य ६ पृ० ५८७ में प्रकृति परमाणु और जीवको नित्य मान्ना इस नियमके विरुद्ध है दोनोंमें कौन बात सच्ची है.

२ ईश्वर जो सच्चिदानंदस्वरूप निर्विकार सर्व शक्तिमान् न्यायकारी दयालु अजन्मा अनंत निर्विकार अनादि अनुपम सर्वाधार सर्वईश्वर सर्वव्यापक अन्तर्यामी अजर अमर अभय नित्यपवित्र और सृष्टिका कर्ता है उसीकी उपासना करनी योग्यहै ।

समीक्षा–यह दूसरा नियम सर्वथा अशुद्ध हैं जब ईश्वर निर्विकार है तो उसमें सृष्टि रचनाका विकार कैसेहै और वोह सृष्टि क्यों करता है और जो सर्वशक्तिमान् है तो जो चाहें सो क्यों नहीं करसक्ता न्याय करना दया करनी यह निर्विकारमें संभव कहां अथवा यह ज्ञान ईश्वरका परोक्ष है वा अपरोक्ष है और संशयकी निवृत्ति परोक्ष वा अपरोक्ष ज्ञानसे होती है परोक्ष (जो प्रत्यक्ष न हो) ज्ञानसे तो संशयकी निवृत्तिहो नहीं सक्ती क्योंकि जो देखा नहीं उसका होना तथा गुण कर्मोंका निश्चय नहीं हो सक्ता इस कारण जबतक ईश्वरके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान न होगा तबतक उपरोक्त गुण उसमें कैसे संभव हो सक्के हैं और उपासक उपासना किसकी करें जब कि ईश्वरका साक्षात्कार ही नहीं तो यह नाम कैसे कल्पना कर लिये निराकारके भी और नाम किसीके ऊपर दया करते देखा जो दयालु नाम रखलिया यह तो नाम जभी सिद्ध होसकेंगे जब ईश्वरका साकार अवतार धारी निश्चय करलोगे. निराकारमें यह नाम कल्पनामात्र है.

३ वेद सत्यविद्याओंका पुस्तक है वेदका पढना और सुन्ना सब आर्योंका परम धर्म है.

समीक्षा–जब वेदका पढाना पढना ही परम धर्महै तो आपने सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथोंमें महाभारत मनुस्मृति शतपथब्राह्मण वाक्य वेदानुकूल मान कर क्यों ग्रहण किये यदि मंत्र भाग हीमें सब धर्मोंकी प्रवृत्ति निवृत्ति सब पदार्थोंकी उत्पत्ति स्थिति लय

और जो कुछ सृष्टि और कल्याणके लिये होना चाहिये लिखा है तौ पृथक् पृथक् स्थानपर प्रमाणके लिये केवल मंत्र भागकीही श्रुति पूर्ण थीं मनुस्मृति महाभारत और २ पुस्तकोंके श्लोकोंके और ब्राह्मणभागके प्रमाण देनेकी कोई आवश्यकता नही थी, क्योंकि मंत्र भागको आप स्वतः प्रमाण मान्ते हैं तौ मंत्रोंके ही प्रमाणसे सृष्टिक्रम युगोंकी व्यवस्था ब्रह्माके दिन वर्षकल्पकी संख्या प्रतिमापूजनका निषेध अवतारोंका न होना दायभाग ब्राह्मणादिलक्षण सब कुछ उसीसे सावित करते परन्तु आपने सत्यार्थप्रकाशादिमें जो और ग्रंथोंके प्रमाण लिखे हैं इनकी क्या आवश्यकता थी यदि वे वेदानुकूल लिखे हैं तौ मंत्र ही क्यों न लिख दिये, यह तौ आपने ऐसा किया जैसा कोई आम छोड़ बबूरपर गिरै, चाहिये था कि केवल मंत्रही तौ अपने ग्रंथोंमें लिखे रहने देते शेष सब निकाल डालते.

४ सत्यका ग्रहण और असत्के छोडनेमें सदा उद्यत् रहना चाहियें.

समीक्षा-यह नियम विवेकान्तर्गतहै जबतक विवेक न होगा तबतक सत् असतकी परीक्षा कैसे होगी यदि कोई कहै ईश्वर सत्य है, या जगत्, जगत तौ नाशवान होनेसे असत् और ईश्वर नित्य होनेसे सत् है जब जगत् मिथ्या ईश्वर सत्य है, तौ किसका ग्रहण किसका त्याग करैं, ग्रहण और त्याग दूसरे पदार्थका होताहै जब दूसरा पदार्थ असत्य ही है तौ त्याग किसका इस नियमका, धर्मसे कुछ भी सम्बंध नहीं है यह नियम निश्चय रहित है मिथ्या पदार्थोंका क्या ग्रहण क्या त्याग हो सक्ता है.

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत् और असत्का विचार कर करना चाहिये।

समीक्षा-स्वामीजीने ईसाइयोंके दश नियमोंके अनुसार अपने नियम बनाये हैं इसमें -ही वही बातें हैं जो ४ नियममें है पहले तौ यह देखना चाहिये कि शरीरका क्या धर्म है और आत्माका क्या धर्म है शरीर जड और दुःखरूप है उसकी उत्पत्ति घटना बढना नष्ट होना प्रत्यक्ष है आत्मा दृश्यहै नित्यैकरस चैतन्य जन्ममरणसे रहित है जो जन्म मरणसे रहित है सोई आनंद है फिर आत्मामें अनात्माभिमान और अनात्मामें आत्माभिमान, फिर कैसा धर्मानुसार सत् असत्का विचार करकै नियम किया और यह भी आश्चर्य है कि निरावयव चैतन्य आत्माको माना, और प्रभंजनमाना निरावयव आकाश जड तौ सर्वव्यापक, और निरावयव चैतन्य आत्मा प्रभंजन कहिये यह धर्म अनुसार सत्यका ग्रहण है या असत्यका त्याग है, जब निरावयव है तौ दो या तीनकी गाथा एकही स्वरूपमें कैसे हो सक्ती है.

६ संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्य प्रयोजन है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना.

समीक्षा. इसमें यह बात विचारने योग्य है कि परमेश्वरको सर्वाधार सर्वेश्वर जानकर उपासनाकी गई है फिर संसारकी उन्नति और उपकारमें भी आपका हस्त-क्षेप करना ये उपास्यकी बराबरी है इसमें तो अपनी और संसारकी उन्नतिमें परमे-श्वरकोही अधिष्ठाता और प्रतिनिधि समझना चाहिये यहही परंधर्म है और जब कर्मानुसार है तो उन्नति कैसी.

७ सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये.

समीक्षा. प्रीति अनुकूल पुरुषोंमें होती है यदि धर्मानुसार पर दृष्टि है तो धर्म-विरोधी हठ करने वाले अभिमानीको शत्रु समझना चाहिये फिर सबसे प्रीतिपूर्वक वर्तना कैसा यादि चोर चोरी करै तो उसके साथ प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार कैसे वर्तै जो प्रीति करै तो धर्म कहां और धर्म करै तो प्रीतिसे यथायोग्य वर्ताव कैसे कर सक्ता है शत्रुके साथ यथायोग्य होनेमें प्रीति कहां.

८ अविद्याका नाश और विद्याकी वृद्धि करनी चाहिये.

समीक्षा—विद्या यथार्थज्ञानको कहतेहैं विद्ययामृतमश्नुते विद्यासे अमृत अर्थात् मुक्ति होतीहै जिससे संसारमें जन्म नहीं होता और आपने मुक्तिसेभी लौटना मा-नाहै तो सारी तुह्मारे ग्रंथोंमें अविद्याही अविद्याहै २ परमेश्वर सजाति विजाति-भेद रहितहै जगत नाशवान होनेसे स्वप्नवत् है जगतमें सत्यबुद्धि परमेश्वरमें भे-द मान्नाही अविद्याहै सो आपने सम्पूर्ण ग्रंथमें ईर्षा निन्दा द्रोह यह सब अविद्याही लिखीहै वेदान्तरूप ब्रह्मविद्याका नाश कियाहै. फिरअविद्याका नाश कैसा.

९ हरेकको अपनी उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये.

समीक्षा. जबतक भेदबुद्धि है तबतक यह नियमभी निर्वाह नहीं हो सक्ता यह बात आपकी कथनमात्र है क्योंकि आप भेदवादीहैं और भेदवादियोंमें यह बात नहीं कि औरोंकी उन्नतिसे संतुष्टहों ऐश्वर्यकी तो बातही रहने दीजिये फिर जब स्वामीजीने अपना नवीन मतही कल्पना करलिया तो अपनेसे और धर्मावलंबियों-की उन्नति आप कब चाहैंगे सैंकड़ो दुर्वाक्य कहे और सनातनधर्मकी अवनतिमें सत्यार्थप्रकाशही बनाया है यह नियम कथनमात्र है यथाहि—

परउपदेशकुशलबहुतारे जेआचरहिंतेनरनघनेरे

१० सब मनुष्योंको सर्वदा द्रोह छोड़कर सामाजिक सर्वहितकारी नियम पाल-नेमें परतंत्र रहना चाहिये और पृथक् सर्व हितकारी नियमोंमें सब स्वतंत्र हैं.

समीक्षा. जो सर्वहितकारी नियम हैं सो प्रति २ लेकर सर्व कहलाते हैं फिर यह बड़े अचंभेकी बात है कि पृथक् हितकारी नियममें स्वतंत्रता और सर्व हितकारीमें परतंत्रता. यह क्या बात. यह इनके नियम १० अशुद्ध हैं सर्वहितकारी और पृथक् सर्वहितकारीमें अन्तरही क्या है सो तौ लिखा होता. क्या सामाजिक सर्व हितकारी और पृथक् सर्व हितकारीमें केवल समाजकू छोडकर और सब मनुष्य नहीं आगये, फिर परतंत्र स्वतंत्र कैसा सबके लिये एकसा ही करनाथा.

इति श्रीस्वामीदयानंदकृतनियमस्य खंडनम्

सम्पूर्णम्.

वैदिक सिद्धान्त.

जिनका वर्णन इस पुस्तकमें आया है प्रकाश करतेहैं.

१ ईश्वर, जिसके अनन्त नाम हैं वोह निर्विकार सर्वशक्तिमान निराकार साकार है अनेक विधि अवतार धारण करता है सच्चिदानंदरूप तर्करहित उसकी महिमा वेदादिशास्त्रोंसे जानी जाती है इसका भेद मनुष्य नहीं जान सक्ते.

२ वेद, मंत्र और ब्राह्मण दोनों भागौंका नाम वेद है दौनों अंग अंगी होनेसे निर्भ्रान्त प्रमाणहै क्योंकि इन ग्रंथोंमें एक अलग करैं तौ यह भाग कहे जाते है जैसे मंत्रभाग ब्राह्मणभाग इस कारण दौनोंका नाम वेद है दौनौंही स्वतःप्रमाणहै.

३ धर्म, जिसकी वेदादिशास्त्रोंमें विधिहै वोह धर्म और जिसका निषेध है वोह अधर्म है जो मनुष्योंने अपनी ओरसे कल्पना कर लिया है वोह धर्म नहीं.

४ जीव, जो कर्मबन्धनसें युक्त है वोह जीव कर्म बंधन छूटनेसे आत्माकी जीवसंज्ञा नहीं रहती.

५ जब यथार्थ ज्ञान होता है तब जीव ईश्वरका भेद मिट जाताहै

६ अनादि एक ईश्वर है उसकी अनन्तसामर्थ्यसे सब जगत प्रकृति सहित उत्पन्न होता हैं.

७ सृष्टि, जो ईश्वर अपनी अनन्तसामर्थ्यसे रचताहै वोही उसकी सृष्टिहै और वोह सृष्टि विविध प्रकारके द्रव्योंका मेल कर्मोंका मेल ईश्वरकी रचनाका चमत्कारहै इन सबका कर्ता ईश्वरहै इसकारण यह सृष्टि सकर्तृक कही जातीहै.

८ बन्धन, कर्मोंके विद्यमान रहनेसे होताहै चाहैं अच्छेहौं या बुरे क्योंकि दौनोंका फल पराधीनहो भोगना पडताहै.

वैदिकसिद्धान्ताः ।

९ मुक्ति, संपूर्ण कर्म और वासना ओंके क्षय होनेसे मुक्ति होतीहै जिसके होकर पुनर्जन्म नहीं होता.

१० मुक्तिके साधन वेदान्तविचार उपासना ध्यान योगाभ्यासादि.

११ अर्थ, जो धर्मानुष्ठानसे उपार्जन किया जाय सो अर्थ इसके विपरीत अनर्थहै.

१२ काम, अर्थ और धर्मसे जो प्राप्त किया जाय सो कामहै.

१३ वर्ण, जन्मसे होताहै कर्मसे नहीं.

१४ देवता, मनुष्याभिन्न देवलोकादिमें रहनेहारेहैं और असुर राक्षस पिशाच भी पृथक् जातिहैं.

१५ पूजा, देवता अतिथि माता पिता और ईश्वरकी करनी योग्यहै ईश्वर और देवताओंकी पूजा मूर्तियोंमें करनी योग्यहै.

१६ पुराण, वोह ग्रंथहैं जो ऐतरेय शतपथ इतिहास कल्प गाथा आदिसे भिन्नहैं और प्राचीनहैं जिन्हें व्यासजीने संग्रहकर भागवतादि नामसे प्रसिद्ध कियाहै.

१७ तीर्थ, गंगादिनदी पुष्करराजादि सरोवर तथा काशीस्थानादि जिनके दर्शनसे पाप दूर होते हैं

१८ प्रारब्ध और पुरुषार्थमें प्रारब्ध मुख्यहै प्रारब्ध पुरुषार्थसे सिद्ध होती है.

१९ संस्कार जन्मसे लेके मरण पर्यन्त १६ हैं यह कर्तव्यहैं और मृतकोंके लिये दानश्राद्धादि करना प्रबल वैदिकसिद्धान्त हैं.

२० यज्ञ, अश्वमेधादि राजोंको कर्तव्यहै ब्रह्मविचारशील ब्राह्मणोंको ब्रह्मयज्ञ कर्तव्यहै जिसकी विधि मीमांसा शास्त्रमें लिखीहै.

२१ आर्य, आर्यावर्तके रहनेवाले तथा श्रेष्ठ पुरुषोंको कहते हैं,जो सदांसे इस देशमें रहते हों इनसे विपरीतोंको दस्यु कहते हैं.

२२ आर्य्यावर्त, इस विंध्याचल और हिमालयके बीचमें है इसमें आर्य जाति ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र सदांसे रहतेहैं.

२३ शिष्टाचार वा सदाचार जो वृद्धोंसे चला आताहै वोह वेदानुसारही है.

२४ प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणहैं.

२५ आप्त उसको कहते हैं जिसके [illegible] यमें कभी संदेह न हो सदा निश्चित यथार्थ बोले जिसे अपने वाक्यका बदल न [illegible] । पंडे.

समीक्षाच प्रकारके वाक्यसे परीक्षा होतीहै प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, निगम, उपन-बड़े इन्हींसे सब कुछ निश्चय होजाताहै और वोह वाक्य हेत्वाभासरहित विद्यानु-सार शास्त्रयुक्तहो.

२७ स्वतंत्र, ईश्वर सदा सब कालमें स्वतंत्रहै विपरीतज्ञानरहित सर्वसामर्थ्य-युक्तहै. जीव सदा सब कालमें परतंत्रहै.

२८ स्वर्ग पृथ्वीके ऊपर लोकविशेषहै.

२९ नर्क स्थान विशेष जिसमें केवल दुःखही होताहै यमराजकी यातना भोगे-नी पड़ती है

३० विवाह आठ प्रकारका होताहै गान्धर्व विवाहको छोडकर और सब विवाहोंमें कन्या पिताके आधीन रहतीहै गन्धर्वविवाह नरेशोंमें पूर्वकालमें होताथा और-जातिमें नहीं.

३१ नियोग करना वेदाज्ञा नहीं स्त्रियोंको एकपतिके विना दूसरा कभी कर्तव्य नहीं.

३२ स्तुति, परमेश्वरके गुणप्रभावका कीर्तन करना स्तुतिहै.

३३ ईश्वरसे कल्याणकी इच्छाकरना प्रार्थनाहै.

३४ उपासना, मूर्तिमें ईश्वरका अर्चन वंदन करना यही उपासना कहातीहै.

३५ सगुण निर्गुण प्रार्थना स्तुति आदि निराकार परमेश्वरका वर्णन, निर्गुणस्तु-ति, साकारादि अवतार युक्त परमेश्वरका गुणकथन करना पूजन करना सगुणउपा-सना स्तुति प्रार्थना कहातीहै.

३६ भूआदि सप्तलोक उर्ध्व और पातालादि सप्त लोक नीचेकेहैं इनमें देवता राक्षस पिशाच मनुष्यादि रहतेहैं, सात समुद्र और इनके सिवाय अनन्तलोकहैं.

३७ ब्रह्मा इन्द्र शिवादि देवता पूर्ण ऐश्वर्य्य युक्त और गणेशजी देवी आदि स-ब उपास्य हैं.

३८ श्राद्ध जो मृतक पित्रोंकि उद्देश्यसे किया जाताहै.

३९ दान जो देश काल पात्र विचारकर धर्मपूर्वक दियाजाय.

४० तप, वन पर्वतोंमें कुटी बनाकर परमेश्वरकी प्रसन्नताके हेतु जितेन्द्री होकर जो अनुष्ठान किया जाताहै सो तपस्या कहा है.